

शाङ्कर अद्वैत वेदान्त का निर्गुण काव्य पर प्रभाव

लखनऊ विश्वविद्यालय से
पी एच० डी० के लिये स्वीकृत शोध प्रबंध

शक्तिस्वरूप त्रिपाठी
एम ए पी एच डी
दिल्ली कॉलेज—दिल्ली विश्वविद्यालय



दिल्ली
रणजीत प्रिण्टर्स एण्ड पब्लिशर्स

प्रकाशक	रणजीत प्रिण्टर्स एण्ड पब्लिशर्स ४८७२ चाँदनी चौक दिल्ली १
स्वतथाधिकारी	गार्गितस्वरूप त्रिपाठी
मूल्य	₹ ३५.००
मुद्रक	निरजनस्वरूप सक्कलता डिजाइट प्रेस दिल्ली

प्राम्कथन

भारतीय धर्म-साधना के इतिहास में आचार्य शङ्कर का अनेक दृष्टियों से अद्वितीय स्थान और योगदान है। शङ्कराचार्य एक महान प्रकार स्तम्भ एवं गान के अक्षय स्रोत हैं। उनकी निमल एवं मोक्षप्रणयिनी विचारधारा में अवगाहन करके अनेकानेक प्रतिभाओं ने विकास की दिशा सम्प्राप्त की और स्थायित्व प्राप्त किया। आठवीं शताब्दी से लेकर आज तक वे अध्ययन, विवेचन एवं गान के विषय बने हुए हैं। कबीर एवं उनके जीवन दान तथा साधना की सुव्यवस्थित रूपरेखा प्रदान करने वाले उनके गुरु रामानन्द जैसे मुग प्रवक्तव्य व्यक्ति एवं भी आचार्य शङ्कर से बहुत अग्रे में प्रभावित हुए। आचार्य शङ्कर का ब्रह्मवाद एवं मायावाद हिन्दू के सतत कविता में पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त करके अज्ञान से प्रसन्न निराशा से पीड़ित तिमिराच्छन्न भारतीय जनता के गोपित, दमित एवं सन्नत जीवन का प्रगमन करने और कोमलता प्रदान करने में सहायक बना। आचार्य शङ्कर की विचारधारा ने कबीर, नानक दाद सुन्दरदास जैसे विचारका प्रतिभाओं एवं मुग प्रवक्तव्य की दिशा प्रगमन की। आचार्य शङ्कर का अज्ञान विषयक परिवर्तन निगुण हिन्दू-धर्म का मूलधार है।

आचार्य शङ्कर का भारतीय धर्म के इतिहास में परम महत्त्वपूर्ण स्थान है। अनेक मत मतान्तरों और जटिल साधनाओं के फल में पड़कर धर्म की चिन्तन गति विभ्रतलित हो रहा था। बौद्ध मताओं और साधना के प्रति जन मानस में अनास्था और विश्नेह सक्रिय हो रहा था। ऐसी स्थिति में आचार्य शङ्कर का आविर्भाव उन गताश्रितों की सबसे बड़ी उपनिधि था। बौद्ध व्यवस्थाओं पर आधारित सस्कृति और जामघा अनेक कारणों से गारव च्युत हो रही

धी। चार्वाक प्राणि प्रतीत्यरवाी विषारपद्धतिमी पाप गुनी मां घोर
 सवा सर्वाधिक सुदुर्गामी परिणाम यह हुआ कि उस साधनामां कं पनु
 करण पर प्र य प्रनर साधन त शी का तिर उताी का अरगर मितता र्गा।
 इसी सत्तम म घनर गुह्य घोर सातारविमुग रिताधाराभा का विरगित
 हान के लिए सबन प्रथम मितता रहा। साताध साद्धर क समधा दा विगण
 स्थितिया थी। मनमान र्ग म प्राी हूर्द साधा-तत्रा की यात्र का राजा
 घोर बन्धक साधना घोर गितन परम्परा का गयताधारण क तिर मुनभ
 घोर बाध गम्य बनाता। एन भार उ-हान प्रम्यान प्रधी क भाग्य
 उपल य करण घोर उ-हा क शारा घाने पुत्रपत्निया के मनगदृत
 तर्कों का उत्तर दिया। दूमरी घोर अपन भाव्यतर प्रधा या छात्री
 बडी रचनाभा क द्वारा अद्व त सिद्धांत घोर साधना क र्ण को जा
 साधारण क तिर उपयोगी बनाया। निगुण काव्य पर साद्धर अ-त बन्धत
 का प्रभाव उक्त मत का समथन करना है। अ-त साधना-तत्व शनना व्यापक
 अर विस्तृत है कि जिसक एर एर पक्ष का लकर वि-वग विराट मीमासाए
 करके किमी निष्पविशेष पर पहुचता है और अयत्र बही सिद्धा त सता
 की जन वाणा म अत्यंत सरन और सरस सहस्र धाराभा म प्रस्तुति हाकर
 समस्त भारत की मानम भूमि को गोतल कर रहा है। निगुण सत रा य
 भी इसी विराट चिंतन और साधन योजना की एक परम श्र यमयी अवरिल
 अबाध धारा है। साद्धर अ-त दान-तत्व यति ससम किसी प्रकार उपति
 रह तो य- काय निष्प्राण और निस्सार हा जाएगा।

निगुण काव्य कत्रवर म अद्व त दान उसक आत्मा क सदा प्रतिष्ठित
 है किन्तु साद्धर दान की यापकता और विगन्ता के बीच काय घोर दान
 का सम्यक विनपण और मूल्यारन कर पाना दु साध्य है। निगुण काव्य
 विगुद्ध जन वाणा का काय है। ससम जिसा सिद्धा न या सास्त्र का सास्त्राय
 धम नियम और नूनबढता म छाजना भम ही होगा। प्रत्युत विद्वत्ता अर
 सास्त्रीय ज्ञान गरिमा क अभाव क कारण य- चिरकाल तन आभिजात्य वर्ग
 और वर्णा शारा उपति रहता।

निगुण काय एर सखिलष्ट दुगम और रहस्यमय वि यत्रा का अक
 दान है। ससम मात्र नीच वर्णों स आए हुए साधका का भी आयाम प्राप्त
 हुआ हो एमा नही। ऊच और गिधित वर्णों क साधक भी इसम दीक्षित हुए
 और पूण नि स्य- एव अनासक्त भाव स निगुण साधना का समर्पित हा गए।

कुत्र मिलाकर निगुण काय और साधना में समन्वय और सबमोहकता की जा सामर्थ्य है पाण्डित्य विहीन होते हुए भी नसर्गिक अनुभव-गरिमा से ओत प्रोत है। इसमें भौतिक भेदा से रहित परम दिव्य अध्यात्म बोध की वेष्टा निश्चाय है जिन्हें आचार्य गङ्गुल ने अनन्त गतिर्या पूर्व प्रगल्भ किया था।

अपने युग में निगुण सन्ता का दायित्व भी आचार्य गङ्गुल से मिनता जुलता था। अनेक राजनतिक और ऐतिहासिक कारणों से जन मानस विविध द्विधाभा, प्रातका और आशकाभा से घसित हो चुका था। इस मानसिक पराजय का महत्त्व दण के भविष्य के लिए राजनतिक पराजय से कहीं अधिक है। राजनतिक उपलक्षियाँ तो बाह्य हैं इसलिए गोण भी हो सकती हैं किन्तु खोए हुए नतिक मूल्य और मानसिक शक्तियों के ह्रास का पुन प्राप्त करना या पूरा करना अपेक्षाकृत दुस्तथाय है। तुलसी ने रामकाय के द्वारा जीवन में मर्यादाओं के समावेश का सन्देश दिया है। इसके अतिरिक्त काय और नतिकता का सम्बन्ध सगुण काय में अत्यन्त दुर्लभ है। किन्तु निगुण काय आद्योपान्त नतिक सत्वों से पूरा है। जीवन के प्रति भौतिक और आध्यात्मिक सुधारवादी प्रश्रिया ही इस काय में प्रधान है। काय नतिकता और सुधार आदि के पारस्परिक या अयो-माश्रित सम्बन्ध नहीं होते और यदि इस प्रकार के सम्बन्ध हो भी तो इससे न तो काय की प्रतिष्ठा बढ़ती है और न इनकी अनिवाय उपयोगिता ही है। नीति-काय में ही इस प्रकार के सम्बन्धों के विविध रूप उपलब्ध होते हैं किन्तु इससे काय में सरसता का सयोग कम हो जाता है। नीति-काय अपेक्षाकृत अय काय विधाभा से कुछ नीरस होता है। निगुण मान काय में भी इस प्रकार के सयोग प्रायः उपस्थित हो जाते हैं किन्तु साधन के अभाव में प्रेम के महत्त्व को सभी निगुण कवियाँ न एकरवण में सकारा हैं। इनका प्रेम विह्वलता बसी ही है जसी किसी भूक की चोट, जिसे वह बाणी द्वारा प्रकट नहीं कर सकता। निगुण कवियाँ की भाषा का क्षेत्र बहुत ही सीमित है। अनेक बोलियाँ का उस पर प्रभाव है। फिर भी साहित्य अनुभूतियाँ का भार उसमें इतना अधिक है कि अनेक अनुपपुक्त शब्द बहुत ही उपयुक्त और सायक प्रतीत होते हैं। सद्भाषिक सामञ्जस्य प्रस्तुत करने में तो य कवि बड़े ही कुशल है। किन्तु इनके सामाजिक महत्त्व एवं तत्त्वानीन दण काय के अनुकूल व्यवहार और विचार-नीतल का उपयुक्त मूल्यार्जन करने का भव भी आवश्यकता है।

निगुण कवि मात्र कल्पनालोक का प्राणी नहीं है। उसका हृदय में सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग के प्रति तादृश आग्रह है। वरारण्य सन्तान्तर अहिंसा

गत्य घोर सतस्या ही शारे प्रतिगमना है। त्रिग प्रसार गुणगी का राम
 अस्तिमानस प्राणुतिर युगवाध म भी प्रता त्रिगुण म्दिर रग मता है उगी
 प्रकार त्रिगुण वाध का मनेन प्राप्त का स्थितिया म भी तपीर है। त्रिगुण
 वाध म गुधारवाणी सत्त पताया वृत्ति क परिणाम त। है यन् एत मी
 धनमुक्त कमठ तथा यम भेत्पीर समाज निर्माण क प्रति माप्रा प्राप्त है।

गाङ्कर प्र त श्या घोर त्रिगुण वाध का गगम गोरमगत भाषा म
 युक्त एक तीर है। त्रिगुण वाध म प्र त त्रिगुण म उगत हात यागी स्थिति
 न सुपुस्त और गौरव तीन भारतीय जीवा का तता ती परिस्थितिया म तत्र
 चेतन प्रदान तिया या घोर प्राप्त क जीवा म भा उगत मनेन का गया मत्त
 है। गमय प्राणील जाता के माग म गाङ्कर प्र त श्या त्रिगुण कथिया
 की याणी क माग स उद्विन्न हो रहा है। प्राप्त की प्राप्त विषयकारी
 स्थितिया म उसके मन म दाना और पवित्र का सचार श्मी माध्यम मे ही रहा
 है। इस प्रकार के गौरवपूर्ण साहित्य प्रद्व की उपादा होने म त्रिगुण वाध
 का वगिष्टय प्रवाग म न आ सता। प्राप्त के नवीन युग सत्तम और प्रमुसवात
 प्रतियाप्रा म उस खोण हूण धनीन की गोज हो रही है। प्रमुन प्रमथ भी उमी
 की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कडी है।

त्रिगुण वाध धारा के क्षेत्र म अनेक पाय और सम्प्रदाय परिगणित हैं।
 सत कबीरदास इसके अग्रदूत है और उनके प्रभाव से अभिभूत होकर अनया
 नेक पाया और सम्प्रदायो की सृष्टि हुई है। इन सम्प्रदायों की सम्प्रदायगत
 साधनात्मक या प्रतिया जय उपरि जया इस विषय से अलग रखकर विचार
 करने की बातें हैं। गाङ्कर दान की त्रिगुण वाध म उपलब्ध स्वय मे ही
 अत्यन्त उपयोगी और विलक्षण सयोग है। इस प्रवच म उक्त तथ्य का निर-
 पण परम नपुण्य और कौशल मे किया गया है। अनेक स्थानो पर ऐसा प्रतीत
 होता है कि जम प्र त दान और त्रिगुण वाध के समागम के माध्यम से
 ससृष्ट भाषा और लोचवाणी गने मिन रही है। तेमे ही जैसे आचार्य शङ्कर
 और सत कबीरदास सत नानक साहव सत चरणदास और सत सुन्दरदास
 एक ही पवित्र म बड़े हूण है। विषय की गम्भीरता सबत्र सुरभित है किन्तु
 गाभीय किन्ष्ट नही बनने तिया गया।

सत महत्त्वपूर्ण विषय अब तक हिन्दी के गोधार्थी विद्वाना द्वारा उपरि सत
 रहा। सत-वाध पर प्रचुर गोध वाय हुआ है और होता जा रहा है परन्तु
 गाङ्कर वेदात और त्रिगुण वाधधारा के सम्बन्ध की और विद्वाना की दृष्टि

नहीं गइ । इस अभाव की ओर मैंने अपने प्रिय शिष्य श्री शान्तिस्वरूप त्रिपाठी का ध्यान आवर्षित किया । विषय की दुरुहता गम्भीरता, व्यापकता एवं महत्ता का परिचय एवं परिज्ञान सम्प्राप्त हो जाने के अनन्तर श्री त्रिपाठी ने इस क्षेत्र में अग्रसर होने की रुचि एवं उत्साह का प्रदर्शन और परिचय दिया । तब मैंने उन्हाह धर्म और लगन के साथ उन्हाने विषय का अध्ययन प्रारम्भ किया । क्रमशः तथाकथित 'गुरु' शाङ्कर वेदात्त उन्ह रस का सागर प्रतीत होने लगा । उनके परिश्रम और गहरे पठ कर तत्त्व की खोज निकालने की प्रवृत्ति ने बड़ा बल दिया लगभग चार वर्षों के समर्पित जीवन अनवरत परिश्रम एवं लगन के फलस्वरूप उनका शोध प्रबंध पराक्षको एवं विद्वानों द्वारा प्रशंसित और समर्पित हुआ । त्रिपाठीजी में विषय प्रतिपान्न की सराहनीय क्षमता यज्ञानिक विवेचन की अच्छी शक्ति और विषय के मर्म को परखने की पूर्ण योग्यता है । फलतः उनकी लगनी से गम्भीर विवेचना से पूर्ण ग्रन्थ प्रस्तुत हुआ जो शोध जगत में एक नवीन मान्य उपाधि उपाधित करता है । ग्रन्थ के प्रकाशन के अवसर पर हम त्रिपाठीजी का बधाई स्तंभ हार् मंगल रामना करते हैं कि वे अनुभव योग्यता और वय के पथ पर अग्रसर होत हए और भा गम्भीर तथा महत्वपूर्ण कृतियाँ की रचना कर ।

भा गारदा की उन पर असीम अनुकम्पा हो ।

उत्कृष्ट विश्वविद्यालय

१६ फरवरी १९६८ ।

त्रिपाठीनागयण दीक्षित

एम० ए० पा एच० डी० डी० एच०

दो शब्द

प्रस्तुत गाव प्रव के लो पर है — शाङ्कर दान और निगुण काय पर उसका प्रभाव । इनमें प्रथम पक्ष का अनुगोचन अद्वैत दान के मन्म में किया गया है । दूसरे पक्ष का अध्ययन भी इस प्रवध का प्रधान लक्ष्य है । शाङ्कर अद्वैत दान के परिप्रेष्य में निगुण काय का पुनर्भूत्याजन करना सुकर और सुगम काय नहीं है । शाङ्कर दान स्वयं में अत्यधिक व्यापक है उसकी विभिन्न दिशाएँ हैं । इस दान-परम्परा के भीतर ही अनेक आचार्यों के विगिण्ट सिद्धाता की अथ स्वीकृति विविध विचार पद्धतियाँ की मष्टि करता है । इस प्रकार तृतीय पक्ष निगुण काय पर मात्र शाङ्कर-दान का ही प्रभाव नहीं पडा है अपितु इसमें भारतीय चिंतन पद्धति में विकीर्ण प्रायः उन सभी पूर्ववर्ती विचार और साधन परम्पराओं का यूनाधिक समावेश है—जो उत्तर और दक्षिण भारत में प्रचलित थी । उत्तर भारत में वेगंत सूफी मत योग साधन नत्र मत बौद्ध और जनादिक मत मतांतरों का प्रभाव और प्रभार था । दक्षिण भारत में भक्ति की वण्णव और शव परम्परा में अनेकमुखी प्रगति हा रही थी । अस्तु तत्कालीन दान और साधनाओं का प्रभाव मध्यकालीन काव्य पर पडना स्वाभाविक था और उगका सम्भव रूप से आकलन करने के लिए निगुण काय की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है ।

सगुण काव्य की अपेक्षा निगुण काय में कुछ सद्धातिक जटिलताएँ हैं जिनके कारण इसमें सगुण काय के समान साहित्य और आकषण का अभाव रहता है । इसमें जानघारा की गुप्त नीरसता के प्रसंग अधिक रहते हैं और योग भाग की बठोर साधन पद्धतियाँ का अनुगोचन निगुण सत वानों में काठिय का आभास देता है किन्तु साथ ही हम यह न भूचना चाहिए कि इसमें भारतीय साधना और दशन तथा त्गी विग्गी चिंतन प्रगातियाँ का अतान एक वनमान सुराँत है ।

एक प्रथम में सिद्ध गारगनाय गान वराणाग गगन शान्दुवाय गगन
 नानक सत रदाय गान मुत्तरनाय गान वराणाग गान भीमा गादुय गग
 रिया साहय सान श्यावा र् सान सहोवा र् द्यानि धनर प्रभुय त्रिगुण गगा
 की दानियो के साधार वर विषय वा प्रभुगथा तिया गगा ३ । गिद्धात प्रति
 पात्न और प्रामाणिकता की रत्ता के तिल धारभ म गादुय गिद्धात वा
 प्रवतारणा आवयतनागुगार यथाश्यात की र्क है । य ध्यान रगा गगा है वि
 विषय के आधारभूत सिद्धात ही गरिमा गुरगिा र्क और गाय ही उगरी
 प्रापना विविध रथा और रगा व माध्यम म विविधि हाती गत । र्क
 सिद्धाता वा स्पष्ट करन व तिल उगगा र्क विरान विरान रिया गगा ३ त्रिगु
 विषय विवेचन को गान की जटिततामा म उवभाा र्क प्रयत नभ रिया
 गगा और न र्कम मत मतातरा र्क र्क र्क मण्डा वा ही प्रथम ३ ।
 केवन व गी त य विस्तारपूजन धरण रिय गय ३ — जिनका माधा मयय
 त्रिगुण-वाय म है । ब्रह्म जीव माया प्रकृति पान विद्या वम गगागा
 और पत् मान मन्त्रि आनि विषया व उी पगा वा विवतन गी हया ३
 जिनका त्रिगुण वाय पर स्पष्ट प्रभाव है ।

विषय प्रतिपात्न गली म सिद्धात क तत्र गगन एव वातानिक विभाग प्रम
 की निरतर ध्यान म रगा गगा है । एमे र्कमयय तय्य जो साधनाय
 अनुभव क विषय हैं ययामभव साधना के धारणा र्क और अतरग माया के
 आधार पर सरन एव बोधगम्य भाषा म प्रस्तुत किय गये है । गीध प्रथ मे
 उपनिषत् गीता और ब्रह्मसूत्र आनि व ध्ययन म प्राप्त निष्ठाओं की योजनाबद्ध
 अविधि प्रस्तुत करने का मपन प्रयाम है ।

स प्रकार यह प्रथ त्रिगुण वाय की म न प्ररक भावधारा के प्रवदात्न
 करन वा एक उपयोगी साधन है । एत अत्यंत साधक विषय को नक्क ने
 जिन सहज रूप म सीरी भाषा म प्रकट किया है उमके कारण प्रस्तुत गीध
 प्रथ की उपान्यता म निश्चय ही वद्धि हुई है ।

मुझे आगा है त्रिगुण वाय व जिनामु पात्न डा० त्रिपाठी के गभीर
 अध्ययन का उचित आ्तर वरग ।

भूमिका

प्रस्तुत प्रबंध का विषय शाङ्कर अद्वैत दर्शन का निगुण काव्य पर प्रभाव है। इस विषय का महत्त्व मात्र हिन्दी साहित्य में ही नहीं अपितु भारतीय दर्शन के विकास और तत्सम्बन्धी साहित्य के एक अग्रेग रूप में भी है। निगुण सत काव्य में यद्यपि दर्शन की प्रधानता है किन्तु यह प्राथमिक काव्य मयादास्रा के भीतर ही सक्रिय है। दर्शन पर काव्य की प्रतिष्ठा है। इन कवियों के द्वारा अतीत चिन्तन पद्धति शाङ्कर अद्वैत दर्शन का ही रूप है।

कालक्रम के विचार में निगुण काव्य एक ओर महात्मा बुद्ध के परवर्ती युग धर्म से प्रभावित है और दूसरी ओर भारत के इतिहास के मध्य युग—मुसलमानी शासन काल—के अधिकांश से सम्बद्ध है। पूर्व और परवर्ती काल की धार्मिक नतिक एवं तत्त्व चिन्तन-सम्बन्धी चेतनास्रा का प्रतिबिम्ब निगुण कविता में प्रतिभासित है। सद्भावित्व गरिमा का प्रत्यक्ष इस बात से हाता है कि इसमें उपनिषद्-तत्त्व मन्त्र मुगुरित है और आचार्य शङ्कर के गहन दर्शन की पूरी छाप है। आचार्य शङ्कर का दर्शन उस युग की आवश्यकताओं को देखते हुए प्रातिकारी दर्शन है। इस काल में जन बौद्ध चार्वाक आदि नास्तिक दर्शन तथा अनेक मत मतान्तर प्रचलित थे। बल्कि सध सगठन और शक्ति सामञ्जस्य से युक्त सामाजिक व्यवस्थाएँ द्विन भिन्न हो रही थी। आचार्य शङ्कर ने अनेक ऐतिहासिक और राजनतिक घात प्रतिघातों से विचलित जन चेतना का एक बार पुन मुनियोजित करने का महान आयोजन किया था। इसी प्रकार निगुण सत-कवियाँ व समर भी उनके काल की अनेक परिस्थितियों चुनौतियाँ थीं। जिस प्रकार आचार्य शङ्कर को अनेक वषण्णों को समन्वय का रूप देकर एक पावहारिक चिन्तन माग ग्यजना प्रचीण था और वे अपने मन्तव्य में पूर्ण सफल भी हुए—उसी प्रकार निगुण सतों को भी तत्कालीन समाज और साधना को एक विराट सामञ्जस्य देना था क्याकि उनके आयोजन की सफलता विफलता पर देश का भविष्य निर्भर था। इतिहास साक्षी है कि वे भी अपने मन्तव्य में सद्गहन धर्मों में कृतकाम हुए।

श्रीर रमनिद्या की टीकाभा म अद्भुत दशन ध्वनित होता है। 'स्वामी दादूदयाल की बाणी म प० चंद्रिकाप्रसाद धिपाठी ने स्वसम्पादित बाणी का अथ समझने के लिए वदात प्रतिया का जान होना आवश्यक माना है। इस प्रकार कुछ सकेत मात्र ही प्रस्तुत अध्ययन का समीचीनता सिद्ध करते हैं।

उपरोक्त तथ्य विषय की प्रामाणिकता प्रनिपाति करने के लिए पर्याप्त नहीं है। विषय के महत्त्व को स्वीकार करते हुए श्रीर इस दिशा म विद्वाना का समुचित ध्यान न देना यह सिद्ध करता है कि विषय का अभी तक उपस्था होनी रही है। विषय की उपेक्षा क अथ कारणों का ठीक ठीक जान साध्य न हात हुए भी शाङ्कर वदात की नारमता श्रीर दुस्वहता ता एक कारण हो ही सकता है।

प्रस्तुत अध्ययन के द्वारा उक्त अभाव की पूर्ति हुई है। शाङ्कर अद्भुत वेदात का यापक श्रीर विस्तृत क्षेत्र है। इस दशन परम्परा म अनेक उत्तम तार्किक चिन्तक श्रीर साधका का समय-समय पर योगदान हाता रहा है। शाङ्कर दशन म उन मभी आचार्यों का अनुदान अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। भारत के इतिहास म अनेक दशियों तक इस चिन्तन धारा का प्रसार रहा है। भारतीय साधना श्रीर सम्प्रति पर उसकी अभिष्ट छाप है। अत उक्त कानांतर म वर्तमान मभी अद्भुतवादी आचार्यों के विचारों के किसी समवित रूप का अनुसंधान करना स्वयं म अत्यंत जटिल समस्या है। अद्भुतवाद क अतगत विविध अद्भुत भावनाभा का समावेश है। कठोर-वहा मह दान विगुद्ध नक याजनाभा पर आधित होकर बौद्धिक विलास की सामग्री प्रस्तुत करता है। एसी स्थिति म विभिन्न अद्भुत भावनाभा के समन्वय का मध्यम माग खोज निवाचना भी निरापन नहीं है। इन मभी बातों को ध्यान म रखकर विषय क अनावश्यक विस्तार मे बचने का ययामभव यत्न किया गया है। इन पक्ष म मत बविध्य या मत भीमाता का स्थान नहीं दिया गया है। पुनश्च, यहाँ यह भी कह दना आवश्यक है कि प्रभाव का मुख्य विषय शाङ्कर दान नहीं है। मुख्य विषय निगुण काव्य विवचन है जो शाङ्कर अद्भुत दान क परिप्रथ्य म किया गया है। हिन्दी म ही नहीं मगजी म भी एसा प्रथा का अभाव है जिनसे समग्र शाङ्कर दान का ठीक-ठाक ज्ञान-दान हो सके।

निगुण काव्य अततागहवा काव्य है दान नहीं। इसमें दानिक सिद्धांतों का विन्तापूर्ण स्थिति का तत्त्वान्वेषण करना निगुण काव्य की धामा क प्रति अयाम हागा। अत निगुण काव्य पर शाङ्कर अद्भुत दान

का प्रमाणाङ्गीकृत है। निगुण वाक्य में अर्थात् वाक्या की तत्त्व योजना और मत-व्यवस्था की बात करता भाष्यपुराण है क्योंकि ज्ञानार्थ का इस विचार से वही भी मत गही है। निगुण वाक्या में वाक्य वाक्य का सीधा पाग निरूपण नितान्त प्रतिकूल धारणा है। इसमें अर्थात् वाक्य वाक्य का सीधा वाक्य जिह्वास्त्र अध्ययन का अधिकार नहीं था। फिर दूसरी भाषणा पद्धति भी किसी शास्त्र द्वारा नियंत्रित नहीं थी। अतः अतः वाक्य की वाक्याङ्गुली वाली का अन्वेषण करने का यत्न करता भी निगुण वाक्य का प्रतिपादन होगा। ऐसी स्थिति में अतः तत्वादी आचार्यों का विरिध मत और अतः का सदम में उक्त विषय का अध्ययन भा निरर्थक है। इस प्रबंध में गार्ह्यर अतः वनात का अध्ययन का निगुण मुख्यतः गार्ह्यर-वृत्त ब्रह्ममूत्र भाष्य उपनिषद् भाष्य और गीता भाष्य का ही आधार रूप में स्वीकार किया गया है। अन्य प्रतिरिक्त कुछ ऐसे अर्थ अर्थ या पुस्तक का भी आश्रय दिया गया है जिनमें निर्विरोध गार्ह्यर सिद्धांत की उपस्थापिता है। अध्ययन-काल में एसा अनुभव भी किया गया है कि गार्ह्यर दशा का जो भी अर्थ निगुण वाक्य का प्रभावित कर रहा है वह अत्यन्त सुबाध गुण बोद्धिक तर्कों में मुक्त तथा साधन के लिए उपयोगी है।

उपयुक्त सार में ही अध्ययन के निष्कर्षों का विवरण करने पर जानता है कि निगुण वाणी में भी उपनिषत् में प्रतिपादित चिन्तन या साधनात्मक तत्त्वा की उपादयता स्वीकृत की गई है। अपन भाष्या में आचार्य गार्ह्यर ने सबत्र उपनिषद-तत्त्व का ही प्रधानत उद्धृत किया है। ब्रह्मसूत्र का आधार उपनिषत् सिद्धान्त ही है। अतः निगुण सार वाणी का भी उपनिषत् ही प्रकाश स्तम्भ है। यथावसर निगुण वाणी की साधना सिद्ध करने के लिए इस प्रबंध में उपनिषत् उद्धृत की गई हैं। अध्ययन की दूसरी सीढ़ी पर पहुँच कर हमको भाष्या में स्थिर मता का आश्रय लेना पड़ता है। आचार्य गार्ह्यर वृत्त प्रस्थानत्रयी (ब्रह्मसूत्र उपनिषद् और गीता) के भाष्य में स्वीकृत सिद्धान्त भी निगुण वाक्य को समझाने में सहायक है। तत्पश्चात् विवेक धूर्तमणि आदि तथा अन्य पुस्तकें या अन्य विद्वानों के लेखों या निबन्धों का आश्रय उसी स्थिति में दिया गया है जहाँ विषय को अधिक स्पष्ट करने की आवश्यकता समझी गई है।

इस प्रबंध में निगुण वाक्य का अध्ययन करने के लिए अभी तक प्रकाशित अर्थ अर्थ वाक्या का ही अध्ययन किया गया है। वस्तुतः किसी भी निगुण

काव्य ग्रन्थ या निगुण सत वाणी का अध्ययन उसक विविध पक्षा का प्रामाणिकता प्रतिष्ठित करने के लिए नही किया गया है। जो ग्रन्थ या वानिया सामान्य रूप से प्रामाणिक समझी जाती हैं उनका ही विश्लेषणात्मक अध्ययन शाङ्कर सिद्धांत की मर्यादाओं का ध्यान में रखते हुए किया गया है। इस प्रसङ्ग में डा० पीताम्बरदत्त बडध्याल सम्पादित गोरखबानी का अध्ययन नम में प्रथम स्थान दिया गया है। सत कबीरदास के पूर्व सिद्धा और नाथा की परम्परा में गोरखनाथ परम प्रसिद्ध है। ये यद्यपि याग मार्गी है और भक्ता या सत्ता का काटि में नही आता किन्तु इनके परवर्ती युग में सत कबीरदास आदि निगुण कवियों पर इनका स्पष्ट प्रभाव पडा है। अस्तु कालक्रम को ध्यान में रखते हुए गोरखबानी का भी हमने अपने अध्ययन क्षेत्र में स्वीकार कर लिया है और यथासम्भव इस पर शाङ्कर दशन के प्रभाव की ओर संकेत किया है। गोरखबानी की प्रामाणिकता या अप्रामाणिकता हमारे अध्ययन से सम्बद्ध नही है अतः उसकी ओर ध्यान न देकर शाङ्कर सिद्धांत निरूपण की ओर ही विशेष ध्यान दिया गया है।

सत कबीरदास के काव्य पर शाङ्कर भद्र त दशन के प्रभाव का विवेचन करते समय हमारे पास दो काव्य ग्रन्थ हैं—बाबू दयामुन्दरदास सम्पादित कबीर प्रथावली और श्री विचारदास सम्पादित बीजक। कबीर प्रथावली का प्रामाणिकता के सम्बन्ध में उक्त ग्रन्थ में प्रस्तुत भूमिका के आधार पर इस प्रामाणिक मान लिया गया है। उक्त बीजक भी एक सम्मान्य संपादन है और उसकी प्रामाणिकता भी स्वीकृत कर ली गई है। सत दादूदास के काव्य का अध्ययन बलबडियर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित प्रति और चंद्रिका प्रसाद सम्पादित स्वामी दादूदास की वाणी से किया गया है। सत नानक के सिद्धांतों का अध्ययन सुन्दर गुटका से किया गया है। इसमें अनेक नानक मतानुयायी सन्तों की वाणियाँ संकलित हैं। वस्तुतः सन्त नानक के काव्य का अध्ययन ही इस प्रबंध का लक्ष्य नहीं है वरन् यावन उपलक्ष्य— निगुण वाणी में शाङ्कर सिद्धान्त का अनुशीलन करना ही इसका मन्तव्य है। अतः सुन्दर गुटका में प्रस्तुत वाणियों का अध्ययन शाङ्कर मत का ध्यान में रख कर किया गया है। इस सम्बन्ध में मात्र सत नानक की वाणी अभिप्रेत नहीं है अभिप्रेत वह समस्त निगुण काव्य का क्षेत्र है जिस पर शाङ्कर भद्र त दशांत का प्रभाव स्पष्ट होना हो। अतः निगुण सत्ता की रचनाएँ बहार के नाम पर ही प्रचलित हैं। इसी प्रकार नानक नाम से रचना करने वाले भाई कई व्यक्ति

हो सकते हैं। किन्तु इस विचार की प्रारम्भिक प्रशंसा प्रमुख प्रवचन विभाग में बाहर की बात होगी। इस दृष्टि से प्रवचन में गिद्धता की प्रशंसा ही प्रमुख है—कवि की प्रामाणिकता या अप्रामाणिकता की परीक्षा करने का दृष्ट प्रवचन में अवसर नहीं है। इसी प्रकार सत्त्वित्व विभाग में भी कवि का प्रवचन का आधार नित्यपाठ्य और सामान्यतया प्रवचन गुण गुण का हमारे प्रवचन में स्वीकृत हुआ है। गण चरनमय कवि का प्रवचन का आधार भी वनवन्द्य प्रसन्न प्रवचन विभाग की जाती और गण चरनमय कृत भक्तिसागर है। गुण प्रवचन की भाषा का प्रवचन भी हमारे प्रवचन में ही परम उपयोग गिद्ध हुआ है। प्रवचन में उद्धृत प्रायः सभी गेय वाक्यों वनवन्द्य प्रसन्न प्रवचन में प्रवचन में हैं।

यह प्रवचन चार खण्डों में विभाजित किया गया है—

१ प्रथम खण्ड—शाङ्कर पूर्ववर्ती अज्ञान भावना का स्वरूप। इस खण्ड में वद उपनिषद् बौद्ध दान और ब्रह्मगूत्रा में उपनिषद् अज्ञान भावना का प्रवचन किया गया है।

२ द्वितीय खण्ड—शाङ्कर अज्ञान दान का सिद्धांत पक्ष। इस खण्ड में आचार्य शाङ्कर के अनुसार ब्रह्म सत्त्वित्व प्रकृति माया अविद्या तथा जीव अज्ञानित्वा की व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

३ तृतीय खण्ड—निगुण काय का सिद्धांत पक्ष और उस पर शाङ्कर अज्ञान वेदान्त का प्रभाव। इस खण्ड में शाङ्कर मत को तद्वत् करके निगुण काय में ब्रह्म माया जीव-तत्त्वा की विवेचना की गई है।

४ चतुर्थ खण्ड—निगुण काय का साधना पक्ष और उस पर शाङ्कर अज्ञान वेदान्त का प्रभाव। इस खण्ड में अज्ञान साधना मांग में स्वीकृत वद ज्ञान उपासना भक्ति और गमात्मिक साधना की व्याख्या और निगुण काय में इनका स्थान निर्धारण किया गया है।

प्रथम खण्ड निम्नलिखित तीन प्रकरणों में विभक्त किया गया है—

१ वद और उपनिषद् में अज्ञान भावना का स्वरूप।

२ बौद्ध दान में अज्ञान भावना का स्वरूप।

अ—गुणाद्वैतवाद।

आ—विज्ञानाद्वैतवाद।

३ वेदान्त दान का स्वरूप।

भारतीय साधना और चिन्तन पद्धति के आत्मियोत्पत्ति के शाङ्कर अद्वैत द्वायन भारतीय ज्ञान के इतिहास की एक महत्वपूर्ण जड़ी है जिसके मूल में पूर्ववर्ती चिन्तन प्रणालियाँ की किये या प्रतिप्रिया है। इस विचार से वैदिक साहित्य में अद्वैत भावना का स्वरूप स्थिर करने का यत्न किया गया है। वैदिक सन्निधाया में अनन्य देवतायाँ का उपासना का विधान है। उपासना और कम साधनायाँ की अधिष्ठाता के कारण चिन्तन तत्त्व यहाँ धीरे है। अद्वैत-ज्ञान नूक्षम और तात्त्विक चिन्तन योग है अनन्य कम और उपासना की स्थूल प्रतियायाँ से उसका विराय है। किन्तु वेद प्रामाण्य का गौरव भारतीय साधनायाँ का सद्व्य आकृष्ट करना रहा है अतः अद्वैत द्वायन में भी वेद-प्रामाण्य के प्रति आग्रह होना उचित है। वैदिक बहुदेववाद के अनेक अतः राना से अद्वैत भावना का उदय होते सिलाइ देते है। इन उपासना में भल हाँ शास्त्राय शली पर सुसम्बद्धता न हो किन्तु अनेकता में एकता का द्वायन हाता है। सट्टि क पन्थाय वैदिक्य में अतः मता का साक्षात्कार वैदिक सहि तायाँ में होना है। यहाँ मात्र यह सकत है कि वैदिक साधना द्वारा स्थूल उपासना या कम प्रतियायाँ में हटकर प्रमथ चिन्तन जय सूक्ष्म मानस आधार पर स्थित हान के लिए अग्रसर हा रही है। वैदिक द्वायन उपनिषद् के रूप में चिन्तन प्रधान हो जाता है।

प्रथम लण्ड के प्रथम प्रकरण में उपनिषद्-तत्त्व और ज्ञान का विवचन प्रस्तुत किया गया है। उक्त तत्त्व ज्ञान में साधना और चिन्तन के अनेक पद हैं। इन पक्षा में नियमबद्ध विनास प्रम स्थापित करने का विद्वाना न यत्न किया है। इस सम्बन्ध में डा ड्यूसन के वर्गीकरण का उल्लेख प्रसङ्गवत् किया गया है। इसमें काल प्रम स्थापित करने का प्रयास है। किन्तु हमको ऐसा प्रतात हुआ कि उपनिषद् का वर्गीकरण विषय प्रम का आधार मानकर किया जाना चाहिए। प्रम प्रकरण में हमने सरत किया है कि स्थूल वैदिक साधना सूक्ष्म से निरन्तर सूक्ष्मतर होनी जा रही है। उपनिषद् ज्ञान चिन्तन प्रधान हाता जाता है और चिन्तन के कई स्तर पाते हैं। इन्हीं स्तरों को चिन्तन-सम्बन्धी विषय वस्तु के आधार पर हमने वर्गीकृत किया है। शाङ्कर अद्वैत ज्ञान की मूलाधार य उपनिषद् है और भारतीय साधना विचार और जीवा का इहाने प्रभावित किया है। आचार्य शाङ्कर ने अतः श्रुति प्रामाण्य का अग्रगत स्वीकार किया है। अग्रमूला का रक्षा का आधार मा श्रुति या उपनिषद् ज्ञान है। अतः प्रथम प्रकरण का विषय में अतः साधा सम्बन्ध न जान जाया

वह साङ्ख्य दर्शन का स्थापक और निगुण काव्य व भूतनाम का भारताय दर्शन में मुद्ररथ्याया तत्त्वा धरण कर्ता व त्रिगुण मङ्गलरथुण ममभा गया है । भारतीय दर्शन में बह्मिक विचार तत्त्वा श्रद्धा जाय और प्रकृति—त्रिगुण तत्त्वा की मोमासा प्रघात है । पञ्चतन्त्र (सांख्य त्रिगुण मासाया वनेपिक और वनात) में एही तत्त्वा का विवधता दृषा है । उपनिषत् में एा तत्त्वा में सम्बधित त्रिगुण और विचार प्ररणाण उपलक्ष्य हाती है । भारताय दर्शन की विगपना है कि उसमें त्रिगुण और साधना व तत्त्व घाया यात्रिन रूप में सम्मिलित ह । आचाय गङ्कर और निगुण काव्य में भाष्य हा विवेचनाण है । इस प्रकार बह्मिक काल में उपनिषत् तत्त्व दर्शन और साधन प्रक्रियाया की समवय गता उत्तर काल में आचाय गङ्कर गिडा नाया और यागिया की साधन प्रणात्रिया ग हाता हुई निगुण काव्य में प्रतिबिम्बित हा गई है । एही विचार में उपनिषत् तत्त्व का विवचन एम प्रकरण में किया गया है ।

प्रबध व त्रिगुण प्रकरण में बौद्ध दर्शन का विवचना है । यह प्रकरण भारतीय दर्शन व विकास क्रम में एक श्रृंखला व समान है । विज्ञाना का मत है कि गान्धर्व दर्शन पर बौद्धदर्शन का प्रभाव है । विज्ञानवात् का चिन्तन प्रणााली में विज्ञान की अणुण्ड चेत य सत्ता गान्धर्व मत में स्वाट्टन ब्रह्म चेतय के समक व माना जाता है । गूयवात् में गूय की निविकल्पक अकथनाय सत्ता की तुलना विज्ञाना से उपनिषत् में स्थापित ब्रह्म का अनिवचनीय ह्यानि व अनुरूप स्वाकार की है । उधर निगुण काव्य पर बौद्धमता व प्रभाव की आर भा निगुण काय व आधात्रिया का ध्यान गया है और इस विचार में विज्ञान वात् और गूयवात् का अध्ययन यहाँ उपयोगी समभा गया है । भारताय दर्शन में अत भावना व विकास व विविध रूप है और बौद्धदर्शन का चिन्तनपण भी अद्वैत दर्शन का एक रूप है । अत उक्त प्रकरण की सामग्री को प्रासंगिक मान कर माध्यमिक और यागाचार बौद्ध मता का विचार प्रक्रियाया का विवचन किया गया है । निष्कप में आचाय गङ्कर द्वारा उक्त मता का खण्डन प्रस्तुत करके गान्धर्व अद्वैत दर्शन की स्थापना का गई है । आचाय गङ्कर ने उक्त मता में सांख्य कूटस्थ सत्व का प्रभाव प्रदर्शित करके निराश्वर दर्शन और नास्तिक मता का खण्डन किया है ।

प्रथम खण्ड व तृतीय प्रकरण में बणा न दर्शन व स्वरूप और ब्रह्मसूत्रा पर विचार प्रकट किया गया है । ब्रह्मसूत्रा व आधारभा तत्त्वा का विवचन

इस प्रकरण में सन्धेय में किया गया है। इसमें यह मत प्रतिपादित किया गया है कि ब्रह्मसूत्रों की व्याख्या अनेक आचार्यों ने अपने आम्नाय सिद्धांतों से प्रभावित होकर की है। सूत्रों से निष्पन्न और सम्प्रदाय निरपेक्ष अभिमत प्राप्त करना कठिन है क्योंकि सूत्रों में निहित सिद्धांतों की सीमाएँ सूत्रों की समुचित और सक्षिप्त भाषा से प्राप्त नहीं होती। पुनश्च, ब्रह्मसूत्रों का अति व्यापक अध्ययन करना इस प्रबंध का मूल उद्देश्य भी नहीं है। इन सूत्रों को अद्वैत द्रव्य और तत्त्ववादी व्याख्याएँ अनेक आचार्यों ने की हैं। अतः अनावश्यक विस्तार की उपेक्षा करके सूत्रों की शङ्कर सम्मत व्याख्या ही इस प्रकरण में स्वीकृत की गई है। इस प्रकार प्रबंध का प्रथम खण्ड समाप्त होता है। इसमें ब्रह्मसूत्रों के विषयों पर डा० राधाकृष्णन और डा० दास गुप्त के दान प्रथा सहयोगिता ली गई है। शङ्कर भाष्य उपनिषदा और श्रीमद्भगवद्गीता के स्वतंत्र अध्ययन से निष्पन्न प्रस्तुत किए गए हैं। बौद्ध दर्शन के अध्ययन में महायान सूत्रालङ्कार लङ्कावतारसूत्र विशिखा त्रिणिका और माध्यमिक कारिकाया का स्वतंत्र अध्ययन भी सहायक सिद्ध हुआ है।

प्रबंध के द्वितीय खण्ड में शङ्कर अद्वैत दर्शन का अध्ययन किया गया है। इसमें उक्त दर्शन का अध्ययन मात्र दार्शनिक तत्त्वा में सीमित है। विषय की व्यापकता का ध्यान इसमें अवश्य रखा गया है किन्तु विषय के उन पक्षों की व्याख्या नहीं की गई है जिनकी निगुण काव्य में अवतारणा करना कठिन या असंभव होता है। निगुण काव्य साधना दर्शन और काव्य का समन्वित रूप है। अतः मात्र दार्शनिक सिद्धांतों की साज करना असंगत है। अतः अद्वैत साधना और उसकी भावभूमि को भी सिद्धांत के साथ साथ इस विवेचन में सम्मिलित करने का यत्न किया गया है। आकार और विषय को ध्यान में रख कर प्रस्तुत खण्ड में निम्नलिखित एकांग प्रकरण-योजना है —

१. आचार्य शङ्कर के अनुसार ब्रह्म का स्वरूप।
२. आचार्य शङ्कर के अनुसार सत्ति का स्वरूप।
३. आचार्य शङ्कर के अनुसार आत्मा भयवा जाव का स्वरूप।
४. आचार्य शङ्कर के अनुसार ब्रह्म जिज्ञासा का स्वरूप।
५. आचार्य शङ्कर के अनुसार विद्या का स्वरूप।
६. आचार्य शङ्कर के अनुसार कम का स्वरूप।
७. आचार्य शङ्कर के अनुसार उपासना का स्वरूप।
८. आचार्य शङ्कर के अनुसार आचार्य भयवा सत्गुरु का महत्त्व।

६ आचार्य शङ्कर के अनुगार शांति का स्वप्न ।

१० आचार्य शङ्कर के अनुगार श्री मुक्ति और अनुभव का महत्त्व ।

११ आचार्य शङ्कर के अनुगार माया अनुभव का स्वप्न और महत्त्व ।

प्रबंध के अन्तर्गत अनेक म उपयुक्त गणना विषयों का समावेश है । विषय सामग्री के द्वारा सिद्धांत का दार्शनिक म स्पष्ट करने का यत्न किया गया है । प्रथम विवेचन में माध्यात्मयोगात् तत्त्व गुरुरितं र, और दूसरा यत्न यह कि विषय विकास का वैज्ञानिक नाम उपनयन गता र । आचार्य शङ्कर के अनुगार ब्रह्म का स्वरूप निरूपण करते हुए ब्रह्म गत की परिभाषा ब्रह्मगुण म ब्रह्म के पर्यायवाची गत ब्रह्म का सच्चिदानन्द स्वरूप निगुण सगुण स्वरूप अतार भावना और ब्रह्मवात् के अतगत मधीष्ट ब्रह्म की अनिवचनीय स्थिति का विवेचन किया गया है । प्रकरण म ब्रह्मवात् सिद्ध करने का यत्न नहीं किया गया क्योंकि निगुण वाचक अतगत ब्रह्म भावना का अध्ययन किसी नए योजना में करना असाध्य होगा । साधन जय आस्था ही उक्त विषय में अधिक उपयोगी है । इसी प्रकार सत्त्व प्रकरण म अविद्या माया प्रकृति और अध्यास तत्त्वा का निरूपण करते हुए मायावात् या विवृतवात् को आधार मान कर सिद्धांत का आराधनात्मक रूप प्रस्तुत नहीं किया गया है । आचार्य शङ्कर के भाष्या में उक्त वाच्य का उल्लेख नहीं है । विद्वानों का धारणा है कि आचार्य शङ्कर मायावादी थे किंतु उनका मायावात् रूप रूप म मायावात् नहीं है कि उनकी माया उपनिषद कथित अविद्या का पर्याय है । उनके अनुसार माया का मिथ्यात्व तत्त्व के अभाव या गूणता का लक्ष्य नहीं करता । आचार्य शङ्कर ने माया गत का प्रयोग अपन म ध्या म बहुत ही कम किया है । आचार्य गौडपाद और आचार्य शङ्कर के माया सिद्धांतों में भी भेद है । ब्रह्मसूत्रों का अध्ययन करने पर प्रतीत होता है कि बौद्ध सिद्धांतों में स्वोच्यत माया का शङ्कर दशन पर प्रभाव नहीं है ।

आचार्य शङ्कर ने ब्रह्म और जीव का अभेद स्वीकार किया है । अभेद दशन अतत्वाद का मूलाधार है । किंतु जाव की यावहारिक स्थिति में अज्ञान जय भेद है । इस सम्बंध में अज्ञान म निश्चित अभेद प्रतिपादक स्थिति को आचार्य शङ्कर ने प्रमाण माना है । शङ्कर दशन परमाध दशन है । अतः यावहारिक पक्ष का विवेचन विस्तारपूर्वक नहीं किया गया है । आचार्य शङ्कर यावहारिक को अविद्यात्मक मानकर यावत स्वूल और गुण पदार्थों और विषयों का ज्ञान प्राप्त करने का यत्न किया है ।

भी द्वैत सत्ता का उद्धान अस्वीकार नहीं किया। साधन भी व्यवहार और द्वैतज्ञान का ही रूप है। द्वैत ज्ञान पान और व्यावहारिक वपम्य लौकिक विषय है। परमाथ साधन में पान होने तक इनकी सहायता ली जा सकती है। आचार्य गङ्कर ने कम को भी अज्ञान ज्ञान माना है और लोक सग्रह एव सत्व बुद्धि के लिए ही उसकी उपयोगिता है। पारमार्थिक आत्मा का जीव भाव अज्ञान और कम में उत्पन्न होता है। अद्वैतवाद का प्रतिपाद्य और प्राप्त य ब्रह्म ज्ञान है जो जाव व परम पुरुषार्थ का ही रूप है।

पान की उपरति में विद्या कम उपासना या भक्ति का महत्त्व गङ्कर ने स्वीकार किया है। आचार्य गङ्कर न इन समस्त साधना में से विद्या साधना को सर्वश्रेष्ठ माना है। कम उपासना तथा अर्थाथ साधन ज्ञान के अधिकारी भेद के अनुसार उपयोगी हैं। अपराक्षानुभूति में आचार्य गङ्कर ने योग साधन को महत्त्व दिया है कि तु समस्त योगागम का परिभाषा उद्धाने पान साधन को प्रधान मान कर उसके त्रिधात्मक पक्ष की उपेक्षा की है। उद्धाने योग साधन में मातृसिक या आंतरिक पक्ष को ही श्रेष्ठ माना है। साधन रूप में स्वीकृत पान को भी उद्धान मानसिक क्रिया माना है। पान प्राप्ति के लिए सर्वोत्तम साधन साधन चतुष्टय है। उपनिषदां और गीता श्रीमद्भगवद्गीता में उक्त साधना का महत्त्व स्वीकृत है। ब्रह्मसूत्रों में निष्पिष्ट ब्रह्म जिज्ञासा के पूव उक्त साधना में साधक का गति हानी चाहिए। कुछ साधकों में यह साधन सम्पत्ति जन्म मन्वार जय होती है और कुछ में अम्यास द्वारा उपार्जित। किसी भी रूप में हो प्रत्य जिज्ञासा और नानोपलक्षि म साधन चतुष्टय और उसके अतगत गमादि साधन की अनिवायता ब्रह्मसूत्र भाष्य में आचार्य गङ्कर ने स्वीकृत की है। प्रबन्ध के तृतीय खण्ड में उक्त विषयो का यथानिव और स्वतंत्र अध्ययन व आधार पर मौनिक विवचन प्रस्तुत किया गया है। सहायक प्रथा में गङ्कर भाष्या का सर्वाधिक उपयोग ११ खण्ड की सामग्री जुटाने के लिए किया गया है।

तृतीय खण्ड में प्रबन्ध करते समय प्रबन्ध-योजना में व्यवधान उपस्थित हो गया है। एकात्म प्रकरण के पञ्चात दादा या बारन्वी त्रयोन्य या तरहवा तथा चतुष्प या चौहवा प्रकरण प्रबन्ध में नहीं मिलत। मुद्रण मन् प्रकरणा और प्रकरण प्रम की हानि हो गई है।

प्रबन्ध के तृतीय खण्ड का आरम्भ पन्द्रहवें प्रकरण में होता है। यह खण्ड प्रबन्ध का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग है। जमा कि गन पृष्ठा पर हमने कहा

हे कि वाच्य शक्ति म ब्रह्म जीव घोर प्रकृति म नैव यस्तु का मामोगा हे
 गान्धर्व दान म मात्र ब्रह्म विचार हुपा है । इगा हेतु इग शक्ति की प्रकृति
 या म नवान कहा है । उतम घा ११५ गण्य ब्रह्म की त्रिपागा की गर् है ।
 जीव घोर प्रकृति भी परब्रह्म का अगण्य गता व स्वभाभूत है । जीवम घोर
 गमार की उतलधि जीव व अनादि अविद्यारम मकारा व कारण है ।
 यो ब्रह्मवाच्य का दूगरा प । गाद्वर मापावाच्य कहा जाता है । अतः गण्य व
 एम प । म प्रकृति अविद्या अथवा माया का मामोगा का गर् है । मापावाच्य
 का न य भी अतः ब्रह्म का गिदि करता है । त्रिगुण वाच्य म शक्ति गिदाता
 का विनैय प्रभाव है । इग गण्य म हम त्रिगुण वाच्य म म प्रविष्ट हाकर
 उपनुक्त म न वस्तु का अध्ययन करता है ।

तनीय गण्ड म हम अध्ययन-याजना इम व्रम म विभाजित करत है

१ पत्रहवा प्रकरण—त्रिगुण वाच्य म ब्रह्म का स्वरूप ।

२ सोनहवा प्रकरण—त्रिगुण वाच्य म सक्ति का स्वरूप ।

सत्रहवा प्रकरण—त्रिगुण वाच्य म माया का स्वरूप ।

४ अठारहवा प्रकरण—त्रिगुण वाच्य म आत्मा अथवा जीव का स्वरूप ।

पत्रहवें प्रकरण म ब्रह्मसूत्र उपनिषद् घोर गीता एव एन प्रपा पर
 आचाय गाद्वर के भाष्यो के आधार पर ब्रह्म-स्वरूप निर्धारण करके इस विषय
 मे त्रिगुण सत वाच्य म उपयुक्त उद्धरणों का चयन किया गया है । प्रबंध
 म प्राय संकेत किया गया है कि त्रिगुण वाच्य म वाच्यत्व प्रधान है और
 दान प्रासंगिक है । इसी प्रकार एत वाच्य मे दान-तत्त्व की तुलना म साधना
 तत्त्व प्रबत है । दानिक मिदाला का महत्त्व वाच्य और साधना की उपेता
 करने प्रतिपादित करना त्रिगुण सत वाच्य के साथ अयाय होगा । उक्त
 प्रकरण म ब्रह्मस्वरूप निरूपण करते हुए इन बातों का ध्यान रखा गया है ।
 उपनिषद् घोर ब्रह्मसूत्रा म ब्रह्म जिज्ञासा को साधक करन के लिए ब्रह्म जगत
 के जमादि का कारण कहा गया है । जगत की स्थिति है अतः इसने रचयिता
 ब्रह्म की जिज्ञासा करणीय है । उपनिषदा म जगत सक्ति सम्बन्ध म प्राय विव
 चन हुआ है । एत विषय म किसी वाद विनैय की स्थापना उपनिषदा म नहीं की
 गई । पीछे भाष्यकारा और आचार्यों ने स्व स्व सम्प्रदायानुसार अपने सिद्धांत
 प्रतिपादित किए हैं । त्रिगुण कविया ने अपनी वाणी म भी उपनिषद् की सक्ति
 सिद्धांत विगता स्वीकार की है । उनके वाच्य म भी ब्रह्म को जगत्कारण
 स्वीकार किया गया है । गान्धर्व मत म ब्रह्म-जगत्कारणत्व प्रासंगिक महत्त्व

का मानना है
को ब्रह्म
की गई है।
शिव और
माल है।
हम क
माया
के गता
होकर

रखता है। ब्रह्म चारणवाच के अतगन जगत की अभिन्न निमित्तापात्तरूपता प्रतिपादित करके आचार्य गान्धर्व न जगत और ब्रह्म में अन्वेष सिद्धांत की पुष्टि की है। चित्तन के अनेक स्तरों के परिप्रथय में अविद्या और अध्यासवाद सिद्धांत के द्वारा उठाने मनोवैज्ञानिक सदन में विवत भावना का सूत्रपात किया है। तत्पश्चात् अनिबचनीय स्याति के द्वारा ब्रह्म और जगत की अनाति रूपता प्रतिष्ठित करत हुए अद्भुत ब्रह्म सिद्धांत प्रतिपादित किया है। लगभग यही तात्त्विक प्रतिया निगम का य में ब्रह्म भावना व्यक्त करते समय प्रति

निगम का प सन्निष्ट काव्य है। इसमें दार्शनिक सिद्धांत की गुण्यता कायगत रसमयता का आश्रय पा कर सरस हो गई है। काय में प्रतिष्ठित ब्रह्म भावना यदि मात्र ब्रह्मवाच होती तो काव्य की महत्ता क्षीण हो जाती। किंतु निगम सत्ता ने ब्रह्म को स्वामी मित्र माता पिता प्रियतम सहायक उदारक और प्ररक आति विविध रूपा में देखा है। व निरंतर उसको सब यापी सा ती रूपा में देख रहे हैं। उनका सौ दय बोध मधुर और विलक्षण है। निगम निगाकार होते हुए भी ब्रह्म अनंत मानसिक एवं साधनोपयागी अनुभूतिया का आलम्बन है। निगम सत्ता साधना में मनस तत्त्व की प्रधानता इसी अनुध्यानाति योग-सम्मत साधन सम्पत्ति की इसमें विशेष स्थिति है। ब्रह्म का निगम स्वरूप भी इसीलिए इन सत्ता की चित्तन परम्परा के अनुकूल है। निगम सत्ता के अनुसार ब्रह्म सृष्टि रचना करके अपनी शक्ति और सामर्थ्य का परिचय देता है। प्रम पिपासु साधका स विविध पदाथ सत्ता के माध्यम से अपना दान देता है। आवश्यकता पडने पर वह उनकी सहायता करता है। वह अपने भक्ता का योग-भेम धारण करता है। ज्ञान माग में भक्ति वह भय है अथवा ज्ञान ही परब्रह्म का रूप है। ज्ञान माग में प्रम और भक्ति साधन सहायक है। निगम सत्ता काव्य में प्रम-तत्त्व सृष्टि है किंतु बहुत ही यापक और रस सिद्ध है। गान्धर्व अत दान स यह तत्त्व अतिरिक्त है किंतु गान्धर्व सिद्धांत स प्रतिबूल नहीं है। इस प्रकार की भावनाएँ निगम सत्ता की पराभक्ति भावना का व्यक्त करती हैं। इही स्थितिया में निगम काव्य अधिक सरस और मनोरम हो गया है।

निगम सत्ता का निगम ब्रह्म चित्तन क्षम में अवाङ्मनसगावर व्यवहारशील एवं स्थूल सूक्ष्म इन्द्रिया द्वारा अप्राह्य और अचिन्त्य है। किंतु ऐसा ही ब्रह्म सर्वगविमान् भवमुत्तम प्रसिद्ध नित्य एवं भवतवत्तल है। वह माया

का स्वामी और स्वयं मायाका भा ११ । १० ११ मी प्रवृत्तता है एवं विगल
होने हुए भी तत्कालीन प्रकृतियां प्रकृतियां हैं। मगर उमरा मायाका
प्रकार ११ । उमरा मरण मत्ता म मत्ता ११ भवतात्मक तथा व तन्व्य भावक
एक माया ११ है । परमा मा की उत्पत्ति के लिये ११ प्रकृति का उत्पत्ति व
११ वि तु पराधातु हान हुए भी व सूर्य सातम्य वसी है । तत्र का व
प्रकृति से विमुक्त वसी है । प्रकृति पृथक् तस्व है । मरुत्त विद्विषा से
सक्या ११ । उमरा स्वयं उपविष्ट मरुत्त ११ । तत्रमाया का वधत
श्रीर मा १ का मृगधर दही ११ । उमरा पारमार्थिक रूप धरुत्त ११ है । प्रकृति
एवय न तत्रा ११ न न मी भागा के प्रति निरुत्त ११ । मरुत्त रचना उमरी
पीडा कोनुत्त और तत्रा माय ११ । मरुत्त का रचितता तत्रर मा य प्रकृति
११ व विकारा म मुवा है ।

निगल व्रह्म मरुत्तनिष्पन्न हानर ना मरुत्त म प्र सविता १ । हाता ।
मरुत्ता की अभितापा पूण करन म व स वधया ममध है । वरुत्त व मरुत्त
काम और पूणकाम ११ । ११ मरी ११ व वधता म ११ वरुत्ता । वि तु धरन
साधका को उमा रूप म प्राप्त हाता ११ जिमम व उमरा ध्यान करते हैं । तत्र
वह नमिह रूप म विरुथव्ययु का सार करता है राम के रूप म रातम
का वध भी वरुत्ता है वृष्ण के रूप म मरुत्तिया व साध सातमीताम मी करता
है । निगल वरुत्त म दस प्रकार के मायाप्राप्त प्राप्तिका ही वने जाते है । ये
भक्ति भावता मे प्ररित उदगार है ।

निगल वाक्य म भक्ति भावना का सर्वांगपूर्ण रूप उपगध है । नमः ११
भक्तिया का भी उत्तम हमा है । वि तु यह मायात्मक साधन पत्र निगल
व्रह्म को ही मरुत्तित ११ । इम प्रवृत्त म इम विषय पर विचार नही किया गया
है वधात्त गारुत्त रान म त्रस कोटि की भक्ति को साधना के अधिकार भेत्त से
मरुत्त करके उपयोगी या अनपयोगी वन गया है । निगल क्रिया के चितन
की परमोच्च स्थिति म व्रह्म की अद्वित सत्ता को स्वीकार किया है । यहाँ ये
विवन भावना स विरोप प्रभावित हैं । व्रह्म की अद्वि त प्रिया ११ वित के साध
साध उत्तर निगल निर्विकार रूप का ध्यान करते करते ये भाव विभोर हो
जाते हैं । विवत मिद्धा त स प्ररित हो कर ये सूय भावना की और अपसर
हान वगत है । ये जग मध्यात्व एव अध्यास मिद्धा त की स्पष्ट स्वीकृति से
साधना क्षत्र म अत मिद्धा ११ के मनावज्ञानिक पक्ष व निक्षट भ्रा जाते है ।

निगल व्रह्म भावना का ये साधना और चि त्तन पक्षा का समन्वय करती

हृदय में तब्रह्म सत्ता को मानकर 'याथा क' साथ उक्त काव्य में अतः प्रातः है। अतः ब्रह्मनिवचन का आधार उपनिषद् और इनकी तत्त्व दृष्टि गार्ह्य और न्यायी है। पद्य के इस प्रकारण में इति पक्षा को प्रस्तुत किया गया है। बौद्धशास्त्र के अतगत विज्ञान और 'शून्य सिद्धांत' का प्रभाव का निवेदन हममें अलग से गही किया गया है। 'शून्य शास्त्र' का साधनात्मक रूप एवं उसकी ब्रह्मवादी समीक्षा की ओर अत्यन्त ध्यान दिया गया है।

प्रकाश का सोलहवें प्रकारण में निगुण ब्रह्मवादी की सृष्टि मन्वन्धी विचार धारा का परिचय दिया गया है। निगुण काव्य में अतः सिद्धांत मन्वन्त सृष्टि मन्वन्धी निम्नलिखित भावनाएँ उपनय्य हैं —

- १ विगत भावना ।
- २ प्रतिबिम्ब मारना ।
- ३ प्रणव भावना ।

इन भावनाओं में विगत भावना सर्वोच्च महत्त्वपूर्ण है और निगुण काव्य में इसका प्रभाव स्पष्ट है। गार्ह्य ब्रह्मवाद में चिन्तन के क्षेत्र में विवृत सिद्धांत की महत्त्वपूर्ण स्थिति है। अद्ययाम सिद्धांत के द्वारा अनान की अन्याय और नैसागिक सत्ता स्वीकार करके भी उसका मिथ्यात्व स्थापित किया गया है। विगत सिद्धांत से अनिच्छात्मक अर्गमिथ्यात्व की व्याख्या की जाती है। निगुण काव्य में गार्ह्य अतः तवा' का प्रभाव का पुष्टि करती हुई उक्त भावना का प्रमुख स्थान है। अतः ब्रह्म सत्ता में द्वैतजय जगत् भास की 'प्रावहारिक' स्थिति है, किन्तु परमाथ में अत्यन्तनीय ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं है। ब्रह्म के इस 'प्राव्यात्मिक' स्वरूप में अविद्या पर पन्था मना की स्थिति का निवचन विवृतता करना है। निगुण काव्य में जहाँ एक ओर मण्डि पर पणन उपलब्ध है वही सृष्टि के विवृत रूप की ओर भी स्पष्ट संकेत दिया गया है।

प्रतिबिम्ब भावना की निगुण विवृत संकेत भिन्न है। विवृत भावना में पौचनीतिक पन्थाभमसत्ता का मिथ्यात्व प्रतिपादित किया जाता है और प्रतिबिम्ब भावना जगत का ब्रह्म की प्रतिच्छाया रूप में स्वीकार करती है। जिस प्रकार छाया या प्रतिबिम्ब की स्थिति छाया उत्पन्न वाले पदार्थ या शक्ति पर निर्भर करता है वही समस्त विवृत प्रतिबिम्ब परब्रह्म पर आधारित है। वस्तुतः छाया आभास मात्र है और आभास मिथ्या होता है। आभासक ब्रह्म ही सत्य है और इस सत्याभास से जगत की मिथ्या स्थिति में

वस्तु करता है। वस्तुतः स्वकी स्विति रही किन्तु भाग्य स्वस्व परब्रह्म व
 चतय म प्रकाशित होकर स्वका प्रकाशक सामागित होता है। स्वयं ज्ञान
 स्वरूप है स्वयं माया उसके ज्ञान से प्रकाशित होकर ज्ञान स्वस्व प्रकाश होती
 है। भौतिक विषयों और पदार्थों म मनुष्य की सामागित स्वयं मिथ्याज्ञान स
 सादृष्ट होकर हो जाती है। पृथ्वी जल अग्नि वायु पथ भूतों की गति और
 क्रिया मा परब्रह्म व साधीत है। मान-बुद्धि अग्नि म सादृष्ट, स्वयं स्वयं
 तन्मात्रिक तत्त्व अग्नि प्रकृति के अन्वय पथ उत्पन्न है। ये सभी ब्रह्म की
 सद्भा स प्ररित होकर सायात्मक व्यवहार म प्रवृत्त हात है। प्रकृति व तीना
 गुण और तन्म उत्पन्न व्यावहारिक पदार्थ गता भी माया वा स्व है।

मात्र ब्रह्म तत्त्व है और जगत मिथ्या है। मान्य मिथ्या प्रतीति माया वा
 स्व है। ब्रह्म वृद्धस्व नित्य है किन्तु माया तन्म है। यही ज मती और
 मरती है। निगुण ब्रह्म अगति और गति अग्नि तन्म व या विरोधी भावा
 म मुक्त है कि नु माया म गति है। माया अ प त मपुर अन्वय पथ वन
 पूर्वक वानन उत्पन्न करती है। ससार म मनुष्य व निग जनी अन्वय मुया
 वपण है वहाँ स्त्री और घन त्वा अन्वयण की स्वितिया अन्वय है। व ममा
 नोक व्यवहार के प्ररित करने वागे प्रबल साधन है। पृथ्वी साया व परि
 वार वन पथ सामाजिक सम्बन्ध माया व तारा ही उत्पन्न विद्य स्व है। मा
 बुद्धि एव अन्वय स निगन्त भौतिक विषय प्रकाशना म पथ कर विद्य स्व
 वम और तारीर के मजान शृंगार अग्नि के निग वी गर्भ विद्या भी माया के
 स्व है। आचार्य गङ्कुर ने माया तत्त्व की साया तन्म व्यावहारिक तन्म दान
 जीवन की विद्याया की विगदता के साथ नहीं की है। माया सिद्धा त नित्या
 नित्य विद्य एव वराग्य साधना म परिगणित अनेक तत्त्वा का प्रतिगिया है।

गङ्कुर अ त दान म अविद्या अथवा माया के तन्म प्रत्यक्ष हाते है —
 दवी और तौकिव। त्वी पक्ष म यह ब्रह्म की गुद्ध गति है और तौकिव
 पक्ष म व्यावहारिक जीवन की भौतिक और मानसिक विषमताया स पूण
 अज्ञान दगा। आचार्य गङ्कुर ने ब्रह्मगूत्र भाष्य म इसके त्वी स्वरूप का
 व्याख्या करत हात स्व सट्टि प्रमग स सम्बद्ध किया है। उपनिषद म अविद्या
 और सट्टि की एक प्रत्यक्ष सत्य रूप म स्वीकार किया गया है। विद्यक वृत्तामणि
 अग्नि व या म माया की व्याख्या कुछ विगन्त है और उस पर सिद्धा त नित्या
 अधिका प्ररित है। माया के स्वरूप म व्यावहारिक मिथ्यात्व व सक्त्त स्पष्ट
 है किन्तु उसके तौकिव पक्ष की सीमाय अस्पष्ट है। स्व अथवा व या

म माया का सम्बन्ध मन से जुड़ गया है और उसकी श्रियता रूपण से परि-
 वर्तित होती जा रही है। निगुण काव्य में माया का यह तौनिक पक्ष ही
 प्रधान है। इसका भी सीधा सम्बन्ध मन के विकारात्मक है। माया और मन
 की इस निकटता की वृद्ध स्पष्ट स्थिति आचार्य गौडपाद की कारिकाओं में है।
 किन्तु इन कारिकाओं में माया के दार्शनिक पक्ष की विशदता है जिससे उसका
 व्यावहारिक विपुलता का अनुमान लगाना कठिन है। इस अवस्था में आचार्य
 गौडपाद के सिद्धांत के प्रभावों का निगुण काव्य में विद्वत्पण करना
 असम्भव है।

गाङ्गुल सिद्धांत में विगदनापूर्वक प्रकृति अविद्या और माया शक्ति
 तत्त्वों के सूक्ष्म भेदों का निर्देश किया जाता है। कुछ तत्त्व साध्यज्ञान के
 पुरुष प्रकृति द्वैतवादी मत कुछ उपनिषद् दर्शन के सृष्टि के विकासवादी
 सिद्धांत और कुछ मनोवैज्ञानिक विचारों से आधारित हैं। निगुण
 काव्य में भी इसी प्रकार के मद्वाचित्व स्वरूप उपलब्ध है। किन्तु निवार की
 चरम परिणति विवत आभास और शून्य इत्यादि वाला है। तौनिक स्वरूप
 पर माया का सम्बन्ध नतिक्रम से भी है। निगुण कवियों ने अविद्यात्मक परमात्मा
 सत्ता में एक आर स्वप्न की आसारता रखी है और दूसरी आर इसका ही
 आनिकता की प्रकृत शक्ति का रूप दिया है। इसी प्रसंग में माया और मन
 एक ही धरातल पर उतर आते हैं और यह अनादि नसर्गिक ईश्वरीय माया—
 स्तूत और पायित्व जगत में बिगरी हुई श्रियता है। प्रकृत में इसा हेतु
 माया प्रसंग के साथ मन के सम्बद्ध विवेचन को भी स्थान दिया गया है।

प्रकृत के अकारण प्रकरण में निगुण काव्य में आत्मा अथवा जीव
 सम्बन्धी विचारों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। गाङ्गुल दर्शन में जीव
 और ब्रह्म की अभेदात्मक सत्ता स्वीकार की गई है। उक्त दर्शन और निगुण
 काव्य पर उसके प्रभाव का यह प्रत्यक्ष उज्ज्वल पक्ष है। दोनों में ही जीव का
 व्यावहारिक और पारमार्थिक स्थितियों में स्थित हैं। अविद्या सिद्धांत का
 महत्त्व यहाँ एक बार पुनः उदित होता है। जीव के आध्यात्मिक स्वरूप का
 विवृत करने का दामित्व अविद्या पर जाता है। आचार्य गाङ्गुल और निगुण
 सन्त दोनों ही इस सम्बन्ध में एक मत हैं कि जीव विगुद ब्रह्म तत्त्व है। अविद्या
 जय उपाधि से इनमें भिन्नता की उपलब्धि होती है।

जीव की व्यावहारिक अवस्था में माया के अन्यान्य आवरण उम
 आच्छादित करती हैं। जीव अविद्या के सम्मान से अभिन्न होने पर स्वस्व
 ज्ञान में निगुण रहता है। माया की अनिवायता समीप में स्थित की गई

है कि उसमें अज्ञान का आवरण भंग होना है। आत्मा के व्यावहारिक जीवन की भौतिक मर्यादा का विवक्षा गत किया है। तब निगुण आत्मा ने अविद्या अथवा माया के क्षेत्र में व्यावहारिक जीवन का स्वप्न गन्त किया है। जीवित अज्ञानपूर्ण व्यवहार का उपाय आत्मा का है और व्यावहारिक स्तर पर उमरे व्यवहार का माया गन्त भा किया है। निगुण आत्मा में व्यावहारिक जीवन को अज्ञानपूर्ण माना गया है। मगार मज में केवल वह अज्ञानी मन्ता का भूत गया है। गार का ही आत्मा मान कर उसका पोषण करता है। व्यावहारिक जीवन का जन्म मरण भय निरन्तर प्रस्तुत रहता है। उसकी योग्यता भी तत्परा होता है। इन्द्रिया से भाग जाने वान भाग बढ़ावस्था या राग अज्ञान का कारण भागना जा मन्त। भागच्छा की प्रवृत्ति और भागने में असमर्थ होना ही प्राणी दुःखी होता है। निगुण कविया ने जीवन का उमरी अज्ञान का स्मरण पुन पुन किया है। उसे अनेक प्रकार की चलावनिया दी हैं। पारमार्थिक जीवन में मिल रहे वरण का समान ब्रह्म स्वरूप का अविभाज्य है।

निगुण कविया के अनुसार पारमार्थिक जीवन माया में मुक्त होता है। उसकी जानमयी स्थिति होती है। ब्रह्म का ज्ञान ब्रह्म स्वरूप ही होता है। गार धारण करके भी उस गरीरामिमान नहीं जाता। जान का जीव ब्रह्म सत्ता में प्रतिष्ठित होता है और द्वैतजय प्रवृत्तात्मक जगत का अभाव होता है। व्यावहारिक जीवन में प्रकृति का गुण प्रधान होते हैं। वे उसका भौतिक ज्ञान के प्रति आकृष्ट और आसक्त करते हैं। उसकी पारमार्थिक अवस्था में अज्ञान का अभाव होता है।

प्रवृत्ति के चतुर्थ तन्त्र में जीवन को अज्ञान वृत्त में मुक्त करने वाले साधना का विवचन किया गया है। उक्त तन्त्र में निगुण का यम साधन पण को इस प्रकार नियोजित किया गया है —

१ अनीसवा प्रकरण — निगुण का यम ज्ञान का स्वरूप।

२ बीसवा प्रकरण — निगुण का यम काम का स्वरूप।

३ त्रिसवा प्रकरण — निगुण का यम मक्ति और उपासना का स्वरूप।

४ चारसवा प्रकरण — निगुण का यम सद्गुरु का महत्त्व।

५ पंचसवा प्रकरण — निगुण का यम धृति युक्ति और अनुभव का महत्त्व और स्वरूप।

६ चौबीसवा प्रकरण—निगुण काव्य म नित्यानित्य वस्तु विवेक ।

७ पच्चीसवा प्रकरण—निगुण काव्य म ष्टासुत्राय फल भोग वराग्य का स्वरूप ।

८ सप्त-काव्य म षट साधन सम्पत्ति का स्वरूप ।

९ छ बीसवा प्रकरण— प्रथम साधन - गम ।

१० सत्ताइसवा प्रकरण—द्वितीय और तृतीय साधन—गम और उपरति

११ अष्टादसवा प्रकरण—चतुर्थ साधन—तितिक्षा ।

१२ उन्तीसवा प्रकरण—पंचम साधन श्रद्धा ।

१३ तीसवा प्रकरण—षष्ठ साधन—समाधान ।

१४ इकतीसवा प्रकरण—निगुण काव्य म मुमुक्षा का स्वरूप ।

उपसंहार ।

उपयुक्त सामग्री म ज्ञान कम और उपासना का भक्ति साधना की गाङ्गुर अद्वैत बदान्त दर्शन के अनुसार तात्त्विक व्याख्या प्रस्तुत की जा सकती है । किन्तु भाय साधन रूप की साधकता नियामकता यावहारिकता या अनुभवमूलकता म है । अतः उपयुक्त तीना साधना का सद्भाषितक निरूपण चतुर्थ खण्ड में किया गया है । साधन चतुष्टय और तत्गत गमादि साधन-सम्पत्ति का विवेचन स्वतंत्र रूप से निगुण काव्य में तत्सम्बन्धी लक्षणों के आधार पर किया गया है । निगुण काव्य में ज्ञान-साधन की स्थिति सर्वोपरि है । कम साध्य न होकर ज्ञान का एक साधन मात्र है । भक्ति का भी ज्ञानापरत्व में सहायक रूप म स्वीकार किया गया है । भक्ति का विषय विवेचन इस प्रबन्ध में प्रस्तुत नहा किया गया है क्योंकि आचार्य गाङ्गुर ने भक्ति और प्रमजय साधनाभा का बखुन प्रासंगिक रूप म ही किया और इनका प्रतिपादन अतःवाद की ज्ञान धारा क प्रतिबल भी है । या निगुण काव्य म भक्ति और प्रम या मयुर भावनाभा से प्रभावित अनेक साधक और मार्मिक स्थान भी हैं ।

निगुण काव्य क साधना पर म नित्यानित्य विवेक और वराग्य साधना का प्रभाव सर्वाधिक व्यापक है । इसम मामा, मति आदि तन्त्रों का यस्या भावन साधना क गभार प्रभाव म प्रस्तुत की गई ह । षट साधना म द्वितीय तिष्ठ और मुमुक्षा भाव निगुण काव्य म सर्वोपरि हैं ।

प्रबन्ध म उपयुक्त सामा विषया का अध्ययन गाङ्गुर अद्वैत-दर्शन क सम्मम क किया गया है । निगुण काव्य म उपरत्य मामग्री का गाङ्गुर दर्शन क परिश्रम म मन्वक प्लुगाङ्गुन करने क जित विषय का मन्त्र मौखिक

चिन्तन और व्यवस्था का आवश्यकता अनुभव हाती रहा है। प्रबंध में सबत्र मौलिक विवेचन का ही प्राथमिकता दी गई है। मौलिक दृष्टि से विषय प्रतिपादन करने का यथासम्भव प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना में हमका लखनऊ विश्वविद्यालय की टगार लाइब्रेरी से पुस्तका से सामग्री एकत्रित और संकलित करने में बड़ी सहायता मिली है। इस प्रबंध के विषय की स्वीकृति और काय करने की प्रेरणा लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा. दीनदयालुजी गुप्त से प्राप्त हुई। यह काय डा. त्रिलोकीनारायण जी दीरित के निर्देशन में पूरा हुआ। इस सम्बंध में डा० दीक्षित की प्रेरक और ध्य प्रदायिनी बाणी अविस्मरणीय है। इस प्रबंध के संपादन एवं सिद्धांत सम्बंधी सुझावों के लिए हम स्वामी कृष्णबाधा रामजी के चिर कृतज्ञ हैं जिन्होंने इसका अधिकांश भाग सुना और पढ़ा है। स्वामी अभिनव सच्चिदानंद तीर्थजी भी इस विषय को सुनकर गांधी काय में अग्रसर होने के लिए आशवासन दिए हैं। पं० कृष्ण गङ्गारजी गुप्त अध्यक्ष विभागीय हिन्दी विभाग डी. ए. बी. कालज कानपुर (सम्प्रति हिंदू कालज—दिल्ली विश्वविद्यालय) के स्नेहमय सहयोग के बिना यह काय पूरा होना असम्भव सा था। उन्होंने अनेक पुस्तका और सुझावों के द्वारा काय को आगे बढ़ाते रहने का निरंतर प्रोत्साहन दिया है अतः उनको प्रति हम अपना हार्दिक आभार प्रकट करते हैं। एक बार हम अपने सभी गुरुजनों का स्मरण हो आता है जिन्होंने गांधीवाच्यता से लेकर आज तक हमारे मन और बुद्धि को विद्यानुराग के सस्कार से मन्त्रित किया है और यह काय संपादित करने में योग्य बनाया है। मैं उन सभी गुरुजनों का चिरश्रेणी हूँ। अपने परम गुरुदेव अग्रज श्री नालमणिकी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने में बाणी समय नहीं है। उन्होंने सत्य महान निरपेक्ष भाव से अध्ययन के लिए प्रोत्साहित मात्र ही नहीं किया है बल्कि हमारे विद्यानुराग से उन्हें सच्चा सुन मिता है और उन्होंने बाल्यकाल में ही हमारे लिए अनेक अनेक अनेक महत्वाकांक्षाएँ सचिन रखी हैं। उनको ही निरापेक्ष सशरणा में इस काय का पूर्ण श्रेय है।

प्रस्तुत काय रणजान प्रिन्टिंग एंड पब्लिशिंग लिमिटेड द्वारा प्रकाशित हुआ है। अतः उनको प्रति आभार प्रदर्शन मरा कतव्य है। इसके पूर्ण संपादन में परम सन्त मित्र श्री रामचन्द्र तिवारी - सम्पादक भारतायतन का अथक सहायता प्राप्त है। अन्त्य में उनको आभारी है।

प्रक सन्नाधन में सतकता बरत जाने पर भी इस ग्रन्थ में कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं। आशा है कि विद्वान इन सबको सुधार कर पढ़ेंगे।

डा० नगेन्द्र अध्यक्ष हिन्दी विभाग—दिल्ली विश्वविद्यालय ने इस ग्रन्थ को सम्बन्ध में अपने दो 'नोट' देकर इसकी गौरव की वृद्धि की है। डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने विषय की महत्ता प्रमासित करने वाला प्राक्कथन देकर मुझे अध्ययन में अग्रसर होने का आशीर्वाचन और प्रोत्साहन दिया है। इन विद्वानों के प्रति मैं एक बार पुनः आभार प्रकट करता हूँ।

दिल्ली काँग्रेस, दिल्ली

२७ फरवरी, १९६८

विद्वज्जन कृपाभिलाषी

शान्तिस्वरूप त्रिपाठी

निपय-क्रम

प्रथम खण्ड

गबर - पूर्ववर्ती अद्वैत भावना का स्वरूप

प्रथम प्रकरण

पृष्ठ १ से पृष्ठ ६२ तक ।

वेद और उपनिषदों में अद्वैत भावना का स्वरूप—

वेद गण की उत्पत्ति वेद में अत भावना सम्बन्धी सामग्री का प्रयोग स्वरूप बहुदेववात् से ब्रह्मवाद के प्रति प्रवृत्ति वेद में माया शक्त का प्रयोग उपनिषदा में अद्वैत भावना का विवचन उपनिषत् गण की उत्पत्ति और परिभाषा उपनिषत् का वैदिक साहित्य में स्थान वेद और उपनिषदा का विकास त्रम के आधार पर अद्वैत भावनासम्बन्धी सामग्री उपनिषदा का वर्गीकरण डा० ड्यूसन प्रोफसर रानाड और डा० राधाकृष्णन् के अनुसार वर्गीकरण और उसकी समीक्षा डा० ड्यूसन का वर्गीकरण और मत उपनिषद विषयक विकास त्रम उपनिषदा का विषय गत षड्विंशति विभागों का समीक्षात्मक अध्ययन बर्दिश कम भावना और उपासना के अधिक निवृत्त उपनिषद निवृत्ति ज्ञानवाणी उपनिषद उत्तरवालीन धर्म साधनाप्रधान उपनिषद अद्वैत तात्त्व्यादी उपनिषत् उत्तरवालीन धर्म साधनाप्रधान उपनिषद उपनिषदा में अद्वैत-ज्ञान-तत्त्व की सू मता उपनिषदा में ब्रह्म का स्वरूप उपनिषदा में अद्वैत-ज्ञान-तत्त्व की सू मता उपनिषदा में जीवात्म-ब्रह्मव्य ईश्वर शक्ति माया उपनिषदा में मूर्त्तित्रय उपनिषदा में जीवात्म-ब्रह्मव्य का स्वरूप कम विद्या गान स्वरूप विचार उपसाहार ।

पृष्ठ १ से पृष्ठ ५७ तक ।

द्वितीय प्रकरण

बौद्ध दान में अद्वैत दान का स्वरूप

नूपाद्वैतवाद—नूपावात् का बौद्धज्ञान में स्थान नूपा गण का सायकता

गूयता का व्यापक रूप गूय से जगत सत्ति गूय सिद्धात की समीक्षा प्रतीत्य समुत्पादवाद का गूय सिद्धात में महत्त्व गूयवात् और जागतिक सत्य तथता और ज्ञान गूय और अधिद्या पारमायिक सत्य का स्वरूप गूय और धर्माधम, गति अगति गूय और आत्मा अनात्मा कम काल गूय सिद्धात और स्वभाव नि स्वभाव गुभागुभ निर्वाण का स्वरूप गूयवात् और जैविक अजैविक सत्त्वा की स्थिति आचार्य गङ्कर द्वारा गूय मत की आलाचना डा० राधाकृष्णन का गूयवात् सम्बन्धी मत डा० दास गुप्त के अनुसार गूय सिद्धात की समीक्षा ।

पृष्ठ ५८ से पृष्ठ ७१ तक ।

विज्ञानाद्वैतवाद

बौद्ध की योगाचार शाखा के अतन्त विज्ञानात्तवात् का स्वरूप निहण विज्ञानवाद की परिभाषा विज्ञानवाद और गूय सिद्धात की तुलना विज्ञानवात् और गूयवात् के विकास का काननम प्रतीत्य समुत्पात्वात् और विज्ञानवात्, प्रतीत्य समुत्पात्वात् सिद्धात विज्ञानवात् के अनुसार सत्ति का स्वरूप आलयविज्ञान का स्वरूप और महत्त्व आनयविज्ञान और चतनसत्ता, विज्ञानवात् के अनुसार ज्ञान का स्वरूप आलयविज्ञान और वासना विज्ञानवाद में नरात्म्यदत्ति अधिद्या स्वरूप विवकज्ञान का स्वरूप और महत्त्व निर्वाण का स्वरूप और महत्त्व सत्ति का अजातत्व विज्ञानवात् और अत्तवात् आचार्य गङ्कर द्वारा विज्ञानवात् की आलाचना विज्ञानवात् का लणन डा० राधाकृष्णन का मत डा० दास गुप्त का मत अत्तवात् और विज्ञानवाद पर एक तुलनात्मक दृष्टि ब्रह्मसूत्र और विज्ञानवात् या गतिभिन्नु के अनुसार ब्रह्मसूत्र और विज्ञानवाद की विवचना विज्ञानवात् और अत्तवात् में अन्तर प्र गित करने वात के विदु ।

पृष्ठ ७१ से पृष्ठ ८७ तक ।

ततीय प्रकरण

वदान्त दर्शन का स्वरूप—

वदान्त दर्शन का अन्तर्नि वदान्त दर्शन का साधकता ब्रह्मसूत्र का स्वरूप वदान्त दर्शन का परिमाण वदान्त दर्शन के अध्याय प्रस्थानत्रया और वदान्त सूत्र सूत्रा में स्वाहृत प्रमाण तथा म अति और स्मृति का महत्त्व ब्रह्मसूत्र के अनुसार ब्रह्म का मा ज्ञाव प्रवृत्ति कम ज्ञान और मात्त आत्ति तत्त्वा का म् म अत्त म विचार ।

द्वितीय खण्ड

शाङ्कर भद्र त दान का सिद्धांत पक्ष

पृष्ठ ६३ से पृष्ठ २१८ तक ।

प्रथम प्रकरण

आचार्य शाङ्कर के अनुसार ब्रह्म का स्वरूप —

आचार्य शाङ्कर के अनुसार ब्रह्म शास्त्र की उत्पत्ति ब्रह्म की प्रसिद्धि और स्वयंसिद्धि, ब्रह्म की उत्पत्ति ब्रह्म की अनानुसृतता ब्रह्ममूर्त क अनुसार ब्रह्म क पथायवाची शास्त्र जगत् कारण ब्रह्म का स्वरूप ब्रह्म का अभिन्न निमित्तो पान्नाहना ब्रह्म क कारण और वाय का अभ्य कथन, ब्रह्म का सच्चिदानन्द रूप विद्या अविद्या क आधार पर ब्रह्म-स्वरूप विभाजन निराकार और साकार ब्रह्म ब्रह्म और अवतार सम्बन्धा प्रश्न पर विचार ब्रह्म और माया की उपाधि का स्वरूप विवतवात् प्रेरक सिद्धांत, विवतभावना का स्वरूप निगुण ब्रह्म का कत व और अवत त्व ब्रह्म और सष्टि विवत सिद्धान्त आचार्य शाङ्कर की अनिवचनीय ह्यति ब्रह्म स्वरूप और सत ज्ञानेश्वरजी का मत बह्मकारण्यक उपनिषद म ब्रह्म क मूक्त और अमूक्त रूप कथन नतिनति पन् विवेचन ब्रह्म सत्ता के निश्चय बोधक मून ।

पृष्ठ ६५ से पृष्ठ ११२ तक ।

द्वितीय प्रकरण

आचार्य शाङ्कर के अनुसार सष्टि माया, अविद्या, अप्यास और प्रकृति का स्वरूप —

संज्ञायवात् और सष्टि अमत्वायवाद और सष्टि आचार्य द्वारा सत्ताय वात् का स्वाकृति, वाय-कारण की अभिन्नता सष्टि के निमित्त और उपाप्तन कारणों का स्वरूप दोना कारणों म अभिन्नता का कथन बह्मन्त सिद्धांत और परिणामयान् ब्रह्मकारणवात् की स्थापना साम्य और बह्मन्त दाना क जगत् सष्टि सम्बन्धी निचारा का तुलनात्मक स्वरूप शास्त्र म सष्टि की उत्पत्ति, सष्टि स्थिति और प्रत्यय का स्वरूप उपनिषदा म सष्टि विषयक स्यन ईशण और प्रवग-श्रितियों का महत्व सष्टि का पन्थय वपम्य पन्थय म ब्रह्म की अमत् सत्ता सष्टि प्रम विवचन सष्टि का व्यावहारिक रूप अनिवचनीय ह्यति के सम्भ म सष्टि विचार, सष्टि-अमत्थ म त्रिवत्करण और पचीकरण पद्धतिया का महत्व और स्वरूप ।

पृष्ठ ११३ से पृष्ठ १२१ तक ।

अविद्या और माया

अविद्या परिभाषा और मन्त्र अविद्या और माया के स्वरूप का अंतर
ताना ना सम्बन्ध माया का अनेकरूपता अर्थात् अविद्या और माया का
सम्बन्ध माया और उपाधि उपाधि और अध्यास माया की उपाधिरूपता
माया और अज्ञानित आचार्य गङ्गुल के अनुसार माया की व्याख्या, माया
का कृत्रिमता, वचना और अलनात्मकरूपता ।

पृष्ठ १२१ से पृष्ठ १२८ तक ।

अध्यास

अध्यास का परिभाषा स्वरूप और सापेक्षता यह प्रत्यय और अध्यास
अध्यास के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोण अध्यास के प्रकार अध्यास जगत
पञ्चम तारण अध्यास की असत्पणा अध्यास और जगत्सिद्धात् अध्यास
का अविद्यात आत्मा अध्यास और सत्त्व सिद्धात् अध्यास और अविद्यात्रय
अध्यास का वर्गीकरण उक्त धारितियों का निवारण ।

पृष्ठ १२८ से पृष्ठ १३५ तक ।

प्रकृति

प्रकृति की परिभाषा परा और अपरा प्रकृति साम्य दर्शन और वेदात्
सम्बन्ध प्रकृति में भूत प्रकृति के गुणों का स्वरूप प्रकृति की सत्त्वरूपता
प्रकृति के गुण प्रकृति और माया ।

पृष्ठ १३५ से पृष्ठ १४२ तक ।

तृतीय प्रकरण

आचार्य गङ्गुल के अनुसार आत्मा अथवा जीव का स्वरूप—

आत्मा और जीव का स्वरूप भूत आत्मा की परिभाषा और स्वरूप
आत्मा प्रयत्न और सत्त्व का अधिष्ठाता अज्ञान और अज्ञान आत्मा आत्मा
का स्वयमिच्छता आत्मा और अध्यास का सम्बन्ध पञ्चकाण्डीत आत्मा आत्मा
स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरों का सम्बन्ध आत्मा जागृत स्वप्न और सुषुप्ति
स्थितियों आत्मा—कृत और अकृत का साधो आत्मा—गत् चित्त और अज्ञान
रूपता आत्मा के विनाश निवारण आत्मा के अस्तित्व और अभावेत्त्व लक्षण
अज्ञानस्वरूप आत्मा और अधिष्ठाता जीवों का जीवों की व्यावहारिकता जीव और
दृष्ट का अस्तित्व । जीव और अज्ञान के स्वरूपों का अज्ञान जीव के अर्थ और
माया जीव का अज्ञान और अज्ञान प्राप्ति प्रतिबिम्ब भावना अज्ञान जीव की

ग्रीपाधिकता का निराकरण जीव का ग्रीपाधिक पत त्व और भोक्तृत्व जीव और ब्रह्म की एकत्पता तत्वमसि श्राप्ति महावाक्या के उक्त सम्बन्ध में प्रमाण ।

चतुर्थ प्रकरण

पृष्ठ १४३ से पृष्ठ १६८ तक ।

आचार्य शङ्कर के अनुसार ब्रह्म जिज्ञासा का स्वरूप —
ब्रह्म जिज्ञासा की परिभाषा जिज्ञासा की करणीयता और अकरणीयता धर्म जिज्ञासा और ब्रह्म जिज्ञासा का भेद ब्रह्म जिज्ञासा और अध्यास ब्रह्म जिज्ञासा का आश्रय गार्ह्य प्रमाण ।

पञ्चम प्रकरण

पृष्ठ १६९ से पृष्ठ १७४ तक ।

आचार्य शङ्कर के अनुसार विद्या का स्वरूप—
विद्या की परिभाषा विद्या साधन का महत्त्व विद्याभ्रा का वर्गीकरण परा और अपरा विद्याएँ, निगुण और सगुण विद्याएँ इन विद्याभ्रा का स्वरूप ।
पृष्ठ १७५ से पृष्ठ १७९ तक ।

षष्ठ प्रकरण

आचार्य शङ्कर के अनुसार कम का स्वरूप—
कम की परिभाषा कम और वर्णात्म - धर्म कम का लक्ष्य चित्त शुद्धि और लोक व्यवहार कम का महत्त्व कम प्रवृत्ति और गुण कम और कम पत्र कमसाधना का वर्गीकरण कम और ज्ञान में भेद कम की अपेक्षा ज्ञान की उत्कृष्टता ।

सप्तम प्रकरण

पृष्ठ १८० से पृष्ठ १८७ तक ।

आचार्य शङ्कर के अनुसार उपासना और भक्ति —
उपासना की परिभाषा उपासना का स्वरूप और लक्ष्य, उपासना की विविधता उपासना का विधान उपासना और अभ्युत्थ उपासना में भेदवादी सिद्धांत की स्वीकृति उपासना और भक्ति का अन्तर भक्ति और कम भक्ति में भेद की स्वीकृति ।

अष्टम प्रकरण

पृष्ठ १८८ से पृष्ठ १९६ तक ।

आचार्य शङ्कर के अनुसार सर्वगुरु का महत्त्व —
ज्ञान प्राप्ति में आचार्य या सर्वगुरु का महत्त्व आचार्य और गिष्य का सम्बन्ध जिज्ञासु के लिए गुरु उपदेश का महत्त्व ।

पृष्ठ १९७ से पृष्ठ १९८ तक ।

नवम प्रकरण

आचार्य गङ्कर के अनुसार ज्ञान का स्वरूप—

ज्ञान की परिभाषा ज्ञान साधन की महत्ता ज्ञान का स्वरूप ज्ञान का ज्ञेय ज्ञान से अज्ञान ज्ञेय ज्ञान और कम का भेद ज्ञान में शरीर की अपेक्षा कम में शरीर की अपेक्षा ज्ञानी की शरीर रहित स्थिति प्रावहारिक पारमार्थिक ज्ञान ज्ञान और मोक्ष का स्वरूप ।

पृष्ठ १८६ से पृष्ठ २१० तक ।

दशम प्रकरण

आचार्य गङ्कर के अनुसार श्रुति युक्ति और अनुभव का महत्त्व—

ज्ञान प्राप्ति में श्रुति का योग युक्ति द्वारा भी ज्ञानोपलब्धि आचार्य गङ्कर द्वारा तक प्रतिष्ठा अनुभव का स्वरूप अनुभव और ज्ञान का योग ।

पृष्ठ २११ से पृष्ठ २१५ तक ।

एकादश प्रकरण

आचार्य गङ्कर के अनुसार साधन चतुष्टय का स्वरूप और महत्त्व—

वह्नारण्य उपनिषद् के अनुसार साधन चतुष्टय की मायता आचार्य गङ्कर द्वारा साधन चतुष्टय की स्वीकृति साधन चतुष्टय अन्तरंग और बहिरंग साधन साधन चतुष्टय का महत्त्व साधन चतुष्टय का मूल्याङ्कन ।

पृष्ठ २१६ से पृष्ठ २१८ तक ।

प्रकरण द्वि १२ १३ १४ ।

तृतीय खण्ड

निगुण काव्य का सिद्धांत पक्ष और उस पर गङ्कर अन्त वेदांत का प्रभाव

पद्महर्षी प्रकरण

पृष्ठ २१८ से पृष्ठ ३७५ तक ।

निगुण काव्य में ब्रह्म का स्वरूप—

निगुण मन्त्र काव्य में ब्रह्म स्वरूप के अध्ययन का आधार आचार्य गङ्कर के अनुसार ब्रह्म का स्वरूप विवेक धूर्णमणि की सांगी निगुण काव्य में ब्रह्म का अन्तर्निमित्तानुपपत्तिना ब्रह्मस्वरूप में कारण और काय का अन्तर् ब्रह्म का माया-शक्ति और मण्डिरचना मण्डि की ब्रह्मरूपता मण्डि और ब्रह्म का अन्तर् अन्तर्नाय ब्रह्म में अन्तर् नामरूपामत्र मण्डि निगुण

काय म ब्रह्म का सगुण रूप, निगुण कविया का अवतार भावना निगुण कविया के अनुसार ब्रह्म की अनिवचनीय रयानि, निगुण ब्रह्म का महत्ता आचाय गङ्कर और निगुण सता क द्वारा समान ब्रह्म भावना की स्वीकृति उपनिषद् आचाय गङ्कर और निगुण सत कविया की ब्रह्म भावनाया का तुलनात्मक विवचन गूय गङ्क विचार ।

पृष्ठ २२१ से पृष्ठ २४५ तक ।

सोलहवा प्रकरण

निगुण काय म सट्टि का स्वरूप

विवत भावना

सट्टि और माया का मिथ्यात्व ब्रह्म शक्ति और विवत सिद्धांत विवत गङ्क की प्रारथा उपनिषद् म विवत भावना गीता म विवत भावना का स्वरूप ब्रह्मसूत्र और आचाय गङ्कर के अनुसार विवत भावना का स्वयं निर्धारण, निगुण काय म विवत भावना की अवतारणा ब्रह्म और सट्टि का सम्बन्ध विवत सिद्धांत के द्वारा अनेक सन्नेहा का निराकरण ।

पृष्ठ २५४ से पृष्ठ २६५ तक ।

प्रतिबिम्ब भावना

ब्रह्मसूत्र और आचाय गङ्कर के अनुसार प्रतिबिम्ब भावना का स्वरूप सट्टि और जीव म प्रतिबिम्ब भावना का आरोप प्रतिबिम्ब सिद्धांत म अविद्या का स्थान निगुण सता द्वारा प्रतिबिम्बवाद की स्वीकृति प्रतिबिम्बवाद जीव और जगत का स्वरूप ।

पृष्ठ २६५ से पृष्ठ २७० तक ।

प्रणय भावना

उपनिषद् म ओङ्कार की सवमायता माण्डूक्य उपनिषद् म प्रणव द्वारा सट्टि विकास का सिद्धांत उक्त सिद्धांत और आचाय गङ्कर का अभिमत ओङ्कार की तीन मात्राया का रहस्य निगुण सता द्वारा उक्त मत्र की स्वीकृति निगुण काय म सट्टि का विकास क्रम ।

पृष्ठ २७० से पृष्ठ २७६ तक ।

ब्रह्मसूत्र के अनुसार सट्टिक्रम गारगनाथ के अनुसार सट्टिक्रम, मत्र कबीरदास के अनुसार सट्टिक्रम, सत दाहूयाल के अनुसार सट्टिक्रम सत मुन्तरनाम के अनुसार सट्टिक्रम मत्र चरणदास के अनुसार सट्टिक्रम ।

पृष्ठ २७६ से पृष्ठ २८३ तक ।

रात्रहवा प्रकरण

निगुण काव्य म माया का स्वरूप —

माया का परिभाषा माया का स्वरूप और उसकी यास्या माया और मायावाच्य का स्वरूप माया अविद्या शक्ति अनान प्रकृति इन का की भावना पर विचार निगुण काव्य म माया सिद्धान्त क अध्ययन का आधार मूल शास्त्र सिद्धान्त निगुण कविया क अनुसार माया का स्वरूप माया ब्रह्म के अधीन उसकी शक्ति सृष्टि-कारण माया का विवचन निगुण श्रिया क अनुसार माया म त्रिवात्म्यता का कथन मायावी विविधता सृष्टि की मायारूपता विवचन त्रिगुणात्मक सृष्टि और माया का संबंध माया प्रपञ्च विवचन माया और जीव संबंध माया की कुटिलता छवना यचना का प्रवृत्तिया माया का मिथ्यात्व निराकार ब्रह्म म माया ही आकार का कारण माया जीव क आवागमन का कारण निगुण सत्ता क अनुसार माया की प्रवृत्तता और उसकी शक्ति की अकथनीयता जान —माया नाग का माधन माया मन उपमत्तर ।

पृष्ठ ८६ म पृष्ठ ३३४ तक ।

अठारहवां प्रकरण

निगुण काव्य म आत्मा अथवा जीव का स्वरूप —

निगुण काव्य म आत्मा अथवा जीव के स्वरूप क अध्ययन क आधार आचार्य शास्त्र क अनुसार आत्मा जीव सिद्धान्त की पुनरावृत्ति विवक शूडामणि का सा य निगुण काव्य म आत्मा का निगुण निरुपाधिक अज्ञान और अमृतरूप आत्मा की अतन्त्रता जीव की सावहारिकता जीवत्व और उपाधि जीव की सावहारिकता पारमार्थिक आत्मा म बंधन मात्र का अभाव जीव और ब्रह्म का अन्त निरूपण जीव भाव और प्रतिविम्ब भावना पारमार्थिक आत्मा का अन्त त्व व्यावहारिक आत्मा का अन्त त्व व्यावहारिक जीव का बंधन-कारण जीव का अविद्या कम अविद्या और जीव प्रकरण का उपमत्तर ।

पृष्ठ ३५ म पृष्ठ ७१ तक ।

चतुर्थ खण्ड

निगुण काय का साधन पथ और उस पर गङ्कर अद्वैत वेदांत का प्रभाव
पृष्ठ ३७७ से पृष्ठ ५१७ तक ।

उनीसवा प्रकरण

निगुण काव्य में ज्ञान का स्वरूप -
निगुण काय में ज्ञान का स्वरूप गङ्कर सम्मत ज्ञान से निगुण काय
की ज्ञान साधना की तुलना दोनों मता की एकरूपता और समानता
जीव मुक्त साधक का स्वरूप ज्ञान की उपादेयता उपसंहार ।
पृष्ठ ३७६ से पृष्ठ ३६६ तक ।

दोसवा प्रकरण

निगुण काव्य में कम का स्वरूप—
कम सिद्धांत की व्याख्या और स्वरूप निगुण काय में कम का स्वरूप ।
पृष्ठ ५६७ से पृष्ठ ४१५ तक ।

इपकीसवा प्रकरण

निगुण काव्य में उपासना और भक्ति का स्वरूप—
उपासना और भक्ति परिभाषाएँ दोनों में भेद निगुण काय में भक्ति
और आचार्य गङ्कर द्वारा उपासना और भक्ति की मीमांसा ज्ञान की
श्रद्धा की स्वीकृति ।

बाइसवा प्रकरण

निगुण काव्य में सद्गुरु का महत्त्व—
भारतीय साधना और गुरुभक्ति का महत्त्व उपनिषद् गीता में सद्गुरु का
स्थान निगुण काय में सद्गुरु का महत्त्व और स्थान ।
पृष्ठ ४१६ से पृष्ठ ४२० तक ।

तेईसवा प्रकरण

निगुण काव्य में श्रुति युक्ति और अनुभव का महत्त्व और स्वरूप—
निगुण काव्य में श्रुति युक्ति और अनुभव का स्वरूप आचार्य गङ्कर
और निगुण कवियों के मतों और मतभेद-तुलनात्मक श्रुतिवाणी निगुण
काव्य में अनुभव का महत्त्व और स्वरूप ।

पृष्ठ ४२६ से पृष्ठ ६३६ तक ।

चौथीसवा प्रकरण

निगुण वाक्य मे साधन चतुष्टय—नित्यानित्य वस्तु विवेक

नित्यानित्य विवेक की परिभाषा नित्यानित्य विवेक की महत्ता योगसूत्रा का माक्षी नित्यानित्य विवेक का लक्ष्य निगुण वाक्य मे नित्यानित्य विवेक अध्ययन के आधार निगुण वाक्य मे नित्यानित्य विवेक का स्वरूप ।
पृष्ठ ४४ से पृष्ठ ४६२ तक ।

पच्चीसवा प्रकरण

निगुण वाक्य मे इहामुत्राय फल भोग वराग्य का स्वरूप —

वराग्य नाम की उत्पत्ति वराग्य का स्वरूप और परिभाषा वराग्य के प्रकार यागसूत्रा का माक्षी गीता और वराग्य निगुण वाक्य मे वराग्य नाम भीमामा ।
पृष्ठ ४६२ से पृष्ठ ४८७ तक ।

छठीसवा प्रकरण

निगुण सत्त वाक्य मे षट् साधन सम्पत्ति का स्वरूप —

प्रथम साधन नाम नाम की परिभाषा व्याख्या मानस सम्पत्ति मे स्थान निगुण वाक्य मे अध्ययन का आधार निगुण-वाक्य मे नाम साधन का स्वरूप ।
पृष्ठ ४७८ से पृष्ठ ४९४ तक ।

सत्ताइसवा प्रकरण

निगुण वाक्य मे षट् साधन सम्पत्ति साधन का स्वरूप —

द्वितीय और तृतीय साधन नाम और उपरति —

नाम—परिभाषा—व्याख्या साधन की महत्ता अध्ययन का आधार निगुण वाक्य मे नाम साधन का स्वरूप ।

उपरति—परिभाषा—व्याख्या अध्ययन का आधार ।

साधन का महत्त्व निगुण वाक्य मे उपरति साधन के वर्णन और स्वरूप ।
पृष्ठ ४९५ से पृष्ठ ५११ तक ।

अष्टादसवा प्रकरण

निगुण सत्त-वाक्य मे षट्-साधन सम्पत्ति का स्वरूप —

चतुर्थ साधन—निर्दिष्टा—परिभाषा व्याख्या अध्ययन का आधार

साधन की अतरगता निगुण का यम तितिक्षा साधन का अनुभवान और और उभवा स्वरूप निगुण ।

पृष्ठ ११२ स पृष्ठ १२२ तक ।

उत्तीसवा प्रकरण

निगुण सत काव्य मे षट साधन सम्पत्ति का स्वरूप—

पचम साधन—श्रद्धा—परिभाषा, चारया साधन का अतरगता याव हारिक रूप निगुण का यम श्रद्धा का स्वरूप ।

पृष्ठ १२४ स पृष्ठ १६६ तक ।

तीसवा प्रकरण

निगुण काव्य मे षट साधन सम्पत्ति का स्वरूप—

षष्ठ साधन—समाधान परिभाषा व्याख्या साधन का अतरगता निगुण का यम समाधान साधन के लक्षण ।

पृष्ठ १७७ स पृष्ठ १४३ तक ।

इकतीसवा प्रकरण

निगुण का यमे मुमुक्षा का स्वरूप—

मुमुक्षा—परिभाषा व्याख्या और स्वरूप । मुमुक्षा की काटियाँ निगुण का यम मुमुक्षा साधन के अध्ययन व आधार, निगुण का यम मुमुक्षा का स्वरूप । निगुण सता की मुमुक्षा के रूप । निगुण सत प्रथम श्रेणा के मुमुक्षु साधक ।

पृष्ठ १६४ स पृष्ठ १५०

उपसंहार

पृष्ठ १५८ स पृष्ठ १६० तक ।

परिशिष्ट

पृष्ठ १ स पृष्ठ ६ तक ।

List of the English Books

१६८

प्रथम खण्ड
शङ्कर-पूर्ववर्ती श्रद्धा त भावना का स्वरूप

परिचय

प्रमथ क इस खण्ड में हम निम्नलिखित विषयों और सामग्री पर विचार करेंगे —

- (१) वेद और उपनिषदों में अद्वैत भावना का विचार ।
- (२) बौद्ध दर्शन में अद्वैत सिद्धान्त की रूपरेखा पर विचार ।
- (३) वेदान्त दर्शन का स्वरूप विचार ।

प्रस्तुत खण्ड में हम शंकर पूर्ववर्ती चिन्तनधारा में उपलब्ध अद्वैत सिद्धान्तों की मीमांसा करेंगे । इस दृष्टि से हम देखेंगे कि वेद में अनेक देवताओं की उपासना का विधान है, परंतु सभी देवता वस्तुतः एक रूप हैं और अनेक नामों से उनका सम्बोधन होता है । उपनिषदों के स्वरूप का विचार करते हुए हम देखेंगे कि ये उपनिषदें ही अद्वैत दर्शन का आधार हैं । वेदों की चिन्तनधारा और उपनिषदों की चिन्तन पद्धतियों में अन्तर निश्चित करते हुए हम इनमें एक विकास क्रम स्थापित करने का प्रयत्न करेंगे ।

शून्य सिद्धान्त का प्रभाव ता स तों न काय में स्पष्ट ही है अत यहाँ शून्य का विवेचन आवश्यक है । इस शून्य का विचार हम सन्तों के अनुसार ब्रह्म का स्वरूप' प्रकरण से सम्बद्ध करेंगे ।

इस खण्ड के अन्त में हम वेदान्त दर्शन के स्वरूप का विचार करेंगे । वेदान्त दर्शन में आय हुए सूरों के एकत्र अभिमत का हम शंकर के भाष्य की सहायता के बिना एकत्र नहीं कर सकते । इसी कारण हम केवल वेदान्त दर्शन की रूपरेखा मात्र पर विचार करेंगे और इस सिद्धान्त को शंकर दर्शन से सम्बद्ध करेंगे एवं उसका विवेचन प्रमथ के द्वितीय खण्ड में प्रस्तुत करेंगे ।

परिचय

प्रबंध के इस खण्ड में हम निम्नलिखित विषया श्रौत सामग्री पर विचार करेंगे —

- (१) वेद और उपनिषदों में अद्वैत भावना का विचार ।
- (२) बौद्ध दर्शन में अद्वैत सिद्धान्त की रूपरेखा पर विचार ।
- (३) बदान्त दर्शन का स्वरूप विचार ।

प्रस्तुत खण्ड में हम शंकर पूर्ववर्ती चिन्तनधारा में उपलब्ध अद्वैत सिद्धान्त की मीमांसा करेंगे । इस दृष्टि से हम देखेंगे कि वेद में अनेक देवताओं की उपासना का विधान है, परंतु सभी देवता वस्तुतः एक रूप हैं और अनेक नामों से उनका सम्बोधन होता है । उपनिषदों के स्वरूप का विचार करते हुए हम देखेंगे कि ये उपनिषदें ही अद्वैत दर्शन का आधार हैं । वेदों की चिन्तनधारा और उपनिषदों की चिन्तन पद्धतियों में अन्तर निश्चित करते हुए हम इनमें एक विकास-क्रम स्थापित करने का प्रयत्न करेंगे ।

शून्य सिद्धान्त का प्रभावता मतों के काण्ड में स्पष्ट ही है अतः यहाँ शून्य का विवेचन आवश्यक है । इस शून्य का विचार हम सन्तों के अनुसार ब्रह्म का स्वरूप' प्रकरण से सम्बद्ध करेंगे ।

इस खण्ड के अन्त में हम बदान्त दर्शन के स्वरूप का विचार करेंगे । बदान्त दर्शन में आय हुए सूत्रों के अन्तर्गत अमिमत का हम शंकर के माध्यम की सहायता के बिना चर्चा नहीं कर सकते । इसी कारण हम केवल बदान्त दर्शन की रूपरेखा मात्र पर विचार करेंगे और इस सिद्धान्त का शंकर दर्शन से सम्बद्ध करेंगे एवं उक्त विवेचन प्रबंध के द्वितीय खण्ड में प्रस्तुत करेंगे ।

परिचय

प्रस्तुत प्रकरण में वेदान्त दर्शन व विनास-राम का ध्यान में रखकर वैदिक दर्शन पर एक दृष्टि डाली गई है। इसमें वेद शब्द की पुनर्पत्ति का विचार करते हुए अद्वैत सिद्धांत समझना माया जीव आदि तत्त्वों का संतुलन में स्वरूप निरूपण किया गया है।

वैदिक साहित्य और दर्शन व विविध आदि विचारों व नीच से अद्वैत सिद्धांत साक्षात् की बातें दुम्मा व काय है और प्रथम व मूल विषय व उमरा सीधा सम्बन्ध भी नहीं है। आचार्य शाङ्कर का अद्वैत दर्शन मुख्यतः उपनिषदों पर आधारित है। सभी विचारों से यहाँ वैदिक साहित्यों का विस्तृत विवेचन अनुपयुक्त समझा गया है और उपनिषदों में उपलब्ध तत्त्वों का ही किंचित् विस्तारपूर्वक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

ब्रह्मसूत्रों व अनुगीतन से यह स्पष्ट है कि इन सूत्रों की सृष्टि उपनिषदों के आधार पर की गई है जमा कि 'मुन्याच्च ब्रह्मसूत्र १ १ ११, ३ २ ३६। अतश्च ब्रह्मसूत्र २ ४ ६६। तन्तु शब्दमूलत्वात् ब्रह्मसूत्र १ २ १६। आदि सूत्रों से प्रकट है। अतः उपनिषदों का वेदान्त दर्शन का आधार मानकर और निम्न विषय, वस्तु विनास-राम आदि दार्शनिक तत्त्वों का निरूपण प्रस्तुत प्रकरण में किया गया है।

उपनिषदों में उपलब्ध सामग्री का विना किसी आचार्य व भाष्य के समझना भी कठिन है। दूबगी आदि अनेक आचार्यों ने अनेक मतों और सम्प्रदायों के आवेश में उपनिषद् भाष्य प्रस्तुत किए हैं। इन अवस्थाओं में श्रीपतिवत् ज्ञान को 'इदमित्य' कह कर स्वीकार करने का साहस भी सहसा नहीं होता। किन्तु प्रस्तुत प्रथम में शांति विषय का ध्यान में रखते हुए उपनिषदों के शाङ्कर भाष्य का स्वीकार करना युक्ति युक्त प्रतीत हुआ और भी दृष्टि से सब शब्दों समझने शब्दार्थों भावार्थों और श्रमाय श्रमों का अर्थ किया गया है। प्रस्तुत प्रकरण में ब्रह्म जीवमाया माया प्रकृति विद्या ज्ञान वम और उपनिषदों आदि तत्त्वों का शाङ्कर भाष्यों व अनुसार ही समझना और समझाया गया है।

वेद प्रौर उपनिषद् मे अद्वैत भावना का स्वरूप

भारतीय साहित्य और दान का प्रारम्भ वेद से होता है। अतः प्रस्तुत प्रबन्ध की सामग्री का स्रोत भी हम वेद से खोजने का प्रयत्न करेंगे। वेद शब्द की व्युत्पत्ति विद धातु से हुई है। दिवाङ्गि विद धातु का अर्थ है सना। रभादि विद धातु का अर्थ विचारण भी चरिनाथ है। विदललाने धातु भी वं ग्ङ् म चरिताथ हाती है। 'विद चेतनास्या ननिवासेषु धातु बुगङ्गि भी है, जिसका रूप है— वन्द्यत्। वेद शब्द के सम्बन्ध में कहा गया है कि अमोष्ट प्राप्ति और अनिष्ट के निवारण के लिए अलौकिक उपाय का शोध करानेवाला प्रथम वेद है —

इष्टप्राप्त्यानिष्ट परिहारयोर्लौकिकमुपाय यो यथा यदपत्ति स वेद ।^१

वेद पदार्थ का विद्यत इति वेद विदिति इतिवा वं वर्तत इति वेद शीला प्रसार से निवचन किया जा सकता है। सत्तायत्र ङि धातु में विद्यत बनता है। नानायत्र विं धातु से विदिति बनता है। विद्यते सत्ता भावधानत्र है वत्ति मानभाव का शोभक है एवं विदिति रसनाथ समपक है।^२

यानी हम वं म उपलब्ध वस्तु का सांगित्त विवचन करण। इस सामग्री को हम उपनिषद् मे प्राप्त अद्वैत दान सम्बन्धा सूत्रो से सम्बद्ध करेंगे।

वेद में इन्द्र वरुण प्रजापति प्राणि अनेक देवताया का वर्णन हुआ है। इससे यत्र प्रतीत होता है कि अनेक देवता शैव रूप में प्रतिष्ठित है अनेक विदित उपासना बहुदेवतादी ह। यत्र में अनेक देवता अवश्य है परन्तु ऐसा कहना उचित नहीं है कि वं बहुदेवतादी ह। अत्र म कहा गया है कि इन्द्र मित्र वरुण, अग्नि ऋषि सुषण, यम और मानसिवा एत ए

१ वेदोक्तम् (अन्वय) एतद् ५. ३ वेद प्रौर वेदान्त एत ।

२ वेदान्त अर्थ, एतद् इन्द्र वेद का स्वरूप विचार लगे ।

परमात्मा के नाम है^३। इसी प्रकार यजुर्वेद में एक ही ईश्वर को अग्नि आदि य वायु चंद्रमा गुरु ब्रह्म आप और प्रजापति कहा गया है।^४ हम अपने प्रबंध के सभी प्रकरणों में यह मत निश्चित करने कि अद्वैत दर्शन के अनुसार अनेकमुखी भौतिक अथवा यावहारिक सत्ताओं का निषेध किया गया है। अतः वेद में भी हम इस सम्बन्ध में यह महत्वपूर्ण बात देखते हैं कि अनेक देवताओं का एक ही ब्रह्म का रूप माना है। इसी प्रकार ऋग्वेद में कल्याणकारी सखा रूप और पिता रूप परमात्मा को अद्वैत कहा गया है^५। इस अद्वैत गान का अर्थ आचार्य सायण ने दो से रहित होना किया है^६। टाक्टर राधाकृष्णन् के अनुसार बहुदेववाद धार्मिक चेतना के प्रतिकूल है।^७

वेद में माया और मायावी गानों का भी प्रयोग हुआ है^८। ऋग्वेद में माया गान का प्रयोग बहुवचन में प्रायः हुआ है। अतः यहाँ यह निश्चय किया जा सकता है कि माया गान मिथ्यारूप भौतिक अनेक रूपता के लिए प्रयुक्त हुआ है। आचार्य सायण के अनुसार माया गान का अर्थ लोकप्रसिद्ध कपट है^९। हम प्रकार हम वेद में एक ब्रह्म की प्रतिष्ठा और माया की अनेक रूपात्मकता देखते हैं। परंतु वेद के सम्बन्ध में हम यह निश्चय नहीं कर सकते कि वहाँ अद्वैत दर्शन का सागोपाग विवचन उपलब्ध होता है। वेद में अनेक विषयों का समावेश है इसलिये बहुरूपकार वेद में एक स्थान पर अद्वैत वेदांत का सूत्रा का दूढ़ निकानता कठिन है। इस विषय में हम केवल यह स्थिर करते हैं कि अद्वैत दर्शन की प्रवृत्तियाँ वेद में दृश्यमान हैं।

३ इन्द्र मित्र वरुणमग्निना रक्षो ऽपि न सुपणा गन्मान् ॥

एक सत्त्वा बहुधा कर्त्तव्यम् यम मानरिश्मान् ॥ ऋ १/१६/१६।

४ तन्वाग्निस्तान्त्रित्यन्तायुमन् इत्मा ।

तन्व पुत्र तन् वन्न तन् आर म प्रजापति ॥ १ यजु ३०/१।

५ उत न पिपवा चर गाव शिवाभिरुनिभि

म्या सुराण्यस्य मया सुरवा अग्ना ॥३॥ ऋग्वेद अ १ अ ५ व ६।

६ अग्ना इयन्ति । गान् ॥

—क भाष्य ३ अ १ अ ५ व ६।

७ We can't have a plurality of Gods for religious consciousness
s & n'tt

—I d n P l d o p l j pag 91

८ व माया मय । यन्ता धन म्का नये अभिगुणा लुब्ध ।

९ अग्नाग्निना प्राण पर प्रकारान्तस्थुत्वा विना ।

—ट अ १ अ ५ व ६ अ १ अ १ मु ५१।

१० माया के लोक प्रसिद्ध कपट

नाम के अर्थ लुब्ध गणनात ॥

अब हम उपनिषद्-ज्ञान पर विस्तारपूर्वक विचार करेंगे और उपनिषद् की स्वरूप प्रतिष्ठा करते हुए वैदिक प्रवृत्तियों का प्रारम्भ में सक्षिप्त विवेचन करेंगे ।

उपनिषद् के स्वरूप पर विचार करने पर हमको वैदिक साहित्य की रूपरेखा पर विचार करना आवश्यक है । विज्ञान स्तुति इतिहास, कम उपासना और ज्ञान इन छ विषयों का समावेश ब्रह्म के स्वरूप के अन्तर्गत किया गया है । संहिता विधि आरण्यक और उपनिषद्—ये वेद के चार स्वरूप हैं । संहिता को ही मंत्र, ब्राह्मण अथवा ऋषि भी कहते हैं । संहिता के अनिर्विक्त वेद का दूसरा भाग ब्राह्मण कहलाता है । ब्राह्मण के कम उपासना और ज्ञानभेद से विधि आरण्यक और उपनिषद् ये तीन विभाग हैं^{१०} । प्रस्तुत वेद के स्वरूप विभाजन पर ध्यान देने से प्रतीत होता है कि उपनिषद् वेद के ज्ञान प्रकरण की प्रकाशिका है । उपनिषद् वस्तुतः ज्ञान प्रतिष्ठापक वेद का ही अंग है । यह बात गण्डर्वा द्वारा प्रस्तुत उपनिषद् की परिभाषा से भी स्पष्ट हो जाती है । तत्तिरीय उपनिषद् के मध्य भाग्य में गण्डर्वा ने कहा है कि अपना सवन करनेवाले पुरुषों के गभजय और जरा आदि का उच्छेदन करने या नाश करने के कारण उपनिषद् शब्द से विद्या का ब्यवहारा जाता है । अथवा ब्रह्म के समीप ले जानेवाली होने से या इसमें परम श्रेय ब्रह्म उपस्थित है इसलिए यह विद्या उपनिषद् है^{११} । कठोपनिषद् में शंकर ने उपनिषद् शब्द की व्युत्पत्ति का ब्यवहारा किया है । विशारण (नाश) गति और भवभादन (गिनित करना) इन तीन अर्थोंवाली तथा 'उप और नि' उपसर्गपूर्वक एतद्विषय प्रत्ययान्त 'सद् धातु का यह उपनिषद् रूप बनता है । इस उपनिषद् शब्द से वेद ब्रह्म विषयक विद्या का प्रतिपादन किया जाता है^{१२} । इस प्रकार गण्डर्वा द्वारा प्रस्तुत उपनिषद् शब्द की व्युत्पत्ति से अद्वैत ज्ञान लक्षित है ।

उपनिषद् शब्द के स्वरूप विचार के अनन्तर अब हम उपनिषद् और

१० दशम स्कन्ध अथ (कन्याय), पृ० ३८५ 'वेद का स्वरूप विचार' श्लोक ।

११ उपनिषदि विद्वेद्यते, तद्गीतिका गभजयत्तराग्निशान्नात्तत्त्वज्ञानात् गभजो वापनिगभायित्वात्तुपनिषद् वाक्यात् परश्वेय इति ।

—तत्तिरीय उपनिषद् भाष्य । पृ० २१ ।

१२ संप्रधानोविशारण गयवसानाथर्योपनिषुत्तरय त्रिप्रत्ययान्तरूपयुगुपनिषदि । उपनिषद् इत्यन्तं च व्याधितया सन्मध्य प्रतिपादयति वस्तुविषया विद्वेद्यते ।

—शुद्ध उ० । मन्वन्ध भा० । पृ० १० ।

वेद म अद्वैत दान के स्वरूप निगाय की दष्टि स और दोनो मे विषमता के विचार स आगामी प्रसंग प्रस्तुत करगे । हम जहाँ वेद म अनेन देवताओ की उपासनाए देख चुके ह वहा उपनिषद् म हम ब्रह्म अथवा आत्मा की प्रतिष्ठा होने देखेंगे । यद्यपि सहिताओ म भी ब्रह्म शब्द का प्रयोग हुआ है परतु उपनिषद् म ब्रह्म एक दार्शनिक एव सद्वास्तिक क्षेत्र मे बखित हुआ है जब कि सहिताओ म ब्रह्म उपासना भक्ति का प और कौतूहल का विषय बना रहा । अत सहिता और उपनिषद् म एक तात्विक भेद यह निश्चित हुआ कि अद्वैत दान का मूल ब्रह्म सिद्धांत उपनिषदो मे ही पुष्ट हुआ जिसके आधार पर वेदान्त दान का सान हुआ । इम सम्बन्ध म हम आगे विचार प्रकृत करेंगे ।

वृत्ति देवताओ के सम्बन्ध म दूसरी मुख्य बात है कम का इन देवताओ स प्रयोजन । वृत्तिक कम देवताओ स भोग की याचना करता है । परतु उपनिषद् ब्रह्म को लक्ष्य करती है । अत कम की प्रतिष्ठा करना भी अन्त दान का मुख्य प्रयोजन नहीं है । अत उपनिषद् के ब्रह्म और सहिता के स्वरूप मे भी स्वरूप एव लक्षण भेद है । ब्रह्म के लक्षण इसी प्रकारण म आगे कहेंगे ।

कम ज्ञान की प्रतिश्रिया के फलस्वरूप उपनिषद् के ज्ञान काण्ड की उन्भावना विवास श्रम की दष्टि स तीसरी मुख्य बात है । इम दष्टि से हम देखेंगे कि सहिताओ म प्रतिष्ठित ज्ञान का अनेन ह्यारमक स्वरूप उपनिषद् म समत हो गया । अनेन विषय भौतिक पदार्थ उपनिषदो म एक रूप हो गए और पदार्थों की विविधता एव विषमता एक ही सत्य के अनेन नाम रूप निश्चित विय गय । भौतिक पदार्थों की अनित्यता और ब्रह्म की नित्यता एत उपनिषद् म की गई । ज्ञान के क्षेत्र म कम ज्ञान का केवल सत्त्वयन रत गया । एम प्रकार प्रकृति और निवृत्ति सम्बन्ध और निरन्तर प्रय और ज्ञेय के क्षेत्र पथक पृथक हो गय ।

आगामी शृणो म हम उपनिषद् विचारणु क आधार पर उपनिषद् और सहिताओ का विषमताओ का विचार अन्त ज्ञान क विवास श्रम की दष्टि स करेंगे ।

ब्रह्म म अनेन देवताओ का वर्णन है । मान्य होता है कि क्या यह देवताए वस्तुगत देवताओ पर मान्य हाकर अनेन शक्तियों का अजन करना है ? नो । यहाँ जो ज्ञान स्थिति का और मान्यता का क अनुभव हो सम्बन्ध देवताओ की कथाओं प्रकृत हैं । उनकी शक्तियों प्रकृत हैं । उनकी मान्य स्वरूप का मान्यता दा जा सकता है । उपनिषद् क समग्र इम

देवता की भावना का प्रश्न है। एक साथ अनेक गणितवादी यदि स्थित हो तो उनमें स्वभावतः सघर्ष होगा। गृष्टि में जो उसकी अनेक त्रियाद्या में एक नियम की अनुभूति का प्रत्यक्ष होता है उसमें विषमता उत्पन्न होगी। एक शक्ति भ्रष्टि की रचना करेगी तब अन्य उस भ्रष्टि करेगी। एक देवता अन्न भक्षण का वर्णन देगा तो दूसरा अभिशाप। इस प्रकार वैदिक देवता की स्वीकृति अयाध्य हो जाएगी। भोगवादी देवता राग द्वेष का क्षय हो जायेंगे। अतएव इस देव मलय को एक नियम में सममित करके उपनिषद् ने अद्वैत सत्य का प्रतिष्ठा की। एक ही देवता को अनेक नामों से आह्वान कर सकत है। भावना का अनुसार एक ही सत्य अर्थात् आकार तन्मुरूप धनाता देया जाना है।

उपनिषद् ने वस्तुतः किसी देववाद की प्रोत्साहन नहीं दिया। गणित रूप में जिस देवता का वैदिक समाज ने ग्रहण किया उसमें जिस प्रकार के सत्य की संस्थापना थी वह भी वेदांत ने जथांता ली नहीं माना। उपनिषद् ने गणित का कोई आधार निश्चित नहीं किया। पन्नाय शक्ति युक्त और गणित रहित भी देने जाते हैं। अस्तु पन्नाय ही गणित है ऐसा कहना युक्ति युक्त नहीं। उपनिषद् ने शक्ति को एक गणितवान पन्नाय से भिन्न रूप दिया स्थूल पर सूक्ष्म को आसीत किया इन्द्रियगम्य अनुभव और प्रत्यक्षों पर अतीन्द्रिय सत्य का दर्शन उपनिषद् ने किया। वैदिक उपासना का एक महानिर्वात मौलिक प्रकरण था।

उपनिषद् और वेद दोनों में विरोध मानने की आना वैदिक धर्म नहीं देता किन्तु वेदांत वेद द्वारा उपनिषद् उपासना की पुनरावृत्ति नहीं करता, यह निश्चित है। उपनिषद् का उपासना त्रियमाण नहीं है। वह अनुभवगम्य सत्य का प्रत्यक्ष करता है। स्थूल पर सूक्ष्म, अनेक पर एक आकार पर निराकार और सगुण पर निगुण सत्य की व्यवस्था अद्वैत बनाए करता है।

उपनिषद् भौतिक पन्नाय सत्ता की पुष्टि नहीं करता अपितु उनकी एक आध्यात्मिक दिशा है। यह अध्यात्म यद्यपि विगुण पान-दत्ता नहीं है वरन् यह अध्यात्म भाव के संयोग से रस रगा का चानक ही और हृत्प की विनासता के हनु से काय प्ररण से प्राप्त प्रोत है।

विद्या पढ़ना विद्या पढ़ाना, धर्म करना-कराना और ज्ञान लेना दान देना आदि वैदिक उपासना के बहिरंग साधन हैं। वस्तुतः एक स्वस्य और विकास चीन समाज की स्थापना इसका लक्ष्य है और इसमें वैदिक धर्म का उद्देश्य स्पष्ट सङ्गित होता है। अणु-विभाजन सामाजिक व्यवस्था है राजनिति नहीं।

आश्रम विभाजन जीवन की स्वाभाविक दशाया का वर्गीकरण है। ये अनेक-व्यक्तित्वों को एकीकृत करने का प्रयत्न है। एक विज्ञान समाज के, उसकी आवश्यकतानुसार, ये विभाजन किये गये थे।

यज्ञ की भाषायापक परिभाषा की जा सकती है। उपासना की चरम दशा में वह योग साधना का निकट आता है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एक रूपता को व्यक्त करने के लिए वेद में यज्ञ का रूपक प्रस्तुत किया गया है। शरीर रचना के साथ एक स्वाभाविक यज्ञ विधि परिपालित है। इसी प्रकार सामाजिक और राजनतिक विधानों में भी यज्ञ का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।

वैदिक समाज में बौद्धा की नागशीलता और क्षणिकता एवं दुःखवाद नहीं है। यज्ञ प्रजापति जसी शक्तिशाली प्रभुताय वीरता और उत्साह के प्रतीक है। कुबेर सम्पत्ति का स्वामी और वहस्पति विद्या का स्तम्भ है। ये सब उस समाज की समृद्धि का प्रमाण हैं। जीवन में प्रगति का प्रति उत्साह प्रधान है अन्तिम का प्रति निरहंसा है। वैदिक आचार यद्यपि भोगवादी के वातावरण में पुण्ड्र दृष्टा है परन्तु वह विशृङ्खल नहीं होने पाया जिससे नियंत्रित वर्णाश्रम धर्म पर बाधा होना³। डा० राधाकृष्णन के अनुसार वैदिक धर्म देवता और मनुष्य के पारस्परिक आदान प्रदान लाभ और हानि का प्रश्न है। उपनिषद् की चिन्तनधारा का समस्त वैदिक साधना अति साधारण कोटि की है। भोगवादी की वासना में नैतिक प्रीति है उत्तेजना का परिणाम नहीं। वैदिक उपासना का अन्तगत यद्यपि अनेक दक्षिणाओं की प्रतिष्ठा है परन्तु अनेक साधन एक ही रूप का प्रति अभिमुख जा पड़ते हैं। अन्त देवताओं की शक्ति में अनेक सम्प्रदायों की रचना होकर वैदिक धर्म में अन्तर्वस्था नहीं होने पाई। आज भी अनेक भारतीय धर्म के सम्प्रदाय उपासना में मानते हुए भी वेद का ही प्रमाण मानते हैं। यह भी वैदिक उपासना की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। वैदिक उपासना में धर्म और समृद्धि की गहरी छाप है और विधि नियमों की प्रचुरता है।

उपनिषद् की साधना यद्यपि वेद विरोधिता नहीं है परन्तु महिमा में उपनिषद् उपासना का अन्तर्व्यक्ति एक विकसित स्वरूप उसकी अन्तर्व्यक्ति

³ At the time of the printing of this book the Government of India had not yet decided upon the policy to be followed in regard to the publication of the Vedas in the original Sanskrit script. The Government of India has, however, decided to publish the Vedas in the original Sanskrit script and to issue them as a series of books.

वेद और उपनिषदों में अद्वैत भावना का स्वरूप

विनाशिता है। उपनिषद में एक प्रतिनिया और प्रगति है। वेद-मार्ग विकास के प्रारम्भिक पथ है और उपनिषद उस विकास की चरम गति है। साधारणतः देखने में आता है कि जीवन विकास का वातावरण से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वादक वातावरण स्वयं समाज के द्वारा पुष्ट किया गया है। भाग और दयताओं का वभव जीवन में राग द्वेष की प्रेरणा देता है। सुख और आसक्ति की अल्प उत्तेजना विचार को अधिक अवकाश नहीं देती। परन्तु उपनिषद राग और तनू को भी आश्रय देता है जिसमें मानव बुद्धि और व्यवहार पान के लिए भी पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ है। उपनिषद की उपासना वेद की आस्था का तिरस्कार नहीं करती अपितु उसको अधिक दृष्टता के साथ दृष्ट आधार पर अधिष्ठित करती है।

साधना और भोग एक साथ चलकर साधारणतः सफलता की पूर्णता प्राप्त नहीं कर पाते। वेद का विनाश देवता की अनुकम्पा का आश्रय था। देवता भी मनुष्य की सामग्री एवं सत्कल्प के लिए तानाबाना था। इस प्रकार निष्काम अर्चना की पराकाष्ठा वेद में अधिक लक्षित नहीं होती^{१५}। डा० राधाकृष्णन के अनुसार यद्यपि वैदिक साधना अधिक आह्लादक थी परन्तु यह साधना निम्न कोटि की थी। भौतिक पदार्थों की स्थूलता के बीच संचित धारा अप्रसर नहीं हो सकी। साधना और विलास एक-दूसरे से युक्त होकर वधन और मोक्ष की योजना स्वभावतः कर रहे थे। उपनिषद् में योग और भोग एक दूसरे से सबंध भिन्न हो गये हैं। उपनिषद् में भौतिक पदार्थों के भोग के प्रति एक प्रकार की बढार अवस्था की भावना है। उपनिषद् में जगत का बलैव संपन्नता का तिरस्कार है। भौतिक पदार्थों के अस्तित्व में भी मन्देह उत्पन्न हो गया है। राज धर्म और समाज धर्म पातन करनेवाले, बर्न करनेवाले वसिष्ठ भुजदण्डा की क्रिया में भी गिथिलता आ गई है। वैदिक उपासना भी जीवन का एक आवश्यक कर्तव्य था और उपनिषदें उसको अधिक बर्न पूजक प्रदृष्ट किया हुए हैं। उपनिषदों के चिंतन धर्म में बर्नकाण्ड प्रतिपादन वैदिक संहिताओं की अपेक्षा अन्तर आ गया है। संहिताओं में वस्तु के स्थायित्व और क्षणिकता का समस्या है। उपनिषद स्थायित्व या नियम को लक्ष्य करके अप्रसर होती है। उपनिषद नित्य मरत्य में क्षण क्षण परिवर्तन होने देखना नहीं चाहती। कर्म द्वारा उपाजित ममृद्धि जीवन के छिन्ने की

^{१५} The religion of the Vedas is certainly was more joyous but it was at a lower form of religion where thought never penetrated beneath the husk of thing
—In *An Indian Philosophy* page 166

आश्रम विभाजन जीवन की स्वाभाविक दशाओं का वर्गीकरण है। ये अनेक-यवितरवों की एकीकृत करने के प्रयत्न हैं। एक विनाश समाज के उसकी आवश्यकतानुसार ये विभाजन किये गये थे।

यज्ञ की भी यापक परिभाषा की जा सकती है। उपासना की चरम दशा में वह योग साधना के निरुद्ध आता है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एक-रूपता को यत्न करने के लिए वेद में यज्ञ का रूपक प्रस्तुत किया गया है। गरीर रचना के साथ एक स्वाभाविक यज्ञ विधि परिपालित है। इसी प्रकार सामाजिक और राजनतिक विधानों में भी यज्ञ का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।

वैदिक समाज में बौद्धा की नागशीलता और क्षणिकता एक दुःखवादी नहीं है। इन्द्र प्रजापति जसी शक्तिशाली प्रभुताय वीरता और उत्साह के प्रतीक हैं। कुंवर सम्पत्ति का स्वामी और बहुस्पति विद्या का स्तम्भ है। ये सब उस समाज की समृद्धि के प्रमाण हैं। जीवन में प्रगति के प्रति उत्साह प्रधान है अन्तर्लक्ष के प्रति निरुत्साह नहीं। वैदिक आचार यद्यपि भोगवादी के वातावरण में पुष्ट हुआ है परन्तु वह विश्वस्वयं नहीं होने पाया जिससे नियन्त्रित वर्णाश्रम धर्म पर 'यापात' होता^{१३}। डा० राधाकृष्णन के अनुसार वैदिक धर्म देवता और मनुष्य के पारस्परिक आदान प्रदान लाभ और हानि का प्रश्न है। उपनिषद् की धितनधारा के समस्त वैदिक साधना अति साधारण कोटि की है। भोगवादी की वामना में नसर्गिक प्रौढ़ता है उत्तेजना का परिणाम नहीं। वैदिक उपासना के अन्तर्गत यद्यपि अनेक देवताओं की प्रतिष्ठा है परन्तु अनेक साधन एक ही तथ्य के प्रति अभिमुख जात पड़ते हैं। अनेक देवताओं की ओर से अनेक सम्प्रदायों की रचना होकर वैदिक धर्म में अन्तर्लक्ष नहीं आने पाए। मात्र ही अनेक भारतीय धर्म के सम्प्रदाय उपासना भेद मानने हुए भी वेद की ही प्रमाण मानते हैं। यह भी वैदिक उपासना की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। वैदिक उपासना में धर्म और सस्कृति की गहरी छाप है और विधि नियमों की प्रचुरता है।

उपनिषद् की साधना यद्यपि वेद विरोधिना नहीं है परन्तु महिमा में उपनिषद् उपासना का अन्तर्लक्ष एक विविध स्वरूप उमकी अपनी

^{१३} As the chief feature selected by the Brahmanas the simple religious ritualism with its emphasis on sacrificial ministrations with its own narrow acquisition of goods and profit as a result.

वेद और उपनिषदों में अद्भुत भावना का स्वरूप

विकासता है। उपनिषद में एक प्रतिप्रिया और प्रगति है। वेद-मानव विकास के प्रारम्भिक पङ्क हैं और उपनिषद उस विकास की चरम गति है। साधारणतः देखने में आता है कि जीवन विकास का वातावरण से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वदित वातावरण स्वस्थ समाज के द्वारा पुष्ट किया गया है। भोग और देवताओं का बन्धन जीवन में राग द्वेष की प्रेरणा देता है। सुख और आसक्ति की अल्प उन्नत जना विचार को अधिक प्रवर्धित नती देती। परन्तु उपनिषद याग और तप को भी आश्रय देता है जिसमें उपनिषद की उपासना वेद की आस्था का तिरस्कार नहीं करती अपितु उसको अधिक दृढ़ता के साथ दृढ़ आधार पर अधिष्ठित करती है।

साधना और भोग एक साथ चलकर साधारणतः सफलता की पूर्णता प्राप्त नहीं कर पाते। वेदों का विलास देवता की अनुकम्पा के आश्रित था। देवता भी मनुष्य की सामग्री एक स्वरूप के लिए लालायित था। इस प्रकार निष्काम अर्चना की पराकाष्ठा वेदों में अधिक लक्षित नहीं होती। डा० राधाकृष्णन के अनुसार यद्यपि वैदिक साधना अधिक आह्लादक थी परन्तु यह साधना निम्न कोटि की थी। भौतिक पदार्थों की स्थूलता के बीच से चित्तन धारा अग्रसर न हो सकी। साधना और विलास एक दूसरे से पृथक् होकर बधन और मोक्ष की योजना स्वभावतः कर रहे थे। उपनिषद् में योग और भोग एक दूसरे से सवधा भिन्न हो गये हैं। उपनिषद् में भौतिक पदार्थों के भोग के प्रति एक प्रकार की कठोर अवनता की भावना है। उपनिषद् में जगत की कल्पना का तिरस्कार है। भौतिक पदार्थों के अस्तित्व में भी सन्देह उत्पन्न हो गया है। राज धर्म और समाज धर्म पालन करनेवाले कम करनेवाले बलिष्ठ भुजदण्डों की क्रिया में भी शिथिलता आ गई है। वैदिक उपासना भी जीवन का एक आवश्यक कर्तव्य था और उपनिषदों उसको अतिक्रमण पूर्वक ग्रहण किया हुआ है। उपनिषदों के चित्तन प्रथम में कमजोर प्रतिज्ञात्मक वैदिक संहिताओं की अपेक्षा अन्तर आ गया है। सन्तानों में कर्मों का स्यायित्व और क्षणिकता की समस्या है। उपनिषद् स्यायित्व या निष्काम सहाय करके अग्रसर होती है। उपनिषद् नित्य सुख में क्षणिक सुखों को हाने देखना नहीं चाहती। कम द्वारा उपनिषद सफ़ाई ज्ञान के सुखों के

१४ The religion of the Vedas certainly was a lower form of religion where the lower part of the mind was the husk of thing

चिरंतन पूर्ति नहीं कर सकती। उपनिषद् इस प्रकार की क्षिप्र प्रश्नावलियों का उत्कट उत्तर है। विकास क्रम को ध्यान में रखकर उपनिषद की स्थितियों का अध्ययन महत्वपूर्ण है।

कर्म और फल की अनित्यता ने विरक्ति के लिए स्वयं प्रेरणा दी। चित्त के विकास के साथ परिवर्तनशील एवं क्षणिक पदार्थों व चतुर्दिक एक गान्धर्व तत्व की खोज उपनिषदों ने की। वस्तुतः वेद का उपासना का कमण्यता एक जिज्ञासा वृत्ति के प्रति अभिमुख होती गई। बदकि समाज कर्म करके थकान अनुभव कर रहा था। प्राणी को लोक परलोक का अनेक समस्याय बोझ लग रही थी। अस्तु, उपनिषद् दर्शन का चित्तन क्रम स्वाभाविक परिस्थितियों में प्रस्तुत हुआ। डा० रामकृष्णन के अनुसार बदकि नान उपनिषदों की अतदष्टि की शिष्या की अपेक्षा अति निम्न कोटि की साधना थी। इससे मुक्ति की आशा नहीं थी अतः उपनिषद् का उदभावन हुआ।^{१४}

उपनिषदें निवृत्ति मार्गी हैं। वेद में अनेक साधनाया का विस्तार है। वेद जीवन की भौतिक (स्थूल) आवश्यकताओं की अवहेलना नहीं कर सका किंतु उपनिषद् ने एक सत्य की खोज में अनेक भौतिक सत्या की उपेक्षा की। इस उपेक्षा दृष्टि ने वेद की सामाजिक आसक्ति के विरुद्ध अनासक्ति की प्रधानता दी। चाणक्य सत्त्व की स्थूल सुन्दरता के अंतराल में परोक्ष मनोरमता का प्रत्यक्ष उपनिषदों ने किया है। वेद की काव्यमयी प्रेरणा की गति उपनिषद् में मनन की दुरुहता में स्थित हो गई। भाव पर बुद्धि की प्रतिष्ठा हुई। सत्य व निगम्य व लिए तर्क की आवश्यकता प्रतीत हुई। उपनिषद् ने ब्रह्म सत्य को जिसके अधिष्ठान होने से अनेक अमय भी सत्य प्रतीत हो रहे हैं प्रकाशित किया। उपनिषदों ने मानव विकास की धारा की शिष्या में मौनिक व्यवस्था प्रस्तुत की। डा० रामकृष्णन व अनुसार आत्मनान भावना की पुनरावृत्ति युग की आवश्यकता थी^{१५}। उपनिषद् ने जीवन की आत्मभावना को मौनिकता प्रदान की।

जहाँ तक जीवन और उसके लिए सुख और अज्ञान की आवश्यकता का प्रश्न है उपनिषद् ने एक सुविधाजनक योजना की पुष्टि की। अस्तुय और

१४ It is also recognized that the Vedik knowledge is much inferior to the true dharma and will not liberate us.

१५ The loss of quality was the need of the same in form. In the Upanishad we find a return to the fresh spring of the perennial life. — J. D. van Praag, pp. 112-117

निश्चयस श्रेय और प्रय आदि सिद्धांत एक ही सत्य के दो रूपांतरों में भेद
वर्तते हैं। वेद में जिम लोक परलोक की स्वाकृति है उसकी वस्तुस्थिति
भी उपनिषदों से भिन्न है। वेद अभ्युत्थ और प्रेय सत्य को दृढ़ता से
ग्रहण करता है किंतु उपनिषद निश्चयस और श्रेय को ही अक्षय मानती
है। लोका परलोकवाण और दुःख मुख आदि के निराकरण का विधान वेदांत
से भिन्न है। उपनिषदों का इस ओर अधिरुद्ध्यान नहीं है। वह तो केवल
एक चरम सत्य की अनिवार्य भीमार्थ निश्चित करना चाहती है जहाँ
या तो इस प्रकार की समझों ही नहीं उठनी अथवा जैसे एक ही दीपक
से अनेक पाय एक साथ आलोकित होते हैं वैसे ही अनेक सत्य और असत्य
उक्त सत्य से स्वतः प्रकाशित हो जाते हैं। यही उपनिषदों द्वारा प्रतिष्ठित
ज्ञान धारा है।

प्रस्तुत निबंध के इन विद्यने पृष्ठा पर हमने वैदिक साधना में उप
निषद् की नूतना करते हुए देखा कि उपनिषदों के चिंतन का विकास अति
स्वाभाविक था। वैदिक साधना मनुष्य की बढ़ती हुई जिज्ञासा का उत्तर देने
में पूर्णतः सफल नहीं थी अतः उपनिषदों की जगत् में साधना ने एक नया
मांड लिया। यद्यपि इस विकास को हम नितांत मौलिक नहीं कह सकते
क्योंकि उपनिषद् के ज्ञान का आधार ये संहिताएँ ही हैं। हाँ, चिंतन को
नूतन मोड़ देने का श्रेय उपनिषदों को अवश्य है। इस सम्बन्ध में हम
विचार कर चुके हैं।

अब हम उपनिषदों का वर्गीकरण विषय की दृष्टि से करेंगे। यहाँ
यह कहना आवश्यक है कि इस वर्गीकरण की आवश्यकता हम इसलिये
प्रतीत हुई कि भारतीय चिंतन पद्धति में अद्वैत ज्ञान की स्थिति और
स्वरूप का मूल्यांकन इसके बिना सुगम न होगा। उपनिषदें वेद का ही भाग
हैं किंतु वैदिक समयकाण्ड के समकक्ष उपनिषदें ज्ञान की प्रतिपात्क हैं। ऐसी
स्थिति में इस वर्गीकरण से हम चिंतन के क्षेत्र में ज्ञान के स्वरूप का एक
अमूल्य परिचय पा सकेंगे।

वर्गीकरण के सम्बन्ध में उपनिषद् के अनेक अध्यायों में से यहाँ
डा० ठ्यूमन रानाडे और डा० राधाकृष्णन् के नाम विशेष उल्लेखनाय
हैं। डा० ठ्यूमन द्वारा प्रस्तुत अध्यायन साधनों की इस प्रयोग में आलोचना
की गई है जिसका परिचय हम अगले पृष्ठा पर प्राप्त हो सकेगा। वर्गीकरण
के सम्बन्ध में डा० ठ्यूमन विचार उल्लेखनीय हैं। इनके अनुसार —

(१) प्राचीन गद्य उपनिषदें —

वन्दारण्य ।
छान्दोग्य ।
तत्तिरीय ।
एतरेय ।
वापीतकि ।
वन ।

(२) प्राचीन छन्दोबद्ध उपनिषदें —

ईग ।
वत् ।
मुष्ण ।
श्वेताश्वतर ।

(३) प्रश्न —

मत्रायिणी ।
माण्डूक्य य पिछने यग की उपनिषदें ह ।

(४) सन्धास ।

योग ।
गामाय ब्रह्मण ।

वर्णव शव गाक्त और श्रय छाती उपनिषदें आश्ववण उपनिषदें वही
गया ह ।^{१०} ।

उपमुक्त विभाजन का प्रोफसर रानाच युक्तिमग्न नही मानत । इनके
अनुसार श्वात्मक और पद्यात्मक होने से उपनिषद प्राचीन या अर्वाचीन
नही कह जा सकत^१ ।

डा० ह्यूमन आश्ववण उपनिषदा की गामयी अश्ववण से प्राप्त हुई
मानत है । इन उपनिषदा का सामग्री में विचार की गम्भीरता उनकी नही
है त्रिनना प्राचीन उपनिषदों में प्राप्त होती है । अश्ववण में ऋग्वेद जमी
भक्ति और का दमयता का अभाव है । उपम धार्मिक प्रौढ़ता और कमवाण

तथा रहस्यपूर्ण प्रक्रियाओं की प्रचुरता है। अस्तु इन उपनिषदों में भी चिंतन और भावमयता का अभाव सा प्रतीत होता है।
 डा० राधाकृष्णन उपनिषद् की रचना ईसा से ६ गताब्दी पूर्व अनुमान करते हैं। उनके अनुसार वैदिक क्रियाओं की रचना पूरी होने और वीदों के आविर्भाव के मध्य का काल उपनिषद् युग है। १००० ई० पू० से लेकर ३०० ई० पू० उपनिषद् का काल है।^{१६} य शंकराचार्य द्वारा अतृप्ति और आनोचित मुख्य उपनिषदें मानते हैं। डा० राधाकृष्णन प्राचीन उपनिषदों को गद्यत्मक कहते हैं।

डा० ड्यूसन द्वारा प्रस्तुत उपयुक्त विनिगमक पूणत तकसगत नहीं प्रतीत होता। विभाजन पर उपनिषदों में वर्णित विषय का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने पर विदित होता है कि प्राचीन गद्य और प्राचीन पद्य उपनिषद सम कालीन अथवा अमागत विकास की परिणाम नहीं हो सकती। प्राचीन गद्य उपनिषदों की विषयतामा और लक्षणों के आधार पर गद्यात्मक और पद्यात्मक विभाजन सरा नहीं उतरता। प्राचीन गद्य उपनिषद वैदिक कम भावना की अपेक्षाकृत उत्तरकालीन उपनिषदों के प्रभाव में अधिब है। ये उपनिषद सवदा और सवत्र स पास और पलायन को प्रास्ताहन नहीं देती। ये वैदिक यनादि आश्रम धम के पालन और सतति परम्परा स्थिर रखने की आवश्यकता समझती हैं। अग्नियों के लिए आटुतिया की जीवन पयत्न रक्षा का विधान बताती हैं। इनम साम गान के प्रति विषय श्रद्धा और आग्रह है। इसके विरुद्ध प्राचीन पद्यात्मक उपनिषद् म विषय धारा का कम वैदिक कम पुरस्सर के प्रति उन्मासीन हाता जाता है। गद्यात्मक प्राचीन उपनिषद् म विद्या अधिद्या का बसा सषय पूणरूप से त्प्याई नहीं देना जसा पद्यात्मक उपनिषद् म। पद्य के अतगत प्रकृति दार्शनिक सिद्धांत की कठोरता अनुभव कर रही है। प्राचीन गद्यात्मक उपनिषद् म पुनजम की य प्रणाया का भय त्पिता कर समार की उसकी प्रकृत अवस्थाओं से विरक्त करन का बसा पुन पुन प्रयत्न नहीं है जसा कि पद्यात्मक उपनिषद् म है। प्राचीन गद्यात्मक उपनिषद् म ब्रह्म का स्वरूप देववात् के सम्पक में नहीं है। वहाँ उसका स्वरूप अधिक गम्भीर मनन और भावना की अपेक्षा रचना है। उसकी निगुणता में लेगमात्र भाव्यावहारिकता और उपासना सम्बन्धी विकृति का आरोप नहीं जान पड़ता।

१६ The accepted dates for the early Upanishad are 1000 B C. Some of the later Upanishads on which Samkara has commented are post Buddhist and belong to about 400 or 300 B C. The oldest Upanishads are those in prose.

पिछले पष्ठो पर हमने डा० ड्यूसन द्वारा प्रस्तुत उपनिषदा के वर्गीकरण की आलोचना की । उम आलोचना क समाना तर ही हमने विषय की दृष्टि से उपनिषदा का विभाजन प्रस्तुत किया । चू कि विषय के आधार पर उपनिषदा का विवेचन डा० ड्यूसन ने नहीं किया ह, अत यहाँ आवश्यक ह कि विषय के आधार पर प्रस्तुत वर्गीकरण पर विचार किया जाय । अत पिछले विभाजन के प्रत्येक खण्ड पर हम यहा विचार करण । इस विवेचन स उपनिषदा क वर्गीकरण की साधकता पर प्रकाश पड़ेगा । पिछले पष्ठो पर हमने विषय की दृष्टि स उपनिषदो को पाँच विभागो म विभक्त किया ह । उक्त विभाजन को यहा अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से पुन उद्धृत किया जाता ह —

अ—वदिक साधना क अधिक निकट उपनिषद ।

य उपनिषदें वदिक उपासना के तत्वा स पूण है किन्तु इनका अन्तिम उद्देश्य जान ह ।

भा—वदिक साधना के निकट होते हुए भी कुछ उपनिषदें उपासना प्रधान न हाकर आचार को प्रमुलता देती ह ।

१—वदिक साधना क निकट हाए हुए कुछ उपनिषदें सच्चिदानन्द अथवा सच्चिदानन्द विकास का बणन करता है ।

२—निवृत्ति ज्ञानवाणी उपनिषदें ब्रह्म की प्रतिपादक है ।

—सर्वा वत साधना प्रधान पूरकाचीन उपनिषदा मे ज्ञान ब्रह्म और साह्य का समन्वय ह । एगलिए उह समन्वित साधन प्रधान कहा ह ।

४—अन्तःतमवाणी उपनिषद आत्मा क स्वरूप का ही विवक्षित निरूपण करन है ।

५—उत्तरकाचीन धर्मसाधना प्रधान उपनिषद म साम्प्रदायिकता क विभिन्न मतान्तरा क बाज बनमान है ।

उपरोक्त वर्गीकरण म वदिक साधना क प्रभाव म अर्ध उपनिषदा का ज्ञान प्रकार म विभाजित किया गया ह । जय प्रकार का उपनिषदा का वर्गीकरण क अन्त म रखा गया है । एतहा विवरण आगामा पठन म किया जा रहा ह ।

वैदिक साधना के अधिक निकट उपनिषद्

(१) वैदिक साधना के अधिक निकट, उपासना प्रधान उपनिषदों में उपासना भेद से अनेक प्रतीकों को ब्रह्म रूप में स्वीकार किया है। ये उपनिषदें वैदिक यज्ञादि की योजना का एक भौतिक रूप स्थिर करती हैं जिसका पयवमान ब्रह्म और आत्मा के ऐक्य में होता है। ब्रह्म का स्वरूप देवताओं से भिन्न है। ब्रह्म गवित रूप में पहचान हुआ है परन्तु वह गवित मायिक नहीं है। ब्रह्म का अकन एक विगुद्ध सत्य के रूप में हुआ है। सृष्टि एक प्रत्यक्ष सत्य प्रतीत होती है। इनमें सृष्टि नियतत्व की भावना उत्तनी प्रबल नहीं है, जितनी ईक्षण की। ईशान द्वारा सृष्टि का विधान उपनिषदों की प्रमुख विशेषता है। प्रत्यक्ष सजन में एक ही सत्य की अनुस्यूति प्रवण श्रुतियाँ द्वारा की गई है। सृष्टि सजन में साक्ष्य का प्रवृत्ति और पुरुष की त्रम बद्धता का इन उपनिषदों में अभाव है। यह विगणता अद्वैत सिद्धांत के पक्ष में है। सृष्टि काय में यह ब्रह्मवाद की स्पष्ट घोषणा है। जल आकाशादि पञ्च तत्वों को देवताओं की रूपरेखा दी गई है परन्तु इस देववाद का भौतिकता और ब्रह्म की आध्यात्मिक दिशाओं की विषमता और व्यवधान स्पष्ट है। आचार प्रधान उपनिषदों में लाक व्यवहार की परम्परा की रक्षा करते हुए ब्रह्मचर्यादि द्वारा जानाजन करने का लक्ष्य है। वैशाध्ययन देवकर्म पितृकर्म स्वाध्याय और दानादि वेदविहित कर्म भावना की नोकापयोगी स्थिति इनमें है। इनके अनुसार गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए जानाजन करना चाहिए। अन्न की रक्षा और सदुपयोग एक सामाजिक आवश्यकता की व्यवस्था देता है। ऋग्वेदादि में लोक परलोक भावना का जो रूप उपनयन होता है वह भौतिक और स्वर्ग के सुखों के प्रति अधिक सन्नद्ध है किन्तु उपनिषदों में जान का लक्ष्य इससे विलग है। लाक धर्म का पालन कामना की प्रणाली नहीं है, तो कर्म का कर्तव्यता ही मानता है। अद्वैत दान के विकास के ये पूर्व रूप सिद्धान्त दृढ हैं। इनका प्रतिपादन सन्नमदन का उद्देश्य नहीं रखता। ब्रह्म को एक सत्य सिद्ध करने के ये प्रारम्भिक प्रयत्न हैं। परलोक भावना के साथ वैदिक देवयान पितृयान सिद्धान्त के सम्पर्क में भी ये उपनिषदें हैं। वेदों में पुनर्जन्म सिद्ध करने के पुष्ट प्रमाण नहीं हैं। परन्तु इन उपनिषदों में यह सिद्धांत दृढ़ता से विशिष्ट होता प्रतीत होता है। जस जसे कर्म विचार जगत् की सामग्रियों की आकृति धारणा करता जाना है, उसी यज्ञ से पुनर्जन्म मात्मीय दान में एक आस्था उपस्थित करता जाता है। उपासना प्रधान, आचार प्रधान और सृष्टिवादी उपनिषदें अद्वैत दान की सृष्टि के

धोर यत्न उपासना धोर कम का प्रारंभिक धरण है। यहाँ यत्न साधना के निरुद्ध उपनिषत् का विवरण गद्यपद्य किया गया।

नियति ज्ञानवादी उपनिषद्

(२) नियति ज्ञानवादी उपनिषद् नियति प्रधान है। छात्रोप्य धोर तत्सिरीय धानि उपनिषत् की अपेक्षा इसमें बराबर तत्व की प्रधानता है। लोक धर्म धोर उपासना के प्रति इनका विचार अनुराग नहीं। बल्कि साधना के निरुद्ध उपनिषदा में आश्रम कर्मों और आचार की उच्चता, मन-त्यागी का सम्मान अधिक है। उन उपनिषदा में विद्या के क्षेत्र में मधु और दहरादि उपासना सम्बन्धी प्रतीक गतियाँ हैं परन्तु इन उपनिषदा में विद्या को एक दार्शनिक रूप प्रदान करने के प्रयत्न हैं। विद्या के प्रतिकूल अविद्या की भावना अपना नूतन आचार धारण करती प्रतीत होती है। यह अविद्या लौकिक व्यवहार और पदार्थों के प्रति आरोपित होती जान पड़ती है। ज्ञान अज्ञान के पर्याय रूपों में विद्या अविद्या भावना प्रबल हो रही है। इन उपनिषदा में मोक्ष और बधन का सीमा निर्धारित की गई है। पुनर्जन्म की समस्या का उन्मूलन इसी स्थल पर होता है जिसका अवसान कम सिद्धांत को और अधिक विकसित करना है। कम सिद्धांत को विकसित करने से यहाँ तात्पर्य है कि कम को जन्म और मूर्ति का साधन माना जाना। कम करके जीव बधन में पड़ता है और कम से मुक्त हो कर जीव बधन से मुक्त हो जाता है। कम का फल भोगन का निरुद्ध जन्म होता है परन्तु कम के नेपथ्य रहने पर प्राणी योगि धरण नहीं करता। कम का सिद्धांत और पुनर्जन्म ज्ञानों में अज्ञान-अज्ञान भाव स्थापित हो गया है। कम एक क्रिया मात्र नहीं है अपितु उसमें मनोवैयक्तिकता जागरूक हो गई है। भौतिकता का मुख्य लोकोपयोगी प्रतिकीर्ण में न। धारणा जाता धरन उसका आध्यात्मिकता के प्रकार में प्रहण होता है। इन उपनिषदा में प्रकृति का स्वरूप वाक्यात्मक नहीं रहा। उसका सम्बन्ध विद्या अविद्या की मूर्ध्मता के साथ निरोद्धित हो गया। यहाँ मनुष्य पत्रायना-मुक्ता हो रहा है। माया तत्क प्रकृति है कर मूर्ति में यत्न होना चाहता है। मूर्ति का प्रारंभिक रूप यहाँ पर नही। तब और प्रवर्ण का पुनः स्मरण करना आवश्यक नहीं जान पड़ता। मूर्ति प्रकृति धानि अज्ञान-वादी बन गया। मुख्य और स्वयं इन उपनिषदा में तुल्य ही रूप हैं। इन उपनिषदा में ध्यान में स्थापित

वेद और उपनिषदा में अद्वैत भावना का स्वरूप

लाने की अभिलाषा है। कम और कर्माशयो के साधनभूत उपादान हेय हो गये हैं। इन उपनिषदों में मोक्ष का विधान है। यह मोक्ष अतीन्द्रिय है। अस्तु उस तत्त्व में अलौकिकता है। किसी तत्त्व की सत्यता एक मात्र ब्रह्म सत्य से पृथक् नहीं है। इस प्रकार अद्वैत दर्शन अपनी प्रौढ़ता धारण कर चुका है। परा विद्या और अपरा विद्या द्वारा एक सत्य को व्यवहार और परमाय रूप में विभक्त करने का प्रयत्न किया गया है। समुच्च और निगुण साधनाओं की सीमायें निर्धारित की गई हैं। अद्वैत सिद्धांत की प्राप्ति के हेतु ये बातें आवश्यक हैं —

(१) आत्मा और ब्रह्म में अभेद है।

(२) आत्मा ही एक मात्र सत्य है।

(३) आत्मा मन बुद्धि और वाणी द्वारा ग्राह्य नहीं है।

(४) आत्मा स्वतन्त्रान स्वरूप है। ज्ञान साधन नहीं स्वतन्त्र साध्य है।

इन उपनिषदों में साध्य और योग के बीच वतमान है। साध्य के अनुसार प्रकृति और सृष्टि के स्वरूपों का प्राभास इनमें मिलता है। यद्यपि श्रवण मनन आदि प्रक्रियाएँ प्राचीन गद्य उपनिषदों में मिलती हैं परंतु इनका सुचारु व्यवस्थित क्रम उनमें नहीं है। इन उपनिषदों में योगादि साधनाएँ दर्शन के साथ मिश्रित होने के लिए उत्सुक हैं। दार्शनिक विचारों में जो उत्तरता और सबग्राह्यता प्राचीन उपनिषदों की सम्पत्ति है उनका ह्रास इन निवृत्तिवादी उपनिषदों में परिलक्षित होता है। वराग्य को पल्लवित करने के लिए दुःखवाद की भूमिका प्रस्तुत की जा रही है। जीव और ब्रह्म में भेद का भी निर्देश है। जीव और ब्रह्म के बीच अज्ञान और अविद्या के आवरण का भी प्राभास मिलता है। जीव में ईश्वर की अपेक्षा हीनता और विवर्णता का भी प्रमाण है। ईश्वर में नियता और जीव में नियंत्रित का सम्बन्ध भी प्रत्यक्ष होता है। जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थामा का उपनिषदों में दार्शनिक महत्व है। इन अवस्थाओं का वर्णन प्राचीन उपनिषदों में भी प्राप्त होता है किंतु इन उपनिषदों में इनका एक मौलिक रूप है और इनमें सर्वादि भाव तथा आत्मव्यय की याचना है।

पूर्वकालीन समन्वित साधना प्रधान उपनिषद्

(३) इस वर्गीकरण में कालक्रमवद्धता का उतना ध्यान नहीं रखा गया जितना विषयक्रम का। विषय के विकास की दृष्टि से श्वेताश्वतरे उपनिषद् ही मुख्यतः इन श्रेणियों की उपनिषद् है। यह कहना कि श्वेताश्वतरे की संपूर्ण वस्तु अन्य प्राचीन उपनिषदों के समस्त सुदूर अतीत की नहीं जान पड़ती, उचित

नी है। वता बतर म अधिक प्राचीन और कम प्राचीन दोनों प्रकार की विचार परम्पराओं का योग हुआ गया है। इस संयोग पर ध्यान देने से विदित होता है कि प्राचीन सामग्री के प्रकार में ही यह उपनिषद् एक साधना प्रधान प्रगति कर रही है। कम अतिरिक्त प्रकृति और माया तत्व की एक नवीन दिशा का संकेत मिल रहा है। इसकी ब्रह्म भावना में ईश्वरत्व सश्लिष्ट हो रहा है। ब्रह्म का सगुणता और निगुणता की सीमायें नितांत स्पष्ट हो गई हैं। विरक्ति भावना निवृत्ति ज्ञान प्रधान उपनिषदों से भी अधिक विरतत है। ब्रह्म में काय और कारण भेद अधिक स्पष्ट है। विद्या अविद्या प्रकृति और माया के सम्बन्ध में अधिक है। अद्वैत दर्शन का वह रूप जिससे अद्वैतवाद की सीमा बन्धियां जोड़ी जा सकती हैं इसमें भक्तता है।

इश्वराश्रय का विचार अथ पूर्ववर्ती उपनिषदों से अधिक स्पष्ट है। जीव और ब्रह्म में भेद का निर्णय है।^{२१} इसी प्रकार की अभिव्यक्ति यद्यपि मुण्डक में पहले-पहले ही हुआ चुका है परन्तु इश्वराश्रय का वातावरण अधिक साधना अभिमुख हान के कारण स्वामित्व और अग्रिष्ठ सम्बन्धों के प्रति संकेत करता है। साधना की प्रज्ञानता इस उपनिषद् की मुख्य विशेषता है। सारथ और योग सिद्धांतों का प्रभाव भी है।^{२२} योग की साधना प्रक्रियाओं का अधिक दर्शन में उल्लेख है।^{२३} यद्यपि योगसाधना के अक्षर इसके पूर्ववर्ती उपनिषदों में भी वर्णित हैं परन्तु वह साधना रात्र या ज्ञानयोग या ध्यान की ही अवस्थाएँ कही जा सकती हैं। इस उपनिषद् में तारीर गुडि आदि दृष्टयोग की स्वीकृति का अनुमान करता है। इस उपनिषद् के पूर्व कठ में भी योग की

- १ तस्यै श्रुत्या श्रुत्या समासा समानेन परिषद्भवात् ।
 तन्मन्त्रे विषय इवात्मानेनान्यथा अभिप्रायकशानि । ६॥
 समाने उ पुण्या निदग्नाऽन्नाग्ना शान्ति मुच्यते ।
 तु यदा परमं तदा तदा तन्निर्दिष्टं नि शान्तात् ॥७॥

—श्वेताश्वर । अ ४

- २ एतन्नतः प्रविश्य सन्मुक्तं यत्तदा तदा शान्तेः प्र ते ।
 न तदा शान्तेः यत्तदा न तु प्रा तदा यथापन्तव्य शरीरम् ।

—श्वेताश्वर । २।२

- ३ अन्तात्का सन्निवृत्तत्वात् ब्रह्म तदा मूलात्तत्त्वात् ।
 अन्तेके तदात्तत्त्वात् तदात्तत्त्वात् तदात्तत्त्वात् ॥

—श्वेताश्वर । ४।१

- ४ एतन्नतः प्रविश्य सन्मुक्तं यत्तदा तदा शान्तेः प्र ते ।
 न तदा शान्तेः यत्तदा न तु प्रा तदा यथापन्तव्य शरीरम् ।

परम्परा बतमान है। परन्तु उसमें याग एक आध्यात्मिक माधन के रूप में ही प्रतीत हुआ है जरा रोग आदि से निवृत्ति के लिए नहीं। वहाँ पर याग श्रम का साधन है। श्वेताश्वतर व चिन्तन में उपासना और साधना द्वारा योग प्राप्त करने के लिए अधिक यत्न भाव है—तत्त्व प्रकाश के लिए कम। यागानि साधनों की आवश्यकता उपासना सम्पन्नता की पूरक है।

इन उपनिषदों में पुनर्जन्म सिद्धांत कम के आधार पर दृढ़ हो गया है। जन्म मृत्यु आदि अत्यंत हेय हो गए हैं। श्वेताश्वतर समस्त निवृत्ति प्रधान उपनिषद् है। यज्ञो उद्देश्य ब्रह्म का भाव है। परन्तु कठ का दृष्टि आत्मस्वरूप निरूपण की ओर अधिक है और श्वेताश्वतर की ब्रह्म प्रतिपादन की ओर। कम की अवहेलना निरोपन की गई है। प्राचीन उपनिषद् में जीवन का नितांत वजन नहीं था। उनमें जीवन में एक स्वस्थ ध्यान दे था। परन्तु अगले जीवन और जगत उपेक्षित होते गए। इन उपनिषद् में जगत और जीवन अविद्या के अन्वय में घसे हुए दृष्टि से प्रतीत होते हैं। ब्रह्म की प्रकृति ही इनमें क्रियात्मक है। अज्ञानोपनिषद् में अद्वैत द्वारा उपासना का उद्देश्य है जो भक्ति के समेत है। भावना और हृदय की आकर्षणता के लक्षण हैं परन्तु उनमें हृदयतत्त्व का उत्तरोत्तर अभाव मिनता जाता है। वहाँ बुद्धितत्त्व की प्रधानता बलवती होती जाती है। ये लक्षण अद्वैतवादी की भूमिका को प्रस्तुत ही नहीं करते, अपितु उस पूरण भी करते हैं। अद्वैत दर्शन के विकास में ये उपनिषदें बड़े महत्त्व की हैं क्योंकि आणामी युगों में विचार के साथ धर्म का रूप भी पुनः हो रहा था। कम में यद्यपि धर्मस्वायत्त की चुप्पी थी, परन्तु गतिशील जीवन का निष्पन्न होना कठिन है। अतः अज्ञान की स्वीकृति निष्कामता की ओर म करने पड़ी। अतः उपासना अपनी कामना पूर्ति का माध्यम मात्र नहीं रह गई। उसका उद्देश्य सत्य का साक्षात्कार करना हो गया। सत्य का साक्षात्कार करने के हेतु योगानि द्वारा ध्यानानि प्रशिक्षणों की महत्ता बढ़ गई। उपनिषद् में यह धारणा है कि साक्षात्कार का स्वरूप ज्ञानमय है। अस्तु उस ज्ञान की जिज्ञासा में उत्तममीमांसा और पूजनीयताओं में अज्ञान और धर्म नाम से दृढ़ है। इस प्रकार प्राचीन युगों की उपासनाओं के साथ ही ज्ञान को प्रदानना देते हुए योगानि तत्त्वों का समन्वय इन उपनिषदों में प्राप्त होता है।

अद्वैतवादो उपनिषद्

(५) अद्वैत दर्शन के अतगत अद्वैतवादी को ज्ञान ज्योत्या निश्चित होती जानी है वस ही बिस्तर हुए धर्म विरोधी सिद्धांतों का एक समन्वित

रूप प्रकृत होता है। इस अर्थ में माण्डूक्य और मन्वादिनी में उपनिषद् की सिद्धांतों का विचार श्रुत्या की उत्तरता में उत्तरी पुष्ट नहीं है जितनी कि एन मत या सिद्धान्त उपस्थित करने में। माण्डूक्य उपनिषद् में प्रणवोपासना का उपलक्षण है। प्रणवोपासना यदि साधना के अंतर्गत चरम सत्य के निवचन का प्रतीक है। प्रायः सभी उपनिषदों ने प्रणव को ब्रह्म वाचक स्वीकार किया है और सभी की उपासना का आशय किया है। माण्डूक्योपनिषद् में प्रणव केवल उपासना का लक्ष्य नहीं है बल्कि उसकी एक तात्त्विक महत्ता भी स्वीकार की है। अ, उ, म्, इन तीन मात्राओं के आधार पर एक सत्य को तीन प्रकार से ग्रहण करने का प्रयत्न किया गया है। उपनिषद दंगल इतना 'यापक' है कि वह एक साथ पूर्णतः ग्रहण नहीं किया जा सकता। अनेक आचार्यों और विचारों ने उनको अपने मत के अनुसार घुमाव देने के प्रयत्न किये हैं। ऐसी दंगा में उपनिषदों के एक निश्चित मत का पता लगाना दुःसाध्य है। ठीक इसी प्रकार माण्डूक्य का निश्चित मत क्या है यह कहना कठिन है। फिर भी मूल उपनिषदों के अनुशीलन करने पर जात होता है कि माण्डूक्य ब्रह्म और आत्मा की एकता प्रमाणित करना चाहता है। परन्तु सृष्टि के अनेक विध तत्त्वों के विरोधी गुणों, बलों और स्वभावों की एकता में किस प्रकार समेट लिया जाय इस सिद्धान्त को माण्डूक्य ने प्रकाशित किया है। इस एकता के प्रतिपादन में मायावाद, अभेदवाद, भजातवाद, आभासवाद आदि अनेक वादों को प्रेरणा मिलती है। यहाँ तक कि बौद्धाचार्य का विज्ञानवाद और धर्मशास्त्र आदि ध्वनित होने लगे हैं।

एक उपनिषदों के अनुसार सम्पूर्ण व्यवहार और परमाय सत्य एक ही सत्य के विभिन्न नाम रूप हैं। एक ही आत्मा विश्व तेजस और प्राण भेदों से सृष्टि आदि रूपों में विकीर्ण हो गया है। जागरित स्वप्न सुषुप्ति आदि भेदों से ही पश्याय भेद भवगत होता है। अतः तत्त्व का प्रतिपादन करनेवाला यह एक ही प्रारम्भिक उपनिषद ग्रन्थ है। साधना और धर्मप्रधान उपनिषदों में योगतत्त्व का उल्लेख ही चुका है। माण्डूक्य में तुरीयतत्त्व की महत्ता और स्वरूप का निवचन दृष्टा है जो योग का निर्विकल्पक समाधि का अनिश्चित और बुद्ध नर। मन्वादिनी उपनिषद् में एही उपनिषद् का स्पष्टीकरण है। एवम आत्मा का उपासना का कथन है त्रिमय मतार का आभास प्राप्त होता है।

धर्मानुष्ठान आदि कृपाभा को मान्य साधन स्वीकार न करते हुए आत्मा को गारौरिक बंधन में आने का कारण माना गया है। इन उपनिषदों में पुनर्जन्म का सिद्धांत भी मलिन हो गया है। उसका स्थान पर अजातिवाद सिद्धांत को स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। आत्मा ही ब्रह्म है और जीव एक ब्रह्म में अभेद है इस बात की पुष्टि करते समय सर्वात्मवाद और एकात्म भावना का एक सुसंगठित सिद्धांत सिद्ध होता है। इन उपनिषदों की सामग्री और विचार पद्धति को देखकर यह स्पष्ट होता है कि संभवतः इनकी रचना बौद्ध कालीन है। बौद्धों की अनित्यता और कम एक वासना का अक्षर इनमें समाहित जान पड़ते हैं। फिर भी ये उपनिषद वेदसम्मत हैं। स्वप्न सुषुप्त, मृत्यु आदि पुरुषों का उपनिषदों द्वारा गणना में यथा पूर्व ही चुका है। अतः इन उपनिषदों के बंधन विषय संवत्सा बंदित हैं। इन उपनिषदों के मुख्य मंत्र इस प्रकार हैं —

- (१) आत्मा ही ब्रह्म है।
- (२) आत्मा परमात्मिक तत्त्व है।
- (३) उसकी अनुभूति की अवस्था तुरीय है।
- (४) उसका पारमार्थिक स्वरूप वाणी और बुद्धि का विषय नहीं है।

उत्तरकालीन धर्म साधनाप्रधान उपनिषदें

(५) जहाँ अद्वैत साधना का प्रश्न आता है उसमें उत्तर ये उपनिषदें ही हैं। परंतु इनकी विवेकता यह है कि ये उपनिषदें ज्ञानवादी होते हुए भी अनेक प्रकार की साधनाओं उपासनाओं और प्रतीकों का विधान निवेदन करती हैं। ब्रह्म और जीवत्व में कहीं कहीं ऐसी एकता का प्रतिपादन होता है जिसमें जीव के व्यावहारिक भेद में भी संदेह उत्पन्न हो जाता है। इन उपनिषदों में चिंतन तत्त्व धर्मपरिचय पून है।

इन उपनिषदों का विषय जीवन के प्रति प्रचण्ड विरक्ति भावना है। बार बार जन्म लेना और मरना अमर आत्मा के लिए शाश्वत नहीं है। जगत्पथ्याय का सिद्धांत अपनी पराकाष्ठा को पहुंचा हुआ है। जीवोपाधि मायोपाधि और इसी प्रकार के अन्तर्गत दान के इतिहास में उत्तरकालीन मतों और वादों का समावेश है। इनमें से बहुत सी उपनिषदें शंकराचार्य के समय और उनके भी पीछे की जान पड़ती हैं। महाशक्तिवाद विचार शाश्वतता उपाधिवाद आदि रम्य-नीच, बंध्यापुत्र, गुक्ति रजत आदि बौद्धों के अन्तर्वाचियों के स्वीकृत दुष्कार्यों और वादों का इनमें प्रचुर प्रयोग

हृद्या है। प्राचीन उपनिषदां में वर्णित पंचकोण विषय अवस्था चतुष्टय आदि की पुनरावृत्तियाँ इनमें बहुत हुई हैं।

योगतत्व की अनक विधियां गहीत हुई है। चित्तनिग्रह मनोनिग्रह आदि में हठादि योगों के नक्षण वर्तमान है। मोक्ष की श्रणियाँ जीवमुक्त विन्हे मुक्ति कथत्यमुक्ति आदि में विभाजित हुई है। अद्वैतज्ञान की परिणति ज्ञान योग में हो गई है। गरीर और ससार घृणास्पद है। समाधि द्वारा अद्वैत तत्व का साक्षात्कार करने के विधान पर बल दिया गया है। ज्ञान और सत्य को व्यवहार परमाय और प्रातिभासिक सत्या में विभक्त कर दिया गया है। नारायण विष्णु राम इत्यादि पौराणिक नामों का ईश्वर या ब्रह्म के लिए प्रयोग हृद्या है।

एन उपनिषदां में अद्वैत सिद्धांत के वे तत्व वर्तमान हैं जिन्हें देखकर कहा जा सकता है कि ये उपनिषदें गवराचाय व सक्डो वष पीछे की हैं। ज्ञानश्रम की दृष्टि से ये अधिक पुराने नहीं कह जा सकते।

प्रस्तुत प्रकरण के गत पृष्ठों पर हमने उपनिषदां का वर्गीकरण विषय की दृष्टि से किया था। अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि उपनिषदों ही अद्वैत ज्ञान का आधार किस प्रकार हो सकती है। इस सम्बन्ध में हम उपनिषदां में उपनय अद्वैत ज्ञान के मूल तत्वों पर विचार करेंगे।

इन मूल तत्वों का वर्णन हम इस प्रकार होगा —

- (१) अद्वैत ब्रह्म।
- (२) ब्रह्म सत्त्व और माया।
- (३) आत्मा अथवा जीव और अविद्या।

अब हम इन तत्वों का परस्पर परस्पर वर्णन प्रस्तुत प्रकरण में आगे करेंगे।

उपनिषदों के अनुसार ब्रह्म का स्वरूप

पौधे नियम हृद्ये ज्ञम व अनुमार सबप्रथम हम ब्रह्म तत्व का विवेचन करेंगे। ब्रह्म गवराचाय व अनुमार व धानु स मुत्पन्न हृद्या है^{२५}। गवराचन हममें नित्य शुद्ध आत्ति अय निय है। डा ड्यूमन महोत्प ने प्रायना गवराचन ब्रह्म की सम्बद्ध कहा है। उनका अनुमार सोम आत्ति उप हारा व समान प्रायना भी लकना व तिल गक्तिगता रमायन है। हमी ज्ञम म विकसित होकर प्रायना की भावना ब्रह्म गवराचन की भावना में समाहित हो

२५ अद्भुत शब्दस्य हि व्युत्पत्तिर्नालम्बे नियम शुद्धवाच्यत्वात् प्रत्यक्षत्वं ब्रह्मस्य अर्थानुगतम्।

गर्ह^{२१} । डा० राधाकृष्णन ने सवधनशाल होनेवाली वास्तविकता को ब्रह्म शब्द से अभिहित किया है^{२०} । ब्रह्म शब्द का सवधनशील सत्यता के सम्बन्ध में उपनिषदा में भी प्रमाण मिलता है । कठोपनिषद में कहा गया है कि ब्रह्म अथवा आत्मा अणु से भी छोटा और महान से भी बड़ा है^{२२} । अतः इससे सिद्ध होता है कि उपनिषद को भी ब्रह्म के आकार प्रकार के सम्बन्ध में उसकी अकथनीयता और विराटरूपता दोनों ही अभीष्ट हैं ।

तत्तिरीय उपनिषद की शृंगुवत्सी में कहा गया है कि शृंगु अपने पिता वरुण के पास गया और कहा कि 'भगवन, आप मुझे ब्रह्म का उपदेश करें ।'^{२६} वरुण ने कहा कि "जहाँ मेरे प्राणी उत्पन्न होते हैं उत्पन्न होकर जिसके आश्रम में जीवित रहते हैं और अतः से विनष्ट हो कर जिसमें प्रविष्ट होते हैं उसकी जिज्ञासा करनी चाहिए वही ब्रह्म है ।"^३ शृंगु ने तप किया और पिता से कहा कि 'मन ब्रह्म है—ऐसा जाना । वरुण ने कहा— ब्रह्म को तप के द्वारा जानने की इच्छा कर ।'^{३१} शृंगु ने पुनः आकर कहा— प्राण ब्रह्म है—ऐसा जाना । तप का आश्रम लेकर शृंगु पुनः चला गया । पुनः लौटकर शृंगु ने कहा— मन ब्रह्म है—ऐसा जाना । किन्तु पिता वरुण से उसको फिर लौटना पड़ा । मन ब्रह्म है—ऐसा जाना विज्ञान ब्रह्म है—ऐसा जाना और अन्त में आनन्द ब्रह्म है—ऐसा जाना' कहकर ब्रह्म की जिज्ञासा का उक्त उपनिषद में अन्त होता है ।^{३२} परन्तु आचार्य गङ्गुली के अनुसार आनन्द ब्रह्म वाच्य है । तत्तिरीय उपनिषद में कहा गया है ब्रह्म पृच्छ प्रतिष्ठा है

२६ Like Soma and other gifts the prayer of the poet is offered to the gods. By this curious development Brahman the old name for prayer became most usual name for creative principle of the world. —*Outlines of Indian Philosophy*

३० To us it is clear Brahman means reality which grows, breaths and swells. —*Indian Philosophy*, page 164

२८

१७/२० ।

२९

३० तू श्वावा । यतो श्वा नि भूतानि जायन्ते यन् जायानि तावन्ति । याप्रयन्धनिमुक्शिरन्ति । तन्निश्वासात् । तन्मदो नि । तैत्तिरीय ३।१।

३१ अन्नं श्मो नि व्यजानात् । तपसा मदा विज्ञानात् । तैत्तिरीय ३।१।

३२ प्राणो मदो नि व्यजानात् । मनो, मदो नि व्यजानात् । दिवान् मदो नि व्यजानात् । आनन्दो मदो नि व्यजानात् । तैत्तिरीय ३।१।

अमृत अथवा निराकार ब्रह्म का निवचन नहीं हो सकता । उसके सम्बन्ध में तत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है कि जहाँ से बाणी मन के साथ लौट आती है ^{११} उसी को वह्नारण्यक उपनिषद् में नेति नेति कहा गया है ^{१२} कठ उपनिषद् में ब्रह्म ज्ञानके सम्बन्ध में पांच ज्ञानेन्द्रियाँ मन के साथ एकती हुई कही गई है ^{१३} । ऐसी दशा में चित्त को एक निरागा का अनुभव और ब्रह्ममत्ता की गूयता का आभासमिथ्या है । परन्तु आत्मसत्य सूक्ष्मातिमूक्ष्म है । इन्द्रियो द्वारा वह ग्रहीत नही होता वरन इन्द्रिया उसके द्वारा ही ग्रहण करती है ^{१४} । वह्नारण्यक उपनिषद् में उसकी अष्ट दृष्टा कहा गया है ^{१५} । विज्ञाता की विनष्टि का लोप नहीं होना और दृष्टा की दृष्टि का लोप नहीं होता ^{१६} । जागरित स्वप्न और सुषुप्ति, भूत भविष्य और वर्तमान में भी वह सत्य बाधित नही होता । वह सत्य स्वसवेद्य एव स्वतः प्रकाशमणील है । उसे प्रकाशित करने के लिए किसी अथ उपकरण की आवश्यकता नहीं पडती । अस्तु केनोपनिषद् में कहा है कि वह जान हुए और न जाने हुए से अय है ^{१७} । न वह सत ही है । असत ही ^{१८} । सम्पूर्ण दस्य का वह स्वतः साक्षी है । उससे कोई अय दृष्टा नही है ^{१९} यही अद्वैत सत्य है जिस पर अनेक वषम्भ सम हा जाते है अनेक एक में विलीन हो जाते है । अनिवचनीय स्याति में वस्तुतः एक वाच का आरोप भी नहीं हो सकता । परन्तु उपनिषदों में जो एकता प्रतिपादक स्यन है वह द्वैत निषेध के निमित्त हैं । वही सत्ति और नाना नामरूपा की अनरता है । अनिवचनीयता ही अस्त का चरम है । यह अनिवचनीयता सावहारिक नही । उसकी अभियक्ति इन्द्रिय-मुक्त में नही । अस्तु वह अनुभवगम्यता का अगम्यता रखती है ^{२०} । वह अनुभव स्वसवेद्य है । अनुभव की अभिव्यक्ति मन और बाणी द्वारा नही हो सकती ।

११ यथा वाचा निवृत्त अत्राय मनसा मह । तैत्तिरीय । २।६

१२ नेति नेति । वह्नारण्यक । ४।५।१४

१३ दशा पञ्चविष्टित्त ज्ञानानि मानाः सृष्ट । कठ । १।३।२

१४ दमनता न मनुन यनात्ता मनन सत्वे मद्रत्त विद्धि नः सत्तिमुपासते । वन । १।५

१५ अष्टो दृष्टा । वह्नारण्यक । ३।७। ३

१६ मह विज्ञानुर्विमानुर्विनास विस्त । वह्नारण्यक । ४।३।२

नहि तदुत्तः अन्ताया विस्त । वह्नारण्यक । ४।३।२

१७ अस्तु नः सत्तिमुपासते । वन । १।३

१८ नः सत्तिमुपासते । वन । १।३।२

१९ अस्तु नः सत्तिमुपासते । वन । १।३

२० अस्तु नः सत्तिमुपासते । वन । १।३

अमृत अथवा निगुण ब्रह्म प्रतिपादन के लिए उपनिषदों में एक ही ब्रह्म में विशेषणों का आरोप होता है, दूसरे उसकी अनिबचनायता प्रकाशित करने के लिए निषेध मुख वाक्यों का प्रयोग हुआ है। निगुण भावना के साथ भी एक प्रकार की साकारिता सलग्न है। ब्रह्म सत्य अनन्त और ज्ञान स्वरूप है^{११}। बृहदारण्यक उपनिषद में ब्रह्म विज्ञान एवं ज्ञान स्वरूप कहा गया है^{१२}। मुण्डक उपनिषद में अप्राण, अमन, बुद्धि और अक्षर से भी पर कहा गया है^{१३}। ब्रह्म प्राणों का भी प्राण, चक्षुओं का भी चक्षु, श्रोत्रों का भी श्रोत्र, मन का भी मन इस रूप में भी अंकित हुआ है^{१४}। वहीं उसे मन और वाणी से रहित कहा गया है^{१५}। इसी प्रकार ब्रह्म स्वरूप आत्मा भी निगुण है। वह जीव के समान क्षुधा, पिपासा, ठाक माह भय, जरा और मृत्यु के परे है^{१६}। ब्रह्मस्वरूप आत्मा की अमरता का सदा उपनिषदों की सम्पत्ति है^{१७}। आत्मा को कभी कोई मार नही सकता। दाहन, क्लेश, पीडन आदि का उस पर प्रभाव नही है। जीवत्व वस्तुतः आत्मा है अतः वह भी अमर तत्त्व है^{१८}। तत्तिरीय उपनिषद् में उसे अदृश्य, अनात्म्य अनिहत्त और अभय कहा गया है^{१९}। इस प्रकार निगुण आत्मा के भी अनेक गुण और आकार हैं। ब्रह्म के मृत आकारों का निबचन हो सकता है। चित्तन के क्षेत्र में निराकार अमृत रूप ब्रह्म में अवश्य है परन्तु भावना के लिए वह सापेक्ष और मृत स्वरूप है। निगुण ब्रह्म के इस प्रकार दो ही निश्चित होते हैं—निगुण निराकार और निगुण साकार। निगुण साकार में यह सदा है यह असदा है इस प्रकार का विभक्त हो सकता है परन्तु निराकार में नहीं। निराकार में भी एक प्रकार की सगुणता परिलभित होती है परन्तु जहाँ निगुण निराकार का प्रश्न है वहाँ वाणी अथवा बुद्धिगत विनिमय नहीं हो सकता है।

११ सत्य ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । तैत्तिरीय । २।१

१२ त्वि ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । बृहदारण्यक । ३।१।२८

१३ अप्राणा अमना बुद्धि इत्यनन्तपरत पर । मुण्डक । २।१।३

१४ प्राणस्य प्राणसुप्त उच्छ्वसश्च मनश्रोत्रस्य श्रोत्र मनस्यो य सन्नो ।

बृहदारण्यक । ४।४।१६

१५ अवागमना । बृहदारण्यक । ३।१।५

१६ योऽश्नानाया पिषाम शोक मोह भय जरामृत्युगन्धर्वाणि । बृहदारण्यक । ३।४।१

१७ इना चैतान्मन्यं ह्यनु इतरथान्मन्यं ह्यन

उभो तो न विगन्तीतो नाय हति न हन्यन् ॥ कठ । १।२।६

१८ पीवात्रेन वात्र विलसं प्रियं न पीवे प्रियं । छान्दोग्य । ६।१।१।

१९ अनाद्वैतान्मन्यं निरन्तं अन्वियेद्यमम् । तैत्तिरीय । २।३

प्रथम हम विचार करेंगे कि यदि ब्रह्म अमृत है और मन वाणी का अविषय है तो सृष्टि के कत त्व रूप में उसकी उपलब्धि किस प्रकार होती है। इस सम्बन्ध में हमको माया अथवा विवक्षित भावना पर विचार करना पड़ेगा। उपनिषद् में माया के समानांतर इस प्रकार की विवक्षित भावनाओं की उपलब्धि है। निष्क्रिय ब्रह्म क्रिया या काम नहीं करता^{७०}। क्रिया ब्रह्म से नहीं होती प्रकृति द्वारा होती है। वह अनादि है निगुण और अप्रय है^{७१}। जीवादि शरीर में रह कर भी वह आत्मा सत्य निष्क्रिय रह कर पाप पुण्य से सम्बन्धित नहीं होता^{७२}। जिस प्रकार आकाश सवगन है किन्तु देहादि विकारा से वह स्पष्ट भी नहीं किया जाता उसी प्रकार ब्रह्म सव्यापक होते हुए भी जीवादि के कामपना से सवथा भिन्न रहता है^{७३}। वह जगत्कारण है अतः उस असत् नहीं कहा जा सकता एवं निष्क्रियतादि से मुक्त होने से उसे सत् भी नहीं कह सकते। सम्पूर्ण प्राणियों में वह अपनी पूणता के साथ वर्तमान है और अनेकत्व द्वारा विभक्त नहीं किया गया^{७४}। जैसे आकाश में मेघ आते हैं और आकाश मेघाद्यन्त वस्तुतः होने हुए भी मेघा से लिप्त नहीं होता। किन्तु लिप्त होने का प्रतीति मात्र होती है उसी प्रकार ब्रह्म सत्य में प्रकृति आदि गुणों का आरोप मात्र होता है वस्तुतः गुणों से ब्रह्म विकारी नहीं होता। दूसरे पक्ष में यह प्रश्न होता है कि यदि चतुस्रूप सृष्टि क्रियाएँ प्रकृति ही करती हैं तो ब्रह्म की आवश्यकता ही क्या रह जाती है^{७५}। गीता से उत्तर मिलता है कि पुरुष प्रकृतिस्य है और वस्तु उसके द्वारा उल्लेख गुणों का भोग करता है^{७६}। वह प्राकृतिक क्रियाओं का उत्पन्न अनुमता भर्ता और भोक्ता है^{७७}। प्रकृति क्षत्र है और आत्मा उसका जाननवाना क्षत्र है। एक गूय जिस प्रकार सम्पूर्ण वाक को प्रकाशित करता है उसी

७० प्रकृत्य च कर्माणि क्रियाणां निमवशात् । गीता १३।१६

७१ अनादिनिगुणा परमात्मनोऽयम् ।

शरीरयोऽपि बन्धनं न करानि न लिप्यन्तः । गीता १३।३१

७२ एवा एवमात्मनाऽकाशो नापलिप्यते । गीता १३।३२

७३ न सृष्ट्वन्नास्तु सृजते । गीता १३।१२

७४ अस्मिन् च भूतेषु विभक्तानि च विद्यन्ते । गीता १३।१६

७५ पुरुष प्रकृतिश्चास्मिन् भूत प्रकृत्यान्नुत्पन्नः । गीता १३।१७

७६ उच्यते चात्मानं च भक्त्या भक्ता मन्त्रवत् । गीता १३।१२

७७ क्षेत्रज्ञं चात्मनो विद्धि स्वच्छन्दो भूयते । गीता १३।१३

७८ अनादिनिगुणा परमात्मनोऽयम् । गीता १३।३१

प्रकार एक ही आत्मसत्य सम्पूर्ण जगत् चतुष्टय में भेदा में परिव्याप्त हो गया है^{७६}।

उपनिषदों में ब्रह्म, ईश्वर, सृष्टि और माया का स्वरूप

यहाँ इन पंक्तियों में हम ब्रह्म सृष्टि और माया का वर्णन करेंगे। उपनिषद् में हम ब्रह्म का स्वरूप वर्णन करते हुए यह निश्चित कर चुके हैं कि एक मात्र ब्रह्म ही भूत और अभूत रूपों में यज्ञ हाकर सृष्टि प्रयत्न जगत के रूपों में उपलब्ध होता है। इसी दृष्टिकोण के साथ हम सृष्टि और ब्रह्म के स्वरूपों का प्रकट करेंगे। इस प्रसंग में हम ब्रह्म के स्वरूप को ही सृष्टि के साथ सम्बन्ध करेंगे क्योंकि ब्रह्म ही सृष्टि रूप में विकसित हुआ है। इस विषय में हम इन पंक्तियों पर अध्ययन प्रस्तुत कर सकेंगे।

सृष्टि के साथ माया को सम्बन्ध करने की आवश्यकता इसलिए है कि शास्त्र ब्रह्म तत्त्व में जगत् व्यवहार को मिथ्या कहा गया है और इस प्रकार सृष्टि भी मिथ्यारूप निश्चित होती है। आचार्य शंकर के सिद्धान्तपक्ष में हम विवर्त भावना का परिचय प्राप्त करेंगे। विवर्त भावना के अन्तर्गत माया का मिथ्यात्व निश्चित किया गया है। अतः प्रस्तुत प्रसंग में सृष्टि और माया का स्वरूप हम विवर्त भावना को ही लक्ष्य करके निश्चित करेंगे।

पिछले पंक्तियों पर प्रस्तुत वर्गीकरण में त्रिंशत् प्रारम्भिक उपनिषद् में सृष्टिक्रम का वर्णन उनका प्रिय विषय है। ब्रह्मवादीन एश्वर्य में मनुष्य की नैतिक आवश्यकताओं की तृप्ति हो चुका था। अतः उपनिषद् युग में चिन्तन का उत्कर्ष मिलना स्वाभाविक था। सृष्टि की जिज्ञासा मन की प्रधान समस्या है। इस सम्बन्ध में आवश्यक यह है कि सृष्टिकर्ता का ज्ञान हो, इसके प्रतिरिक्त हम सृष्टि का उद्देश्य भी जान जाना चाहिए। सृष्टि का सम्पूर्ण सामग्र्य का भी विवरण है। इन सभी प्रश्नों के उत्तर उपनिषद् में वर्तमान हैं^{७७}। ब्रह्म युग में सृष्टि का भी एक ही आधार था परन्तु उपनिषद् उसे एक वैज्ञानिक विवरण देने की प्रस्तुत जान पड़ती है। सृष्टि के मूल में दो छोटी बातें हैं। प्रथम तो सृष्टि की एक ही अधिष्ठान पर स्थित

७६ अथापिपाने ज्वनो ब्रह्मा परब्रह्मम् ॥ श्वेताश्वतरे ३।१६

८० किं वास्तु ब्रह्म तु तस्मै जायते
जीवान् धनं च च मयनिष्ठा ।

अधिष्ठिता धनं सुगतसु

वर्णमहं ब्रह्म विन्दे व्यग्रथान् ॥ श्वेताश्वतरे ३।१६

वेनेपि च नमि श्रोपि च मन । धनं प्राणं प्रथमं प्रतियुक्तम् ।

वेनेपि च नमि श्रोपि च मन । धनं प्राणं प्रथमं प्रतियुक्तम् । वेने ३।१६

होना चाहिए और दूसरे उसका निर्माण क्रियाशील तत्व द्वारा हो। उपनिषदों में इसी हेतुसिद्धि के एकसंश्रिय सत से नानात्मक जगत का विकास कहा गया है। यह सत एक शाश्वत तत्व है। इसका तिरोभाव त्रिकाल में भी नहीं होता और प्रलय द्वारा यह बाधित नहीं होता। इसमें सक्रियता और अनुभूति दोनों ही हैं। यह सत पूणत चतय है। यह ईक्षण करता है और नाना प्रकार के नाम रूप और आकारों की उत्पत्ति करता है पुनश्च उनमें प्रवेश करता है।^१ भद्र त सिद्धांत के प्रतिपादन में ईक्षण और प्रवण महत्वपूर्ण घटनायें हैं। एक से अनेक होने के मूल में ही समस्त सजन का भेद अंतर्हित है। एकाकी सत ने जब ईक्षण और प्रवण किया उसका कोई ऐतिहासिक कालक्रम नहीं दिया जा सकता। उसका दार्शनिक महत्व ही प्रधान है। उस सत का कोई आकार प्रकार भी नहीं दिया जा सकता क्योंकि जिस समय वह नाम रूपों में प्रविष्ट हो गया तो उसके सतुलन में कोई अभाव या वृद्धि नहीं हुई। सत एक पूण इकाई ही बना रहा।^२

एक पूण सत के विरोध में असत् तत्व का भी उत्पन्न उपनिषदों में दृष्टा है।^३ किन्हीं मतवादा ने इस पर भी आपत्ति की है। किन्तु वेदात् दान में सत्त्वायवात् की ही प्रतिष्ठा है।^४ छायोग्योपनिषत् में यद्यो फल का दृष्टात् असत्त्वायवात् का परिहार करता है। बीज के टूट जाने पर तो वक्ष का प्रत्यक्ष नहीं जाना परंतु बीज की आवश्यक वातावरण प्राप्त होने पर उसका आकार एक विनाल वक्ष हो जाता है। इसी प्रकार बीज के अतगत वक्ष असत्त्वाय ही है एक अनुकूल जलवायु की प्रतीक्षा में रहता है और तदुपरात् असत् ही सत् हो जाता है।^५

प्रारम्भिक उपनिषदां में सत्त्विकता तत्व किसी स्वरूप में नहीं अंकित है। उसकी मात्रा और मिति का भी निर्णय नहीं है। उसमें किसी प्रकार की विविधा नहीं। ईरण का उद्देश्य एक स अनेक हो जाना है। उसको कही

११ मन्व गुण्यत्तम अमात्कमवात्तीयम् । छान्दाग्य ६।१।१

नन्तु वक्ष्या प्रणय । छान्दाग्य ६।१३

१२ आना वा इन्द्रकाम्योम आमीत ।

म ईरण ल कनु मता इति । णय १।१।१

अनन लवन्तान्तु वक्ष नाम रूप आकरवाण इति । छान्दाग्य ६।३।१

१३ अन्त इन्द्रकाम्योम आमीत । नो वै मन्वत्त । नैतरीय १०

१४ अन्त इन्द्रकाम्योम आमीत । अन्त इन्द्रकाम्योम । त्रिगय १६

१५ अन्त इन्द्रकाम्योम आमीत ।

सत् कहा असत्, कही आ मा और कहा ब्रह्म कहा ह । वस्तुतः ईशान कर्ता निगुण और निराकार ह । सृष्टि में प्रवेश होने पर आनन्द की अभिव्यक्ति मष्ट पदार्थों में हुई । बहुदारण्यक उपनिषद् में कहा है कि इस आनन्द के द्वारा ही अन्न प्राणी जीवित रहने है^{६६} । इस प्रकार एक सत् में ही सक्रियता या चतन्य के माध्यम आनन्द की अविधि ही गई ।

आकाश वायु तेज, जल और पृथ्वी अन्न आकार में आए । प्राण और अन्न की उत्पत्ति हुई^{६७} । अण्डज विण्डज स्वदज जरायुज उद्भिज अस्व, गो मनुष्य, श्यावर, जगम आदि की सृष्टि हुई^{६८} । इस प्रकार सम्पूर्ण भौतिक और अभौतिक एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थों और भावों का उद्भव हुआ । परन्तु उनके मूल में एक सत् तत्त्व का ईशान और प्रवेश क्रियाशील हाकर आनन्दमय ही गया । अस्तु अन्न, प्राण मन आदि से लेकर सम्पूर्ण जीव यानिया और अचल चल इत्यादियों में एक ही सत् अनुस्यूत ह । यह आनन्द ही सजन का उद्देश्य और अन्ति यक्ति ह^{६९} । यही उसका आन्ति और अन्त है । सम्पूर्ण पदार्थ स्वतः सत्य हैं । अद्वैत सिद्धांत का उपनिषदात्मक भाषा हुआ स्वरूप, भौतिकता को नितात्मिथ्यात्व का रूप नहीं देता । उनमें सत्य की एकता के प्रतिपादन का लक्ष्य अर्थ है, परन्तु हठनही । जगत की परिवर्तनशील मरणशील और निराशापूर्ण परिस्थितियों पलायन को बन नहीं देती । उन सब में एक ही सत्य का दर्शन होता है और एक ही भावपूर्ण नैसर्गिक पूजा की प्रतिष्ठा है^{७०} ।

सृष्टि में जड़ और चतन्य दो प्रकार के पदार्थ हैं । ईशान और प्रवेश स्वतः चतन्य के प्रमाण हैं । जड़ की सत्ता चतन्य के बिना शून्य सत्ता रह जाती है । अस्तु चतन्य द्वारा जड़ उद्बुद्ध किया जाता है । चतन्य की स्थिति जड़ता के द्वारा बन होती है परन्तु जड़ चतन्य के बिना निष्क्रिय रह जाता है । यह चतन्य ही सत्य है^{७१} । प्रश्न यह हाता है कि इस चतन्य का निर्माण किसने किया ? ईशान और प्रवेश श्रुतियों स्वतः प्रमाण है कि उसने नानात्व

- ६६ पदार्थस्य परम आनन्द । बहुदारण्यक उपनिषद् ४।३।३२
 १ मयदान दत्तान्मानि भूतानि मातामुपजीवन्ति । बहुदारण्यक उपनिषद् ४।३।३२
 ६७ तैत्तिरीय उपनिषद् वल्ली १० ।
 ६८ अथरेय उपनिषद् ३।१।३
 ६९ आत्मान्नाद्देव्यं तन्वितानि भूतानि जायन्ते । आनन्दानि जायन्ति जीवन्ति । आनन्दप्रयत्न्यनिसुविरान्तीनि । तैत्तिरीय उपनिषद् ३।६।१
 ७० एवं सत्त्विदं ब्रह्म स्वजायानिति शाल्लसुपासीति । आत्मान्य उपनिषद् ४।८।४।६
 ७१ सौडकायन ब्रह्मण्य प्रजायति तन्नुप्रवेश सत्त्वमन्तामवत ।

का सजन किया, किंतु उसका सजन किसी ने नहीं किया। भूत और अभूत अभि-यक्तियो म उसका प्रवेग होने के कारण ही वह अतर्कामी कहलाया^{६२}। जिस प्रकार से मकड़ी अपना जाना बनाती है भयवा जिस प्रकार अग्नि के असह्य लघुकाय स्फुलिंग विस्फुरित होने है वैसे ही एक इकाई से अनेक इकाइयाँ पृथग्^{६३}। सृष्टि ब्रह्म का काय है कि तु यह काय कारण ब्रह्म से पथक न होने के कारण काय ब्रह्म कहलाता है। जगतात् कायो मे परि-प्राप्त चतय ही हिरण्यगभ है। हिरण्यगभ ब्रह्म ही है। आत्मा को जब गरीरक सम्ब वसे सयुक्त किया जाता है तब वह विराट कहनाता है। यह विराट भी विण्ड ब्रह्माण्ड सिद्धात के अनुकूल है। ब्रह्म क इस विराट स्वरूप का वणन मुण्डकोपनिषद् मे भी हुआ है^{६४}। विराट का गरीर भीतिन तत्त्वो से बना है। विराट के गरीर म हिरण्यगभ सूत्रात्मा नाम स प्रतिष्ठित है। विराट के आकार म हिरण्यगभ प्रत्यक्ष होता है। सूत्रात्मा सूत्र म गरीर का अभिमानी है। सूत्रात्मा विज्ञान और त्रियामो को अपन म निहित रखता है और आकार प्राप्त होने पर उह व्यक्त कर देना है। ब्रह्म सृष्टि का सूत्रमम आकार है। वह ब्रह्म विज्ञान और त्रियामो स सत्रया रहित है परंतु सृष्टि सम्बन्ध से उसका निवचन हिरण्यगभ है। ईश्वर इस प्रकार सृष्टि कारण की वस्तु रूप मे हिरण्यगभ और विराट है और उसकी नियामक गति सौम्य और भाव रूप म ईश्वर ही ब्रह्म है। एम प्रकार जीव रूप म आत्मा विश्व है और ब्रह्म के कायरूप म विराट या चतुवनर। जीव के चतय रूप म आत्मा तेजस है और काय ब्रह्म म विवात्मा या हिरण्यगभ। विजानात्मा जीव म प्राण और काय ब्रह्म म आश्रयचतय ईश्वर है। विगुडात्मा जीव म जो तुरीय तत्व है वही सम्पूर्ण सृष्टि म काय ब्रह्म क अतगत प्राण तत्व है^{६५}।

उपसुक्त विवरण क अनुसार काय कारण का एक विश्वास मात्र है। एक ही आत्ममत्त की मत्ता की स्वीकृति श्रुता के माय है। चतय

६२ अद्वैतबोधोपनिषत् सव्ये । भाष्य उपनिषत् । ६

६३ अद्वैतबोधोपनिषत् । मुण्डकोपनिषत् । ११२

अद्वैतबोधोपनिषत् । मुण्डकोपनिषत् ११३

६४ अद्वैतबोधोपनिषत् । चतुर्वेद

श्री आश्वलायनोपनिषत् ।

श्री अद्वैतबोधोपनिषत् ।

पदार्थ दर्शनी द्वय म भूतान्तरात्मा ॥ मुण्डकोपनिषत् ११४

तत्व एक ही है चाहे वह जीव का हा अथवा आत्मा अथवा जगत का । अस्तु जीवत्व और ब्रह्मत्व समानधर्मी है । सृष्टि में जड़ चतुर्थादि भेद भी लुप्त प्राय होते जान पड़ते हैं । उपनिषदों में ब्रह्म त सिद्धांत क्रमश विवक्षित होता जान पड़ता है । केवल सत केवल चतुर्थ और केवल ज्ञान ब्रह्म के अतगत उपलब्ध सत्य है । ईश्वर और प्रवेश ब्रह्म स्वरूप करता है और स्वतः म करता है । सृष्टि क्रम की एक अनादि परम्परा उपनिषदों में स्वीकार की है । ब्रह्म की अनिवचनीयता के साथ तो सादि और अनादि भेद भी विलुप्त होकर सृष्टि और प्रलय के वैधर्म्य भी एक मात्र सत्य में विलीन हो जाते हैं ।

उपनिषदों की आस्था सृष्टि और उसके कर्ता पर लब्ध है । इस प्रकार वही न तो ब्रह्म में शून्यता की भावना है और न सृष्टि में निपट मिथ्यात्व का भय । सृष्टि की ब्रह्म का संरक्षण प्राप्त है और सृष्टि द्वारा ब्रह्म की स्थिति का प्रमाण मिलता है । इसी हेतु माण्डूक्योपनिषद् में पाद ही मात्राएँ और मात्राएँ ही पाद हैं (माण्डूक्य उपनिषद् ८), ऐसा निवचन है । प्रणव ब्रह्म सत्य का वाचक है । प्रणव एक और तो उपासना के हेतु भक्ति और अद्वैतमय मग्न प्रस्तुत करके ब्रह्म का साक्षात्कार नियोजित करता है, दूसरी ओर, चित्तन के लिए उसके अनिवचनाय स्वरूप का ज्ञानमयी साधना का विधान करता है । इस प्रकार ओम् ही ब्रह्म वाचक है^{६६} । सम्पूर्ण सृष्टि जड़ जगत् में अधिष्ठित प्रणव ही है । मज्जत स्वतः ब्रह्मरूप अथवा प्रणवरूप है^{६७} । आत्मा के निविकार स्वरूप की वाणी आदि विकारों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता है उस समय आकार ही ब्रह्म, जगत और जीव तत्व का वाचक है । एक अतीन्द्रिय सत्य को प्रकाशित करने का यही साधन है^{६८} । आत्मा का साक्षात्कार आकार द्वारा होता है । अतः सिद्धांत के अतगत ओंकार केवल आत्मसत्य का प्रतिपादक है^{६९} । आकार ही सम्पूर्ण वाक् विस्तार का बीज कहा गया है । हमारा जगत् चरवानर आत्मा है इस बात को छांदोग्य में विनाल कथना द्वारा व्यक्त किया गया है^{७०} ।

६६ आनिति ब्रह्म । तत्तरीय उपनिषद् १।८।१

६७ आकार एवेत् सवम । छान्दोग्य उपनिषद् २।३।१३

६८ आमित्येना । कठोपनिषद् १।२।१५ अनात्मनः । कठोपनिषद् १।२।१७

६९ ओमित्ता माने सुखीन । मैत्रायणी उपनिषद् ३।३

७० अकारो वै सर्वा वाक् । छान्दोग्य उपनिषद् ३।३।६ तस्य ह वा अनात्मा मनो चरवानरस्य भूयैव सुनेजातरव्यविरदरूप प्राण प्रत्यवर्तमानाः कृत्वा धर्तारव रवि अधिव्येव पाणी । छान्दोग्य उपनिषद् ५।१।१०

चित्तन जगत म ध्यान ध्याता और ध्येय एक ही जाते है । उपनिषद् मे ब्रह्म के सत चित और आनन्द स्वहृद वस्तुतः एक ही जाते है । वही सत चित्त य और आनन्दमय एक तत्त्व है । सत्त्विक सम्बन्ध म भारतीय वेदान्त मे अनेक सिद्धांत प्रचलित है । व सभी सिद्धांत सत्यवायवाद का स्वरूपार नहीं कर सक्त । सत्त्वाय स्वत ईक्षण और प्रवर्ण द्वारा प्रमाणित काय ब्रह्म की महिमा है । अमत्यवायवात् का लण्डन तो उपनिषदो न स्पष्टत यह कह कर किया कि असत म सत की निष्पत्ति नहीं हो सक्ती^१ । नूयासि द्वारा विकास सिद्धांत माननेवाल असत स ही काय की उत्पत्ति मानते है । सत्त्वायवात् की छाया म ही ब्रह्मवात् की पुष्टि होती है ।

इसी प्रकारण म हम ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन करत हुए सृष्टि और माया का ब्रह्म स सम्बन्ध निश्चित कर चुके ह । यहा हम माया का वर्णन सृष्टि का रूप मानते हुए करेंगे । माया को सृष्टि का रूप इसलिये मानना आवश्यक है कि माया सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि की रचना ईश्वर की माया से होती है । अत यहाँ हम ईश्वर और माया के स्वरूपों का विचार संक्षेप म करेंगे । इस सम्बन्ध म हम ब्रह्म म माया क विवक्त रूप का भी संकेत करेंगे ।

इतनाश्चनर उपनिषद् और गीता अद्वैत वेदान्त के उत्तरवादीन उपनिषदो म म है । ईश्वर ही वस्तुतः सृष्टि का कारण है । अविद्या और माया का ससग लक्षर घटत्वान् म वरवात् का विकास हुआ है । माया गच्छ गीता म अत्यधिन ग्रहीत हुआ है । या तो माया गच्छ का प्रयोग सत्त्विक सम्बन्ध मे वद्वारण्य उपनिषद् म हा चुका है परन्तु उमका आगम मायावात् का मिथ्यात्व नहीं कहा जा सक्ता^२ । माया गच्छ वचन म प्रयुक्त हो कर नानात्व का चीनक प्रतीत हाता है । प्रकृति और माया का एकायक प्रयोग स्वना वनर उपनिषद् म हुआ है । स्वना वनर उपनिषद् म ही ईश्वर का सत्त्विक सम्बन्ध म मायी कहा गया है^३ । प्रकृति म माह्य द्वारा प्रगुण्य सिद्धांत ग्रहीत है ।

वर गण्य और ब्रह्म निगुण ह । इस प्रकार का गुण्य सम्बन्ध परम्परा प्रकृति सिद्धान्त प्रागविकसित हई^४ । उत्तरवादीन वेदान्त वेदान्त म यह

१ १ कथन सत्त्विक सम्बन्धन ध्याताय ध्यातव्ये ६।२।

२ २ अतः प्रागविकसित हई । अतः प्रागविकसित हई । १।१६

३ ३ अतः प्रागविकसित हई । अतः प्रागविकसित हई । १।१६

४ ४ अतः प्रागविकसित हई । अतः प्रागविकसित हई । १।१६

५ ५ अतः प्रागविकसित हई । अतः प्रागविकसित हई । १।१६

वेद और उपनिषद् में ब्रह्म त भारता का स्वरूप

प्रकृति मायावाद द्वारा आनपित कर ली गई। निगुण निराकार, निर्विकार ब्रह्म सगुण साकार और सविकार नहीं हो सकता। एक साथ दो विरोधी भावनाएँ स्थिर नहीं रह सकती। प्रकृति और ब्रह्म दो पथक सत्य नहीं हो सकते। इन समस्याओं के लिए मायावाद में मिथ्यात्व उत्तरोत्तर जागरूक होता गया। प्रकृति सत्त्व रज और तम गुणों का मिश्रण है। इस प्रकृति और माया पर ईश्वर का अधिकार है। यहाँ पर प्राचीन उपनिषद् का एक मात्र सृष्टि तत्त्व सद मायामय हो गया। ईश्वर की अघ्यक्षता में चराचर सृष्टि का विधान नियमित हुआ^{१०५}। इसके अनुसार सृष्टि तक सम्पूर्ण समष्टि सत्य न रह गया। पूर्वकालीन उपनिषदों द्वारा सदात्मक पंच तत्व प्रकृति के भ्रम बनाये गये^{१०६}। यह प्रकृति भ्रमवा माया ईश्वर के साथ कोई मौलिक घटना नहीं है। य भी अनादि तत्व है। ये बहुधा होते हुए भी एकात्मक है। इसी हेतु इन्हें अज्ञा कहा गया है^{१०७}। ईश्वर में साकारता और मानव आकार भी इन उपनिषदों में प्रतिष्ठित हुआ है^{१०८}। माया या प्रकृति शक्तिमान ईश्वर की शक्ति और स्वाभाविक क्रियाएँ हैं। निगुण और निरानार ब्रह्म ही शक्तिमत्ता द्वारा अनेक रूपा में यत्न हो गया है। आत्मा या ब्रह्म का वही सत स्वरूप उसकी शक्ति है। माया या प्रकृति के साथ ब्रह्म का स्वरूप सति विद्य है^{१०९}। वही भोक्ता वही भोग्य और उत्कृष्ट प्ररत भी एक मात्र ब्रह्म सत्य है। इस प्रकार एक ही स्वरूप के तीन आनार प्रत्यक्ष होते हैं। यह त्रत समुदाय जीव ब्रह्म और प्रकृति है। इस त्रत वस्तु का केन्द्र एक ही है। उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय देखने में पृथक् पृथक् प्रतीत होते हैं परन्तु ये

१०५ नया यज्ञेय प्रकृति सूत्रे सचराचरम् । गीता १।१०
एकारान स्थितो जगत । गीता १।४२

१०६ भूमिरोपोऽनलो वायु रत मनो बुद्धिरेव च ।
प्रहकार इतीव म भिन्ना प्रकृतिरप्यथा ॥ गी । ७।४
प्ररत—उप० १।१६ में माया शब्द का व्याख्यातिक अर्थ प्रयाग हुआ है ।
ईरान (शारान) करने पर कारण ईश्वर नाम है ।
इधो इ वै नामय । बह्मरस्यक उपनिषद् ४।२।०

१०७ अनामेरां लोहितगुण कृष्णा । रवेतारक्तर उपनिषद् ४।५

१०८ सत पाणिपाद सवनोऽचिशिरो मुग्धा ।
सवन धृत्तिमन्लोको सवमा स्थितिच्छति ॥ रवेतारक्तर उपनिषद् १।२

१०९ पराम्य शक्तिर्विधिव धृत्वे स्वभाविकी ज्ञान वन निया ॥ रवेतारक्तर उपनिषद् ६।८

सब क्रियायें एक सत्य द्वारा ही सक्रमित होती हैं^{११} । ऐतरेय उपनिषद् में इस जगत सत्य को प्रज्ञान ब्रह्म कहा गया है^{११} । ब्रह्म की मृष्टि अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है । नाग और उत्पत्ति वस्तुतः वा घटनायें नहीं हैं^{१२} । जिस प्रकार स्वप्न में भी एक मिथ्या सत्य वर्तमान है वयोवि वहाँ भी स्वप्नदण्ड मुख या दुःख का अनुभव स्वप्न में वास्तविकता न होत हुए भी करता है उसी प्रकार सृष्टि की माया और प्रकृति के अंतराल में भद्र त परम सत्य अपनी महिमा का अनुभव करता है ।

माया का स्वरूप शक्तिमय और सूक्ष्म है । माया जड़ आधार प्राप्त करके पण्य रूप में प्रकट होती है । सूक्ष्म शक्ति के रूप में होने के कारण माया को अच्यवन कहते हैं । अच्यवन एकघा है किन्तु अच्यवत अच्यत होने पर अनेक रूप हो जाता है । उस समय माया रूप में ईश्वर ही अनेक नाम रूपात्मक दश्य जगत में प्रकट होता है । माया ही काय ब्रह्म रूपा एक पूण इकाई है जिसमें अनेक इकायाँ विस्फारित होती परिदश्यमान होती और लीन होती रहती है । परन्तु उनके लीन होने से न तो उसकी वृद्धि होती है और न क्षय । यह माया ब्रह्म के अधीन है^{१३} ।

जीव का अनात्म जड़ के प्रति स्वाभाविक आकर्षण है । यह माया के ही कारण है । जीव तो विगुद आत्मा ही है उसमें अनात्म जड़ता का ससग नहीं । आत्मा स्वत एक पूण इकाई है किमी अय से उसकी पूति नहीं होती । वह स्वत दष्टा है अय उसका दष्टा नहीं हो सकता । जो यह अनात्म के प्रति अथवा अगुचि के प्रति अथवा दुःख के प्रति अनित्य के प्रति नित्य ध्यानस्वरूप गुद आत्मा की गति है वह अविद्या के कारण है । अविद्या अज्ञान का पर्याय है^{१४} ।

- ११ पक्षोऽवर्णो बहुधा शक्तिवर्गात् । श्वेताश्वर उपनिषद् ४।१
भावा भाग्य प्रेरितान् च मत्वा मव प्राप्त त्रिविध ब्रह्ममत्त । श्वेताश्वर उपनिषद् १।१२
मदं दत्त विन्दु ब्रह्ममत्त । श्वेताश्वर उपनिषद् १।६
- १११ प्रज्ञान ब्रह्म । पण्य उपनिषद् ३।१११
- ११२ इति अविद्यात्त इत्यभि सत्यं जनात्तिरिति
मुच्यते अविद्यात्तं सत्यं विद्या मुच्यते अथा । श्वेताश्वर उपनिषद् ३।१०
- ११३ अन् माया अविद्या । गण ७।१४
अविद्यात्तं ब्रह्ममत्त । मुल्लुक उपनिषद् १।१०
- ११४ पुरुष एव विद्या ब्रह्म सत्यं ब्रह्म पण्यत्तं पण्यं वा निश्चितं
पुरुषं अविद्यात्तं विद्यात्तं सत्यं । मुल्लुक उपनिषद् २।११०

इसी प्रकार में स्थिर किए गए विभाजन के अनुसार प्रारम्भिक उपनिषदों में ब्रह्म कारणत्व के अतगत ईश्वरत्व की भावना अधिक पुष्ट नहीं है। वहीं वस्तुतः सत्त्व के विधान के लिए किसी अथवा उपादान की आवश्यकता नहीं पड़ी, नाम रूपा की रचना किसी बाह्य उपकरण से नहीं हुई^{११४}। उस एक सत्त्व के अन्तराल में ही समस्त नाम रूपात्मक वस्तु सत्त्वित रूप में निहित थी ऐसा प्रतीत होता है। अतः चामुप सत्त्वित्वाँ एक तत्त्व के अनेक रूपात्मक विकास है। ईश्वर और प्रवेश प्रमाण हैं कि वस्तुभाव और वस्तु में काम कारणत्व किसी वयम्प का सूचक नहीं है^{११५}। जिस प्रकार अग्नि के अनेक स्फूर्तियों को उमस पृथक नहीं कहा जा सकता, अथवा जल अनेक जलतरंगों में आ दो लित होकर चन्द्र बिम्ब अनेकधा नहीं हो जाते वरन् अनेक लहरियाँ ही उस अनेकत्व की उत्तरदाया है, वम ही ब्रह्म रूप में सत्त्व की नामरूपता प्रतीय होने पर भी वह एक मात्र सत्य द्विधा अथवा अनेकधा नहीं होना^{११६}। वेदान्त दर्शन के अतगत प्रतिबिम्बवाद का सूत्रपात यही से होता है^{११७}। छांदोग्योपनिषद् में उसे एकधा ही कहा है। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि उसे एक रूप में देवता चाहिये। सत्त्व और आत्मा दो सत्य एक साथ नहीं रह सकते। यायत, यदि दो की स्थिति मान ली जाय तो सत्त्व त्रम की नियामकता में विरोध होगा। अतः सिद्धांत किसी द्विधात्मक तत्त्व को प्राप्ता हन न देकर उसको एकात्मक बनाता है^{११८}। विश्व रूप में ब्रह्म की उपासना का विधान इतरहित सत्य की सीमाया में ही नाना रूपता को अवगुठित कर लेने का उद्देश्य रखता है। उपनिषदों में अवतार भावना का पोषण स्पष्ट रूप से नहीं हुआ। यह ज्ञान प्राचीन उपनिषदों के सम्बन्ध में अधिक दृढ़ता से कही जा सकती है। यों तो उत्तरकालीन अनेक उपनिषदों राम गोपाल, लक्ष्मी दुर्गा आदि की महत्ता और उपासना का निवृत्त करता हैं किंतु इनमें

११५ गमरूपयोर्निर्दिष्टा ते यन्त्रा तद्ब्रह्म । छान्दोग्योपनिषद् ८ । १४ । १

११६ यथाम्ने क्षुरा विस्तुर्जिगा । बृहदारण्यक उपनिषद् ० । १ । २०

११७ एक एव तु भूतामा भूते भूते व्यवस्थित ।

प्रथमा बहुधा चैत इत्येते अत्र चन्दन ॥ अद्वैतविन्दूपनिषद् १०

११८ पुररत्नक द्विपत्त पुररत्नके चतुष्पा पुर स पत्नी भूया पुर पुम्प आविशत् ।
बृहदारण्यक उपनिषद् २ । ५ । १६

एकस्या सवभूतान्तरामा रूप रूपं प्रतिष्प्यो बहिरत्न । कठोपनिषद् ० । ० । ६

११९ यथ द्वि द्वैतमिव भवति । बृहदारण्यक उपनिषद् २ । ४ । १४

नेह नानाति किंचन । कठोपनिषद् ० । १ । ११

दार्शनिक चिन्तनधारा क्षीण होकर साधनात्मक विद्याधरो की प्रधानता लक्षित होती है। इस कोटि की अनेक विचारणाएँ गव वष्णुव और गार्तक उपनिषद् के अंतर्गत मिलती हैं। प्राचीन उपनिषद् के अंतर्गत श्वेताश्वतर म ननुष्य सिद्धांत से विष्णु ब्रह्मा और महेश्वर देवताओं की शक्ति का आभास मिलता है। इनमें ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा है। जोकरजन या लोकरक्षण के लिए इनके अवतार लेने की बात स्पष्ट रूप से श्वेताश्वतर में नहीं कही गई। अवतार भावना का स्पष्ट उदघोष ही गीता में ही उपलब्ध होता है। किंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि श्वेताश्वतर उपनिषद् में अवतार और ईश्वर की यत्किंचित् रूप में आभास और संभावनाएँ वर्तमान हैं। इस प्रकार अवतार वाद और ईश्वरवाद गीता और श्वेताश्वतर उपनिषद् की चिन्तन परम्परा में उपलब्ध होता है।

विश्व ब्रह्म रूप है स्रष्टि स्वत ब्रह्म ही है। अस्तु नानात्व और वेदम्यादि बाह्यत्ववाचक तत्त्वों का अभाव इन उपनिषदों का प्रतिपाद्य है। द्वैत के समान एवमात्र आत्मसत्य प्रतीत होते हुए भी एक ही है^{१२}। वह द्वितीय और अपरिमेय है^{१३}। सर्वव्यापी के लिए ब्रह्म ही एवमात्र शक्ति है। द्वैतात्मक सिद्धांत ब्रह्म स्वरूप के साक्षात्कार में अंतराय मान है^{१४}। आकाश जल आदि तत्व मन विनाश आदि अंतःसत्य मनुष्य पक्षी आदि चतुर्धर और ब्रह्म पवन आदि संपूर्ण विषम आकार प्रकार एव के अतिरिक्त दो नदों और नानाविध हैं^{१५}। इन सब की व्यावहारिक उपयोगिता मात्र है। इसी हेतु इस अंतर्गत स्रष्टि व्यापार की वाणी का विकार कहा गया है^{१६}। ब्रह्म या आत्मा की अनादि सत्ता के अंतर्गत अनेक भेद नहीं हैं क्योंकि ये एकमात्र सत्य के रूप हैं^{१७}।

१२ स पक्षधो। छान्दोग्योपनिषद् ८।१३।३

पक्षीानुच्छन्नम्। बृहदारण्यक उपनिषद् ८।४।२

१३ एवमात्रोपनिषद्। छान्दोग्योपनिषद् ६।२।१

१४ नित्यं भवति। बृहदारण्यक उपनिषद् १।४।२

ननु तद्विद्वान्मि। बृहदारण्यक उपनिषद् ४।३।२३

१५ य इह ज्ञानं परमं। काठोपनिषद् २।१।१०

१६ वागमन्वु विद्वान्नाशय। छान्दोग्योपनिषद् ६।१।४

आत्मसत्त्वान्। बृहदारण्यक उपनिषद् १।४।१७

ब्रह्म इत्येवमात्रम्। बृहदारण्यक उपनिषद् १।४।१७

१७ सत्यं एव सत्यम्। काठोपनिषद् १।१०।११

काय ब्रह्म के अतगत सृष्टि तत्व का ग्रहण है। ईश्वरत्व भावना का कारण काय ब्रह्म में होता है। हिरण्यगर्भादि प्राचीन उपनिषदों के ईश्वर हैं। हिरण्यगर्भ विराट् सूत्रात्मा आदि ईश्वर के रूप माया मिथ्यात्व में तिष्ठत नहा होत और उत्तरकालीन उपनिषदों के समान अविद्याप्रधान भी नहीं। ये वैदिक विकासवाद द्वारा निर्धारित सत्य हैं। इनमें तत्व चिंतन की उतनी ही निष्ठा है जितनी आत्मा या ब्रह्म में। व्यावहारिक अनात्मत्व द्वारा ये रूप नहीं बिक्रम हुए। पुनर्जन्म सिद्धांत के क्रमागत विकास के साथ विद्या अविद्या और ईश्वर ब्रह्म में अग्नीवद्धता निश्चित हुई है।

ईश्वर सत्ता में सृष्टि स्थिति और प्रलय की अविति है, परन्तु निगुण ब्रह्म के साथ य प्राकृतिर अथवा मामिक तत्व मान है। श्वेताश्वनर उपनिषद ब्रह्म को निष्क्रिय सात निष्कल, निर्व्यधि और निरजन कहा गया है^{१२६}। मुण्डक उपनिषद् में स्थिर, अमृत वाह्य और आम्यतर में वतमान और जम-रहित कहा है।^{१२७} वहदारण्यकोपनिषद् में ऐसा नहीं ऐसा नहीं, कह कर उसके स्वरूप की अकथनीयता का निर्देश है^{१२८}। वही पर उसे न स्थूल है न अणु है ऐसा भी कहा है^{१२९}। ऐसी दशा में सत्कायवादादि श्रुति मम्मन सृष्टि कारणत्व में विरोध आता है। सृष्टि उपनिषद् का एक सत्य है। उपनिषद जिस सिद्धांत का प्रतिपादन करती है उसका आधार शुष्क तक नहीं। प्रत्यक्ष सत्य का उपनिषद स्वप्न नहीं मानती। अतः निगुण ब्रह्म की उदापना में वाह्य भौतिकता का चिंतन क्षत्र में अभाव होता जाता है। अद्वैत अवस्था में काय ब्रह्म तिरोहित हो जाता है। काय कारणत्व की अयो-याधिता का भी तिरोभाव होता जाता है। आत्मा की उपासना का क्षत्र द्वैतजय सृष्टि मन्व-धो के साथ रहता है। उपासना द्वैत भाव स्थिर करती है और द्वैत अविद्यात्मक है। ज्ञान दान में उपासना स्वतः ज्ञान ही होती है। ज्ञान का लक्ष्य भा ज्ञान ही होना है। अस्तु निगुण ब्रह्म के साथ सृष्टि प्रकृति आदि सत्ता का वहिमुख ही निवर्ष होता जाता है और अम्य तर में इनकी सत्ता अपनी व्यावहारिकता से मुक्त हो कर अभेदात्मक हो जाती है। परिणामवाणी साक्ष्य दान सृष्टि को दूष से दही व समान स्वाभाविक परिणाम मानता है। छांदोग्योपनिषद् में सम्पूर्ण प्राणी ब्रह्म सपव

१२६ श्वेताश्वनर उपनिषद् । ६।१६

१२७ मुण्डकोपनिषद् । २।१।२

१२८ वहदारण्यकोपनिषद् । ३।६।२६

१२९ दृष्टान्दकोपनिषद् । ३।८।८

गायत्री का एक चरण मात्र कहे गये हैं और उसके तीन चरण अंतरिक्ष में अमृत कहे गए हैं^{१३} । परंतु ब्रह्मवाणी परिणाम को माया के अंतर्गत स्वीकार करता है। उस समय परिणाम विवृत में प्रतिफलित होता है। निगुण ब्रह्म निष्क्रियता आदि निषेधात्मक भावनिर्देहन से सद्भाव रूप में अंकित किया गया है। बटारण्यकोपनिषद् के अनुसार स्वप्न में रथ घोड़े मार्गाणि नहीं होते परंतु स्वप्न दृष्टा उनकी उपलब्धि करता है^{१३१} ।

प्रस्तुत प्रकरण में उपनिषदों में ब्रह्म के स्वरूप का आकलन करते हुए हमने देखा कि ब्रह्म के मूत और अमूत दो रूप स्वीकृत किए गए हैं। किंतु, ब्रह्म के मूत स्वरूप का निवचन मूत की अपेक्षा अधिक है। पुनश्च जहाँ भी मूतस्वप्नता प्रतिष्ठित की गई है उसका अंतर्भाव अमूत अथवा निगुण ब्रह्म के साथ कर लिया गया है। इससे प्रकट होता है कि उपनिषद् का प्रधान लक्ष्य अमूत ब्रह्म ही है। इस धारणा से इस बात का निष्कप निवृत्तता है कि ससार और अससार के अनेक नामरूपात्मक पण्य कारण ब्रह्म से समुद्भूत वाच्य हैं। इन वाच्यों की कारण से पृथक् स्थिति नहीं है। अतः सृष्टि के समस्त उपलब्ध और परिदृश्यमान पदार्थ कारण ब्रह्म के ही विभिन्न रूपांतर हैं। अतः सिद्धांत द्वारा प्रतिपादित ब्रह्म सत्य की अखण्ड स्थिति का अनुमान इस प्रकार के उपनिषद् वाक्यों से होता है। ऐसे उपनिषद् वाक्यों से ही अतः बाद के आचार्यों ने विवृत भावना की प्रेरणा प्राप्त की है।

विवृत प्रतिपादक उपनिषद् वाक्यों से यह व्यक्त होता है कि चाक्षुष दृश्या या पण्यों की स्थिति वास्तविक नहीं है। इसी हेतु स्वप्न दृष्टांत का आश्रय लेकर यह स्पष्ट कर लिया गया है एक जागरिक अनेकरूपता मूल में एक रूप है और प्रत्यक्ष उपलब्ध वविध्य की स्थिति स्वप्नवत् है।

यद्यपि उक्त सिद्धांत को एकनिष्ठा और दृढ़ता के साथ प्रकट करने वाले उपनिषद् वाक्य अधिक नहीं हैं किंतु ब्रह्म जीव और माया के बीच उपाधिगत भेद के प्रति सचेत करनेवाले वाक्य अनेक स्थान पर अवश्य मिलते हैं।

इस प्रकार यह निश्चय होता है कि उपनिषदों में विवृत भावना का मूल रूप बतमान है।

१३ अनात्म्यं महिमा त्वां यद्वारय पूर्य ।

वाणी अम्य विरता भूतानि त्रिधात्मनः त्विनि । द्वात्मनः त्विनि ३।१३।६

१३१ न त्वं रथा न रथेणा न पथाना भवत्य रथान

रथेणा न पथं सुजय । बटारण्यक उपनिषद् ६।१।१

गत विवेचन से यह स्पष्ट है कि उपनिषद् में सृष्टि संबंधी अनेक सिद्धांत वतमान हैं। इनमें सद्वाद असद्वाद, कारण काय सिद्धांत परिणाम सिद्धांत और विवक्षित सिद्धांत प्रधान है। इन सभी सिद्धांतों का उल्लेख उपनिषदों में हुआ है किंतु उनमें किसी सिद्धांत का अथवा सिद्धांत से विरोध होता नहीं दिखाई देता। उपनिषद् की विवेचन शली में सूत्ररूपता ही प्रधान है। किसी बात को कह देना ही उपनिषद का लक्ष्य है। किसी बात को लेकर अथवा सिद्धांतों से विरोध प्रदर्शन करना उपनिषदों का लक्ष्य नहीं है। सृष्टि वस्तुतः ज्ञान के क्षेत्र की प्रथम जिज्ञासा है और इस जिज्ञासा के फलस्वरूप ही अनेक स्थलों पर अनेक रूपों में सृष्टि विषय की प्रतिष्ठा प्रतिपादित हुई है। उपयुक्त सृष्टि विषयक वादा और सिद्धांतों के अतिरिक्त सृष्टि कारण रूपता में त्रिगुण्य सिद्धान्त और पंचभूत सिद्धांत भी उपनिषदों में आविर्भूत हुए हैं। इस दृष्टि से बृहदारण्यक, छांदोग्य आदि प्राचीन उपनिषदों में सद्वाद, असद्वाद और काय कारण सिद्धांतों का प्राधान्य है। मुण्डक, श्वेताश्वतर आदि उपनिषदों में त्रिगुण्य और विवक्षित भावनाएँ मुख्य हैं।

उपयुक्त प्रसंग के अनुसार यद्यपि सृष्टि सम्बंधी प्रत्येक सिद्धांत अपने क्षेत्र में व्यापक और पूर्ण है किंतु सिद्धांत अथवा विचार को अधिक सरल और बोधगम्य रूप में प्रस्तुत करने के लिए अनेक दृष्टान्तों उदाहरणों और विचारों एवं सिद्धांतों का आश्रय लेना पड़ता है। उपनिषदों में भी सृष्टि सिद्धांतों को सुबोध और सुग्राह्य बनाने के लिए अनेक सतुलनी या तुलनात्मक दृष्टियों की योजना की गई है। प्रस्तुत रूपरेखा द्वारा उपनिषद्-सम्मत सिद्धांतों को एकरूपता प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है। सृष्टि सम्बंधी सिद्धांतों का व्यावहारिक पक्ष सृष्टि तत्त्वों में उपलब्ध होता है। सृष्टि के अभिभावक या पूरक अनेक तत्त्वों का उल्लेख उपनिषदों में हुआ है। उन्हीं तत्त्वों की रूपरचना प्रस्तुत बोधचित्र में भगले पृष्ठ पर यत्न की गयी है।

इस बोधचित्र में अनेक उपनिषदों के सिद्धांतों का एक समन्वित रूप उपस्थित किया गया है। इस विचार से सृष्टि का सद्रूप ब्रह्म अथवा आत्म कारण रूप बृहदारण्यक, छांदोग्य वेद और ऐतरेय उपनिषदों में उपलब्ध होता है। महेश्वर की प्रधानकारणरूपता का उल्लेख श्वेताश्वतर उपनिषद् में हुआ है। अस्माकृत व्याकृत माया अविद्या प्रकृति और सत, रज, तम तत्त्वों का निवेदन भी श्वेताश्वतर और मुण्डक उपनिषदों में हुआ है। पंचतत्त्वों का उत्तम परिचिद् रूप में प्रायः सभी उपनिषदों में उपलब्ध होता है। ईशान,

गायत्री का एक चरण मात्र कहे गये हैं और उसके तीन चरण अतिरिक्त में अमृत कहे गए हैं^{११} । पर तु अज्ञानी परिणाम का माया के अतगत स्वीकार करता है। उस समय परिणाम विवर्त में प्रतिष्ठित होता है। निगुण ब्रह्म निष्प्रियता आदि निषकारमक भावनिर्गम से गन्भाव रूप में अस्तित्व दिया गया है। बह्मण्ययोगनिषद् के अनुसार स्वप्न में रथ छोड़े मार्गाणि नही होते पर तु स्वप्न दृष्टा उनकी उपनिष्य करता है^{१२} ।

प्रस्तुत प्रकरण में उपनिषत् में ब्रह्म के स्वरूप का भावजन करते हुए हमने देखा कि ब्रह्म के मूल और अमूल दो रूप स्वीकृत किए गए हैं। किंतु, ब्रह्म के मूल स्वरूप का निवचन मूल की भये ता अशक्य है। पुनश्च जहाँ भी मूलरूपता प्रतिष्ठित की गई है, उसका अतर्भाव अमूल अथवा निगुण ब्रह्म के साथ कर लिया गया है। इससे प्रकट होता है कि उपनिषद् का प्रमान सत्य अमूल ब्रह्म ही है। इस धारणा से इस बात का निष्कर्ष निकलता है कि ससार और अससार के अनेक नामरूपात्मक पदार्थ कारण ब्रह्म से समुद्भूत पाय है। इन कार्यों की कारण से पृथक् स्थिति नहीं है। अतः सृष्टि के समस्त उपलब्ध और परिदृश्यमान पदार्थ कारण ब्रह्म के ही विभिन्न रूपान्तर हैं। अद्वैत सिद्धांत द्वारा प्रतिपादित ब्रह्म सत्य की अखण्ड स्थिति का अनुमान इस प्रकार के उपनिषद वाक्यों से होता है। ऐसे उपनिषद वाक्यों से ही अद्वैतवाद के आचार्यों ने विवक्त भावना की प्रेरणा प्राप्त की है।

विवक्त प्रतिपादक उपनिषद वाक्यों से यह उक्त होता है कि चाक्षुष दृश्यो या पदार्थों की स्थिति वास्तविक नहीं है। इसी हेतु स्वप्न दृष्टांत का आश्रय लेकर यह स्पष्ट कर दिया गया है एक जागरिक अनेकरूपता मूल में एक रूप है और प्रत्यक्ष उपलब्ध वविष्य की स्थिति स्वप्नवत है।

यद्यपि उक्त सिद्धांत की एकनिष्ठा और दृढता के साथ प्रकट करने वाले उपनिषद वाक्य अधिक नहीं हैं किंतु ब्रह्म जीव और माया के बीच उपाधिगत भेदों के प्रति सकेन करनेवान वाक्य अनेक स्थलों पर अवश्य मिलते हैं।

इस प्रकार यह निश्चय होता है कि उपनिषदों में विवक्त भावना का मूल रूप वतमान है।

१२० तावानस्य महिमा ततो -यायांश्च पूरुष ।

पानैश्चरस्य विरथा भूयानि निषागस्यामत त्विदीनि । द्वाण्येग्योपनिषत् ३।१३।६

१२१ न तत्र रथा न रथवागा न पथानो भवाय रथान

रथयोगान पथ सजने । बह्मण्ययोग उपनिषत् ४।३।१

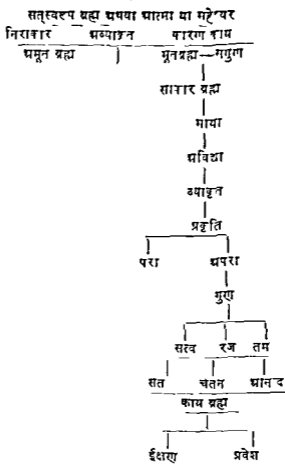
गन विवेचन से यह स्पष्ट है कि उपनिषदा में सृष्टि सम्बन्धी अनेक सिद्धांत वतमान हैं। इनमें सद्वाद, असद्वाद कारण-काय सिद्धांत परिणाम सिद्धांत और विवक्त सिद्धांत प्रधान है। इन सभी सिद्धांतों का उल्लेख उपनिषदों में हुआ है, किंतु उनमें किसी सिद्धांत का अथ सिद्धांत से विरोध होता नहीं पाया जाता। उपनिषदा की विवेचन शाली में सूनरूपता ही प्रधान है। किसी बात को कह देना ही उपनिषद का लक्ष्य है। किसी बात को लेकर अथ सिद्धांतों से विरोध प्रश्न करना उपनिषदों का लक्ष्य नहीं है। सृष्टि वस्तुतः ज्ञान के क्षेत्र की प्रथम जिज्ञासा है और इस जिज्ञासा के फलस्वरूप ही अनेक स्थलों पर अनेक रूपों में सृष्टि विषय की प्रतिष्ठा प्रतिपादित हुई है। उपयुक्त सृष्टि विषयक वादों और सिद्धांतों के अतिरिक्त सृष्टि कारणरूपता में अगुण्य सिद्धांत और पञ्चभूत सिद्धांत भी उपनिषदा में आविर्भूत हुए हैं। इस दृष्टि से बृहदारण्यक, छांदोग्य आदि प्राचीन उपनिषदों में सद्वाद, असद्वाद और काय कारण सिद्धांतों का प्राधान्य है। मुण्डक, श्वेताश्वतर आदि उपनिषदा में अगुण्य और विवक्त भावनाएं मुख्य हैं।

उपयुक्त प्रसंग के अनुसार यद्यपि सृष्टि सम्बन्धी प्रत्येक सिद्धांत अपने क्षेत्र में माययुक्त और पूरक है किन्तु सिद्धांत अथवा विचार को अधिक सरल और बोधगम्य रूप में प्रस्तुत करने के लिए अनेक दृष्टान्तों उदाहरणों और विचारों एवं सिद्धांतों का आश्रय लेना पड़ता है। उपनिषदा में भी सृष्टि सिद्धांतों को सुबोध और सुग्राह्य बनाने के लिए अनेक समतुलना या तुलनात्मक दृष्टियों की योजना की गई है। प्रस्तुत रूपरेखा द्वारा उपनिषद्-सम्मत सिद्धांतों को एकरूपता प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है। सृष्टि सम्बन्धी सिद्धांतों का व्यावहारिक पक्ष सृष्टि तत्त्वों में उपलब्ध होता है। सृष्टि के अभिभावक या पूरक अथवा तत्त्वों का उल्लेख उपनिषदा में हुआ है। उन्हीं तत्त्वों की रूपरचना प्रस्तुत बोधचित्र में अगले पृष्ठ पर व्यक्त की गयी है।

इस बोधचित्र में अनेक उपनिषदों के सिद्धांतों का एक समन्वित रूप उपस्थित किया गया है। इस विचार से सृष्टि का सद्रूप ब्रह्म अथवा आत्म कारण रूप बृहदारण्यक छांदोग्य वेद और ऐतरेय उपनिषदों में उपलब्ध होता है। महेश्वर की प्रधानकारणरूपता का उल्लेख श्वेताश्वतर उपनिषद् में हुआ है। अष्ठाक्षर अष्टाक्षर माया भविष्य, प्रकृति और सत रज, तम तत्त्वों का निवचन भी श्वेताश्वतर और मुण्डक उपनिषदों में हुआ है। पञ्चतत्त्वों का उल्लेख परिशिष्ट रूप में प्रायः सभी उपनिषदों में उपलब्ध होता है। ईशाण,

प्रवेग और नामरूपों का कथा सांयोग्य और अकारण्य में दृष्टा है ।
अण्डा पिण्डज प्राणि योनियों का क्रम तेजस्य उत्पत्ति में वर्णित है ।

उपनिषदों के अनुसार सृष्टि क्रम



एक तत्त्व नाम रूप

आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी

योनियाँ

अण्डज पिण्डज स्वप्नज जरायुज

उपनिषदों में जीवात्म ब्रह्मव्य का स्वरूप

अब हम उपनिषदों के अनुसार जीव और ब्रह्म के अभेदात्मक स्वरूप का विचार करेंगे। प्रस्तुत प्रकरण में जहाँ हमने उपनिषदों के अनुसार ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन किया है वहाँ हमने यह निश्चय किया है कि वस्तुतः ब्रह्मसूत्रों में लक्षित ब्रह्मजिज्ञासा और ब्रह्मसत्ता की अद्वैतसिद्धि का लक्ष्य विषय से सम अनेक स एक और अविद्या से विद्या की ओर है। सृष्टि-प्रकरण में कथित परिणाम व विवक्त आदि भावनाएँ इसी अभिमतों को प्रकट करती हैं। अद्वैत सिद्धांत की प्रतिमानुसार ब्रह्मसत्ता ही एक मात्र सत्य है। जगत और जीव की सत्ताएँ ब्रह्मसत्ता में ही अन्तर्भुक्त हैं इस प्रकार की विचार गता उपनिषद् में यदा कदा उपलब्ध होती हैं। आचार्य गुरु और उनक मतानुयायी आचार्यों ने विशेषरूप से विवक्तभावना का विस्तारपूर्वक विवचन किया है। ब्रह्म की एक मात्र अद्वितीय सत्ता में अनेक रूपों और विषयताओं की स्वतंत्र उपलब्धि नहीं है। जिस प्रकार कोई मायावी इंद्रजाल की गल स अनुपलब्ध पदार्थों की उपलब्धि करा देता है अथवा जस स्वप्न में अस्त र्यामि की सत्ता उपलब्ध होती है उसी प्रकार अनेक जीवों और पशुओं की अनेकरूपता वास्तविक नहीं है। उत्तरकालीन वेदांत उपनिषदों में इस उपलब्धि का सम्बन्ध माया मिथ्यात्व व्यावहारिक या प्रातिभासिक सत्ताओं के साथ जोड़ा गया है। किंतु इन उपनिषदों में विवक्त सिद्धांत का विस्तृत और विश्लेषणात्मक रूप नहीं मिलता है। ब्रह्म ही सृष्टि और जीव सत्ता में स्थित है। सृष्टि और ब्रह्म की एकरूपता हम इस प्रकरण के पिछले पन्नों पर बता चुके हैं। यहाँ हम जीव और ब्रह्म की एकरूपता का विचार करेंगे। इस सम्बन्ध में विचार करना इसलिये आवश्यक है कि हम इस प्रबंध में शास्त्र सिद्धांत में जीव और ब्रह्म की अनेकरूपता का उल्लेख करेंगे। अतः उपनिषदों में अद्वैत सिद्धांत की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए यह निश्चित करना पड़गा कि शास्त्र सिद्धांत का मूल रूप उपनिषदों में भी वर्तमान है। अस्तु यहाँ हम जीव और ब्रह्म के सम्बन्ध पर विचार करेंगे।

जीव अथवा आत्मा के स्वस्व ज्ञान को लक्ष्य करके तत्तिरीय उपनिषद् में पञ्चांगविवेक का सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया है। इनका प्रयोजन मन प्राण, मन विज्ञान और ध्यानयोगों के माध्यम से प्रकृत हानवाली आत्मा का निवचन है। इनके उपन्यास से यह यत्न किया गया है कि आत्मा पञ्चगोतीत विगुण ब्रह्मस्वरूप ही है। योग विचारजय है किंतु जीवात्मा

विचाररहित परमात्मा का ही स्वरूप है। इसी हेतु भद्रैतया ती भाषायों ने आत्मा को पचकोगीत माना है। ये कोण स्थान से उत्तरोत्तर सूक्ष्म हो जाते हैं। इससे प्रकृत है कि शरीर के अधिष्ठीन प्राण, मा विज्ञान और मान मय आत्मा भववा मान से भी भनीत आत्मा विगुद्ध ब्रह्म का स्वरूप है। जिस प्रकार परब्रह्म अधिष्ठात्र य विचारों से मुक्त नित्य गुद्ध मय स्वरूप है वैसे ही जीवात्मा भी पचकोगीतीत प्रपञ्चरहित परमात्मा का स्वरूप है। उत्तरकालीन वेग त उपनिषद् में इस प्रकार की भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। तत्तिरीय उपनिषद् म पचकोपा का वणन हुआ है। य पचकोग य हैं -

- (१) मनमय कोण ।
- (२) प्राणमय कोण ।
- (३) मनोमय कोण ।
- (४) विज्ञानमय कोण ।
- (५) मानमय कोण^{१३१} ।

इन कोणों से आत्मा भाष्यादित है। इस प्रकरण म ब्रह्म के स्वरूप का वणन करते हुए हम कह चुके हैं कि भाषाय गकर ने ब्रह्म भववा आत्मा को इन पचकोगी से भतीत माना है। इस सम्प्र थ म हम प्रस्तुत प्रव थ के भाषाय गकर के अनुसार आत्मा भववा जीव का स्वरूप प्रकरण मे पुन विचार करेंगे^{१३२} ।

जिस प्रकार तत्तिरीय उपनिषद् म आत्मा को प्रपञ्चत्र य पचकोगी से भतीत कहा गया है और आत्मा की नित्य गुद्ध ब्रह्मरता का प्रतिपादन किया गया है उसी प्रकार आत्मा की यावहारिक दशाधो के मूल मे एक रस भद्रैत सत्य का दशन माण्डूक्य उपनिषद् मे किया गया है। प्रणव को आत्मा का वाचक मान कर और उसकी तीन मात्राधो का आधार लेकर आत्मा की व्यावहारिक और पारमार्थिक दशाधो का वणन उक्त उपनिषद् किया गया है।

माण्डूक्योपनिषद् मे जीव और ब्रह्म की एकता का कथन करते हुए भ्रौंकार की तीन मात्राधो द्वारा आत्मा की तीन अवस्थाधो का वणन हुआ

वेद घोर उपनिषद् में अद्वैत भावना का स्वरूप

है १३४ । ये तीन अवस्थाएँ इस प्रकार हैं —

- (१) १ जागृत २ स्वप्न ३ सुषुप्ति ।
- (२) १ विश्व २ तेजस ३ प्राण ।
- (३) १ अकार २ उकार ३ मकार ।

माण्डूक्योपनिषद् में ओ३म शब्द की तीन मात्राओं के आधार पर एक आत्मा को तीन प्रकार से विभक्त किया गया है । आत्मा के चार पाद कहे गए हैं । ब्रह्म अथवा आत्मा का वाचक यह ओ३म ही कहा गया है । आत्मा का प्रथम पाद ब्रह्मानन्द है दूसरा तेजस और तीसरा प्राण है । इसे ही सबज्ञ सर्वेश्वर, अतर्क्यमी और जीवा की लय स्थिति और ज म का कारण कहा गया है (मा० उ० ६) । विश्व वहिष्प्रज्ञ तेजस अतर्क्य और प्राण अतर्क्य है । तुरीय न अतर्क्य है न वहिष्प्रज्ञ है (मा० उ० ७) । तात्त्विक सत्य की अनिवचनीय रूपाति की स्वीकृति यहाँ पर की गई है । ब्रह्मानन्द का स्थान जागतिज है (मा० उ० ९) । तेजस का स्थान स्वप्न है (मा० उ० १०) । प्राण का स्थान सुषुप्ति है (मा० उ० ११) । अ' ब्रह्मानन्द, उ तेजस, 'म प्राण की मात्राएँ हैं । तुरीय मात्रा रहित है और वही आत्मा है (मा० उ० १२) । यह आत्मा ही ब्रह्म है (मा० उ० २) । मात्रा और पादों में भेद है (मा० उ० ८) । इसी प्रकार सृष्टि जीव और ब्रह्म भी एक ही सत्य की मात्राएँ और पाद मात्र हैं । आत्मा का चौथा पाद तुरीय माना गया है (मा० उ० ७) ।

अब हम उपनिषदों के अनुसार जीव और माया के स्वरूपों का विवेचन करेंगे ।

गीता में जीव को क्षर कहा गया है १३५ । जागृत स्वप्न और सुषुप्ति व्यवहार इस जीव के निमित्त है । जीवात्मा ही स्वप्न में विषयो द्वारा पोषित होता है १३६ । सुषुप्ति अवस्था में यही जाग्रदावस्था के व्यवहारों से रहित होता है । सुषुप्ति भी एक पान्था है क्योंकि उसमें भी सुप्तानुभूति होती

१३४ माण्डूक्योपनिषद् ।

ब्रह्मयनात्मा । माण्डूक्योपनिषद् ३।०

एव सर्वेश्वर एव सब्रह्मण्योपनिषद् यानि सवस्य प्रभवान्यथाहि भूतानान् ।

१३५ एव सवाणि भूतानि । गीता १५।१६

माण्डूक्योपनिषद् ३।६

य एव स्वप्ने मर्दियाननरचरत्यप आ मनि । छान्दोग्योपनिषद् ८।१०।१

१३६ सुप्त सम्यन् रम्यन् न स्वप्न न विज्ञाना दप आ मनि । छान्दोग्योपनिषद् ८।१०।१

है त्रिमया प्राणी जग जो पर भी हमरण रमता है^{१३०} । शरीर और धारमा के मयोग मे ओर मंगा हुओ है । शरीर प्रकृति है माया है और जीव है भगवत धारमा । कठोपनिषत् में शरीर को रम और धारमा को रथी कहा गया है । प्रकृति माया है और शुद्ध भगवत जीव प्रण है^{१३८} । गीता का कथन है कि समस्त जीव यन्मात्र ही कर माया द्वारा ज म मरण म पुमाय जा रहे है^{१३६} । इसी प्रकार माया मे भ्रमिता हो कर जीव घटना हो कर घटना द्वारा घरी धारमा म वृत्त त्व का धारण कर सते हैं^{१४} । मुण्डकोपनिषत् म शरीरमभ पुण्य की कथा भी प्रकृति और माया से सजड मारी गई है^{१४१} । इस माया का सामक समस्त प्राणियों के हृदय म निवास करता है ? अन हृदय स व्युत्पन्न विज्ञान प्रकृति और माया का ही भग है । हृदय म रहने क कारण ही ईश्वर कर्मों का साक्षी घष्यक्ष और जड शरीर मे चतय की प्रेरणा देनेवाला है^{१४२} । जीव का स्वभाव है कम करना, किंतु कम की समाप्ति क्रिया की समाप्ति के साथ नहीं हो जाती । कम का रूपांतर उसके फल मे होता है । उस पुमांभुम कम का फल निश्चिन है । फल से नूतन कर्मों की निष्पत्ति होती है । माया या प्रकृति द्वारा त्रिगुणात्मा चतय के अभिभूत होने से प्रावहारिक जीव अपने स्वस्व स च्युत हो कर दु खी हाता है । ईश्वर कम और उसके फल का साक्षी है^{१४३} । इस प्रकार ईश्वर प्राण जीव प्रकृति माया और जड चत य का अधिपति है^{१४४} । ईश्वर स्रष्टि प्रगान का निरीक्षक और नियामक है^{१४५} । सम्पूर्ण प्राकृतिक वपम्यो का ईश्वर ही अंतर्धामी है ।

१३७ आर्गन रथिन विद्धि शरार रथमव । कठोपनिषद् १।३।३

१३८ द्वायालपो ब्रह्मविन्दो वन्ति । कठोपनिषद् १।३।१

१३६ भ्रामयन् सब भूानि यन्मात्रानि मायया । गीता १८।६१

१४० अकार विमूढा मा क्ताऽहम इति मन्यन्ते । गीता ३।२७

१४१ समाने वधे पुरुषो निमग्नाऽनाराया शाचति मुद्धमान । मुण्डक उपनिषद् ३।१।२

१४२ ईश्वर सबभूताना ह्ये शाऽनु न निष्ठति । गीता १८।६१

१४४ कमाध्यक्ष सबभूतानाम साक्षी चतो क्वचनो निगु णरच । खंताखर ६।११
नपरन्थ विषय म्वाइश्वरनरनयो अभिवाकराणि । मुण्डक उपनिषद् ३।१।१

१४५ प्य लाशाधिपतरप लाशरा । कौशातकि उपनिषत् ३।८

१४४ एका देव सबभूतपु ग् । खंताखर उपनिषद् ३।१।१

उपनिषदों में माया ईश्वर की प्रकृत गति मानी गई है। ईश्वर को इसकी रचना करने के लिए किसी देश काल की अपेक्षा नहीं श्रित्तु देश-काल इस रचना के स्वतंत्र अंग है। एक ही सत् एक ही चैतन्य और एक ही ध्यान-द इस माया मयता में प्राप्त है। जड़ में भी माया है और विगुद्ध चतुष्टय भी माया से आच्छादित होकर व्यवहार करता है^{१४७}। सत्त्व-गुण-दोषों में जिस चतुष्टय का अनुप्राणन है उसे प्राण कहते हैं। प्राणन का अर्थ गतिमुक्त या सन्निय होना है। प्राणन प्रिया करने के कारण ब्रह्म चतुष्टय का नाम प्राण है^{१४८}। उसने प्राण की रचना की का अर्थ है ईक्षण और प्रवेश की सम्मिश्रित क्रिया का होना। चतुष्टय वस्तुतः दो विरोधी रूपों में नहीं हो सकता। प्राण चतुष्टय और ब्रह्म चतुष्टय दोनों ही जीव चतुष्टय के लिए समान हैं। जीवात्मा के रूप में एक ही चतुष्टय जीव के शरीरों और योनियों में प्रविष्ट हुआ^{१४९}। प्राण और प्राना में ऐक्य होने से चतुष्टय और प्राना एक ही तत्त्व सिद्ध होते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण जीवमात्र चतुष्टय होने के कारण ब्रह्मण्डल के अतःगत विभिन्न इन्द्रियाँ एक रूप की अनेकता कही जा सकती हैं^{१५०}। प्राण शब्द का प्रयोग प्राण वायु के अर्थ में भी होता है। परन्तु प्राण ब्रह्म और प्राण वायु पृथक् नहीं किये जा सकते। जीव और ब्रह्म इस प्रकार विषम तत्त्व नहीं हैं। यदि जीव ब्रह्मत्व में निरन्तर भिन्न होता तो मुक्त होकर ब्रह्म के साथ एक रूप में हो जाता। बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा है कि उस जीव रूप में अवस्थित ब्रह्म ने अपने को ही जाना^{१५१}। जीव में ना जन्म मरणान्ति व्यवहार होने के कारण जीव प्रकृति की दृष्टि है तथा मायामय है। जीव प्राण है और प्राण ही प्राण की अंतिम गति है^{१५२}। जीव की गति अल्प ज्ञान अल्प और क्रिया भी अल्प है। जीव में नानात्व पराधीनता और अयामध्य प्रत्यक्ष है।

१४६ देवी श्लोका युग्ममयी मम माया दुर्लभ्या । गीता ७।२४

१४७ प्राणो वाव सवग । छांोग्य उपनिषद् ४।३।१

स प्राणममचत प्र० ६।४ प्राणनेव प्राणानाम अन्विते । बृहदारण्यक उपनिषद् २।६।७

१४८ अनेन जीवना मनानुप्रविश्य । छांोग्य उपनिषद् ६।३।०

१४९ यो वै प्राणा सा प्रधा या वै प्रधा स प्राण । काथक उपनिषद् ३।३

१५० तदा मानमवावैत् । बृहदारण्यक उपनिषद् २।६।२०

१५१ प्राणान्वावैतान्मुवावैत् । छांोग्य उपनिषद् ४।३।३

प्रतिषेध वृत्ति का निश्चय स्थिर रहता है। वह द्वारव्यवस्थापनिषद् में नेति-नेति निषेध मुक्त से विषेय का परिहार तो नहीं होता अपितु निषेध के लिए सबका अवकाश बना ही रहता है। विषय मिटता नहीं यह विगणता है। इस प्रकार विगुणत्व में सगुणत्व अपक्षित है और सगुणत्व से विगणत्व बाधित नहीं होता।

वह द्वारव्यवस्थापनिषद् में कहा है कि जो यह समझता है कि मैं अथ हूँ और यह अथ है वह तत्त्व की वास्तविकता को नहीं जानता।^{१५२} यही भ्रमबुद्धि के प्रति अज्ञानता का आराध है। अद्वैत दर्शन का विषय ब्रह्म त्रिधासा है। ब्रह्मत्व वस्तुतः एक तत्त्व है जिसका स्वरूप का उद्घाटन सृष्टि और जीव के द्वारा होता है। उपनिषदों में जीव और ब्रह्मत्व का ऐस्य के सम्बन्ध में छायोग्य उपनिषद् में पिता और पुत्र अन्तरतु क सवात्स इम विषय पर प्रकाश पड़ता है^{१५३}। जिस प्रकार पूर्ववाहिनी नदियाँ और पश्चिम वाहिनी नदियाँ एक समुद्र में मिलकर एक रूप में हो जाती हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण जीव एक आत्मा में आत्मसात होकर अणु से रचित हो जाते हैं। अथवा जैसे वृक्ष के मूल मध्य और अग्रभाग में प्राघात होने पर वृक्ष जीवित रहता है परन्तु टहनियों का अलग अलग टूटने से वह निष्प्राण हो जाती है। उसी प्रकार जीव से रचित होने पर यह शरीर मर जाता है जीव नहीं मरता। अथवा जैसे एक छोटा सा बटरीज बटवृक्ष का ही स्थापित है उसी प्रकार यह लघु जीव वस्तुतः ब्रह्म का ही स्वरूप है। अथवा जैसे पानी में लवणम्ल अपन आकार को तुल्य कर लेता है उसी प्रकार जीव ब्रह्म में तद्रूप होकर नामरूपादि भेदा से रहित हो जाता है। तत्त्वमसि वह तू है वाक्य जीव और ब्रह्म में अभेद प्रतिपादक है^{१५४}। अतः अद्वैत दर्शन में यह प्रामाणिक महावाक्य माना जाता है। आत्मा अतः अदिक युग में जीव के लिए प्रयुक्त होता रहा। वह द्वारव्यवस्थापनिषद् में आत्मा को ही ब्रह्म कहा है^{१५५}। प्रज्ञान ब्रह्म है और मैं ब्रह्म हूँ अथवा सृष्टि और जीव का ब्रह्म

के साथ अभेद सम्बन्ध प्रकाशित करता है^{१५१ १५०}। जीव और ब्रह्म मूलतः एक ही सत्य है। उपनिषद् दर्शन की यह महत्त्वपूर्ण मायता है^{५८}।

उपनिषद् में आत्मा और ब्रह्म वय पर दिया गया दृष्टांता से जीव और ब्रह्म की एकता प्रकटित होती है। जन वं साथ जल का संयोग और सम वय जल की एकरूपता को बाधित नहीं कर सकता। सिद्धांततः सनातनीय सत्व ही समविन हो सकते हैं। ब्रह्म के साथ जीव का सायुज्य इसीलिए संभव है कि वे सजातीय हैं। माण्डूक्योपनिषद् के अनुसार नदिवाँ समुद्र के साथ मिलकर अपने नामरूप से मुक्त हो जाती है^{१५६}। उसी प्रकार मुक्त जीव ब्रह्म ही होता है। जिस प्रकार नमक का डेना पानी में घुल जाने पर पुनः देखा नहीं जा सकता उसी प्रकार चरम सत्य ब्रह्म में अनेक अविद्याजन भेद विलीन हो जाते हैं^{१५१}। उपनिषद् में आत्मसत्य का कोई आकार और रूप नहीं दिया गया। विषयता का प्रश्न साकारिता के साथ ही है किन्तु आकार में नहीं अतः आकार की स्थिति आत्मा का लक्षण नहीं है। जिस प्रकार मिट्टी से नाना प्रकार के आकार उत्पन्न किये जाते हैं और एक सुवर्ण खड्ग से अनेक आभूषण बनते हैं परन्तु वे आकार मिट्टी और सुवर्ण की परिणतियाँ मात्र हैं^{१५१}। आभूषणों के नामरूपों से सुवर्ण की सुवर्णमयता विकृत नहीं होती।

अतः हम विद्या वय और ज्ञान के स्वरूपों का गतिवन्त विवचन करेंगे।

विद्या का तन्मय सत्व का स्वरूप निरवयव करता है। विद्या ज्ञान का साधन है। विद्या का उद्देश्य है एकरूपता का प्रतिपादन। यह परा अपरा भेद सदा प्रकार का है। अद्वैतानि गिन्ना क्लर व्याकरण निरुक्त छन्द और

१५६ प्रबान मन्त्र । एतद्वय उपनिषद् ३।१।३

१५७ अह मदात्मिन । बह्मरस्यक उपनिषद् १।५।१०

१५८ अह मदात्मिन । बह्मरस्यक उपनिषद् १।५।१७

१५९ यथा नम सपत्न्याना समुद्रेऽरुत तादृशिन नानरूप विहाय ।

तथा विगन्तानरुतानिमुक्त परापर पुग्यसुनि लिप्या ॥ मुण्डक उपनिषद् ३।२।८

१६० द्वात्वाग्य उपनिषद् ६।१।१, १।२

१६१ यः । मौष्येयन मृषियजन सय मन्त्र विद्याय

स्यात्कारभान विद्याय नानथय मृषियत्यव सयन् । द्वात्वाग्य उपनिषद् ६।१।४

ज्यातिप भेत् बुद्धि सापक्ष्य यान्तरित ज्ञान प्रारा विद्या है । इसी प्रकार छादोग्य उपनिषत् म नारत् और सनत्तुमार गमात् म व्याप्यारित ज्ञान और परमाथ सत्य क विभाजन प्राप्त हान है । उपागना सम्प धी मधु त्हर गान्धित्य आत्ति अनर विद्याया का उत्तरग उपनिषत् म मितता है^{११२} । तत्व की उपना य का साधन विद्या है । अथवा माया क अतगन स्थित तत्व है । आत्म अनात्म वतय जत् आत्ति अनर भेत् बुद्धिया म आत्रान्त अविद्या का स्वरूप है । अविद्या वस्तुन तिधा भावा म एव अनेव नाम्पात्ति क सकला विरल्पो स गुम्फित अनान है । अस्तु अविद्या का एक ग्रथि कहा गया है^{११३} । उस ग्रथि का भञ्जन करन वाली ज्ञान स्वरूपा विद्या है । अविद्या और विद्या दाना ली बुद्धि क विषय ह । विद्या विषयन बुद्धि की उपनिषत् म गुहा गत् से अभिहित किया ह । अविद्या का हा हृदय ग्रथि कहा है । जा क्षत्र अविद्या का है वहा माया का आर प्रवृत्ति का है । अविद्या जीव क हृत्तय म भी है और ब्रह्माण्ड म भी । जीव सम्बन्ध स माया या प्रवृत्ति क आकार म अविद्या आप्नावित है । विद्या द्वारा सत्तेह नत्त हा कर एक मात्र आत्म मत्य का साभात्कार हाना है और विषयाभिमुषी वत्तिया क्षीण हा जाती है^{११४} ।

परा विद्या तिगु ल ब्रह्म का निवचन करती है । परा अवस्था म नानात्व का निषय द्विधात्मक भेत् भावना का निरस्कार और जीव ब्रह्म की एवता का ज्ञान प्रतिपादन हाना है । आत्मा ही ब्रह्म है और ब्रह्म हा आत्मा है । जीव और ब्रह्म वस्तुत एक ही तत्व है यह विद्या दष्टि है । कम और फल क द्रुत स भिन स्वयवय ज्ञान विद्या का प्रतिपात्क है । परा विद्या का क्षेत्र जक समाज एव धम नहीं है । उसना क्षेत्र अनुभव साध्य एकत्व दान है । कारण ब्रह्म की अनिवचनीयता म परा विद्या का निवचन है ।

अद्व त दान का उद्दय ह एक मूल सत्य का अवैपण करना । सत्य तिघात्मक नहीं हाने । उपनिषत् क अनुसार सत्य का एक या दा आत्ति सख्याया म मीमित भा नहीं किया जा सकता । जा भी ऐक्य प्रतिपादन

११२ तत्रापरा षण्मे यगुर्देना सामवेत्तध्ववेत् शिवा कपो याकरण निरुक्त छन्दो ज्यातिपमिति ।

अथ परादया न वरनयिग यो । सु क उरभिर १।१।५ छा नेग्य उपनिषत् ७।१।२ ३

११३ एतयो वेत् निश्चिन गुहायाम सो विद्याग्रन्थि विकिरतीह साम्य । मुण्डक उपनिषत् १।१।१

११४ निवचन ह्ययथथि सिद्धन्त सवगशया । मुण्डक उपनिषत् २।२।८

उपनिषदा म ह्रमा है वह व्यवहारबुद्धि क ग्रहण क उद्देश्य म लिया गया है । अनेकता अथवा वषम्य का विरोध इस अद्वैत मय का रणा म हुआ है १९५।

आत्मा ही वह नश्य है जिसे विद्या द्वारा प्राप्त किया जाना है १९६। प्रकृति की अनेकता और माया की नामरूपात्मकता आत्मा का आद्यादित किए रहता है । इसी हेतु नित्य आत्मा म अनिपना प्रतीत होती है । उसके अयय स्वरूप म अनेकात्मक दस्य दण्ड्याचर हात है । शराराणि आकारा की अगुदता मे अज्ञान अपना आवास बनाय हुए लक्षित हाता है । एक का निश्चय नहीं हो पाता । उसम अनकता का ग्रहण हाता है । अज आत्मा का प्रयत्न नहीं होता वरन स्थूल शराराणि अज ही दिताई दत ह । समस्त पण्यो म एकात्मकता का अनुभव नहीं हाता । अविद्या क कारण आत्मा का प्रत्यक्ष भा नहा ही पाता । सम्पूर्ण विषेपा म एक सामाय कारण का ग्रहण नहीं होना । अविद्या के कारण दहाम आणि भाव ही सत्य प्रतीत हाते है । अविद्या को इसी हेतु मत्यु का कारण और विद्या को अमन का माधन कहा गया है । अविद्या कम का रूप है । इसमे पितला म मिलना है और विद्या से देवलाक की प्राप्ति उपनिषदा म कही गई है १९७ । काय ब्रह्म का उपासना अविद्यात्मक है । अविद्या का दूसरा नाम विनाग भी है । कम अविद्या का अग है । सभूति और अयभूति दाना क पान म विद्या का पूर्ति हाता है । दोना की उपासना एक दूसरे के पूरक है । असभूति अन्यत्त ब्रह्म का प्रकाशक और सभूति काय ब्रह्म का है १९८। उपनिषदा म देहात्म भाव का भी अविद्या का रूप कहा गया है । विद्या का लस्य सूक्ष्म सत्य की अनुभूति है । शरीर नहा आत्मा कम नहा ज्ञान विद्या क उद्देश्य है १९९।

पान माधना थ्ये और नि थ्येयम क निकट है । उसकी वक्ति वराय्य परक है । लोकव्यवहार म विलग होकर भिभाचरणादि द्वारा कवन आत्म

१९५ किमिच्छ नकरय कामाय शरीरमनुम वरेन । बह्मणस्यक उपनिषद् ४।४।१०

१९६ अविषया मत्यु तीर्त्वा विषयाननमरनुवे । ईशाशयोपनिषद् ११

१९७ विषया देवनाको । बह्मणस्यक उपनिषद् १।५।१६
कमया भिन्लोको । बह्मणस्यक उपनिषद् १।५।१६

१९८ विंगरोन मत्यु । ईशावास्योपनिषद् १४

अर्धनम प्रविरानि । ईशावास्योपनिषद् १०

१९९ इममठ विरीउ विपूनी अविनाय च विसे नि । कटोपनिषद् १।१।४

सा तत्कार इतरा उह य है^{१०} । तत्र प्रवृत्ति म समाप्ता की प्रवृत्ता है । पुत्र दारु गृह्णाति का आर्गात् स वम और पत्र विगिता हा है । यद्यपि ताव परम्परात् का स्थिर रगत व निर प्रजाप्रा का उपात्ति और रणा का उपन्य उपनिषत् म है परन्तु वही उपागा का प्रधाना और ताव धम की अनुद्रेता का भी यमहार यपन्ति^{११} । इतर विद्म अनासक्त साधन एन प्रजाप्रा म आवपण नहा रगत^{१२} । एत अतिरिक्त वराग्य प्रधान उपनिषत् म वत्कि वम परम्परा व पावन और वगात्रम धम का उपन्य है^{१३} । वर्णाश्रम धम म भी सायास का स्थान मात्रपूण है । परन्तु जान मे इन सबकी सापे ता नहा । कम चाह गुभ हा या अनुभ उगव पाप पुण्य-वधन अनिवाय है । अत कम का म्यान जानोत्र म अति निम्न है गीता आत् वशात ग्रथा व अनुमार कम का जानमय वा कर हा उसका साथव किया जा सता है । गीता व अनामक्तिवाग और कमयोग वा यही रहस्य है^{१४} । छायोग्यापनिषत् म वत्ता है कि जानी को पाप स्पग नहा करत^{१५} । जिस प्रकार अग्नि म सात व अग्र भाग जव जात है उसी प्रकार जान व शरा पापकम भा नष्ट हा जाने है ।

कर्मों द्वारा प्राप्त सुग चिरस्थायी नहीं होता । फल का भाम ने व अततर पुन पुा आव यानिया म जम धारण करना पता है । इससे भाग और कम की शृद्धना समाप्त नहीं हानी है और गोव का शश्वत शाति नहा मितता । अनासक्ति द्वारा प्रादुभू त जान स शाति प्राप्त हाता है^{१६} । कम आर फल के अयोयात्रय भाव व वारण श्रुत्य और तम का त्रम अशुण्य रहता है । जान स श्रुत्य वधता स मुक्ति ताम हाने का सदेग स्वताश्वतर उपनिषत् देती है^{१७} ।

१० भैरव्यचया चरेन्ति । मुष्क उपनिषद् १।२।११

सन्वास यागात् । मुष्क उपनिषद् १।२।६

१०१ साय गनुष्यनोक पुत्रेणैव । बह्णारण्यक उपनिषद् १।१।१६

१०२ कि प्रत्या सद्य करि यानो । बह्णारण्यक उपनिषद् ४।४।२२

१०३ गृहोभू वावनी भवेद् वनी भू वा प्रवज्जयन्ति वेतरथा अद्यावयोत्र प्रवने गृह्णावनाका । जासोपनिषद् । १।४

१०४ कमन बुद्धियुता द्विषन् त्यक्त्वा मनीषिण्य ।

तन्मन्त्रविनिसु ता १७ गच्छन्सगमयन् ॥ गीता २।४।१

१०५ एव विन्ति पात्र कमनश्चित्तये । छान्दोग्य उपनिषद् ४।१।४३

१०६ तेषा शान्ति शश्वतानेतरपात्र । कठोपनिषद् २।२।१३

१०७ तमव वा वा म युगाशातिद्वनन्ति । श्वेतास्वर उपनिषद् ४।१६

ज्ञान की प्रतिष्ठा ब्रह्म म है । व्यवहार कान म वह ज्ञान एकनिष्ठ एक परक है और अनुभव दगा म अनिवचनीय । ब्रह्मात्मव्यभूता और अय का ज्ञान अय है^{१७८}। मुण्डकोपनिषत् म ब्रह्म का तप ज्ञानमय कहा गया है^{१७९}। उपनिषदा का विश्वास आवागमन पर ह् ह । आवागमन की शृङ्खला का भग करन का ज्ञान ही एक उत्तम साधन माना गया है^{१८०} । देह धारण करना अज्ञान का क्षेत्र है । अनापनिषद कहता ह कि यदि यहाँ न जाना ता बड़ी हानि है^{१८१}। ज्ञान का फल अमृत है^{१८२}। दु ख गीकादि से मुक्ति पाने का साधन ज्ञान ही है^{१८३}। 'यावहारिक' ज्ञान की सीमाएँ सबुचित है । उम ज्ञान से प्राप्त होने वाला मुक्ति भाँ अल्पकालान हानी है । जन्म मृत्यु का दु ख उपनिषदा म दु सह माना गया है । म्सस मुक्त हाने के निरा ज्ञान साधना का विधान है^{१८४}। ज्ञान के सम्बन्ध मे कहा जा चुका है कि अनिवचनीयता का लक्ष्य तात्विक ऐक्य है । उम ऐक्य ज्ञान से गीक और माह नत् हो जाते ह^{१८५} ।

कम और ज्ञान दो भिन्न भिन्न सिद्धान्त है । ज्ञान साधना मे कम की अपेक्षा नहीं । कम भन् 'परहार और आसक्ति विरक्ति से सम्बन्धित सत्य है परन्तु ज्ञान का उद्देश्य है एकत्र और आसक्ति का वहाँ पूरत निरस्कार है । कम और ज्ञान की अयो-याथिना म एक परम्परा की परिपानना है जिसस कामना और वासना का प्रम न्ग दूटता । अस्तु वराम्य प्रदान उपनिषदा म वराम्य की ही महता स्वाहृत्न की गड ह । ज्ञान म समस्त कम भम्म हो जात है^{१८६}। ज्ञान की दृष्टि म कम अवेद्या का अग है^{१८७} । अज्ञान प्रकृति और माया द्वारा प्रसूत है । प्रकृति और कम का धनिष्ठ सम्बन्ध है^{१८८}।

१७८ यद नायदिमानाति स भूनाथ यदान्यदिवानानि तरल्पन । छान्दोग्य उपनिषद् ७।२।१

१७९ अय ज्ञानमय तप । मुण्डक उपनिषद् १।१।८

१८० समव विष्टितानिमासुमिति नान्य पथा विद्यतऽनाथ । श्वेताश्वतर उपनिषद् ३।३।२५

१८१ न चेन्निहोतीन्नाहती विनष्टि । बन उपनिषद् २।५

१८२ ये तद्विदुरमृताग्ने भवन्ति । बहदारण्यक उपनिषद् ४।४।२४

१८३ तस्मीं शोकमायवित् । छान्दोग्य उपनिषद् ७।१।३

१८४ त वेद्यं पुरुष वेत् यथा मा वा मासु परिव्यसा । प्ररन उपनिषद् ६।१

१८५ तद को माह को शाक पकत्वमनुपराय । ईशावास्योपनिषद् ७

१८६ अनादिन सत्रकमापि भग्मता कुर्वते तथा । गीता ४।३७

१८७ अज्ञानेनाने ज्ञानं तेन मुष्यन्ति जन्तव । गीता ५।१५

१८८ प्रष्टेऽपि समूना सज्जनने गुण्य कममु । गीता ३।२०

ज्ञान का व्यावहारिक स्वरूप मर्वात्म भाव भा है । उपनिषत् का सारतम्य भाव धस्तुत एवात्मभाव है^{१६६}। मर्वात्मभाव एव मानवमानी हा नही वरन सबजीववाणी सिद्धात है । गीता म कहा गया है त्रि गुण ताण्डान पणित्त सभो म समदृष्टि चानी स्थापित करने है^{१६७} । मय प्राणियो मं साम्य का दान करना गाता के समत्व याग वं निरन्त न जाता है^{१६८}। एमा प्रकार र्ग उपनिषत् म समस्त भूता म एव ही सत्य का उच्यत हाना कहा गया है^{१६९}। यह सबभूतात्मभाव अनेक म एव और विषम म समान दान का लक्ष्य रखता है । सवात्मभाव अतः तान क अतगत भाचार दान है^{१७०}।

वह्णारण्यकापनिषत् म साधना के अतगत श्रवण मनन निन्ध्यामन साधन कहे गये है । गान्त तान उपरनि त्रिनि ता और मुमुक्षुत साधना तत्वा का भी उपन्ग वह्णारण्यकापनिषत् म है । उपनिषत् की साधना अतमु खी अधिक है । उपासना का प्रयाग तान क पूरक रूप म हुआ है । चित्तन की उत्कृष्टता के समकथ वाह्य उपासनाया का नही रखा जा सकता क्पाकि उमम चित्त की गुद्धि मान हानी है सत्य का प्रत्यरीकरण नहा हाता । एसात्रिय माध्य साधनादि का वह्णारण्यउपनिषत् म एपणा मात्र कहा गया है^{१७१} । तत्तिरीयापनिषद म वय के द्वारा ब्रह्म का जानन का आग्रह है^{१७२}। श्रवणाणि साधनाए योग और चित्तन दा प्रकार की प्रणात्रिया की पापक ह । आत्मा की उपासना और अनुसंधान अतः साधना का उद्दश्य है^{१७३} वह्णारण्यकापनिषत् म आत्मा क दशन अथवा सा तात्कार का विधान भी है^{१७४}। एन उपनिषत् म आत्त्रित्यात्रि प्रतीका द्वारा भी आत्मा पासना का नियम कहा गया है । अतः दान क अनुसार उपासना का लक्ष्य

१६६ यन वा अग्यमवमात्मज्ञाभूत । वह्णारण्यक उपनिषद् २।४।१४

१६७ शुनि त्रैव श्रवणं च पणित्त ममत्शिम । गाता १५।१८

१६८ सम सर्वेषु भूतेषु । गीता १३।२७

१६९ यन्तु सवाणि भू णि । एशावास्यो उपनिषद् ६

१६९ सबभूतग्यना मान सबभूतानि चा मनि । गाता ६।२६

१६४ उमे ह्येते षष्ये एव । वह्णारण्यक उपनिषद् ४।४।२२

रान्ता तान् । वह्णारण्यक उपनिषद् ४।४।२३

१६५ तपमा ब्रह्म विजिज्ञामाव । त्तिरीय उपनिषद् ३।२।१

आ मा वा अर त्रोनव्या मनन्या निन्ध्यासितव्य । वह्णारण्यक उपनिषद् ४।५।६

१६६ आ म यतोपासीन । वह्णारण्यक उपनिषद् १।४।७

१६७ आना वा अर त्पुत्र । वह्णारण्यक उपनिषद् २।४।५

प्रधान नहीं है। चित्तन मनन और तत्त्वानुभूति से भी आत्म-भाषात्कार होता है। अस्तु उपासनाआ को एक साधनात्मक रूप ही देना चाहिए दार्शनिक नहीं।

प्रस्तुत प्रकरण मे हमने यह निश्चय किया है कि ब्रह्मिक कमवाण की प्रतिक्रिया स्वरूप उपनिषदा के ज्ञान की स्वीकृति भारतीय साधना और दशन मे हुई है। इस प्रकरण मे किय गये उपनिषदा के वर्गीकरण मे हमने विषय के विकास का ध्यान मे रख कर यह विभाजन प्रस्तुत किया है।

अद्वैत तत्वो का विवेचन करत हुए हमने ब्रह्म स्रष्टि ब्रह्म और माया, जीव और माया और तत्परात विद्या कम और ज्ञान क स्वरुपा का सश्रिप्त रूप प्रस्तुत किया है।

अपने विवेचन मे हमने यह ध्यान रखा है कि इस प्रकरण मे वर्णित तथ्य शाङ्कर अद्वैत सिद्धाता के अनुकूल रहे। इन तथ्या का वर्णन हम यथा स्थान सविस्तार षस निबन्ध के आगामी पष्ठा पर करगे।



म न्यूनता का आरोप स्पष्ट है। "गान्धिये न्यूनता" का समझ जाति भ्रष्टाचार का प्रश्न नहीं उठता^१। किन्तु डा० राधाकृष्णन् का मत है कि न्यून निदान अभाव का प्रतिपादक नहीं है। न्यून "यावत्कारिक" मता का निरूपण है^२।

न्यूनता के महत्व के सम्बन्ध में माध्यमिक सूत्रों में उक्त लौकिक व्यवस्था पर सत्भाव और धर्म अधर्म का प्रतिरोधक कहा गया है^३। डा० राधाकृष्णन् न्यूनता का स्थायी सिद्धांत और "यावत्कारिक" निष्पत्ति का हट्टु मानत है^४। प्रश्न यह होता है कि न्यूनता जड़ जमी तथ्य का निवचन ही नहीं करता तो उसकी अपनी क्या आस्था है? हम विषय में न्यूनता का इंगित ऐसा प्रतीत होता है कि वह वस्तुतः पदार्थों का अभाव नहीं मानता। प्रत्युत उमके मतानुसार उन पदार्थों की स्थिति और वास्तविकता का निरूपण बुद्धि और वाणी का विषय नहीं बन सकता^५। न्यून जिम तथ्य की सज्ञा है वह किसी पारमार्थिक सत्य का प्रकाशन नहीं करता। केवल व्यवहार बाध के लिए न्यूनता का प्रयोग होता है। न्यूनता प्रतीत्यममुत्पन्न जगत और जागतिक पदार्थों का व्यक्त करने का माध्यम कहा जा सकता है^६। विग्रह व्यावृत्तनी नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि जो प्रतीत्य भाव से ग्रहण होता है उस ही न्यूनता कहत है^७। न्यून भावना का सम्प्रति चार कोटियाँ के अनन्तत ग्रहण नहीं किया जा सकता। निष्प्रपञ्च निर्विकल्प अमग अनुत्पन्न अविच्छेद अनुच्छेद अनाश्रित आदि विशेषणा द्वारा न्यून का निवचन होता है। यह न्यून ही पारमार्थिक सत्य है^८। न्यूनता का धार्मिक साहित्य में यह परमात्म सत्य ही तयागत धर्म नाम से जाना जाता है। स्वर्ग और परहित में यह न्यून ही आधार है। तयागत धर्म का आश्रय नित्ये बिना

१ इवेमति हि तोष न्याय्य बुद्धैर्विशोधित।

गुण्यारश्च क्षणिक भाव निरवाभावा ह्यजातिका ॥ लकावतार सूत्रा समाधक ७०१ ।

११ By Suny thererore the Madhayamik does not mean absolute noth ngness b t only rel tive being
Indian Philosophy

१२ शून्यता फल सदावधम धर्म मव च ।

सर्वसंभवद्वाराश्च लौकिकान् प्रतिवापये ॥

माध्यमिक सूत्र २४।६

१३ Indian Philosophy page 60

१४ शून्यमिति न बतय अशून्यमिति वा भवेत् ।

उभय नोभय येति प्रष्टास्थनु कथ्यो ॥

१५ य प्रतीत्यममुत्पन्न शून्यता तप्रकारते ॥

माध्यमिक सूत्र

१६ यस्मिन् प्रतीत्य भवति साक्षो ननु शून्यता सैव ।

विग्रह व्यावृत्तनी ६७

१७ कविगत वेदनि गोपीनाथजी का वेदान्त अंक में लख ।

स्वहित और परहित म गति नहीं होती^{१८}। इस प्रकार 'सूयवाद' म सब 'सूयत्व' अनिवचनीयत्व प्रतीत्यसमुत्पत्ति और अनेक के अनन्तर ऐक्य की उपलब्धि होती है। इस प्रकार 'सूयवाद' भा बौद्ध ज्ञान की ज्ञान प्रतिपादक चिन्तन प्रणाली है।

जागतिक सत्ता प्रतीत्य समुत्पन्न है। 'सूयवाद' के अनुसार समुत्पत्ति शून्य धर्मा प्रतीत होती है। इस वाद म भी जगतोत्पत्ति के सम्बन्ध म विज्ञानवादी सिद्धांत का स्वीकृति हुई है। परंतु वसुबन्धु की विंगिका और त्रिंगिका के आधार पर अद्वैत चतय को 'सूय' नहीं माना जा सकता^{१९}। 'सूयवाद' के अन्तगत विज्ञानवादी चतय सिद्धान्त 'सूय' भावना म परिणत होता प्रतीत होता है। माता पिता पुत्रादि सभा प्रतीत्य समुत्पन्न है और विज्ञान द्वारा प्रतीत ज्ञान के कारण य सब चाक्षप आभास कहे जा सकते है^{२०}। प्रतीत्य समुत्पाद 'वा' के अनुसार हा धम अथवा पदाय की सत्ता 'सूयता' म परिणत होती है। 'सूयता' द्वारा उपनय सत्ता अजातिवाद का सूत्रपात करती है। कोई वस्तु न स्वत उत्पन्न होती है और न दूसरे के द्वारा। हेतु और प्रत्यय द्वारा उत्पन्न पदार्थ उपन ही नहा हा सकते क्योंकि हेतु और प्रत्यय स्वत उत्पत्ति 'सूय' है। हेतु प्रत्यय आलम्बन और अनन्तर इन चार सम्बन्धा से कित्ता भी पदार्थ की उत्पत्ति माना जाती है^{२१}। स्वभाव से प्रत्ययादि म भाव वतमान नहीं होते। प्रत्यय से प्रत्यय उत्पन्न नहा हात। मदमन्तर्गत धमयुक्त हेतुप्रत्ययादि की स्थिति भा त्वसगन प्रतीत नहा हाती। इसी प्रकार अनालम्बन धम म आलम्बन नहीं हा सकता। आनन्तय से युक्त प्रत्ययादि की भी निष्पत्ति नहा हा सकती। अस्तु उक्त चार सम्बन्धा से रहित न प्रत्यय ही हा सकते है और न उनका फल ही। इसी प्रकार फल से भी हेतु आदि की निष्पत्ति नहा हा सकती। माध्यमिक सूत्रा म इसी प्रकार की ताकिन मुक्तिया द्वारा अजाति का सिद्धान्त पुष्ट किया गया है। इस प्रकार अजातिवाद का सिद्धान्त 'सूयवाद' म अन्तमु क्त हा गया है^{२२}। विज्ञानवादी का बाह्याय की उत्पत्ति मानमिव धन से बाहर प्रतीत नहीं

१८ वहा।

१९ Vasubandhu in *Vimsika and Trimsika* (Lhalo ophical Essays)

२० प्रतीत्य माना पिनुर यथोक्त पुत्र समव।

चतुरूपे प्रतीत्यैव युक्तो विज्ञान समव।

मायमिक सूत्र ३।७

२१ चत्वार प्रत्यया हेतुरवावम्बनानन्तर।

मायमिक सूत्र १।७

२२ दृष्टव्यं प्रकरण। १।

कारिका मायमिक। २।३।७।८।९।१०।११।१३।

हाती । परन्तु 'नूयवात्' मं उग मात्ति सत्ता का भी श्याय रही रह गया है । 'नूयवात्' का अजाति गिद्धात् मात्र 'नूय' है । कारण म वाय की उत्पत्ति भा 'नूयवात्' नहा मानता । 'स्पात्' का उत्पत्ति भी तहा हागा । न वाय म कारण का सादृश्य हागा है अरु त कारण म वाय का हा । 'स्पा' वन्ता गता और सस्कार सभी भाय किमी कारण क वाय नहा है । इसी प्रकार निष्कारण हाकर भी किसी वाय की उत्पत्ति नहा हो सक्ता^{२३} । 'स्पा' नाना प्रकार क पन्थाय विकल्पमात्र है । तत्त्वत्वात् 'ह' ग्रहण नहा करता^{२४} । विग्रह और परिहार म एव व्याख्यान और उपात्तमभ म 'नूयता' का महत्व प्रतिपात्ति है^{२५} । समात्त म 'नूयता' का आराप किया गया है । काय और कारण क समान ही पूव और अपर दा काटिया ह । एमा भी दया जाना है कि पूव और अपर दाना अया 'याश्चिन् हा'र विकास म एव प्रम उपस्थित करनी है । 'नम' कारण पूव है और उमका वाय अपर । 'नूयवात्' क अनुसार पूव और अपर काटियां भा नहा है^{२६} । 'स्पा'त्त 'नूयता' का सब दृष्टिया का निराकरण करने वाता कहा गया ह^{२७} । 'नूयता' क सम्बन्ध म प्रतीत्य समुत्पात्त एक सत्य है । सम्पूर्ण व्यवहार प्रतीत्य समुत्पन्न है^{२८} । यदि कहा जाय कि ममस्त जागतिक सत्ता स्वभाव अथवा प्रकृति पर अधिष्ठित है ता यह भी उचित नहा कयाकि स्वभाव स वतमान सत्ता का निरोध नही हागा । दुख वन्तात् अथवा मुख आनन्दादि भाव स्वभाव स वतमान कह जाए ता या तो 'तु'त्वादि का कभी निरोध ही न होगा अथवा आनन्दादि का पयवसान 'तु'त्वात्ति म न हागा । एसा दया म वाय कारण स्वभाव-स्वभावो और पूव अपर आत्ति सम्बन्ध द्वारा सत्ति का निष्पण नही हा सक्ता^{२९} । अत 'नूयवात्' क अनुसार प्रतीत्य समुत्पाद सत्ति ही उपयुक्त है । स्वभाव परभाव भाव अथवा अभाव आदि के द्वारा 'नूय' सत्य व्यक्त नहा

२३ एक व परीवानाम चतुष प्रकरण ।

२४ रूप गतान कारिच न विकल्पान विकल्पयत् । ४।५

२५ विग्रह च पराहारकृते शून्यतया वत्ते । मा यमिक सूत्र ४।८ ।

'दात्ताने च उपात्तमे हुने शून्यतया वत्ते । मा यमिक सूत्र ४।

२६ पूवा न विद्यत कात्ति समासस्य न क्वच ।

सर्वेषामपि भा ताना पूवा कात्ति न विद्यते । मा यमिक कारिका प्रकरण ११।८

२७ शून्यता मुख शब्दानाम प्राप्ता नि सारण चिन् ।

यथा नु शून्यता शब्दानाम मा यान वभाषित । मा यमिक कारिका प्रकरण ११।८

८ य प्रतीत्य समुत्पात्त पर्ययीद स पर्ययति । मा यमिक कारिका प्रकरण २४।४

२८ मा यमिक कारिका प्रकरण । ४

विद्या जा सक्ता^३ । चात्प अथवा दश्य जगत् के पदार्थ अपनी यथाथ सत्ता नहीं रखते । रूप रसादि सभी गणव नगर माय मराचि' और स्वप्नादि से अधिक और कुछ नहीं है^{३१} ।

गूयवात् भी सवति सत्य को स्वीकार करता है । यह सवति सत्य दो प्रकार का है—तथ्यसवति और मिथ्यासवति । तथ्यसवति प्रतीत्य समुत्पन्न धर्म पदादि रूप में लौकिक सत्य रूप में उपन्यत होता है । मिथ्यासवति माया मरीचिका में प्रतिबिम्ब आदि के समान है । यह भी प्रतीत्य समुत्पन्न है और अतथ्य आदि से अनुभवगम्य हात हुआ भी लौकिक दृष्टि से मिथ्या है । सवति सत्य लौकिक दृष्टि से अवितथ है । यह अवितथ सत्य माय हारिक सत्य है । परन्तु परमाथ की दृष्टि से मिथ्या है^{३२} । भाव्यमिक कारिकाओं में इस प्रकार ताक सवति सत्य और परमाथ सत्य ये दो सत्य बड़े गये हैं^{३३} । यह मत कि गूयवात् व्यग्रहारपक्ष के विराधी है मुक्ति संगत प्रतीत नहीं होता । नागाजन का सिद्धान्त है कि व्यग्रहार के अनाश्रय से परमाथ प्राप्त नहीं है । सक्ता ठाक उसी प्रकार जिस प्रकार परमाथ के बिना निर्वाण लाभ नहीं किया जा सकता^{३४} । इस सवति सत्य का दूसरा नाम बुद्धि भा है । बुद्धि विकल्पात्मक है । विकल्प के द्वारा अस्तु अथवा अस्मित्वहीन पदार्थों का ग्रहण होता है इसलिए वह विकल्प रूप में अविद्यात्मक ही है । इस प्रकार अविद्या और सवति एक ही भ्रम के दो नाम हैं । इस अविद्या के दो काय बड़े जाते हैं— स्वभाव ज्ञान का आवरण और असत्पदार्थ स्वरूप का आरापण^{३५} । ये आवरण ज्ञान का चरम स्वरूप उन्मासित नहीं होता वत । वह चरम ज्ञान ही गूयता का ज्ञान है ।

अविद्या सवति, अथवा विपर्यय परमाथ विलक्षण तत्व है । यह अविद्या ही मायात्मक है विकल्पा के द्वारा इसका निभाण होता है । यह न

- ३० स्वभाव परमाथ के भाव का भावनेव च ।
य परवन्नि न परवन्ति तं त्वं बुद्धि साउने ॥ मायमिक कारिका प्रकरण १४।६ ।
मायमिक कारिका, प्रकरण १० ।
- ३१ रूपराशेरस रसगणना पदार्थ पक्ता ।
गुणव नगराशा मरिचित्कान सविद्या ॥ मायमिक कारिका, प्रकरण २३।८
- ३२ कविराज १० गीतीनामकी का 'वैशान्त अत्र' में लग ।
- ३३ द्वै सत्य समुपाश्रित्य बुद्धाना धर्म दत्ता ।
साक सक्त् सत्य च सत्य च परमाथेन ॥ मायमिक कारिका, प्रकरण २४।८
- ३४ व्यवहारमनाश्रित परमाथ १ दर्शन ।
परमाथमनागम्य निवण नाश्रिते ॥ मायमिक कारिका प्रकरण २४।१०
- ३५ अभूत् स्यापदायथ भूत्तान्य चान ।
अविद्या आवरणेवकाणानासवतिव ॥ चरम क पृष्ठ ५६६ ।

प्राह्य और अप्राह्य ही है^{३१}। जा कुछ भी नामघी सत्ति भयया वात्स्याय या भन्तराय नाम से उपनधि है यह सब भविद्या व कारण है। भविद्या का एक नशरण ता यह है कि जागतिक निष्पत्तिया व भून मंगक प्रकार का अप्रत्यक्ष स्वभाव लिखाई पडता है। यह कहना कि समस्त पत्थाय अपन स्वभान के अनुसार परिवर्तित विकसित और विनष्ट होने देवे जान है युक्त नहीं है। दूसरे यह कि पदार्थों की वास्तविक सत्ता नहीं हाता परन्तु व अपन अस्तित्व म वतमान दष्टिगाचर हात है। इस विषय म स्वाभाविकता का निमून आराप है और समस्त पत्थायों का हेतु प्रत्यय आत्ति स उत्पन समभना चान्ति। हेतु प्रत्यय आत्ति का स्वत सत्ता नहीं है अन इस विषय का नून म ही विकल्पित मानना उचित है। तब प्रन यह हाता है कि जा कुछ चाणप प्रत्यक्ष है उसकी निराकृति कम हा। जिस प्रकार स्वप्न व पत्थाय गंधक नगर आदि वस्तुत हात नहीं है परन्तु उनकी मायिक उपनधि हाती है वम ही इन जागतिक पत्थायों की उपनधि का समाधान है। अथवा जम आवाग की नीलिमा या गगामृ ग या बध्यापुत्र आत्ति केवन नाममात्र है। वस्तुत ये त्रिकान म भी नहीं हा सक्ते। इसी भांति सब दय्य भविद्या से उत्पन और स्थित समझे जाते है^{३२}। पत्थायों की उनस्थिति से देगकाल का प्रमाण प्राप्त हाता है। परन्तु पत्थाय और उनक अधिष्ठान दग काना की स्थिति भी नून है। इसी प्रकार चार आय सत्या^{३३} की स्थिति भी नहीं है। इनम से दु ख समुत्थ और माग ये तीन सास्तृत्तिक सत्य है और निरोध परमाथ सत्य है। माध्यमिक कारिकाआ म परिना प्रहाग्य भावना और साधि कम का उत्तरव है^{३४}। इनकी स्थिति भी नूनपरक है। यह भविद्या द्व त सम्पन है। यवहार अथवा सवतिद्व त सत्य है। भविद्याज य यावार भ्रामक है। लकावतार सूत्र म भविद्या और तथता दो सत्य पथक पथक निदिष्ट है। भविद्या द्व त और

३६ तथ्वपि कारकु नास्तिद्वकश्चिने अपि च स्थापित कप वरोन ।
कल्प वशन विकल्पित लोक सख गृहण विकल्पित वान ।
सोच गहो भगदो अस भूतो नाथ मरीचिन्ममा डि विकल्पा ॥
माध्यमिक कारिका टीका से उदधन ।

३७ यथा माया यथा स्वप्नी गन्धवनयस यथा ।
तथात्पान्मनथा स्थान यथा भग उदाहृत ॥
अकारा शरा इग च बध्याया पुत्र एव च ।
अमनश्चाभिन्ययत तथा भावेपु कपना ॥ लकाकार सन सगाववम पृ ४५३

३८ दु ख समुत्थ निरोध और माग ये चार आय सत्य है ॥

३९ माध्यमिक कारिका प्रकरण २४

४ यथा माया तथा भूत परिकल्पो निगन्धत ।

यथा मायाहृत तन्न त्वयान्निनिरेथये । महायान मुशानकार प ५६।१।१५

तथता अद्वैत सत्य है।^{४१} रूप कारण में भिन्न रूप की उपलब्धि नहीं होती। इसी प्रकार रूप से भिन्न उसके कारण की प्राप्ति नहीं है। 'गरार स पथक' आत्मा का अस्तित्व नहीं हो सकता और आत्मा के बिना 'गरार' का स्थिति नहीं है। 'स प्रकार 'नूयवा' आत्मा को अद्वैत चतुष्टय और अमृत तत्व नहीं मानता।^{४२} वेदना चित्त सज्ञा और मस्कारों का अभिव्यक्ति रूप के द्वारा होती है।^{४३} इस प्रकार 'नूयवा' में नरात्म्यवाद की प्रतिष्ठा है। रूप और कारण दाना की भिन्न भिन्न उपलब्धि न होने के कारण आत्मा जैसे 'शाश्वत तत्व' को भी स्थिति नहीं है। नरात्म्य में आत्म-दहन भी अविद्या का भ्रम है।

जागतिक सत्ता की उपलब्धि अविद्या के द्वारा ही होती है। इस उपलब्धि के विषय में 'नूय' और विज्ञान की समान अवस्था है। विज्ञानवाद और 'नूयवाद' की जागतिक मत्ता में अन्तर यह है कि विज्ञान के अतिरिक्त विज्ञानवादी वाह्य नहीं मानते और 'नूयवादी' उसको अन्तर वाह्य कुछ भी नहीं कहते। किन्तु चाक्षुष दृश्यात्मकता का निराकरण करने के लिये वे माया का आश्रय लेते हैं।^{४४} जागतिक धर्मों में निम्नसारता है। परन्तु अज्ञान के कारण उनमें आत्मिक अथवा विरक्त की ऊहापाह स्थापित हो जाती है। जिस प्रकार बार्त्त कुमार स्वप्न में अपने एक पुत्र का जन्म दल प्रसन्न होती है और उसके मृत होने पर वरुणित होती है उसी प्रकार इस अनेक धर्मों और स्वभाव में युक्त जगत में जो तथ्य और आवरण ग्राह्य होते हैं वे स्वप्नादि के समान हैं। 'नूयवा' में जिस प्रकार स्वप्न मृत्यु का ग्रहण है उमा प्रकार जागरित-मय में स्वप्न दृष्टि है।^{४५} जिस प्रकार कोई बाला द्रवण अथवा

४१ अ-यथा अन्वयोपना अविद्या तथान्य ।

अमदयेन वदन्ते अविना तथता भवत् ॥ नकारात् सत्र । पृष्ठ ३४८ ।

४२ रूपकारणं निरुक्तं न रूपमुपलभ्यते ।

रूपेणापि न विद्युत दृश्यत् रूपकारणं ॥ माध्यमिक कारिका । प्रकरण ४।१ ।

४३ वेदना चित्तं सज्जानं सरकाराणां च सवरा ।

सर्वेषामव भावनां रूपणैव समं व्रतं । माध्यमिक कारिका । प्रकरण ४।७ ।

४४ शैलं शुद्धं गिरिं दुर्गं नदीषु,

मत्पतिश्रुत् क जायि प्रतीत्य ।

एभिर्मु संसृज्य सर्वविज्ञानं,

मादानरीचिमात्स्यं सत्र ॥ माध्यमिक कारिका, वृत्ति टोका से उद्धृत ।

४५ यथातुमारी मुपिना नरगिनः, सा पुत्रं जान च मन च परदति ।

जाते मति तुप्य मृत्पिनीभनन्विता, तथोपमानं जानथ सुभनान् ।

माध्यमिक कारिका, वृत्ति टोका से उद्धृत ।

तल पान म अपने मुख का सौन्दर्य अथवा शृंगार देगवर राग का हा जाती है उसी प्रकार समस्त जागतिन धम मिथ्या है । यद्यपि मुख की भाभा विम्बाङ्गि म नहीं होती परन्तु उसकी निष्पत्ति अकारण ही हाती है । ता भी रागादि का हा कर उसका प्रतिश्रिया ता हाता ही है । जागतिन व्यवहार आदि भी उसी भाँति हाते रहते है यद्यपि उनकी सत्ता नहा हाती ।^{४१} अविद्या के सम्बन्ध म यह प्रश्न हाता है कि इसका स्रोत क्या है ? माध्यमिक कारि काया म अविद्या को सस्कार मभन कहा गया है ।^{४२}

गूयान्त का सिद्धांत परमाथ म गूय पान की प्रतिष्ठा करता है । यह अक्षय्य सत्य है । माध्यमिक कारिकाया व प्रथम प्रकरण मे हंतु प्रत्यय आङ्गि का स्थिति का खण्ण किया गया है । दूसर प्रकरण म गतागतप री ता का विषय है । गूय सिद्धांत व अनुसार गतागत का निणय नहीं हा सकता । गति और चष्टा दाना म गूयता का आराप है । इसी गतागत विनिमय के द्वारा जम मरण की अथवा आवागमन का भी पारमार्थिक अवस्था मे निषेध कर लिया गया है । इम सम्बन्ध म जिस तक का आथय निया गया है उसक अनुसार गति व आरम्भ और अंत निधारित नहीं किये जा सकते है । प्रतीत होता है कि गतागत विवरण गौनिक व्यवहार तक ही सीमित है । अगति और गति की असिद्धि गूयता व पक्ष म जाती है । गूय ही वह स्थिति है जिसम गतागत भेद नहा आ सकता और जो चापय गति उपनय है यह मायन है । गूय की प्रतिष्ठा अद्वैत सिद्धांत की अनिवचनीय स्याति की स्वीकृति है ।^{४३} तीसर प्रकरण म चक्षु इत्याङ्गि इन्द्रिया की अतिद्धि प्रमाणित है । यदि चक्षु का क्रिया दगन करना है तो वह अपने का क्या नहीं देख पाती ? इसा प्रकार समस्त इन्द्रिया व व्यापार गूय द्वारा वञ्जित हा जान ह ।^{४४} जा अपने को नहा देख सकता वह दूसर का भी नहीं देख सकता । चौथ प्रकरण म स्यादि और उसक कारण मे गूयता की

४१ आन्श शृष्टे तथ तल पात्रे निरीक्षणनारि मुखमन्वकुन च ।

सोदन राग जन येव वाता प्रभावती काम गनेपमायो ।

मुख्य सजाङ्गि का न विद्यते विभ्र मुख चैव काङ्गि लभ्यत ।

मूले यथा सो ननयत राग तथाप्यन जानथ सवधमान ॥ माध्यमिक कारिका टीका चि।

४२ सरकाराणामभ । ग। वा० प्र २६।११।४ मायमिक कारिका प्रकरण २ ।

४३ मायमिक कारिका प्रकरण २ ।

४४ मायमिक कारिका तनय प्रकरण—न पश्यति यन्तमान कथ श्यन्तिपरात् । २ ।

प्रतिष्ठा का गढ़ है। कारण और रूप दोनों एक दूसरे में पृथक् नहीं रह सकते और न उनमें सादृश्य अथवा असदृश्य है। ऐसा अत्रत्या में स्वप्नादि का सिद्धि नहीं हो सकती।^{१२} पाचवें प्रकरण में लक्षणादि का असिद्धि करत हुए धात्वादि का अप्रमाणिकता का कथन हुआ है। 'गूय अस्तित्व और अनस्तित्व दोनों से विलक्षण है।'^{१३} रागरत्नादि परीक्षा में साथ सह असह और उभय भावा का खडन किया गया है। इस प्रकार एकत्व और पृथक्त्व दोनों ही असिद्ध है।^{१४} सप्तम प्रकरण में इसी भाँति सम्भृत अमस्कृत धर्मों का खडन किया गया है। दापक की स्वयंप्रकाशिता का असिद्धि है। ससृजानि धर्मों की उत्पत्ति नहीं होती। इसकी उत्पत्ति स्थिति और भग, माया स्वप्न और गणधवनगरानि में समान नहीं गई है।^{१५} बारहवें कर्म क्रिया और फल आदि का असिद्धि आठवें प्रकरण में है। बारहवें प्रकरण में दुःख खण्डन है। दुःख का स्थिति नहीं है। तेरहवें में संस्कार का गूय सत्ता का उल्लेख है। गूय ज्ञान में पक्ष में स्वभाव का असिद्धि है। क्योंकि हेतु प्रत्यय से मुक्त कृतक होगा और कृतक से स्वभाव नहीं हो सकता। स्वभावहीनता होने के कारण प्रकृति की सत्ता भी नहीं है।^{१६} संस्कारादि न होने से बाधन और मोक्ष का विधान नहीं हो सकता क्योंकि यदि पुद्गल बाधन में है तो वह कभी मुक्त नहीं हो सकता और यदि मुक्त है तो बाधन द्वारा बाधित नहीं हो सकता।^{१७} इसी हेतु 'गूमाद्वैत निर्वाण समारोप और ससारापकपण नहीं स्वीकार करता। जब गूय के अतगत ससार की स्थिति नहीं है तब निर्वाण का सम्भावना ही अप्रयुक्त है।^{१८} न कर्म हाता है और न उसका फल है। कर्म चेतन सत्ता द्वारा ही प्रतिपादित होते हैं। परंतु यह चेतन विनष्टि 'यापार' से संभव होता है और कायिक एव वाचिक है। बीजाकुर 'याप' से भी कर्म और उमके

५० चतुर्थ प्रकरण ।

५१ अस्तित्व हेतु पर्यन्ति नास्तित्व चात्प मुदय ,

मानाना त न पर्यन्ति दंष्ट्रयोपशान शिव ॥ साध्यमिक कारिका । प्रकरण ४।८ ।

५२ साध्यमिक कारिका । षष्ठ प्रकरण ।

५३ यथा माया यथा रवन्वी गणधवनार यथा ।

तथोपात्तमथा स्थान तथा मग उत्पत्त ॥ ७।३४ ।

५४ पंचम प्रकरण ।

५५ वदा च मुच्यते तावत्त्वदो न मुच्यते ।

स्यात्ता वदो मुच्यमाने युग वदधगोक्षये । साध्यमिक कारिका । प्रकरण । १६।८ ।

५६ न निर्वाण समारोपा न ससारापकपण ।

पाकस्तन समारो निर्वाण कि विकल्पते ॥ साध्यमिक कारिका । प्रकरण । १६।१०

पुनः की व्यवस्था नहीं हो सकती ।^{१०} कम की उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि यह निःस्वभाव है ।^{११} व्यवहार विनाश और कर्तव्यता भाव सभी अविद्यात्मक हैं ।^{१२} अविद्या का निवृत्ति में उदय का भेद और व्यवहार नहीं रहा । क्लेश कम देह और पुनः स्वप्न मरीचि और गन्धनगराणि क समान भ्रामक हैं ।^१

‘तूयवा’ का मत है कि अनात्मा अथवा आत्मा विद्या भा मिद्वान्त का प्रतिपादन करना बुद्ध का उद्देश्य नहीं है ।^{११} निगुण आत्मा का स्थिति नहीं हो सकती ।^{१२} कम कर्तव्यता और मोक्ष विफलता के कारण हात है । य प्रपञ्च द्वारा उत्पन्न हात है और इनका नाश तूय क द्वारा हाता है ।^{१३} ज्ञान की निष्पत्ति के सम्बन्ध में कहा गया है कि सम्बुद्ध की अनुत्पत्ति है और श्रावका का पुनः पुनः जन्म मरण हाता रहता है । बुद्ध का ज्ञान ममक क द्वारा सन्नमित हाता रहता है ।^{१४}

ज्ञान की स्थिति और उत्पत्ति नहीं है क्योंकि वह प्रताप्य प्रत्युत्पन्न है ।^{१५} भाव के अभाव के कारण ज्ञान की स्थिति भी सिद्ध नहीं होती ।^{१६} हेतु और प्रत्यय से सामग्री और फल की उत्पत्ति नहीं हो सकती । फल और सामग्री की प्राप्ति नहीं होती । इस प्रकार सामग्री या फल की प्राप्ति नहीं है ।^{१७} जन्म और मरण को ही मायमिक कारिकाओं में सभब विभव कहा गया है । सम्भव

५७ सात्त्विक प्रकरण । २।३।४ । १।११६ ।

५८ कर्मोपात्तये क्रमान् निरवभाव न यत्कृत ॥ मायमिक कारिका । प्रकरण १८।२१

५९ अविद्या निवृत्ता अनुत्पन्ना संयाजनरस स ।

स भोक्ता स च न कुतु यो न च स एव स ॥ मायमिक कारिका । प्रकरण १७।२८।

६० वनेशा कमाणि दहाश्च (कर्तव्य) फलाणि च ।

गन्धनगराणामरीचि खन सनिभा ॥ मायमिक कारिका । प्रकरण १७।३३ ।

६१ बुद्धेनामा न ज्ञाना मा करिचन्द्रियणि दर्शिन । मायमिक कारिका । प्रकरण १८।६।

६२ निमनो निरहकारा यश्च सोऽपि न विचने ।

निमन निहकार य परयति न परयति ॥ मायमिक कारिका । प्रकरण १८।११

६३ कम लरा क्षयामान कम वनेशा विकल्पन ।

ते प्रपञ्चा प्रपञ्चस्तु शूयाया निरचन ॥ मायमिक कारिका । प्रकरण १८।१।

६४ सङ्गनामनुषां श्रावकाणां पुन क्षय ।

ज्ञान प्रयत्न बुद्धानां ममलुगा प्रवृत्तौ ॥ मायमिक कारिका । प्रकरण १८।२।

६५ प्रत्युत्पन्नाऽनागतश्च तान् जानो न विवृत्त । मायमिक कारिका । प्रकरण १६।३।

६६ न च कश्चिन्न भावाग्नि

कुत काना भविष्यति । मायमिक कारिका । प्रकरण १६।६।

६७ मायमिक कारिका । विरान्तिन प्रकरण ।

श्रीर विभव दर्शाति श्रीर नाग वाचक भा हैं । स्वभावके प्रररण में कहा गया है कि सम्भव विभव जना अभावाधिक है ।^{१०} जम मरण एक साथ भी नहीं रह सकन । अन्तु सम्भव विभव की स्थिति अममूलक है । अभाव अथवा भाव क बिना भी सम्भव विभव का स्थिति नहा है । भाव स अभाव का उत्पत्ति नहीं हाता श्रीर न अभाव स भाव का ।^{११} समव श्रीर विभव मोहवग उपपन्न हात हैं ।^{१२} स्वत श्रीर परत जना प्रकार उत्पत्ति नहीं हा सकती । उदय-अध्य श्रीर सतान, पन श्रीर हनु स पुनन्त नहा हा सकत ।^{१३} यदि अनका स्वभाव माना जाय ता निमाण काव में भी इनका उच्छेद नहीं हागा ।^{१४} ताना काला में भा मसार सृष्टि नहीं है श्रीर जा त्रिकाल में भी नहीं है ता वह सृष्टि कमा^{१५} ।

तथागत परीक्षा म कहा गया है कि तथागत स्वयवान नहीं है । व न स्वभाव से असन हैं अथवा न प्रताय सधुनन्त हैं । वे अरत श्रीर अनामक स पर हैं । व न निष्पापान हैं श्रीर न सापापान । इसा प्रकार व न गुण हैं श्रीर न अगुण एव उभय श्रीर न नामय । उनक प्रति सम्पूर्ण कयन प्राप्तिमात्र हैं । बृद्ध प्रपचातान श्रीर अज्यय हैं । तथागत में जा स्वभाव है वही जगत का भी स्वभाव है, परन्तु तथागत निःस्वभाव हैं । अत यह जगत भी निःस्वभाव है ।^{१६} गुमागुम विचार का विषयास कहत हैं । गुमागुम भाव न प्रतीत्य-जात हैं श्रीर स्वभाव जात भी नहीं हैं । प्रतीत्य जात पण्यों का स्थिति नहीं होती अत विषयास भा नहीं हात^{१७} । एव रस गघाति एव वस्तु राग श्रीर द्वेष घाति विकल्पमात्र हैं । ग्राह्य श्रीर अग्राह्य पण्य या भाव नहा हैं । अनित्य निय अगुचि गुचि दुःख-सुख श्रीर अना अनात्मा घाति किसी की भी स्थिति नहा है । य विषयास अविद्या के कारण हात हैं । अविद्या क निराघ

६० नायनिक कारिका । एक विगल्पित प्रकृत ।

न जय मरण वैव तुल्यभाव हा विन्वे । नायनिक कारिका । प्रकरण २।५।

६१ नायनिक कारिका । प्रकरण । १।०।१० ।

७० अज्ञे सुमरवैव भागद्विभव एव च ॥ नायनिक कारिका । प्रकरण १०।११ ।

७१ नायनिक कारिका । प्रकरण २१।१।१६ ।

७२ निवाय काव चादत्त प्रगमादसम्पुनत्र । नायनिक कारिका । प्रकरण २१।१७ ।

७३ एव निष्काङ्क्षानु न पूजा मव सतति ।

दियु कान्तु या नाति स कथ मव सति । नायनिक कारिका । प्रकरण २१।२१ ।

७४ नायनिक कारिका अविवाहितम । प्रकरण २।३।७।११ ।

एगाने [निःस्वभावो] निःस्वभावनिःकार । नायनिक कारिका । प्रकरण २०।१६ ।

७५ नायनिक कारिका । अभावितन । प्रकरण ।

होने से इनका नाश हो जाता है ।^{१०१} दुःख समुत्पत्त्य निरोध और माग ये चारा प्रायः सत्य प्रतीत्य समुत्पन्न है ।^{१०२} शून्यता वृत्तस्य है । शून्यता वृत्तस्य हानि से ही जगत स्वभाव रहित कहा गया है । शून्य का उत्पत्ति और निरोध नहीं होते और अनेक अवस्थाओं द्वारा शून्य बाधित ही जाना है ।^{१०३}

निर्वाण की अवस्था का भी निवचन नहीं हो सकता । उत्पत्ति और व्यय आदि का उसमें अध्यारोप असंगत है । प्रहाण अथवा निराध की युक्ति भी उसके साथ उपयुक्त नहीं । जरा मरण आदि द्वारा निर्वाण का लक्षण नहीं हो सकता । असंस्कृत और संस्कृत धर्मों के द्वारा निर्वाण की सीमाएँ निर्धारित नहीं हो सकती उसे भाव अथवा अभाव की अवस्थाओं में विभक्त नहीं किया जा सकता । उसमें प्रतीत्य समुत्पत्ति का भी लक्षण नहीं है न समार का निर्वाण ही कोई विशेषण है और न निर्वाण की सत्ता ही कोई विशेषता है ।^{१०४} माध्यमिकों के अनुसार सत्ता और निर्वाण की कोटियाँ पक्क नहीं हैं । दोनों में कोई अंतर नहीं माना गया ।^{१०५} शून्य में सम्पूर्ण धर्मों का न अन्त है और न उनकी अन्तता ही है । शाश्वत अशाश्वत उभय पक्षा की स्थिति नहीं है । इस शून्य को ही सर्वोपलम्भोपगम प्रपञ्चगम और शिव कहा गया है ।^{१०६} पडापतन नामरूप उपादान और सत्कार सभी अविद्यामूलक हैं । अविद्या के निरोध से सत्कार आदि सभी असंभव होते हैं ।^{१०७}

शून्य सिद्धांत का उद्देश्य सभी दृष्टियों का प्रहारण करना है ।^{१०८} सत्ताइसके

- ७६ ध्व निरुपये विद्या विषयाय निरोधनात् ।
अविद्याया निरुद्धाया सरकारा निरुपये ॥ मायमिक कारिका । प्रकरण १०३।२३।
- ७७ य प्रतीत्य समुत्पत्त्य पर्यन्तं स पर्यति ।
दुःख समुत्पत्त्यैव निरोध मागमव च ॥ मायमिक कारिका । प्रकरण १२।४।
- ७८ अज्ञानमनिरुद्ध च वृत्तस्य न भविष्यति ।
विचित्राभिरवस्थाभि रवम वे रदिन [जगत्] । मायमिक कारिका । प्रकरण । ४।२८।
- ७९ मायमिक कारिका । पञ्चविंशतितम प्रकरण ।
न समारस्य निवाणकिञ्चित्लि विशरण्य ।
न निवाणस्य समारोविचिन्तित्ति विशेषण्य । मायमिक कारिका । प्रकरण । २५।१६।
- ८० निवाणस्य न सा कोटि समरणस्य च ।
न तदोरन्तर किञ्चिन्सूदमधि विद्यते ॥ मायमिक कारिका । प्रकरण । २५।२ ।
- ८१ सर्वोपलम्भोपगम प्रपञ्चोपगम शिव । मायमिक कारिका । प्रकरण । २५।२४।
द्रव्यपञ्चमर्वा प्रकरण ।
- ८२ मायमिक कारिका । पञ्चविंशतितम प्रकरण ।
अविद्याया निरुद्धाया सरकाराणामभव । ११।
- ८३ मायमिक कारिका । सप्तविंशतितम प्रकरण ।

प्रकरण म शाश्वतवात् अशाश्वतवात्, आत्मवात् और अनात्मवात् आदि सभी का खडन किया गया है । मनुष्य और देवता का व्यवधान पयवसित किया गया है । लोक और परलोक का मतान्तर गूय में पयवसित किया गया है । लोक के अन्त और आदि का समाधान गूय सिद्धान्त के अन्तगत हुआ है ।

आचार्य गकर ने गूयवात् का सब प्रमाण से विरुद्ध माना है ।^{८४} वे कहते है कि हम सब प्रमाण सिद्ध ताव-व्यवहार का अयतरव को मान बिना अयहव नहा किया जा सकता^{८५}। डा० राधाकृष्णन माध्यमिक सिद्धात का प्रभाव अद्व त वत्तात पर मानत है । वे कहत है कि अद्व तवात् का व्यवहार और परमाय माध्यमिका क सवति और परमाय के समान है । गकर के निगुण ब्रह्म और गूय में बहुत कुछ साम्य है । दोनो के द्वारा अविद्या गविन का व्यावहारिक सत्ता क रूप में मायता ली गई है ।^{८६}

विज्ञानाद्वतवाद

अद्व त दान का लक्ष्य अनक्त्व के विपरीत एक्त्व की प्रतिष्ठा है और यह बहिमुख न होकर पूणत अतमुखी है । बौद्ध दान में अद्व त सिद्धान्त के मूलभूत बीज विद्यमान है । ससार का नश्वरता प्राणा की अविद्या और उसका ज्ञान द्वारा निरोध आदि क सिद्धात शाकर दान क पूव उक्त दान में उपदिष्ट हो चुक थे । महायान गाला क अन्तगत यागाचार मन अद्व त के विकास त्रय का एक रूप मात्र प्रतीत होता है ।^{८७}

योग, योगाचारा की साधना का रूप है और विज्ञान उसके चित्तन पय का ।^{८८} सौतांत्रिक और वभाषिक मता क अन्तगत जागतिक सत्ता की स्वी कृति की गई थी । जागतिक सत्ता को ही वाह्याय सत्ता कहा जाता है । अद्व त दशन का सद्धातिक रूपरेखा पर ध्यान देने पर जात होता है कि

^{८४} सा प्रमाणविप्रतिषिद्ध । अद्वयन भाष्य २।२। १।

^{८५} नद्यव सब प्रमाणसिद्धा ताक दयद्वरोऽन्यत् स्त्वम् अनभिगम्य । अद्वयन भाष्य ।२।२।

^{८६} The Advaitic distinction of Vyavhara and experience and Parmartha or reality correspond to th Samvriti of Shankara and Nagarjun. Sunya have much in common. The force of Avidya introducing the phenomenal universe is admitted by both

Indian Philosophy, page 688

^{८७} Thus both the Vaibhasika and the early Buddhist School regard Samsara and Nirvana as real *Philosophical Essays* page 96

The Sautantrikas believed samsara as real and Nirvana as unreal *Philosophical Essays* page 96

वाह्यायवाद मे तत्सम्बन्धी साम्य का प्रभाव है। ये दोनों मत हीनयान के अतगत प्रहीत है। योगाचार मत के चिन्तन पक्ष का ही विज्ञानवादा कहते है।^{८६} वाह्यायवादीयो के अनुसार रूप, विज्ञान वत्ता सत्ता और सत्कार ये पाँच स्कन्ध सष्टि और जीवन के अतगती तत्व है।^{८७} इनके अतिरिक्त पथ्वी पवतादि पदाथ वाह्य समुदाय है। इन दोनों समुदाया के योग से सम्पूर्ण सष्टि क्रम और जीवन एव जागतिक तत्व उपलब्ध होते हैं। सत्कार पुनजम के हेतु है। जम जरा प्राधि मरणादि सही सत्कारा क कारण क्रमबद्ध रूप में प्रवर्तित होते है। वभाषिक ससार और निर्वाण दोनों का सत्य मानते है और सौतात्रिक केवल ससार की सत्ता को ही स्वीकार करते है। विज्ञानवाद वाह्याय का विरोधी है। विज्ञानवादा वाह्याय की सत्ता क्षणिक विज्ञान के अतगत स्वीकार करता है। सर्वास्तवादिया के मत के भी अनुकूल विज्ञानवाद नहीं है वरन उसकी प्रतिक्रिया मात्र प्रतीत होनी है। विज्ञानवाद ससार और निर्वाण मे भेद स्वीकार नहीं करता।

विकास क्रम की दृष्टि से नून्यवादियो का सिद्धान्त विज्ञानवाद के पूव से आता है। नून्य और विज्ञान के सिद्धात बीजो की उपलब्धि इनके दार्शनिक रूप मे पुष्ट होने के पूव भी उपलब्ध होती है।^{८८} नून्य सिद्धात के स्वरूप पर विचार करने से विदित होता है कि किसी सीमा तक विज्ञान की स्वीकृति उसमें कर ली गई है। सत्कार तत्व के अतगत और नाम रूपादि के साथ विज्ञान की स्वीकृति माध्यमिक कारिकाओ में की गई है।^{८९} नून्यवादा और विज्ञानवाद दोनों म किंचित अयो-यात्रिता प्रतीत होती है। कानक्रम को ध्यान में रखकर इनमें पूव और उत्तरकालीनता निर्धारित करना कठिन है। डा० राधाकृष्णन इनम समकालीनता की सम्भावना मानते है।^{९०} नून्यवाद

८६ The tul Yogachara brings out the practical side of the philosophy while Vijnanavada brings out its peculiar features
Indian Philosophy page 6

९० चित्त द्वारा प्रहीत रपराणि रूप उनही अभिव्यक्ति विज्ञान उनसे उत्पन्न वेदाना, देवताणि नाम सत्ता और इनकी वास्तना सरकार रक्षथ है।

ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य रनप्रभा टीका।

८९ *Indian Philosophy* page 643

९२ विज्ञाने सनिविशने सरकार प्रत्यय गतौ।

सनिविष्टेऽथ विज्ञाने नाम रूप निषिच्यते ॥ मायमिक कारिका ॥२६ ॥२॥

९३ It is perhaps better to point out that the general view places the Sunyavada earlier than the Vijnanavada though one can never be sure of it the two perhaps developed side by side

की शून्यता और विज्ञानवाद की क्षणिकता प्रायः एक ही कान्ति के तत्त्व हैं। शून्य में दृश्यात्मकता का तिरस्कार है और समस्त जागतिक सत्ता माया के स्वभाव में युक्त है। इसी प्रकार विज्ञानवादी जागतिक सत्ता का विकर मात्र मानते हैं।^{६४} फिर भी विज्ञानवाद में चतुर्थ युक्त विज्ञान की सत्ता मान ली गई है। यह स्थिति चाहे क्षणिक भक्त ही हो परन्तु शून्य नहीं है।^{६५} इसके प्रतिरिक्त विज्ञानवादी चिन्तन का व्यावहारिक रूप योगानुभूति के द्वारा प्रयत्न करता है। शून्यवाद तक पर आघातित सिद्धान्त है और विज्ञानवाद ब्रह्माय शून्यता का अनुभव चिन्तन की पराकाष्ठा में करता है। विज्ञान और विज्ञान में निर्धारित सिद्धान्तों में और अद्वैत दर्शन के तत्त्वों में एक साम्य प्रतीत होता है। डॉ० दास गुप्त भी इस मत से सहमत हैं। विज्ञानवादी भी प्रतीत्य समुत्पादवाद का स्वीकार करता है।^{६६} प्रतीत्य समुत्पादवाद का सिद्धान्त बौद्ध दर्शन का मृष्टि सम्बन्धी विवेचन है। लकावतार सूत्रों में उत्पत्तिपरक सिद्धांतों के साथ प्रतीत्य समुत्पादवाद स्वीकृत है —

प्रत्यया प्रत्ययात्पन्न अविद्या तयतात्प्य । सगायकम् । ६६६ ।

मृष्टि सिद्धान्त में प्रतीत्य समुत्पादवाद बौद्ध दर्शन का सर्वमाय मत है। शून्यवाद के अनुसार शून्यता प्रतीत्य समुत्पन्न है और विज्ञानवाद के अनुसार भी सम्पूर्ण जागतिक दृश्यात्मकता प्रतीत्य समुत्पन्न है —

गत गुहागिरि दुग् नोपे

यद्व पतिश्रुक जायि प्रतीत्य ।

एविमु ससृष्टत सर्वविज्ञान

माय भरोचि सम जग सत्र । माध्यमिक कारिका वत्ति ।

६४ लिट्यनसारक दास सभावा 'बुद्ध विबुद्ध नमोपन सर्षि ॥ माध्यमिककारिका वत्ति ॥

६५ रूप रूपनायनानामित तथा दृश्यात्प्य ।

अविद्याने तस्य तु विकल्पणेन जायते ॥ लकावतार सूत्र । सगायकम् ॥ ५०३ ॥

Philosophical Essays page 108

Both Vasubandhu and Sthirmati repudiate the suggestion of those extreme idealists who deny also the reality of pure intelligence on grounds of interdependence of relativity (Samvrtti)

Philosophical Essays page 01

६६ प्रतीत्य समुत्पादवाद — 'सर्व अनुसार निमी वस्तु का स्थिति निर्धारित नडा की जा सकती। कोई भी वस्तु चाहे चातुष्य प्रत्यक्ष हो अथवा सूत्र और बुद्धिगत हो, परिवर्तनगमन है। इस परिवर्तन का अर्थ ही नश्वरता है। जो बुद्धि भा उपनय जाना है, वह परिवर्तन के अन्तर्गत और परिवर्तन के माध्यम से ही जाना है। वस्तुतः परिवर्तन ही

हम देखने सुनने और अनुभव करते हैं। परतु परिवर्तन का स्वरूप और आकार प्रकार एकविध नहीं है, प्रत्युत बहुविध और अनेक मुग्री है। प्रत्येक घण्ट है प्रत्येक वस्तु में वैषम्य और अस्मत्तुलन सतिविट होता रहता है। अस्तु घण्टिकवा का प्रा.मंत्र भी प्रतीय समुत्पात्वा से ही होता है। आवाप गान्धर्व की शून्यता का यही रहस्य है —

य प्रतीत्यन्मुत्पात् पश्यतो स पश्यति । माध्यमिक कारिका । वृत्ति । २४।४०।

यह सिद्धान्त शून्यता और उत्पत्ति क साथ मिलकर त्रिगुणिक मत्ता का लोप रवीकार करता है —

य प्रत्ययजयिति स ह्यजातो

न तस्व उत्पाद स्वभावतोऽस्ति ।

य प्रत्ययानु स शून्य उक्ता य शून्यता जानति न अप्रमत्त ।।

माध्यमिक कारिका वृत्ति ।

बौद्ध दरान में पुनजन्म सिद्धान्त की प्रक्रिया भी शून्यी से सञ्चालित होती है। इससे अनुसार अविद्या और सरकार पूव जन्म क कारण है। विज्ञान, नाम, रूप पदायतन स्परा वेदान्त, तण्णा और उपात्तान वनमान जीवन की घटना है। भाव जाति और जरा, मरण पुनन म क कारण है।

दृष्टव्य *Indian Philosophy* page 410 411 41 413 414 415

भूत भविष्य और वनमान का काल विभाजन हम सिद्धान्त में स्वीकृत नहीं है, और न जीवन एवं मरण को संयुक्त करने वाला आत्मा नैसा तब ही स्वीकार किया गया है। इस सम्बन्ध में एक अदृश्य म वि की मायता बौद्ध दरान में है। बंधन और निर्माण एत अविद्या और ध्यान में फिर भी एकयुजता का ब्रम उपवन्ध है। इन एकयुजता का निदानक कोर् ईश्वर अथवा मन्त्र नैसी सत्ता नहीं है। शून्य सिद्धान्त के अनुसार आकाशरूप शून्य ही उमका काय या कारण है।

अकारो न शृणो म धिराशरानैव मौग्नि । माध्यमिक कारिका । पृष्ठ ५४ ।

सृष्टि अथवा पुनजन्म क साथ अविद्या का सम्पर्क है। यह अविद्या विज्ञानवाप्ति में तथा अन्य बौद्ध सिद्धान्तों के अनुसार अज्ञान है। तण्णा अविद्या रूप है। जीवन में तण्णा स्वभावतः है। अविद्या क कारण तण्णा का परिहार नहा हो पाता। अविद्या ही प्राणी को आवागमन क चक्र में भ्रमित करती है। अविद्या का तिरोभाव जाने से वास्तना छय स्वत हो जाता है। जीव का अह भाव ही जीवन है। अहकार से ही क्रम होने और उजने फल भोगे जाते हैं। यह अहकार भी अविद्या मान है। सरकारो का कारण भी यह अविद्या है।

दृष्टव्य *Indian Philosophy* page 410 411 41 413 414 415

विज्ञानवादी सिद्धान्त में वाह्य मणि का निषेध है। जिन समय प्राणा विज्ञान द्वारा प्रेरित होता है वह बाह्य का प्रत्यक्ष करता है। इस प्रत्यक्षानुभूति का विनष्टि कहते हैं। ये विनष्टिमा स्वभावतः बाह्य जगत् में नहीं हानी वरन् अन्तर्गत म ग्राहक व साथ होता है। सम्पूर्ण वस्तु जगत् विज्ञान मात्र है। ग्राहक व सम्बन्ध से ग्राह्य की उपलब्धि होती है। किन्तु वस्तुतः ग्राहक सत्य नहीं है। समस्त जागतिक वैषम्य और अन्तर्बिषय पन्थ विज्ञान के आभास मात्र हैं। प्रत्यक्ष पन्थ-जगत् वस्तुतः प्रपञ्च मघ गणधनार और अज्ञात चक्र के समान मिथ्या हैं। जो भा बाह्य प्रनाति होता है उस विषय विनष्टि कहते हैं। विषय विनष्टि द्वारा जा पान उपलब्ध होना है उसका क्षेत्र विज्ञान है। विज्ञान द्वारा ग्रहीत व्यवहार विज्ञान परिणाम कहना है। परिणाम गद्य इस तथ्य का सूचक है कि विज्ञान का सञ्चि का कारण ग्राह्य ग्राहक याचना नहीं है वरन् विज्ञान व द्वारा बाह्य परिणत होता है। ६०

अविज्ञान संस्कार का प्रारम्भ होता है। चैत्य व अक्षरान्तक जावच व जो संस्कारों का व्यक्त होता है। इस चैत्य में ही आनन्दानुभूति कात्रा है, किन्तु प्राणी आनन्द की प्राप्ति व निष्पन्न दुःखनय कर करण है। इस चैत्य में ही उपरि, वृद्धि और घट्य आरापित दाह ई। यह चैत्य आनन्द का विज्ञान स्वरूप है। विज्ञानवादी व अज्ञान विज्ञान का वना सं प्रेरणा मिलता है।

जन म वाचा और वाचना म वन होता है। अज्ञान में जावच का अकार होता है। इस प्रकार अज्ञान और जावच अन्वयित हैं। जो भा प्रत्यक्ष दर्शन उपनय्य दाह व वस्तुतः नराल व प्रणय सुसुख है। अभी अनिष्टता में ही निश्चय का आशा कर लिया जाता है। उनमें ही अज्ञान म आनन्दिता प्राप्ति होता है। अज्ञान म ही जगत् म अन्तः कर्ता प्रानत हानी है। जगत् का कोण स्वभाव नहीं है। वरि स्वभाव होता तो निश्चय में ही उसका अन्तर्गत उपनिष्ट हाण और जगत् स्वभाव व अज्ञान विज्ञान का सिद्धि न ही सुकनी। अविज्ञान का भा अपना कोण स्वभाव नही है और न वाचना अथवा लुणा का दा, क्योंकि उनका भा विनाश हो जाण है। प्रतीक स्वरूपवादी में परिवर्तन वा निश्चय का अज्ञान प्राप्ति प्राण अनेक आशा में निर्दिष्ट है। परन्तु वाचना और अविज्ञान प्राप्ति का अज्ञान परम्परा व अज्ञान में निष्ठा गारवत तब व अज्ञान का कोण उद्यम नहीं है।

यह परिणाम प्रतीत्य समुत्पन्न है। यह विद्या परिणाम त्रिविध है—
 १ विपाक २ मनन ३ विषय विवृति।^{६८} विद्या और मनन त्रितय कहलाते हैं। इनसे ही परिवर्तित दृश्य जगत का स्वाभाव होता है। ये विज्ञान परिणाम विगुण ज्ञान के रूपांतर हैं। मनन और विपाक एक ही धानुभूमि में रहते हैं। विपाक को ही आनय विज्ञान भी कहते हैं। मन और आनय विज्ञान के संयोग से मन मरी ऐसी बुद्धि होती है। मननास्य विद्या का नाम मन है। वस्तुतः विपाक मनन और विषय विवृति स्वतंत्र तत्त्व नहीं प्रतीत होते। उनमें एक प्रकार की श्रम वृद्धता है और विद्या की विकासगत अवस्थाएँ हैं। क्लिष्ट मन आलय में स्थित होकर कार्य करता है। आलय में चतुर्थ की स्वीकृति है। अस्तु विद्या एक चतुर्थयुक्त तत्त्व है। मन स्वतंत्र चेतना नहीं है वह विद्या चतुर्थ से अनुप्राणित होकर विकल्पादि क्रियाएँ करने में समर्थ होता है। चित्त मन के ऊपर की देता है। कुशल और अकुशल कमवासनाप्राप्त प्रसूत विषय विद्या का आलय विद्या सत्ता है।

उपयुक्त प्रक्रिया विद्यावाद के स्वरूप को उपस्थित करती है और अद्वैत सिद्धांत सुनिश्चित करती है। शाङ्कर अद्वैत वेदान्त के अनुसार आत्मा नित्य सत्य है। इस सम्बन्ध में हम अपने प्रबन्ध में अत्यन्त विस्तार विचार कर सकेंगे। विद्यावादात्मक विज्ञान अद्वैत वेदान्त के ब्रह्म के समान नित्य सत्य नहीं है।

आनय विद्या की द्विविध गति है—(१) आध्यात्मिक (२) बाह्य। आध्यात्मिक विद्या आध्यात्मिक भावनाप्राप्त प्रवृत्ति और बाह्य बाह्य जगत का आभास है। बाह्यमुख विद्या प्रवृत्ति विज्ञान है और आध्यात्मिक विद्या आनय विद्या का स्वरूप है। इसी आधार पर तत्त्वतः सूत्रों में सम्पूर्ण और निःस्वभाव विद्या के रूप निर्धारित किये गये हैं। संपूर्णभाव अनादि भ्राति जय और मनाविजम्भण मात्र हैं और निःस्वभाव भावों के प्रवचनमय अलातचन भावा मरीचि और स्वप्न आदि के समान हैं।

^{६८} कुशल और अकुशल कम वापना के परिपाक से अपेक्षानुरूप फलाभिनिवृत्ति विपाक ज्ञान का परिणाम है। स्वतंत्र मनन करना क्लिष्ट मन का रूपांतर है मन्त्रिण के मनन कहते हैं। विषयप्रत्यक्षावभास का ही नाम विषय विवृति है। अलोभ अद्वेष अमोह ये कुशल कम हैं और द्वेष मोह लोभ ये अकुशल कम हैं। कुशल अकुशल कमों में निःस्वभाव कम है।

महा-द्वेषादाय कविराज प० गोपीनाथजी, वेदान्त अर्थ में शून्यवादी और विद्यावादी लेखक।

वस्तुतः यह आलय विज्ञान चित्त परिणाम ही है। जागतिक सत्ता का अभाव है परन्तु आलय विज्ञान के सान्निध्य से उसके दृश्य और दृष्ट का भेद हा जाता है। ज्ञान दाना में दृष्ट और दृश्य ज्ञान का अभाव हा जाता है। जागतिक आभास से रहित निराभास अवस्था जाना है। यह निराभास अवस्था ही अद्वैत-तत्त्व है। अद्वैत विज्ञान सत्ता का स्फुरण नहा हाता। इस निराभास कोटि के उदय जान पर ही निर्वाण हा जाता है। अजातिवादी सिद्धान्त का सूत्रपात यहा से हाता है।

सृष्टि तत्र अनादि है। परन्तु उभय मदभाव स्थापित नहीं किया जा सकता क्योंकि ऐसा करने से उसमें एक प्रकार के स्वभाव का मायता दनी पड़ेगा। उसमें अम भी आरापित है क्योंकि अनस्तित्व ज्ञात हुए भा उसकी उपनिधि होता है। मनोविचारों द्वारा उसका ग्रहण हाता है। ऐसी दशा में असत्ता में भी एक मनादिजम्भणयुक्त एव आन्ति जय सत्ता का स्वीकृति विज्ञानवादी में की गई है। किन्तु य नि स्वभाव है क्योंकि स्वभावी जान से निर्वाण में इनका निरोध नहा हा सकता। अस्तु सृष्टि और सृष्ट पदार्थों का प्रपञ्च-मघ अलात चक्र गधवनगर मायामरीचि और स्वप्न में अधिक और कुछ नहीं कहा जा सकता है। विज्ञान परिणाम प्रतीत्य समुत्पन्न है अतः विज्ञान में धणिकता का भी आराप हाता है।

विज्ञानवाद के अतगत त्रिविध सत्यों का मायता ही गढ़ है—परि कल्पित परतत्र और परिनिष्पन्न। प्रथम का मिलकर सवति सत्य कहलाते है। समस्त जागतिक ग्राह्य ग्राहक स्वभावी पदार्थ परिवर्तित और परतत्र स्वभाववाला है। य दूषित स्वभाव का है और निमूल कल्पनामात्र है। परि कल्पित सत्य स्वय सम्भूत नहीं है वरन् हतु और प्रत्यय-जय है। इनकी उत्पत्ति वस्तुतः नहा हुई है, अतः य सम्भूत परिवर्तय भी कहलाते है। सम्भूत परिवर्तय सत्या का अतगत जगत में द्विविध पदाय उपलब्ध होत हैं—रूपयुक्त और अरूप। अरूप तत्त्व चित्त का है और सरूप चैत्य सासारिक। ततीय सत्य परिनिष्पन्न है। परिनिष्पन्न सत्य ही परमाथ सत्य है। इस प्रकार विज्ञान वादी के अन्तगत ग्राह्यारिक और पारमार्थिक इन दो प्रकार का सत्ताया की मान्यताये स्पष्ट है। परिनिष्पन्न सत्य को भूत कोटि भी कहत हैं। इस परमाथ स्वरूप परिनिष्पन्न सत्य का प्रतिबिम्ब सवति सत्य माना जाता है। परिवर्तित और परतत्र स्वभावा के उच्छेद होने पर परिनिष्पन्न सत्य का उदय हाता है।

ऊपर जिस प्रवृत्ति विज्ञान और आलय विज्ञान का उत्पन्न हो चुका है उनमें पूर्व ता परिच्छिन्न आकारवाला है और उत्तर अपरिच्छिन्न है। वस्तुतः प्रवृत्ति विज्ञान भी आनन्द विज्ञान के अंतर्भूत है। आलय विज्ञान मन का आश्रय और आलम्बन दोनों ही है। आनन्द विज्ञान स्वयं पञ्चाभिनिवृत्ति विषय नाम का परिणाम है। किञ्चित् मन में ही दहाध्यास विद्यमान है। इस दहाध्यास के सम्बन्ध में ही अहं मन आदि अभिप्रेक्षा उत्पन्न होते हैं। चित्त और मन विज्ञान का ही सनाए है। अन्तर केवल स्थितिभेद का नाम स्थापित का है। चित्त ही आलय विज्ञान का प्राणभूत तत्व है। चित्त के धर्मों के सम्प्रयाग से ये चार काटि के बाह्यापेक्षक तत्व उत्पन्न होते हैं

- १—अविद्या आत्ममाह।
- २—आत्मच्छिन्ना सत्त्वाच्छिन्ना।
- ३—अस्मिन्मान आत्मभाव।
- ४—तद्ध्या आत्मस्नेह।

ये विज्ञान परिणाम के अंतर्गत ग्रहीत हैं। विज्ञान परिणाम के अन्तर्गत ही विज्ञान-आत्मक विवाद और मनन आते हैं। विषय विज्ञप्ति के छह प्रकार के विषय हैं। वस्तुतः इन विषयों की स्थिति न हाने के कारण इन्हें विषय प्रत्यवभास कहते हैं। रूप रस गन्ध स्पर्श शक्ति और धर्म विषयोपलब्धि के ही विषय प्रत्यवभास है। विषय विज्ञप्ति दो प्रकार के धर्मोपलब्धी है। सवप्रग और विनियत। सवप्रग धर्म सव्यापी कह जा सकते हैं। ये हैं स्पर्श मनस्कार वित्त सना और चेतना। ये आनन्द किञ्चित् मन और प्रवृत्ति विज्ञान में रहते हैं। विनियत धर्म केवल विषय में रहते हैं सवप्रग नहीं। ये हैं — छन्द अविमान स्मृति और धी अथवा प्रज्ञा। ये विषय विज्ञप्ति ही विज्ञान के परिणाम हैं। ये परिणाम निरूपण एक-दूसरे से पथक नहीं हैं। ये सागर के पन बुद्बुद् आदि के समान एक-दूसरे के अथायाश्रय और स्वगत भेद से रहित हैं। त्रिगुणा के अनुसार भी विज्ञान एक अन्तर्प्रतिपादक सिद्धान्त प्रमाणित होता है।^{६६}

विज्ञानवाचकान्तर्गत चित्तन घारा है। विज्ञानवाचक केवल विज्ञान सत्ता का मानन हुए भा माधनादि पञ्चा में पूर्य बुद्धि का तिरस्कार नहीं करता। बाह्यापेक्ष का अस्तित्व चाह क्षणिक ही अथवा पूर्य किन्तु व्यवहार में उसका नियंत्रण नहीं किया जा सकता। प्रविचय जान है और प्रतिष्ठापिका व्यवहार बुद्धि। प्रतिष्ठापिका बुद्धि साण्ड्य हनु और भावा का विषय करती है।

अतः इस हृद्य बुद्धि भी कहा जाता है। प्रविचय बुद्धि उपाय है। इससे ही तत्व ग्रहण होता है। यह सम्प्रदाय चार काठियों से युक्त बुद्धि है। इससे परमाय ज्ञान होता है। प्रतिष्ठापिका बुद्धि के विषयभूत हृत्वादि मिथ्या आरोप के कारण हैं। इस मिथ्या आरोप का समापन भी कहते हैं जिसका निरसन प्रविचय बुद्धि से होता है। इस ही ज्ञान का उपनिषद् होता है।

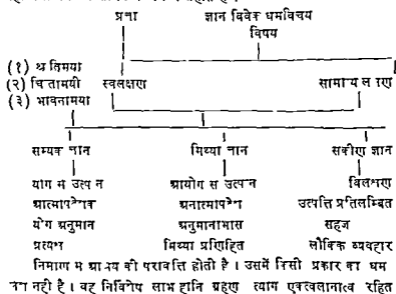
आलय विज्ञान अनादि वासनाभा का लक्षण है। इसमें अविद्या मिथ्या दृष्टि और अभिनिवृत्त सत्तम हैं। इनका समापन ज्ञान के द्वारा होता है। इनके अन्तर्गत अज्ञान की स्थिति है। अज्ञान से आत्मा जाव जन्तु मनुष्य आदि उपचार कर लिये जान है। ये आत्मापचार कहनाते हैं। स्वयं धानु, आयतन रूप वासना सत्ता संस्कार और विज्ञान ये धर्मोपचार हैं। उपचार विज्ञान के परिणाम हैं। इन सब धर्मों की सत्ता विज्ञान से बाहर नहीं कही जा सकता। इन धर्मों के द्वारा आत्मा या धम निर्मित नही हाते और न विज्ञान परिणाम के अतिरिक्त आत्मा या धम कहा जा सकता है। धम अथवा भाव का नाम ही परिणाम है। आत्मा या धम विज्ञानवर्ति नहीं है और न उसका स्वरूप मात्र है। इस प्रकार विज्ञान और विचय दोनों ही परमार्थिक सत्य नहीं हैं। ये धम परिकल्पित हैं अतः ये उपचार मात्र से अधिक कुछ नहीं कह जा सकते। इन उपचारों और अज्ञान की स्थिति आलय विज्ञान में है। इस अज्ञान के निवारण हेतु सम्यक ज्ञानरूप धम का प्राप्ति का प्रयत्न करना आवश्यक है। सम्यक ज्ञान की प्राप्ति के लिए आलय समापन विकल्प परिहार होता है। इसको ही आथय परावर्ति कहते हैं। विज्ञानवादात्मक प्रक्रिया में चार प्रकार की दृष्टियों का स्थान देना है —

- १ उच्छेद दृष्टि
- २ गान्धर्व दृष्टि
- ३ मय दृष्टि
- ४ अमय दृष्टि

उक्त दृष्टियों से अज्ञान के स्वरूप, स्थिति और अज्ञान के कारणों का ज्ञान होता है। सात्विक तन्त्र द्वारा आलय-अज्ञान अथवा विकल्प परिहार कर लता और तथता अथवा पारमार्थिक ज्ञान का अधिकारी हो जाता है।

पाँच ज्ञानद्वियों के विषय छद्म अन्तर्भावना सात्विक विज्ञान और आठवाँ आलय विज्ञान ये आठ मस्कृत धम हैं। मस्कृत धम गस्कारा द्वारा प्राप्त भूत हाते हैं और असकृत उनका निरोधक हाते हैं। असकृत धम के निरोध से

तथता की उपलब्धि होती है। ज्ञान नाम के लिए नयावरण और बनेगावरण दोनों की निवृत्ति आवश्यक है। इन आवरणों के निराकरण के हेतु नरात्म्य दृष्टि आवश्यक है। धम नरात्म्य से जयावरण निराकृत होता है और सवशत्व भाव अधिगत होता है। बुद्ध नरात्म्य से सत्यमाय दृष्टि का तिरोधान होकर देहात्मबाध की निवृत्ति होती है और उससे बनेगा से मुक्ति मिलती है। यही मुक्त्यावस्था है। विनायनवाणी बौद्ध इस नरात्म्य सिद्धांत को इसलिए मानते हैं कि आत्म भावना से ही राग और द्वेष की निवृत्ति होती है। इस ज्ञान के प्रजा विवेक ही आत्मा अनेक नाम है। इस ज्ञान के द्विविध विषय है — स्वलक्षण और सामान्य लक्षण। इसको ही धम प्रविचय कहते हैं। प्रजा के द्वारा धम प्रविचय करने से सगय निवृत्ति होती है। इसके तीन रूप हैं—सम्यक मिथ्या और सकीण। सम्यक ज्ञान आत्मापदेण अनुमान और प्रत्यक्ष से उत्पन्न होता है। यही योगाचारा का योग है। मिथ्या ज्ञान अयोग से उत्पन्न होता है। इसमें अनात्मोपदेण अनुभावाभास और मिथ्या प्रणिहित विषय आते हैं। सकीण ज्ञानविलक्षण ज्ञान कहनाता है। यह सकीण ज्ञान उत्पत्ति प्रतिलम्बिक ज्ञान सहज ज्ञान और लौकिक व्यवहार ज्ञान कोटिया में रखा गया है। प्रजा तीन प्रकार की है—श्रुति चिन्ता और भावनामयी। इसकी निवृत्ति प्रमाण प्राप्तवचन बोध युक्ति प्रयोग उत्पन्न बाध और समाधिजन्य बोध से होती है। यहां प्रजा परमाय साधन का रूप में प्रहीत है।



सत्त्व है। निवाण म सत्ता का ध्वंस नही होना, केवल मायम को परावृत्ति हानी है। निवाण की अवस्था म ससार का आत्यन्तिक क्षय नही होता। विज्ञानवादिना व अनुसार ससार और निवाण म भेद नहीं है। महा बाधिसत्त्व में दशर भावना का आरोप होता प्रतीत होता है। व महाकल्याण उपाय और अन्यायवचया द्वारा ससार का दम रह हैं और सूय का किरणा व समान पशपातरहित हाकर स्वप्न ह। व ससार प्रपच और मायामयता स विन हैं। चित्त स बाहर जागतिक परिणति नही है यह भा व जानत हैं। चित्त स निवृत्त हाकर जानान्य हा जाता है। सष्टि में अज्ञातत्व का अनुभव होता है। महा ज्ञान का पूणावस्था है। चित्त व निराकार हान पर बुद्धकाम की प्राप्ति हाती है। यहा निवाण और भूतनयता का अवस्थिति है^१।

गौड्कर अद्वैत दान व अनुरूप विज्ञानवादि व अन्तान अविद्या माया विज्ञान चलय निवाणत्या आदि अनक तत्व हैं। बाह्याथ निषध अन्तमु सा चरम सत्य का प्रतिपादक है। यद्यपि इसम गौड्कर अद्वैतवादि क अनक तत्वा का अभाव भा है। परन्तु विज्ञानवादि अपने में पूण स्वत अद्वैत दान है। साधना पश म भाग का प्रथम लिया गया है जिमकी अनुभूति समाधि व द्वारा हाती है। विज्ञानवाद का विचार आचार्य गौड्कर न अपन ब्रह्मभूत भाष्य और उपनिषद भाष्या म किया है।

आचार्य गौड्कर विज्ञानवादि का पूवपश प्रस्तुत करत हुए प्रधानत उसक बाह्याथ अभाव पर आपत्ति करत हैं। बाह्याथों के अभाव म प्रमाण प्रमय व्यवहार अनुपपन्न हागा। इस आका व उत्तर म पूवपशों का बयन है वि सब व्यवहार अन्तस्य है^२। यह अन्तस्य व्यवहार विज्ञान के अन्तस्य है और विज्ञान हा बुद्धि में आरूढ होता है^३। बाह्याथ के हान हुए भी यदि यह बुद्धि में आरूढ न माना जायगा तो भा व्यवहार निष्पन्न नही हा सकत^४। इस सम्बन्ध में विज्ञानवादा परमाणु मिद्वान्त का सङ्गन करके बाह्याथ निषेध करत हैं और अज्ञाति का सिद्धांत पुष्ट करत हैं। यदि यह कहा जाय कि अनुभव स सब विषया में साधारण ज्ञान हाता है तो घट-पटादि की सा

१ अनु प्रवृत्ति चाशये मानमयव्यवहार वधम् । अद्वैत भाष्य ।

सतप्रभा अधिकरण ५ सूत्र ८, अध्याय २, पाठ २ ।

२ रूपयान्तरम् । अद्वैत भाष्य । १।२।१० ।

३ विज्ञानवाद बुद्ध्यारूढन । अद्वैत भाष्य । १।१।१० ।

४ चाशेऽथे बुद्ध्यानेह न तस्य प्रमाणादि-प्रद्वारानवगारात् । अद्वैत भाष्य । १।१।८ ।

विषयता व्युत्पन्न होगी। ऐसी दशा में विषय का जानगत ही माना गया है और ज्ञान और विषय का सादृश्य कहा गया है^५। इस प्रकार विज्ञानवाद्या के अनुसार वाह्याय का सद्भाव यथैव है। विषय और विज्ञान की एक साथ उपलब्धि होने से उनका अभेद है। यदि ज्ञान और यथैव में एक का भी अभाव होगा तो किसी की भी उपलब्धि न हो सकेगी^६।

आचार्य गण्डक उत्तर पक्ष में उक्त विचारों का खंडन करते हैं। वाह्याय भाव की प्रतिष्ठा करते हुए वे कहते हैं कि वाह्याय जगत का प्रत्यक्ष अनुभव होते हुए भी उसका निषेध करना तो उसी प्रकार है जिस प्रकार भाजनो परान्त तपित् का अनुभव करता हुआ व्यक्ति कह कि वह भोजन नहीं करता और न तपित् का ही अनुभव करता है^७। उपलब्धमान पदार्थों का अस्वीकृत करना तो उसी प्रकार का कथन होगा जैसे कोई यह कहे कि विष्णुमित्र बर्ष्या पुत्र सा भासता है^८। पूर्वपक्षी विज्ञानवादी ने वाह्यायभाव के सम्बन्ध में प्रमाणादि की आवश्यकता नहीं समझी थी। आचार्य गण्डक कहते हैं कि प्रत्यक्षादि प्रमाणा में से एक प्रमाण हाने पर भी वाह्याय की प्रतीति सिद्ध होता है। उस प्रकार विज्ञानवाद का वाह्याय चाहे अभाव ही क्या न हो परंतु प्रत्यक्ष व्यवहार जगत ता ही हो^९। आचार्य गण्डक वाह्याय की उपलब्धि स्वाभाविक मानते हैं।^{१०} विज्ञानवाद के अनुसार ज्ञान और विषय में अभेद की स्थिति आचार्य गण्डक नहीं मानते। वे उसे उक्त भेद हेतुव मानते हैं^{११}। इसके अतिरिक्त अर्थ और ज्ञान में भेद की निष्पत्ति है। यह भेद विषयएवगत है विषयैव नहीं। एते कृष्ण गाय और श्वेत गऊ के गत्व में तो भेद नहीं है

१ चाऽनुभवमात्रेण ज्ञानगत विरापमन्तरेणापिचन—विषयसारूप्य ज्ञानस्यऽजगी क्तव्यम् । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।२।२८ ।

२ सत्तापलम्भनियमात्मना—नक्षनकारेकस्याऽनुपलम्भेऽवत्योपलम्भोऽस्ति ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।२।२८ ।

३ भुजाना भुजिन्नायामा त्पौ रस्यदनुभूयमानायामेव भूया नाऽह भुजं वा तथातीति तद्विन्द्रिय मन्त्रिरेण रस्यमुपलभमान एव वाक्ष्यमथ नाहमुपलभे न च माऽऽतीति ब्रुवन कथमुपायवचन म्यात् । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।२।२८ ।

८ नाह विष्णुमित्रा बर्ष्यापुत्रवत्त्वभासत इति कश्चिन्नाचक्षीत । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।२।२८ ।

९ यदि प्रत्यक्षानिना नामन्यतमेनाऽपि प्रमायेनोपलभ्यते ततः सभवति ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।२।२८ ।

१० इदं तु वगारभनेरेव प्रमाणं बहियः उपलब्धमान । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।२।२८ ।

११ प्रत्यक्षविषयोपलभ्यैवभावहेतुकं नाभेदेहेतुकं ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।२।२८ ।

तो वहा गङ्कर सम्मत सिद्धात की सिद्धि होगी^{१६} ।

आचार्य शङ्कर की अथ आपत्ति यह है कि विद्यावात् में स्वप्न और जाग्रतावि भेदा का निवचन युक्ति सगत नहीं है । स्वप्न और जाग्रत दाना भिन्न है क्योंकि दोनों के धर्मों में वधम्य है^{१७} । स्वप्न में उपनयन वस्तु बाधित और जाग्रत की अबाधित होती है^{१८} । स्वप्न और जाग्रत का भेद करते हुए आचार्य शङ्कर कहते हैं कि जा स्वप्न में दान है वह स्मृति है और जो जाग्रतवस्था में दान है वह उत्पत्ति है । प्रथम में अथ का विप्रयोग है और दूसरे में सप्रयोग है ।^{१९} पुनः का स्मरण करना पुनः का उपनयन नहीं है ।

वासना वचिन्म से विद्यावात् में ज्ञान वचिन्म की उपलब्धि पिछले प्रसंग में कही जा चुकी है । आचार्य शङ्कर के अनुसार अथ के बिना (वाह्याथ) वासना का उत्पत्ति नहा ही सजता है^{२०} । वाह्याथ की अस्वीकृति के साथ यदि अनादि वासना मानी जायेगा तो वह अथ परम्परा मान हागी और अनवस्था दोष आयेगा^{२१} । वासना को सस्कार विनाप कहा गया है । इस सम्बन्ध में आचार्य शङ्कर की युक्ति है कि सस्कारा का आश्रय होना अनिवाय है । परन्तु सस्कार के आश्रय का विद्यावाद् में क्या नहीं है । अतः वासना निराश्रय है क्योंकि प्रमाण से अनुपलब्ध है । इस प्रकार वासना सिद्धात युक्ति युक्त नहीं प्रतीत होता^{२२} । विद्यावादी अनाय विद्या का वासनाश्रय मानते हैं परन्तु आचार्य शङ्कर का मत है कि अनाय विद्या के अन्तगत क्षणिकत्व का स्वीकार करने से वस्तु का अस्थिर स्वरूप प्रतिष्ठित होगा । प्रवृत्ति

१६ साच्चि प्रत्यक्षारव बभाव वपम्यादुपनयन पत्रभावापत्ते ।

विद्यानमनवगन्तकृति युक्तस्यात् ।

अनुपलब्धत्वात् विद्यानरूपेण न

पद्य स्वबाहुनायत ति रत

मत्यवाङ्मयस्मिन्वगन्तरि प्रधान प्रतीप

वन्तित्वमन्यते । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।२।२८।

२ वैश्याच्च न स्वनाम्बिष । ब्रह्मसूत्र । २।२।२६।

२१ बाधावास्तविति । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २। २६।

२२ धर्मिरेया यत स्वनाम्बिषना उपनयिन्तु जगदित्तरानम् रमन्त्युपलब्धश्च प्रत्यक्ष ममत्त्वं स्वपुभूयैऽऽदिप्रयोगप्रयोगात्मकमित्ये पुन स्मरामि नोपलभे उपलब्धु निदानानि । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २। २६।

२३ स्वपुभूयैऽऽदिप्रयोगप्रयोगात्मकमित्ये पुन स्मरामि नोपलभे उपलब्धु निदानानि ।

विद्याधोपलब्धा वाग्नानुपपत्ते ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य २।२।३ ।

२४ अनायि रव्यप्रधरम्यरान्यापना प्रतिष्ठैवाऽनवस्था ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।२।३ ।

२५ वानता ना उर्याविशया मवारारत ताऽऽश्रयान्तरयाऽवरल्पन्ते

न च तत्र वानता य कश्चित्प्रि प्रमाण तोऽनुपपत्ते । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।२।३ ।

भाषितानां च समाना वाचनाया वा भाषाया नहा ॥ मन्त्रा ३६ ॥ ऐसा दर्शन में एक भाषणा और मवायत्ती कूटस्थ तद वा भाषावकता है क्योंकि एक बिना एक वाच निमित्त वा प्रपणा न वाचनाया वा भाषाया अमगत होगी । एक कूटस्थ और सवायत्ती तत् वा विना दण काल स्थिति अति मवान भाषि व्यवहारा का प्रवर्तन नदा कर सकता ३ । एक अनिश्चित आलय विधान का स्थिर स्वभाव मानन में विनात सिद्धान्त मन्त्रिन वा भाषा ३८ और गङ्गुर मन का सिद्धि हागा ।

रमा का पाठवा गतांगी में अलग और वमुवन्तु का प्रादुभाव माना जाता ३९ । महायान बौद्ध शाखा में अन्तगत इस विधाना तवा का विक्राम दुप्रा । इसमें एक अवाच्य चतु सता स्वागत वा ग मा ४० । त्रिका क अनुमार यह तत्र चिरम्याया है । यह मुगामन है और अवाच्य ४१ । यह चतुस्र मय अचिन्तय और अकमन्य है । यह अवाच्यद्वय और मवच है । यह सब आवाग्या में अन्त ४२ और अवन में अद्वित ४३ । प्रायद विधान क अन्तगत चित्त वा स्थिति ४४ अमान अथो वा नी ४५ । वाच्यो के द्वारा चित्त अथ अगत में परिणत होता ४६ । वाच्य रावाह्यमान का मन है कि आवा विधान में परम पूजाया गुहना और रचनामकता ४७ । यह चतुस्र अन्त कमा अ वाच म्युत गान्त और वाच्यवा में विभक्त नी होना । प्राजातक तत्र अन्त ४८ चतुस्र व प्रादुभव ४९ और अमा में पुन गान ही वाच है । यहा समस्त अचिन्तवा का अचिन्तन ५० । अ चरम और पूण गान है । जहा इस अवस्था में बुद्ध जाना नहीं जाता और कमा विपमता

३ छविवाच्युपादानात्तद्विदित्तस्य मनप्रतिष्ठापनस्य वचनानामधिकरणं भवितुं शक्यम् । अक्षयुक्त माध्य । । । १ ।

३ नन्दि कालप्रदानवधिदक्षिणमन्त्रे विदित्तस्य वा सुवायत्तानि दाकात्प्रतिविधानाच्च वचनाभाषावकतावच्छिन्नानि च । तन्मूल भाष्य [१११३१]

८ त्रिपितकस्य अन्तर्गतस्य विदित्तस्य । तन्मूल भाष्य [१११३१]

६ Photo optical Engraving pag 10
० ~

का अनुभव नहीं होता^{३३}। अविद्या द्वारा उत्पन्न पदार्थों का शुद्ध ज्ञान का विवक्त नहीं करता। डा० राधाकृष्णन का मत है कि यही उत्तरकालीन ज्ञान का विवक्त वास्तु प्रस्तुत होता जान पड़ता है^{३४}। आचार्य शाङ्कर विज्ञानशास्त्र के आद्य विज्ञान सिद्धांत को धर्मिण कहते हैं^{३५}। उनका अनुसार विषय और ज्ञान में भेद होने से अयायाथयत्व प्रतीत होता है^{३६}। एवम् अभाव नहीं दोनों का अभाव होने से आचार्य शाङ्कर का तात्पर्य जान पड़ता है। परन्तु डा० राधाकृष्णन और डा० दास गुप्त आदि विद्वानों ने इस सिद्धांत में ध्यान नहीं दिया। विज्ञाना त्रिका के सिद्धांतों को डा० दास गुप्त वेदान्त के निकट मानते हैं और डा० राधाकृष्णन आलय विज्ञान चतुर्थ में विवक्त का गभावना मानते हैं^{३७}।

धर्मिणता का सिद्धान्त प्रतीत्यसमुत्पादवाद में दन्ता से ग्रहीत है। सत्त्व पदार्थों के सम्बन्ध में विज्ञान और ज्ञानवास्तु में प्रतीत्य समुत्पन्न धर्मिणता ग्रहीत है। धर्मिणता के सम्बन्ध में लकावतार सूत्र में भी कोई हठधर्म प्रत्यक्ष नहीं होती^{३८}।

वेदान्त और विज्ञानाद्वैत में साम्य प्रत्यक्ष करने की भावाभा विद्वानों की जान पड़ती है^{३९}। शान्ति भिक्षु के अनुसार आलय के सम्बन्ध में कविता की प्रकृति वादरायण का ब्रह्म और बगुबधु का विज्ञान सबबीजत्व एवम् है^{४०}।

३३ *Ind an Phil ophi / page 631*

३४ We seem to have what later Vedānta calls Vivartanā or phenomenalism
Ind an Phil ophi / page 641

३५ विज्ञानवादेऽपि धर्मिणत्वाभ्युपगमस्य

ब्रह्मसूत्र भाष्य । अध्याय २ पाठ २ अधिवरण ५ सूत्र २१ ।

३६ *Phil ophi call sa / Philosophy of Vasubandhu in Mīmāṃsā and Trīmskā*

३७ *Ind an Phil ophi / page 641*

३८ मन्नायन अधर्म शान्ति भिक्षु ।

३९ मखीन दाने के कारण ही ज्ञाने आलय विज्ञान कहते हैं । शान्ति भिक्षु ।
हा विज्ञान का महायान में कथा है —

विज्ञान परिवर्तनशील है क्योंकि वह प्रतीत्य समुत्पन्न है। विज्ञान ज्ञान का अर्थ है। यद्यपि वादरायण द्वारा वह 'आमृत्य परिणामात् जन्मायस्य यत् कहकर परिणामशील कहा गया है।

विज्ञानवादिनां ने विज्ञान का अनिश्चित और वास्तविकता का निषेध किया परन्तु वेदों द्वारा ज्ञान का स्वरूप था। जन्मने विज्ञान के अनिश्चित व्यवहार औपचारिक माना। आचार्य शाङ्कर ने आगे चलकर ज्ञान को अद्वैत अविद्या या माया कहा है।

विन्नु का सम्बन्ध में वाई भन म्पिर नहीं किया जा सकता क्योंकि ग्रह
 मूल भाष्य में आचार्य गङ्गुलु न विनापनवाद का खण्डन किया है। हम इस
 प्रकरण के पिछले पृष्ठा पर इस सम्बन्ध में विचार कर चुके हैं। विज्ञान
 वादियों का विज्ञान क्षमिण है। विन्नु वेदान्त का नम्य एक कूटस्थ नित्य ब्रह्म
 की स्थापना करना है।



तृतीय प्रकरण

वेदान्त दर्शन का स्वरूप

प्रबन्ध के विद्वल पृष्ठों पर भारतीय दर्शन के विनायकत्व को ध्यान में रखते हुए वेदान्त दर्शन के अतन्त्र विनायकत्व और शून्यता का विवेचन किया गया है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में आधुनिक पृष्ठों पर प्रदत्तियों का स्वरूप और तन्त्र की दार्शनिक सामग्री प्रस्तुत की जा रही है। वेदान्त दर्शन के अन्त में विनायकत्व में वैदिक और अवैदिक धर्मों की विचारगली और सामान्य का परिचय मिलता है। विषय के मूलभूत तत्त्वों का सक्षिप्त विवेचन ही यहाँ हमारा लक्ष्य है। अब हम तन्त्र और वेदान्त और आचार्य शंकर के दार्शनिक विचार क्षेत्रों में प्रवेश करेंगे।

वेदान्त का वैदिक चिन्तन परम्परा के अन्तिम चरण का सूचक है। वेदान्त का निवचन विद्यते इति वेद वेत्ति इति वेद और विद्वि इति वेद इन तीन प्रकार से गृहीत हो सकता है। सत्ताथक विद्व धातु से विद्यते, ज्ञानाथक विद्व धातु से वेत्ति और ज्ञानाथक विद्व धातु से विद्वि इति वेदान्त युक्त होते हैं। ये वेदान्त वैदिक ज्ञान की नित्यता, चतुर्थ सत्य और ज्ञान के स्वरूप का निरूपण करते हैं। इस प्रकार वेदान्त एक दार्शनिक महत्ता का बोधक है। वेदान्त के प्रायः दो भेद स्वीकृत हैं मन्त्र और ब्राह्मण। मन्त्र का समुच्चय संहिता कहलाता है और मन्त्रादि के विनियोग के प्रकाशक भाग का ब्राह्मण ग्रन्थ कहते हैं। ब्राह्मण के अन्तिम भाग को ही आरण्यक कहा जाता है। आरण्यक के भी अन्तिम भाग उपनिषद् हैं। ये उपनिषद् ही वेदान्त के अन्तिम भाग होने के कारण वेदान्त कहलाती हैं। वेदान्त-दर्शन और वेदान्त सूत्र दोनों के स्वरूपों में सादृश्य हो सकता है। इस हेतु वेदान्त दर्शन का नाम ब्रह्मसूत्र अधिक उपयुक्त है। ब्रह्मसूत्र के सकल ज्ञान और उपनिषद् के अस्तित्व में आने के समय में अन्तर है। वेदान्त दर्शन के सूत्र रूप में आने की घटना उतनी प्राचीन नहीं है जितनी उपनिषद् की। यद्यपि वेदान्त के प्रमुख विषय के ज्ञान है और उमरा ही प्रतीति भी कहते हैं। वाणी अन्तिम त्रियासो

क ममान ही जान पर अनुभवाम्य सत्य का प्रकाशन जाना है । इस प्रकार तृतीयम अध्याय कथ काण्ड का ममानि पर जानात्म्य का अर्थवा का प्रतिपादन करना एक उपनिषद् का उद्देश्य है । इस भाँति ही उपनिषद् का अर्थ सत्ता प्राप्त करना मायक है । मीमांसा शास्त्र का प्रगातिमा म उपनिषद् है—उत्तर मामामा और पूव मीमासा । पूव मीमासा साधना का पूवम्प है । इसमें कम की प्रतिवायता स्वीकृत है । वैश्वानर मूत्रा का उत्तर मामामा वस्तु हैं । दोनों मीमासायें ब्रह्म उपासना का मित्त मित्त प्रणातिमा का प्रकाशन करती हैं । पूव मीमासा सहित्याया और धारण्यकाम उपनिषद् ऋग्वेद प्रणातिमा का पम पानी है जबकि उत्तर मीमासा उपनिषदा म निधारित जान-मायना का प्रचारक है । इस हेतु भी पूव और उत्तर मीमासा दोनों म साधना क प्रारम्भिक और अन्तिम रूपों का दिग्गान हाता है । इसलिये भी वैश्वानर ज्ञान की साधकता है । वैश्वानर का प्रतिपाद्य स्वयं है जिसके भाग-भाग क अनन्तर जीव का आवागमन म पुन पुन पहने का सम्भावना रानी है । परन्तु वैश्वानर का लक्ष्य कवल्य मोक्ष है जहाँ जाव ब्रह्म क साय जल म तनए के समान ही जयीभूत हो जाता है । वहाँ म उसकी आवृत्ति नहीं जाती है । वैश्वानर जीवन यात्रा का अन्तिम चरम लक्ष्य लेकर अग्रसर होता है । अस्तु इस प्रकार स भी ज्ञान मन्वय मे वैश्वानर ज्ञान साधक प्रतीत होता है ।

अब हम यहाँ ब्रह्म-मूत्र का परिचय देते हैं । उपनिषद् का मिद्वानता का सक्तर वदात दान म किया गया है । वैश्वानर ज्ञान का लक्ष्य ब्रह्म की प्रतिष्ठा करना है । इसक अतिरिक्त वैश्वानर दान का प्रारम्भ अथाता ब्रह्म विनामा इस मूत्र स दृशा है । अतः वैश्वानर ज्ञान का ही ब्रह्म-मूत्र कहते हैं । ब्रह्म-मूत्र ही वैश्वानर दान का आचारभूत अर्थ है । इस अर्थ की महत्ता और विनायता इस रूप म दधी जा सकती है कि इसमें अथाय दाना का अर्थन किया गया है । इस अर्थ से भारताय ज्ञान क अन्तगत वदान-ज्ञान क अतिरिक्त अर्थ पर ज्ञाना—भाष्य मीमासा अथ, वैश्विक और अथ म दान एव बौद्ध चावानर भाँति अर्थ नाम्निद ज्ञाना का अर्थन ब्रह्म-मूत्रा म मिलता है । अतः अर्थ मता का अर्थना और ब्रह्म क स्वरूप का प्रतिष्ठा हान क कारण वैश्वानर ज्ञान ही ब्रह्म-मूत्र कहनाता है । ब्रह्म मूत्र आत्मा के बचन-कारण—गारार—का निराकरण कर्ता है । अतः इस ही गारारिक मूत्र भी कहते हैं ।

ब्रह्म-मूत्र अथवा वैश्वानर ज्ञान चार भागो म विभक्त है । प्रत्येक भाग मध्याय नाम म अभिहित किया जाता है । प्रत्येक मध्याय क चार चार पा

अथवा उपलब्ध है। इस प्रकार कुछ गिनती के सोलह पाठों में दर्शन का विभक्त हुआ है। दर्शन का प्रथम अध्याय में कहा गया है कि सभी वदों में वाक्य अद्वैत ब्रह्म की प्रतिष्ठा करते हैं। अतः इस अध्याय को समव्याख्याय कहते हैं। इस अध्याय में उपनिषद् में श्रद्धा के सम्बन्ध में बिलंबे हुए अनेक विचारों को एकत्रित किया गया है और अतः में यह निश्चय किया गया है कि वस्तुतः समस्त उपनिषद् वाक्य ब्रह्म स्वरूप की प्रतिष्ठा एक रूप में ही करते हैं और उनमें कोई भेद नहीं है। इस प्रकार ब्रह्म स्वरूप की प्रतिष्ठा का एक समव्यय हमको वदों में दर्शन के प्रथम अध्याय में मिलता है। दर्शन दर्शन के दूसरे अध्याय में सांख्य बौद्धिक योग आदि एव बौद्ध चाणक्य, आदि जन नास्तिक मतों का आलोचना की गई है। अनेक प्रकार के विरोधों का उत्तर उपनिषदों में प्रतिष्ठित सिद्धांतों के आधार पर दिया गया है। अतः दूसरे अध्याय को अविरोधाध्याय कहते हैं। वदों में दर्शन के तीसरे अध्याय को साधनाध्याय कहते हैं। इस अध्याय में अनेक उपनिषद्-सम्मत विधायाँ और उपासनायाँ का उल्लेख हुआ है। ये विधायाँ और उपासनायाँ साधना क्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं। अतः इस अध्याय को साधनाध्याय कहते हैं। दर्शन का चौथा अध्याय फलध्याय है। इस अध्याय में साधकों के अधिकार के अनुसार और अनेक विधायाँ के अनुसार फल प्राप्त होना बताया गया है अतः इस अध्याय को फलाध्याय कहते हैं। ब्रह्म ज्ञान का फल निश्चित करने के कारण ही इस अध्याय को फलध्याय की संज्ञा दी गई है।

वदों में दर्शन प्रस्थानत्रयी का एक प्रस्थान कहलाता है। इस प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत उपनिषद् गीता और ब्रह्मसूत्र आते हैं। उपनिषद् श्रुति प्रस्थान कहलाती है। वदान्त दर्शन में श्रुति को प्रमाण माना गया है^१।

इसके अतिरिक्त गीता महाभारत एवं पुराणों के आधार में स्मृति प्रस्थान के अन्तर्गत हैं। दर्शन सूत्रों में इसीलिए स्मृति प्रस्थान का महत्त्व स्वीकार

१ वेदान्त दर्शन सूत्र १।१।११ ।

३।०।३६ ।

३।४।४६ ।

।१।७ ।

१।।१६ ।

३।३।३९ ।

क्रिया गया है^२। वैश्वानर ज्ञान मन् तक प्रस्थान कहा जाता है। 'मन्' ज्ञान है कि साक्ष्य दान का विराय करके पुनः प्रकृति सिद्धान्तों का अतिशय करके ब्रह्मसाराज्या^३ का प्रतिष्ठा वैश्वानर-मूर्तों म की गई है^४। इसा प्रकार वसपिन दान क परनागुशा^५ का वैश्वानर कके ब्रह्म मधवा सन्ध्यायवा^६ को स्थापना इन मूर्तों म की गई है^७। बौद्ध दान का खन्नि नी इन मूर्ता म किया गया है^८। इसा प्रकार जैन ज्ञान का ना धानाचना इन मूर्तों म दर्शान हुआ है। पाण्डित और पाञ्चरात्र मना का असगतिया क प्रति भी इन मूर्ता में सत्त्व और खन्नि किया गया है^९। इस प्रकार हम दमते हैं कि वैश्वानर-मूर्ता म अध्याय मत्तों का वैश्वानर मुक्ति-पूर्वक किया गया है। अतः इसका दो नक प्रस्थान बहत है।

अब हम यहाँ ब्रह्म-मूर्ता के आन द्वय सिद्धान्ता का सविष्ट विवेचना करेगे। प्रस्तुत निवध का सन्ध गाडूर मद्र त वैश्वानर क सिद्धान्तों का विचार करण है। 'मन्' सम्बन्ध में हम प्रस्तुत प्रवध के दूसरे सन्ध में सविष्टार विचार करेगे। महा हम कवल ब्रह्ममूर्तों की रचना का विचार मात्र करत हुए प्रस्तुत प्रकरण का समाप्त करेगे।

ब्रह्म मूर्ता क अनुभार ब्रह्म नी जगत का सचि म्यिति और प्रत्य का कारण है^{१०}। ब्रह्म परत और अपरत मन् दा प्रकृतियों स युक्त है^{११}। 'मन्' प्राप्तिवा गरा नी ब्रह्म सचि करता है। ये प्रकृतियाँ ब्रह्म क अधीन हैं^{१२}। ब्रह्म मून और अमून लमणा स युक्त है। किन्तु ब्रह्म का मूत म्पता औसाधिक नहीं

२ ब्रह्मसूत्र, ३। १४, ३। १५, ४। १६, ४। १७, ५। १८, ५। १९, ५। २०, ५। २१, ५। २२।

३ ब्रह्मसूत्र ५। २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२।

४ ब्रह्मसूत्र, ५। २२, ५। २३, ५। २४।

५ ब्रह्मसूत्र, ५। २३, ५। २४।

६ ब्रह्मसूत्र, ५। २३, ५। २४।

७ ब्रह्मसूत्र ५। २३, ५। २४।

८ ब्रह्मसूत्र, ५। २३।

९ ब्रह्मसूत्र, ५। २३, ५। २४।

१० ब्रह्मसूत्र ५। २३।

है^{११} । वस्तुतः ब्रह्म निगु ण ही है^{१२} । ब्रह्म का स्वरूप अनिवचनीय है^{१३} । जीव ब्रह्म का ही अंग है^{१४} । जीव नित्य ब्रह्म स्वरूप है और उसके जन्म मरण एवं शारीरादि सम्बन्ध मिथ्या है^{१५} । जीवात्मा विभु अथवा व्यापक है^{१६} । ज्ञान गारा ही जीव ब्रह्म स्वरूप में स्थित होता है^{१७} ।

ब्रह्म विद्या कर्मों का अंग नहीं है^{१८} । जानी लोकसंप्रद्व क लिए कर्म करता है^{१९} । कर्म का नाश होने पर ही प्राणी की मुक्ति होती है^{२०} । गमादि साधन ज्ञान में सहायक हैं^{२१} । ब्रह्म ज्ञान हा जाने पर पुनर्जन्म नहीं होता^{२२} ।

इस प्रकार हमने ब्रह्मसूत्रा में आये सिद्धांता का सूत्रम एवं सङ्क्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत किया है । अब हम प्रस्तुत प्रवचन के आगामी पृष्ठा में इन सिद्धांता का आचार्य शाङ्कर के दार्शनिक विचारा के साथ साथ विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे ।

११ ब्रह्मसूत्र ३।२।११ ०६ तक ।

१२ ब्रह्मसूत्र ३।२।१४ ।

१३ ब्रह्मसूत्र ३।२।२२ ।

१४ ब्रह्मसूत्र, ३।३।३ ।

१५ ब्रह्मसूत्र २।४।१६ ।

१६ ब्रह्मसूत्र ३।३।६ ।

१७ ब्रह्मसूत्र, ३।३।४७ ।

१८ ब्रह्मसूत्र ३।४।१ रा ५ तक ।

१९ ब्रह्मसूत्र, ४।१।१६ १७ ।

२० ब्रह्मसूत्र, ४।१।६

२१ ब्रह्मसूत्र, ३।४।२७ ।

२२ ब्रह्मसूत्र ४।४।२२ ।

द्वितीय खण्ड

शाङ्कर अद्वैत दर्शन का सिद्धान्त पक्ष

परिचय

प्रश्न प्रश्न के रूप में हम सख्त में हम शास्त्र अद्वैत दर्शन पर विचार करेंगे। यह सख्त हमारे प्रश्न का सिद्धांत पक्ष है। यहाँ हम शास्त्र अद्वैत दर्शन की स्फूर्ति प्रस्तुत करेंगे। इस सख्त में मुख्यतः शास्त्र अद्वैत दर्शन के उद्देश्यों का विवेचन किया गया है जिनका सम्बन्ध सत्यता पर है। इस सम्बन्ध में शास्त्र अद्वैत दर्शन की वापसना का ध्यान में रखकर तत्त्वों की मूल तत्त्वों का विवेचन प्रश्न किया जाएगा। उक्त तत्त्वों की याचना इस प्रकारण में इस क्रम से होगी —

- (१) ब्रह्म का स्वरूप।
- (२) सृष्टि माया अविद्या अयाम और प्रकृति का स्वरूप।
- (३) आत्मा अथवा जीव का स्वरूप।

उपरोक्त क्रम में हम शास्त्र सिद्धान्त के चिंतन पक्ष का अध्ययन करेंगे। तदुपरांत शास्त्र सिद्धांत के साधना पक्ष का विवेचन इस क्रम से उपलब्ध होगा —

- (१) ब्रह्म ज्ञानासा का स्वरूप।
- (२) विद्या का स्वरूप।
- (३) श्रम का स्वरूप।
- (४) उपासना और भक्ति का स्वरूप।

ऊपर दिए हुए क्रम के उपरान्त हम नाच लिये तत्त्वों पर विचार करेंगे। आचार्य शंकर के अनुसार ये तत्त्व ज्ञान साधना के माध्यम हैं —

- (१) आचार्य अथवा सत्गुरु।
- (२) ज्ञान।
- (३) श्रम, बुद्धि और अनुभव।
- (४) साधन चतुष्टय।

शास्त्र अद्वैत दर्शन के इन मूल तत्त्वों पर विचार करके हम निम्नलिखित सत्यता के प्रभाव क्षेत्र में प्रवेश करेंगे।

प्रथम प्रकरण

आचार्य शङ्कर के अनुसार ब्रह्म का स्वरूप

प्रस्तुत प्रकरण में ब्रह्म शब्द की 'युत्पत्ति' और उसका स्वरूप पर विचार किया गया है। आचार्य शङ्कर के अनुसार ब्रह्म सत्य सिद्ध, सच्चिदानन्द अर्थात् अभिन्न निमित्तात्मानादान कारण सगुण निगुण और मन-वाणी का अविषय है। उपासना भद्र से उसका स्वरूप में त्रौपाधिभूता एवं अनन्तरूपता है। सृष्टि का कर्ता हा पर भी वह अकर्ता है एवं अविद्या तथा माया का अधिष्ठान होते हुए भी तत्त्वन्वय विचारों से मुक्त है। इन्हीं अनेक विषयों का प्रतिपादन यहाँ पर किया गया है। प्रधानतः विषय की आधारभूत मामग्री, ब्रह्ममूत्र उपनिषद् और गीता तथा अन्य मान्यो म ग्रहीत है।

शङ्कर के अनुसार ब्रह्म शब्द की 'युत्पत्ति' वह धातु से हुई है। वह 'धातु' के अनुसार निश्चय शुद्ध इत्यादि अर्थों की प्रतीति होती है। रत्न प्रभा टीका के अनुसार यहाँ ब्रह्म शब्द बद्धि बद्धौ धातु से 'युत्पन्न' हुआ है। उक्त टीका के अनुसार यह बद्धि अविधि रहित महत्त्वरूप है क्योंकि ब्रह्म के स्वरूप में सकांच का अभाव है। इस प्रकार ब्रह्मात् ब्रह्म, 'युत्पत्ति' के अनुसार, अमान् व्यापक होने से ब्रह्म कहलाता है। इस 'युत्पत्ति' से ब्रह्म में देश, काल वस्तु आदि से अपरिच्छिन्नता, रूपनित्यता लक्षित होती है^१। उपयुक्त विवेचन के अनुसार ब्रह्म शब्द से विक्रमशील महान रूप एवं परिच्छिन्नता रहित अथवा सकोच रहित सत्य की प्रतिष्ठा की गई है।

१ ब्रह्म शब्दस्य हि व्युत्पत्त्याममानस्य निश्चय शुद्धवाच्योऽयथा प्रतीयन्ते बद्धौ धातोरेषानुगमात् । ब्रह्मस्य भाष्य १।१।१।

२ स च अर्था महत्त्वरूप 'निश्चय'वाकरणात् निश्चयवाच्ये 'बद्धि बद्धौ' इति समरण्यात् । स च बद्धि निश्चयमिदं महत्त्वमिति सकोचकामावत् । अतो ब्रह्मादि ब्रह्मेति व्युत्पत्त्या दशाका वस्तु परिच्छिन्नतावरूपं निश्चय प्रतीयते । ब्रह्मस्य भाष्य । रत्नप्रभा टीका १।१।१।

गान्धर्व ने ब्रह्म के स्वरूप विश्चय व सम्बन्ध म यह गान्धर्व प्रस्तुत की है कि ब्रह्म प्रसिद्ध है अप्रसिद्ध । यही प्रसिद्ध गान्धर्व से ब्रह्म व अस्तित्व का ज्ञान विवक्षित है । 'यदि ब्रह्म प्रसिद्ध है तो उसका ज्ञान की इच्छा करना व्यय है । यदि अप्रसिद्ध है और उसका अस्तित्व का ज्ञान वस्तुतः प्राणी वा नही है तो भी ब्रह्म व स्वरूप ज्ञान की अभिलाषा गिराधार है । गान्धर्व इस सन्देह वा निराकरण करत हुए निश्चित करते हैं कि ब्रह्म प्रसिद्ध है और ब्रह्म नित्य गुण, मुक्त स्वभाव सवक एव सवशक्तिमन् न है । अतः निश्चित हाता है कि ब्रह्म अस्तित्व रूप म ज्ञान का लक्ष्य है^३ ।

अब यहा पुन सन्देह होता है कि यदि ब्रह्म प्रसिद्ध है और उसके अस्तित्व का ज्ञान सवका है तब जगत प्रवहार म ब्रह्म के स्वरूप की प्रतीति नही होती प्रत्युत ससार के अनेकात्मक पदार्थों का ही प्रत्यक्ष अनुभव सवको होता है । अतः यह कस निश्चय हो कि ब्रह्म प्रसिद्ध है और उसके अस्तित्व का ज्ञान सवको है ? गान्धर्व के अनुसार ब्रह्म के स्वरूप का अनुभव इसलिए नही होता कि इन्द्रियां बहिर्मुखी है अतः दृश्य जगत म बिखरे हुए विषय का ही इन्द्रियां अनुभव करती हैं^४ । इन्द्रियां ब्रह्म का अनुभव इसलिए नही कर सकती क्योंकि ब्रह्म अतर्क्य है और इन्द्रियां ब्रह्म व अधिष्ठान म गरीर की अवयव होकर स्थित है एसा ब्रह्ममूत्रा म कहा गया है^५ । बृहदारण्यक उपनिषद म कहा गया है कि वह अतर्क्य देखने म न आने वाला किन्तु सबका देखने वाला सुनने मे न आने वाला किन्तु सब कुछ सुनने वाला और मनन करने म न आने वाला किन्तु सबका मनन करने वाला है । वह विशेष रूप से किसी के जानने म नही आता किन्तु सबका विनयरूप स भली भाति जानता है^६ । अतः प्रसिद्ध होने पर भी ब्रह्म सवको प्रत्यक्ष नही होता ।

ब्रह्म स्वयं सिद्ध है । गान्धर्व के अनुसार सिद्ध वस्तु इस प्रकार है अथवा नही है, ऐस विकल्पा का आशय नही है । विरल्प के लिए पुरुष बुद्धि की अपेक्षा है । सिद्ध वस्तु का ज्ञान सिद्ध-पदार्थ के ही अधीन है । एक स्थान के

३ यदि प्रसिद्ध न विद्वान्मनः । अप्रसिद्ध नैव शब्द जिज्ञासितुमिति ।—अरिस्तोत्रम् नित्यशुद्धमुक्तरवाम् । सवशक्तम्, सवशक्तिमन्विति ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।१।

४ स्वभावात् विषयविषयाणीन्द्रियाणि न सन् विषयाणि । ब्रह्मसूत्र भा १।१।१।

५ अतर्क्यमधिष्ठानं किन्तु तद्वन्वयं गान्धर्वम् । ब्रह्मसूत्र भा १।१।१।

६ बृहदारण्यक उपनिषत् ३।७।२३।

लिए यह विकल्प करना कि वह प्रत्यय ही है या प्रत्यय ही है।
 यथाय तान नहीं होता। स्यात् में 'यह प्रत्यय ही है' का प्रत्यय ही है।
 स्यात् में 'यह प्रत्यय ही है' का प्रत्यय ही है।
 स्यात् का तान ताना स्यात् का ही प्रत्यय है।
 ब्रह्म तान ब्रह्मस्वरूप—वस्तु का ही प्रत्यय है।
 वस्तु ब्रह्म ही है।^{१८} ब्रह्म का द्विद्व कान के लिए ही प्रत्यय ही है।
 नहीं, क्योंकि वह स्वयं द्विद्व है।

ब्रह्ममूत्रा व प्रनुमार ब्रह्म का प्रत्यय ही है। प्रनुमार के प्रत्यय
 सगात्मक अथवा अस्मित्व मुक्त ब्रह्म का प्रत्यय ही है।
 हो सकती समाप्त व ब्रह्म की प्रत्यय ही है।
 अथवा समाप्त व अस्मित्व अथवा तान व तान व तान व तान व
 अथवा ब्रह्म का उत्पत्ति नहीं हो सकता।
 नहीं हो सकती क्योंकि समाप्त व विषय तान व तान व तान व तान व
 की उत्पत्ति लोक म नहा प्रत्या जाता।
 इत्यादि वनत दख जात है उसा प्रकार प्रत्या जाता है।
 है। यदि कहा जाय कि अस्त म ब्रह्म प्रत्यय ही है।
 है क्योंकि अस्त निरात्मक है और प्रत्यय प्रत्यय ही है।
 सत्वता^{१९}। अस्त ब्रह्म प्रत्यय ही है और प्रत्यय प्रत्यय ही है।

ब्रह्ममूत्रा म आचार्य^{२०} प्राण^{२१}

- ७ वस्तुतन्मवत् । नहि स्यात्प्रवर्गिनः प्रत्ययः ।
- ८ तत्र पुण्यान्वायति निध्याशनम् ।
- ९ भूतवस्तुविषयता प्राणाद्य वस्तुत्वे ।
- १० अस्तभवस्तु सनात्नुपपत् ।
- ११ सनात् कि अस्त, न तस्य सनात्प्रवर्गिनः प्रत्ययः ।
- १२ भावतुपपत्ते । नापि सतिगता ।
- १३ तस्यैव, भगवैवैव नानुविगात् ।

११ आशरान्त्वलिगतान् । ब्रह्मसूत्र १।१।१२
 १२ प्राणस्तथानुगतान् । ब्रह्मसूत्र १।१।१३
 १३ अतिरचरथाभिरानान् । ब्रह्मसूत्र १।१।१४
 १४ धन्यामिशान्नेति चेन्न तथा ।
 १५ आनन्ववोऽन्वायान् । ब्रह्मसूत्र १।१।१५

वश्वानर^{११} अक्षर^{१०} अतर्कामी^{१८} भूतयोनि^{१६} पराचर ता मदाण वरन
वाला^२ ईक्षणवर्ता^{२१} आत्मा^{१२} गुहा म प्रविष्ट^{२३} आत्मा नामा और
विशेषणो द्वारा ब्रह्म का वणन किया गया है ।

ब्रह्मसूत्रा के अनुसार ब्रह्म जन्मादि का कारण कहा गया है^{२४} । शाङ्कर
के अनुसार जन्मादि गन् से जन्म स्थिति और प्रत्यय सृष्टि की इन तीन
अवस्थाओं का बोध होता है ब्रह्म सृष्टि का दो रूपा म कारण है—निमित्त
अथवा सृष्टि के हेतु के रूप में और उपादान अथवा सृष्टि पदार्थों के साधन के
रूप में^{२५} ।

उत्पाहरणाय कुम्भकार घट का हेतु है अथवा निमित्त है और मिट्टी
साधन रूप में उपादान कारण है^{२६} । ब्रह्म के कारण स्वरूप की परिभाषा
करते हुए शाङ्कर का मत है कि अनेक कला भोक्ता-युक्त प्रिया फल-देन-वान
और निमित्त जिसमें नियमित है जो सृष्टि का आधार है मन से जिसकी
रचना का विचार नहीं हो सकता जा अचित्य है और जिसके द्वारा सृष्टि की
स्थिति और प्रत्यय होती है जो सवय और शक्तिमान कारण है वह ब्रह्म
है^{२७} ।

१६ वैश्वानर साधारणशा विरापान । ब्रह्मसूत्र । १।२।२४।

१७ अक्षरम्बरान्तधृत । ब्रह्मसूत्र । १।२।१ ।

१८ अन्त्याम्याधत्वात्पि तद्धम यपदरात । ब्रह्मसूत्र । १। १८।

१९ यानिश्च हि गीयते । ब्रह्मसूत्र । १।२।२७।

२ अक्षा चराचर ग्रहणान् । ब्रह्मसूत्र । १।२।२६।

१ इच्छतेनाशाभ । ब्रह्मसूत्र । १।१।१५ ।

२ आत्मराभ्याच्च । ब्रह्मसूत्र । ३।३।१५ ।

३ आत्मा प्रवरणान् । ब्रह्मसूत्र । ४।४।३ ।

४ गुहा प्रविष्टावा म ता ि तन्शानान् । ब्रह्मसूत्र । १। ११ ।

५ तमावम्य यत । ब्रह्मसूत्र । १।१।११।

२५ जमउत्पत्ति आत्तिरखेति तन्गुणसविज्ञाना बहुभाहि । तमस्थितभग समामाव ।
ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।२ ।

२६ अक्षरकाणा ममुक्तात्पि प्रवृत्तिरे कुपाल सुवणकारात्पिनिमित्त वे ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।४।२३।

२७ अन्नककत भात्त सयुत्तरय प्रतिनियतशाकाननिमित्तक्रियाफलावयव मनसा अपि
अचिन्त्य रचना रूपस्य तमस्थितभग यत सवज्ञान सवराते वारणा भवति त् ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।२।

अगर हम ब्रह्म का निमित्त और उत्पादन कारण रूपता का कथन कर चुके हैं। निमित्त और उत्पादन कारणों को लेकर ब्रह्म के स्वरूप में विषमता का धाराप नहीं किया जा सकता क्योंकि एक ही ब्रह्म निमित्त और उत्पादन कारण है। आचार्य गङ्गुलू के अनुसार घट रचक इत्यादि का उत्पादन कारण मिट्टी एवं कुम्भकार आदि का उत्पादन कारण स्वयं है और कुम्भकार एवं सुनार निमित्त कारण है। इसी प्रकार ब्रह्म ही जगत का निमित्त कारण और उत्पादन कारण दाना है। किन्तु दाना कारणों से ब्रह्म का कारण रूपता में भङ्ग नहीं है क्योंकि दाना कारणों का अविच्छान एक ही ब्रह्म है। आचार्य गङ्गुलू का मत है कि चम मिट्टी साना आदि उत्पादन कारणों के लिए कुम्भकार सुनार आदि अविच्छानात्मा की अपेक्षा है बस ही ब्रह्म का उत्पादन कारण स्वरूप में अथ अविच्छानात्मा की अपेक्षा नहीं होती^{२५}। अतः यह सन्देह ही शक्यता है कि मिट्टी स्वयं आदि ता कुम्भकार सुनार से भिन्न है अतः उत्पादन कारण की निमित्त कारण से एक रूपता नहीं हो सकती। आचार्य गङ्गुलू के अनुसार उपनिषत्सु सत्त्विक पूर्व अद्वितीय कारण का निश्चय किया गया है अतः निमित्त और उत्पादन कारणों की पृथक् मतों नहीं हैं^{२६}।

अगर हम कह चुके हैं कि निमित्त कारण और उत्पादन कारण ब्रह्म के स्वरूप हैं और इस ब्रह्म के स्वरूप में विषमता नहीं आती। ब्रह्मसूत्रों में कहा गया है कि निमित्त ब्रह्म ही जगत का उत्पादन कारण है^{२७}। निमित्त और उत्पादन कारणों का स्वरूप अद्वितीय ब्रह्म है अतः इसमें यह निश्चय होता है कि कार्य और कारण में भङ्ग नहीं है। ब्रह्म सूत्रों के अनुसार कार्य और कारण का अन्वय कहा गया है^{२८}। कार्य और कारण का अन्वय स्वीकार

२५ अनुसूचितानुपादनकारणं स्वयम् सुवर्णकारणनिर्दिष्टात्त्रयपद्व प्रवृत्तं तत्र ब्रह्म उत्पादन कारणम् सत्त्वात् या अविच्छानात् पक्षेऽस्ति । ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।४ ।

२६ प्रागुपवर्गकमन्वयनिश्चयवशात् । ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।४ ।

२७ अनुसूचितानुपादनकारणं स्वयम् सुवर्णकारणनिर्दिष्टात्त्रयपद्व प्रवृत्तं तत्र ब्रह्म उत्पादन कारणम् सत्त्वात् या अविच्छानात् पक्षेऽस्ति । ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।४ ।

२८ अनुसूचितानुपादनकारणं स्वयम् सुवर्णकारणनिर्दिष्टात्त्रयपद्व प्रवृत्तं तत्र ब्रह्म उत्पादन कारणम् सत्त्वात् या अविच्छानात् पक्षेऽस्ति । ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।४ ।

२९ अनुसूचितानुपादनकारणं स्वयम् सुवर्णकारणनिर्दिष्टात्त्रयपद्व प्रवृत्तं तत्र ब्रह्म उत्पादन कारणम् सत्त्वात् या अविच्छानात् पक्षेऽस्ति । ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।४ ।

३० अनुसूचितानुपादनकारणं स्वयम् सुवर्णकारणनिर्दिष्टात्त्रयपद्व प्रवृत्तं तत्र ब्रह्म उत्पादन कारणम् सत्त्वात् या अविच्छानात् पक्षेऽस्ति । ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।४ ।

इस उद्धरण में स्पष्ट है कि सत्त्विक कार्य ही कारण है और निमित्त एवं उत्पादन कारण ही कार्य के प्रवर्तक स्वरूप में वैयर्थ्य नहीं आती।

२९ स्ववर्णकारणोऽयम् । ब्रह्मसूत्र १।१।४ ।

३० अनुसूचितानुपादनकारणं स्वयम् सुवर्णकारणनिर्दिष्टात्त्रयपद्व प्रवृत्तं तत्र ब्रह्म उत्पादन कारणम् सत्त्वात् या अविच्छानात् पक्षेऽस्ति । ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।४ ।

करके गङ्कर ने ब्रह्म की एकरूपता की प्रतिष्ठा की है। काय और कारण की अभेदरूपता छादोग्य उपनिषद् में भी बही गई है जिग प्रसार एव मिट्टी के पिण्ड से मिट्टी से बने सम्पूर्ण पदार्थों का जान हो जाता है उसी प्रकार ब्रह्म का ज्ञान होने से ब्रह्म तार्थों का जान हो जाता है। मिट्टी से बने विकार (घट आदि) वाणी के आश्रयभूत नाममात्र हैं सत्य तो वयत्र मिट्टी है^{३१}। विवेक चूडामणि के अनुसार मिट्टी का काय हान पर भी घटा उसमें पृथक् नहीं होता क्योंकि सत्र और स मत्तिका रूप होने व कारण घटे का रूप मत्तिका से प्रयक् नहीं है। मिट्टी में मिथ्या कल्पित नाम मात्र घट की सत्ता ही नहा है^{३२}। अत ब्रह्म निमित्त और उपादान कारणों द्वारा जगत काय करता है किन्तु काय और कारण का अभेद है। इससे सिद्ध होता है कि वस्तुन काय सत्ता कारण से पृथक् नहा। घट में मिट्टी से जो अनगाव प्रतीत होता है वह वस्तुन मिथ्या है। सत्य तो घट का कारण रूप मिट्टी ही है। अद्वैत सिद्धांत में इस प्रकार काय और कारण की द्वैत जय सत्ता का निषेध किया गया है।

विचार चन्द्रोदय के अनुसार त्रिकालावाधित ब्रह्म अथवा आत्मा सत् गत् से अभिहित किया जाता है। त्रिकाल का जान रखने व कारण ब्रह्म अथवा आत्मा चित और त्रिकाल में परम प्रेम का विषय होने व कारण आनन्द कहता है^{३३}। सत् गत् से ब्रह्म की स्विति चित गत् से त्रिया और जान रूपता और 'आनन्द गत् से ब्रह्म की प्रेम रूपता का कथन होता है। विचार सागर में 'सत् गत् के लिए अस्ति चित गत् के लिए भाति और आनन्द गत् के लिए प्रिय गत् का प्रयोग किया गया है^{३४}। सत् गत् ब्रह्म का अस्तित्व प्रकाशित करता है और चित गत् व द्वारा ब्रह्म की चेतन सत्ता की प्रतिष्ठा होती है।

३ कथा साङ्ख्यन मत्पिण्डेन सत्र गन्थय विद्यानस्यागारम्भण विज्ञारा नाम धेय मृति कस्यच सत्यन् । छादोग्य उपनिषद् । ६।१।४।

३३ अत्राथ भूतद्वि मत्त न भिन्न

कुम्भाऽग्नि सःप्र तु मत्तवरूपान ।

न कुम्भ रूप पश्चात्ति कुम्भ

कुत्ता मथा कपित्थानाम मात्र । विवेक चूडामणि २३० ।

३४ विचार चन्द्रोदय कला ८ पृष्ठ १८ १६ ।

३१ अस्ति भातिप्रिय मि तु मं नाम रूप जगत

गति निदि आम रररूप निः द्वै त ज्ञान निहाय । विचार सागर । प्रारम्भिक पृष्ठ ।

और चतुर्थ रूपता का उच्छ्रय करना आचार्य शाङ्कर का लक्ष्य था है। अग प्रसंग में उन्होंने ब्रह्म के साकार और निराकार दोनों रूपों की प्रतिष्ठा स्वीकार की है। साकार और निराकार का विभाजन उपासनाभेद का आधार पर किया गया है। आचार्य शाङ्कर के अनुसार सगुण उपासना में आकार का मायता है और निगुण ब्रह्म के ज्ञान में निराकार स्वरूप की। किन्तु उनका प्रतिपाद्य निगुण ब्रह्म है अतः सगुण ब्रह्म की अविद्यामय गुणरूपता का नय करके निगुण ब्रह्म का साथ एकवाक्यता स्थिर कर ली गई है। शाङ्कर भाष्य की रत्नप्रभा टीका के अनुसार साकार ब्रह्म प्रतिपाद्य श्रुति वाक्यों की आकार के लय द्वारा निगुण वाक्यों के साथ एकवाक्यता की अवगति है। सगुण आधाररूपता का तात्पर्य कल्पित आकार है और सगुण ब्रह्म की उपासना से अभ्युदय की सिद्धि होती है। किन्तु निगुण वाक्यों की परमाद्य वस्तु निगुण ब्रह्म के झालम्बन में गति है^४।

ब्रह्मसूत्रों में ब्रह्म आनन्दमय कहा गया है^{५१}। तत्तिरीय उपनिषद में ब्रह्म की आनन्दरूपता की प्रतिष्ठा हुई। इस उपनिषद में कहा गया है कि— आनन्द ही ब्रह्म है ऐसा जानना चाहिये^{५२}। वह्नारण्यक उपनिषद के अनुसार भी ब्रह्म को आनन्दस्वरूप कहा गया है^{५३}। ब्रह्मसूत्रों के अनुसार न जीव ही आनन्दस्वरूप है और न प्रकृति ही क्योंकि जीव गरीर रूप से प्रयत्न है और प्रकृति ब्रह्म के आधीन है^{५४}। अतः ब्रह्म ही आनन्दस्वरूप है। आचार्य शाङ्कर के अनुसार ब्रह्म की आनन्दरूपता ब्रह्म का पारमार्थिक स्वरूप नहीं है। तत्तिरीय उपनिषद भाष्य में आचार्य शाङ्कर ने कहा है कि आनन्द का पर्यवसान ब्रह्म में होता है। यहाँ अद्वैत ब्रह्म को लक्ष्य करके उहोने यह कथन किया है^५। आचार्य शाङ्कर के अनुसार अज्ञान प्राण मन विज्ञान और आनन्दमय

४ तस्मात् साकारवाक्यानां आकारवद्वारा निगुण वाक्यैक वाक्यतागति अस्मिन् गति रव किन्तु तथा कल्पितकारा गतिस्वरूपाननशाश्वत्त्वनिन्दे निगुण वाक्यानां तु परमाद्यवम्बन वमित्यन्नुक्त एव विभागः प्राप्तिः। रत्नप्रभा टीका। १। १।

५१ आनन्दमयाऽयानन्दः। ब्रह्मसूत्र। १। १। १।

५२ आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। तत्तिरीय उपनिषद। भगवद्गीता। १५। १।

५३ विज्ञानमानन्दः ब्रह्म। वह्नारण्यक उपनिषद। ३। १। ८।

५४ तर्धान्वाच्यवत्। ब्रह्मसूत्र। १। ४। ३।

५५ स्वस्ववादिषां परिशिष्टस्य द्वैतवाक्यानां भूतमद्वैत ब्रह्म प्रतिष्ठा आनन्दमयम्।

नही होता । उपासना की दृष्टि से निगुण ब्रह्म ही साकार एव सगुण रूप में प्रतिष्ठित होता है । आचार्य शाङ्कर का कथन है कि आभारवन ब्रह्म के वाक्य अति वाक्य उपासनापरक है^४ । आचार्य शाङ्कर ने ब्रह्म को उतय मात्र कहा है । परन्तु ब्रह्म की यह विगुण चतय सत्ता आकार से रहित है । ब्रह्म तय वस्तुतः निर्विण्ण अथवा विभार और आकारा से रहित है किन्तु उपासना के क्षेत्र में निर्विण्ण निराभार चतय स्वरूप ब्रह्म साकार और सतिगण हो जाता है । ज्ञान के क्षेत्र में तो ब्रह्म निगुण, निराभार और निर्विण्ण ही है ।

अब हम आचार्य शाङ्कर के अनुसार ब्रह्म के अवतार सम्बन्धी प्रश्न पर विचार करेंगे । हम पिछले पृष्ठ पर कह चुके हैं कि आचार्य शाङ्कर का उक्त सगुण सविण्ण और साकार ब्रह्म नहीं है परन्तु उपासना में से ब्रह्म में गुणों और आकारों का आरोप हो जाता है । ब्रह्मसूत्र और उपनिषद् के भाष्य में उपासना की दृष्टि से उन्होंने ब्रह्म के अवतार के सम्बन्ध में कहा भा सकेत नहीं किया । परन्तु वह ब्रह्म के अवतार धारण करने की भावना के विपक्ष में नहीं हैं । गीता भाष्य उपोदघात में उन्होंने कहा है कि ज्ञान ऐश्वर्य शक्ति बलवीय और तेज आत्ति सम्पन्न भगवान् यद्यपि अत्र अविनाशी सम्पूर्ण भूता के ईश्वर और नित्य गूढ बुद्ध मुक्त स्वभाव हैं तो भी अपनी त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति या वक्ष्याया माया को वगैरे करके अपनी जीना से गरीरधारी की तरह उत्पन्न हुए से—और योग पर अनुग्रह करते हुए से—दिताई देते हैं^५ । आचार्य शाङ्कर पुनः अपना मत प्रकट करते हैं कि जब अधम से धम दबने लगें और अधम की वृद्धि होने लगी तब जगत स्थिति सुरक्षित रखने की इच्छा से मुक्त आदिकर्ता नारायण नामक श्री विष्णु भगवान् ब्राह्मणा की रक्षा के लिए श्री वसुदेवजी से दक्की के गर्भ में अपने अश से त्रीवृष्ण रूप में प्रकट हुए^६ ।

४ चैतन्यमान विवक्ष्यरूपान्तररहित निर्दिशेत् ब्रह्म । ब्रह्मसूत्र भाष्य । ३।२।१६ ।

५ म न भगवान् आनेश्वर्य शक्ति बलवाय तजोभि सत्ता सम्पन्न त्रिगुणात्तपका वैष्णवी स्वा माया मूल प्रकृति ब्रह्माकृत्य अत्र अन्वयो भूतानां ईश्वरो नित्य गूढ बुद्ध मुक्त स्वभाव अपिपन्न स्वमायया देववान् इव जात एव न त्रीकानुभूत एव न एव लक्षणे । गीताभाष्य उपोदघात ।

६ अधर्मेण अभिभूयमाने धर्मो प्रवृद्धमाने न अधर्मो जगत स्थितिं परिपिपासयितुं स आत्ति कता नारायणाख्यो विष्णु भागमय ब्राह्मणा ब्राह्मण वयं रक्षणाय देवास्या वसुधाया भगवा वृष्ण विन मदभूव । गीता भाष्य, उपोदघात ।

अब हम पुनः निगुण ब्रह्म और अविद्यात्मक उपाधि का विवेचन प्रारम्भ करते हैं। ब्रह्म वस्तुतः निराकार ही है परन्तु उपाधि व कारण ब्रह्म का आकार की प्रतीति हाती है^{४३}। जिस प्रकार स्फटिक मणि उज्ज्वल होत हुए भी जवाकुसुम व ससग म आ जाती है और वह मणि ता प्रतात हान लगती है, उसी प्रकार निगुण ब्रह्म उपाधि व सम्बन्ध से सगुण एव साकार प्रतात हान लगता है। उपाधिबन्ध ही भौतिक व्यवहारों का प्रवर्तन होता है। ब्रह्म म यह उपाधि उसकी मूल प्रवृत्ति अथवा मूल मामा व कारण हाती है। इस उपाधि व कारण आत्मा म अनात्मा गुचि म अगुचि और नित्य म अनित्य आत्ति भावनामा का आरोप हाने लगता है। उपाधि क सम्बन्ध म ब्रह्म-सूत्र और गङ्गुल का मत है कि जिस प्रकार जलाशय म मूय का प्रतिबिम्ब पढकर जल के अनुरूप ही प्रतिबिम्बित हाता है उसी प्रकार उपाधि म प्रतिबिम्बित होकर ब्रह्म अविद्यात्मक रूप धारण करता है। किन्तु जिस प्रकार मूम व प्रतिबिम्ब व घटन, घडन और टिनन म मूम म परिवर्तन अथवा विकार नहीं आता उसी प्रकार औपाधिक विकारों से ब्रह्म विकृत नहीं होता^{४४}।

उपाधि अपरमार्थिक एव अविद्यात्मक है। ब्रह्म निर्दिशर है परन्तु उपाधि वग उनम विकार का आरोप हाता है। ब्रह्म इन्द्रियाका अविषय कहा गया है। आचार्य गङ्गुल के अनुसार विकार चन्द्रिम गाचर है और ब्रह्म अविदृत है। उपाधि व कारण ब्रह्म म परिणामों का आरोप हाता है, अरकि वस्तुतः ब्रह्म परिणाम रहित है। विगुद्ध रूप से ब्रह्म निरवयव है^{४५}।

अब हम ब्रह्म व सगुण और निगुण स्वरूपों का विचार प्रारम्भ करते हैं। सब रज और तम गुणा स युक्त ब्रह्म सगुण ब्रह्म है और इन तीना गुणा मे रहित ब्रह्म निगुण वदनाता है। निगुण ब्रह्म म किसी प्रकार का विकार नहीं होता। निगुण ब्रह्म विगुद्ध गत्य है जिसका सृष्टि आत्ति कतमा स सम्बन्ध भी नहीं होता। सगुण ब्रह्म इन्वर रूप म सृष्टि पालन और

४३ उपाधीता चाऽविद्यात्पुपस्थापितवान्। ब्रह्मसूत्र भाष्य । । १५५।

४४ ब्रह्मिहान् भास्वमन्मावाभयन्। वनग्यात्वन। ब्रह्मसूत्र । ३। ०।

नकगत हि स्यप्रतिबिम्ब जल दा वपत, जलहाम ह्यनि, अनलन चत जलनद निवने रतव नचपमानुपाधि भवति न तु परमाप्त स्यम्य तावन्ति।

ब्रह्मसूत्र भाष्य २।१। ०।

४५ आनन्देने । १।१।०६। पण्डितामात्। ब्रह्मसूत्र । १।४।०७।

सहार करता है। आचार्य शाङ्कर का कथन है कि ईश्वर मयका अध्ययन विचित्र दृष्टि स्थिति और सहार का कर्ता एव देव विनोप का अभिजाता है। वही सब वशों व अनुसार पन की व्यवस्था करता है^{११}।

सगुण ब्रह्म म ही समस्त यावहारिक और उपासना सम्बन्धी विषय प्रसक्त होने है। सगुण ब्रह्म म ही आकार और मूनता है। उपासना वा माध्य सगुण ब्रह्म ही है। आचार्य शाङ्कर का मत है कि जो जिस गुण की उपासना करता है उस गुण व अनुसार ही उपासना का पन प्राप्त होता है^{१२}। अतः सिद्धात्त व अनुसार सगुण ब्रह्म ही सविनोप ब्रह्म है। उनका कथन है कि अवारमायिक सविनोप ब्रह्म का ही उपदेव एक ही चन्द्रमा के जन प्रतिबिम्ब के अनेक रूपा के समान होता है^{१३}। सगुण ब्रह्म औपाधिक है। माया के गुणा वा ससग ब्रह्म व मगुण रूप म ही जाना है। इन प्रकार मगुण ब्रह्म की साकारिता भी औपाधिक और मायिक है। आचार्य शाङ्कर का मत है कि जगत की रचना एवर की जाना मे जानी है^{१४}। ब्रह्म म मनोमयत्व एव आनन्द मयत्व तानि स्वरूप सगुण रूप के कारण ही होते हैं^{१५}।

शाङ्कर सिद्धात्त म मुख्यतः निराकार ब्रह्म का प्रतिष्ठा है^{१६}। आचार्य शाङ्कर व अनुसार गुणा का आरोप भद व्यवहार के य ग्य सगुण ब्रह्म म होना है निगुण म नहीं^{१७}। एमा प्रकार आन तानि ब्रह्म व स्वरूप का जान नहीं करता। आचार्य शाङ्कर उह प्रतिपत्ति अथवा उपासनायोगी माध मानते हैं^{१८}। माया म ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पडने स ब्रह्म की ईश्वर सता होती है। माया म गुण ब्रह्म जगत की सृष्टि करता है। माया की उपाधि को लेकर बुम्भवार के समान ईश्वर जगत का निमित्त कारण है। तम प्रधान प्रवृत्ति व समग स ई वर मत्तिता व समान जगत का उपादान कारण है^{१९}। यहाँ

१६ ब्रह्मसूत्र १.२।३।२। ८।

१७ ब्रह्मसूत्र भाष्य। १।१।१२।

१८ ब्रह्मसूत्र भाष्य। ३।२।१८।

१९ ब्रह्मसूत्र भाष्य। ३।१।

२० शाङ्कर विशेणन। ब्रह्मसूत्र। १।१।१५।

विद्विष्य गुणापपसेधन। ब्रह्मसूत्र १।१।११।

२१ अरूपवत्त्व उ तन्नाताना वान। ब्रह्मसूत्र ३।२।१४।

२२ ब्रह्मसूत्र भाष्य। ३।१। १। १।

२३ ब्रह्मसूत्र भाष्य। ३।१। १।

२४ विश्वार पन्तोम्य—निगुण वग।

यत् सिद्धांत विचार चर्चा के अनुसार कहा गया है। शब्द में उपाधि और माया व अज्ञ है। आचार्य गङ्गुल का मत है कि ब्रह्म सगुण और निगुण दोनों एक साथ सम्बन्ध हाता विरोध हागा। ऐसा उपाधि म ब्रह्म केवन निगुण ही है सगुण नहा। सगुणता का अर्थ व्यावहारिक है औपाधिक है और मायिक है। ब्रह्म का मत कहने का उद्देश्य है ब्रह्म के स्वरूप में अज्ञान का निषेध करना। चित्त का लक्षण है कि ब्रह्म जड नहा है 'आनन्द का उद्देश्य है ब्रह्म में क्लिष्टता का प्रतिरोध करना। आचार्य गङ्गुल का मत है कि यद्यपि आनन्दत्व सत एवमात्र सम्बन्ध ज्ञान का विषय है ता भी मदबुद्धि पुरुषों के लिए उसकी सगुणता हा इच्छ है। इसलिए उनका मत सबलपानि गुणा य मुक्त होने का प्रतिपादन करना आवश्यक है'।

ब्रह्म वस्तुतः निगुण है और ज्ञान का विषय है। यद्यपि मूर्ति आदि क्रियाएँ उसी के द्वारा होती हैं परन्तु उनका शक्ति विनमण है। आनन्दानि स्वभावा की उपनिधि उसमें ही है। परन्तु उसकी सामाग्रा में ही आनन्द आनि स्वभावा की स्थिति है और आनन्दादि की सामाग्रा में ब्रह्म का स्वरूप की परिममाप्ति नहीं होती। अतिराय उपनिषद् भाष्य में कहा गया है कि ब्रह्म आनन्द रहित है^{६५}। ब्रह्म सम्पूर्ण व्यावहारिक और पारमाधिक सत्या का अधिष्ठाना है परन्तु नागतिक बलशय्य का उम्म अभाव है। ब्रह्म यद्यपि चतय है परन्तु उसमें कोई अनुभूति सममित नहा है। तब तक वह व्यावहारिक मन, वाणी और प्रयत्न का विषय नहा बनता, तब तक ब्रह्म का कोई अभिव्यक्ति भी नहीं होती। ब्रह्म सदा और नाग स्वल्प है। जिस प्रकार मूय का प्रकाश मूय का काय नहीं कहा जा सकता वम हा ब्रह्म की क्रिया शीलता भी उसका वम नहा है^{६६}। ब्रह्म निगुण ही है परन्तु उसकी सगुणता मूय का अभाव व समान व्यावहारिक है। आचार्य गङ्गुल का मत है कि अविद्यालय काय प्रपञ्च से विगत आमा विषय नहा है किन्तु अविद्यालय काय प्रपञ्च का बाध करके आयतन भूत एक का एकरम आत्मा जानना चाहिये^{६७}। ब्रह्म की क्रियाशीलता में उम शरीरानि का आवश्यकता नहा है।

६५ छान्दोग्य उपनिषद् भाष्य ३।५।१।

६६ तैत्तिरीय उपनिषद् भाष्य २।७, ब्रह्मसूत्र भाष्य ३।१।१।

६७ ब्रह्मसूत्र भाष्य ३।१।५।

६८ ब्रह्मसूत्र भाष्य ३।२।१।

सृष्टि आदि का कथन ब्रह्म की स्वयंशक्ति का नश्य होना किया गया परन्तु ब्रह्म का प्रतिपादन करने की दृष्टि से सृष्टि आदि का कथन किया जाता है^{६६}। सृष्टि पालन और महार करत हुए भाई परमात्मता विपमता है और न जीव का स्थिति होने पर कारण जीव का नश्वर गुणों से होता है। उन्हे जीव से समान गरीर आदि का अभिमान नही है।

अब यह प्रश्न होता है कि जब ब्रह्म ही एक मात्र विगुण सत्य है और उसकी सगुणता एक ही वस्तुवादि मन्ता श्रीगोविन्द हैं तो निगुण ब्रह्म तो सृष्टि आदि कम का सम्भव हो सकते हैं? और यदि सम्भव भी है तो उसका निगुणत्व में कोई यथार्थ कथा नहीं आता? इस स्थिति में आचार्य साङ्ख्य ने त्रिगुणात्मक प्रकृति और माया का आश्रय नत हुए मन् मिथ्यात प्रतिपादित किया है कि प्रकृति और माया मिथ्या है। इस सम्बन्ध में अद्वैत वेदान्त के आचार्यों ने विपक्षवादी का आश्रय किया है। इस सम्बन्ध में सत काव्य में सृष्टि का स्वरूप प्रकरण दयता चांये। विवत भावना का अनुसार ब्रह्म और माया के हमेशा का रूप उद्वेग होते है —

१ ब्रह्म विगुण निगुण सत्य है और उसमें प्रपञ्च आदि कायों का अभाव है।

२ सृष्टि एक समस्त प्रपञ्च मायिक हैं। इसके मूल में केवल ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है।

गीता के अनुसार ब्रह्म सर्वोपापक है। ब्रह्म के बान मुह सिर और नेत्र आदि सबन हैं^{६७}। सम्पूर्ण इन्द्रियां ब्रह्म में ही अधिष्ठित हैं किन्तु वह सब प्रकार की इन्द्रियां में रहित है^{६८}। आचार्य साङ्ख्य का कथन है कि वह जोय सम्स्त इन्द्रिय रूप उपाधियां का गुणा की अनुकूलता को प्राप्त करने में समर्थ है^{६९}। वह जीवा के अन्तर में और बाह्य में तथा जड एवं चेतन पदार्थों में

६६ ब्रह्मसूत्र भाष्य १।४।१४।

६७ कृत्स्नप्रयत्नस्य त्रिद्विधप्रतिषिद्धा वैयर्थ्यात्प्रिभ्यः । ब्रह्मसूत्र । १।४।२२।
प्रकाशात्तत्रैव पर । ब्रह्मसूत्र । १।४।६।

६८ सर्वत्र परिपूर्णतया सर्वत्रा विद्यमानः ।
सर्वत्र सुलभतया सर्वत्रा विद्यमानः । गीता १२।१२।

६९ सर्वत्रा विद्यमानः सर्वत्रा विद्यमानः । गीता १२।१४।

६९ सर्वत्रा विद्यमानः सर्वत्रा विद्यमानः । गीता भाष्य १२।१२।

आप्त है। प्रत्येक प्राणी में ब्रह्म विभक्त-सा प्रतीत होता है परन्तु अद्वितीय ब्रह्म कभी विभक्त नही जाता * ।

ब्रह्म अकाल है। सम्पूर्ण कर्म प्रकृति के द्वारा हाथ है। त्रिगुण ब्रह्म शरीर में स्थिर रहकर भी कुछ नहीं करता और न कर्म पता न चिन्त हा होता है। ब्रह्म आकाश के समान निर्दिष्ट है। आचार्य गङ्गुल का कथन है कि जब आकाश सबके व्याप्त होत हुए भी सूक्ष्म हान के कारण किसी पदार्थ के सम्बन्ध में युक्त नहीं होता उसी प्रकार आत्म-स्वरूप ब्रह्म शरीर में रहने हुए भी कर्म के विकारों में दूषित नही होता^{१४}। माया का प्रतिष्ठा करत हुए गङ्गुल का मत है कि ब्रह्म प्रकृति अथवा माया में उतार प्रसार मन्वत् नहीं होता जिस प्रकार मायावादीना काला में भा अपना माया से निष्पन्न नही होता^{१५}। जिस प्रकार एक स्वप्नदृष्ट आत्मा के स्वप्न स्वप्न का नाग किय बिना हा अनेक प्रकार का मण्डि हाती है उसी प्रकार ब्रह्म में यह कत त्व आरोपित है। जस रानु में सप का नाचना समझ होता है उसी प्रकार ब्रह्म में कत त्व आदि के आरोप प्रान्त है। जिस प्रकार आकाश में बादल आते हैं, परन्तु आकाश में वायु स्थिर नही हान वम ही ब्रह्म में प्रबन्धन कर्म स्थित नहीं हैं। आकाश वस्तुन नातिमा युक्त नही है परन्तु वह नात बरा प्रदान होता है। आचार्य गङ्गुल का कथन है कि अनाली आकाश में तल मनि नतादि की बलना करत है परन्तु आकाश तल मनिनादि में युक्त नहीं होता है^{१६}। अतः इसी प्रकार ब्रह्म में कत त्व भावत्वादि विकार कह जात हैं परन्तु त्रिकाल में भा ब्रह्म में विकार नहीं आत^{१७}। एक हा ब्रह्म में वषम्य और विविधता उसी प्रकार औपाधिक और प्रामक है जिस प्रकार त्रिमिर राग

७४ अविभक्त के भूतपु निबलानन के लिखे। पृष्ठा ११। १२।

लिखते — अस्तुत् प्रमाण में यह निश्चय है कि त्रिगुण स्वप्न हा उसका कारण गुण और आकाश में व्यक्त हाना है परन्तु गुणों और विकारों में विकार नही हाना।

७५ गीता भाष्य १२। १२।

७६ अस्तुत् भाष्य। १२। १२।

७७ अस्तुत् भाष्य। १२। १।

७८ अस्तुत् भाष्य। १२। ७।

के रोगों को चन्द्रमा का असम्यक् ज्ञान होता है ६ ।

ब्रह्म का स्वरूप म मण्डित वा विवक्षित है । स त ज्ञानेश्वरजी की उक्ति है कि जिस प्रकार जिस समय हम चक्कर खाता है, उग समय प्राग पास व पेड़, पहाड़ और चट्टान हम धूमती दिखाई पड़ती हैं, ठाक इसी प्रकार भ्रमणी कल्पना के कारण ही विचार हीन परब्रह्म म भूत मात्र वा आभास होता है^८ । गीता म कहा गया है कि समस्त भूत ता ब्रह्म म है पर तु ब्रह्म ही उभय नहीं है^९ । स त ज्ञानेश्वरजी का कथन है कि जिस प्रकार फल व अन्न देखन से पानी नहीं दिखाई पड़ता अथवा स्वप्न की अवस्था म दिखाई पाने वाल अनेक आकार गायुत अवस्था म नहीं दिखाई पड़ते उसी प्रकार भूत मात्र मुझमें (ब्रह्म म) ही भासमान हात है । पर तु फिर भी इनम (भूत म) मरा निवास नहीं होता । जिस प्रकार आकाश म वायु सत्त्व वतमान रहती है, और पखे के हिन स उसवा विगप अनुभव हाता है उसी प्रकार उस निगुण ब्रह्म म समस्त प्राणी प्रतीत हाते ह पर तु वस्तुत वे प्राणी उभय स्थित नहा होत^{१०} । आचार्य शाङ्कर व अनुसार अविद्यावग सम्पूर्ण प्राणियों की रचना हाता है^{११} । ब्रह्म प्राणियों की रचना नहीं करता । जीवा व कर्मों और उनव फला से ब्रह्म अछूता ही रहना है^{१२} ।

तत्तिरीय उपनिषद के अनुसार ब्रह्म मत और वाणी द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता^{१३} । ब्रह्म की सूक्ष्मता व सम्बन्ध म ज्ञानेश्वरजी का मत है कि जो वस्तु छिद्रा से युक्त इस शरीर म रहने पर भी उसम ने गिरकर वाहर नहीं निकलत। इनवे विपरीत जो वस्तु इतनी सूक्ष्म है कि हम उसे गूँथ भी नहीं कह सकते और जो आकाश व पल्ला से छानी गई हो परत इतनी

७६ टि पद्या — उपयुक्त कथन का प्रयोजन ब्रह्म का नाम रूप स रक्षित सिद्ध करने का है । शकर व अनुमार नाम रूप शक्ति वस्तुत एक स्वरूप व अनेक रूपान्तर ह, पैम जल की तर्गों पेन और बुलबुले सभी जग व रूपान्तर ह ।

८ दिव्य ज्ञानेश्वरों प ४ १५ ।

९ गीता ६।४।

१० दिव्य ज्ञानेश्वरों, प ४ १ ।

११ गीता भाष्य ६।६।

१२ गीता भाष्य ६।६ ।

१३ यतो वाचो निवर्तन् अप्राप्य मनसा सह । तैत्तिरीय उपनिषत् ३।२।६ ।

विरल और सूक्ष्म हान से जो हिलारन पर भा प्रपच की इस नीची म म नीच नहीं गिरती वह परब्रह्म है^{८१} ।

बह्दारण्यक उपनिषद् म ब्रह्म का अनिवचनीयता का कथन 'नेति नेति भादेग क द्वारा किया गया है । इस भांति म ब्रह्म एसा नहा है ब्रह्म एसा नही है एसा कहा गया है । आचार्य गङ्गुल क अनुसार ब्रह्म मन और वाणी स अनित है । महा यद् सन्देह हा सकता है कि बह्दारण्यक उपनिषद् के नति नति भांति द्वारा कहा ब्रह्म का निषेध ता नहा कर दिया गया है । उनके अनुसार नेति-नेति भांति क द्वारा ब्रह्म म प्रपच का प्रतिषेध किया गया है । ब्रह्म अधिष्ठान रूप म प्रपच को धारण करता है, अत ब्रह्म ही प्रत्यगात्म रूप है । प्रपच का निषेध कर देने स ब्रह्म निषिद्ध नहा हो सकता है क्यकि मूल रूप म ब्रह्म म ही प्रपच की स्थिति है । आचार्य गङ्गुल का मत है कि प्रत्य गात्म रूप होने क कारण विषया म ब्रह्म का अतभाव नहा हाता । नित्य गुण बुद्ध और मुक्त स्वभाव होने के कारण ब्रह्म म रूप प्रपच का प्रतिषेध है^{८०} ।

आचार्य गङ्गुल न सगुण और निगु ण ब्रह्म का परिच्छिन्न मूल और अमूल लक्षण कहा है^{८२} । उनके अनुसार अमूल क सारभूत पुरुष का चक्षु स सम्बन्ध नहा हाता है^{८३} । इसका तात्पर्य यह है कि निगु ण ब्रह्म क अकथनीय स्वरूप का ज्ञान इन्द्रिया द्वारा नहीं हा सकता है । आचार्य गङ्गुल का मत है कि श्रुतियों का ज्ञान भी व्यावहारिक है । श्रुतिया म ब्रह्म क स्वरूप का प्रति पान करके उसका ज्ञान लभित किया गया है । ब्रह्म के कल्पित रूपा का निवर्तन करके श्रुतिया उसका प्रतिषेध करती हैं । निगु ण ब्रह्म म प्रपच का अभाव दिखाने का उद्देश्य श्रुतिया का नहा है किन्तु उनका उद्देश्य प्रपच का प्रतिषेध करना मुख्य है^{८४} । गङ्गुल का मत है कि ब्रह्म के कल्पित रूप का बोध करके उसके स्वरूप की प्रतिष्ठा करना नेति-नेति भादेग का सत्य है^{८५} ।

८१ दिग्गी बानेशरी, पृष्ठ १२५।

८२ अध्याय भांति नेति नति नस्यगस्मात्ति नेत्यन्यवरमणि ।

बह्दारण्यक उपनिषद् । २।२।६ ।

८३ प्रकृति ताव व हि प्रतियेवति ततो भवति च भूय । ब्रह्मसूत्र । ३।२।२० ।

८४ ब्रह्मसूत्र भाष्य । ३।२।२० ।

८५ ब्रह्मसूत्र भाष्य । ३।२।२२ ।

८६ ब्रह्मसूत्र भाष्य । ३।२।२० ।

अब यहाँ यह प्रश्न होता है कि नेति नेति निषेधात् स ब्रह्म के स्वरूप का निराकरण क्यों नहीं हो जाता है ? इस सम्बन्ध में द्वाताम्य उग्रनिषत् में कहा गया है कि सत्यता क्वचन एक है और दोषता चाणो क विचार हा है^{६२} । आचार्य गान्धर्व का मत है कि वाचारम्भण प्राप्ति गत्यात् से काय की अस्तित्वा लभित्वा हाती है । परन्तु काय का अस्तित्वाभाव हान पर भी ब्रह्म का प्रतिपद्य नहा होता क्वाकि वह सत् कल्पनाप्रा का मूल है^{६३} । इस प्रकार ब्रह्म क मूल और अमूल्य दोना रूपा का प्रतिपद्य होकर मन और चाणो स अनात् स्वरूप का परिणय रहता है । अब यह प्रश्न हाता है कि प्रतिपद्य प्राच-सामू के अनिरिक्त ब्रह्म का ज्ञान कसे हा सकता है ? इस विषय में आचार्य गान्धर्व का कथन है कि ब्रह्म अयक्त है । वह स्वन अया का साणी है उसका साणी अय नही है । ऐसा अयक्त ब्रह्म इन्द्रिया द्वारा नहा जाना जा सकता^{६४} ।

ऊपर हम नेति नेति आदेश द्वारा ब्रह्म की अनिवचनीयता का कथन कर चुके है । नेति नेति पद द्वारा भौतिक विषयना का निषेध किया गया है । अतः यहाँ यह सन्देह हा सकता है कि नेति नात् प्रतिपद्य द्वारा ब्रह्म का भी निषेध हो सकता है । ऐसी दशा में ब्रह्म अभाव रूप निश्चित किया जायगा । किन्तु आचार्य गान्धर्व का मत है कि प्रतिपद्य द्वारा ब्रह्म अभाव रूप नहा निश्चित किया जा सकता क्वाकि ब्रह्म ही प्रतिपद्य का आधार है । उनका कथन है कि प्रतिपद्य का पयवसान ब्रह्म में है अभाव में नहा । अतः ब्रह्म अभाव रूप नही कहा जा सकता^{६५} । ब्रह्म की अस्तित्वा अथवा अभावरूपता का कथन करना नेति नेति पद का लभ्य नहा है ।

इस प्रकार ब्रह्म अनिवचनीय है और यह अवचनीय निगुण ब्रह्म ही गान्धर्व की चिन्तन-परम्परा का प्रतिपाद्य है ।



६२ वाचारम्भण विकाग नामधेय मत्तिने यव सयन । द्वाताम्य उग्रनिषत् ६।१।४ ।

६३ मद्भयन भाष्य । ३।२।२२ ।

६४ मद्भयन भाष्य । ३।२।२२ ।

६५ मद्भयन भाष्य । ३।२।२२ ।

द्वितीय प्रकरण

प्राचाय शङ्कर के अनुसार सृष्टि, माया, अविद्या, अध्यास और प्रकृति का स्वरूप

प्राचाय शङ्कर के अनुसार ब्रह्म के रूप पर विचार करने के अनन्तर उनके सृष्टि-सम्बन्धी विचारों का परिचय देना आवश्यक है। हम देखते हैं कि ब्रह्मसूत्रों और उपनिषदों में सृष्टि विषयक अनेक मन्थन आये हैं। प्राचाय ने सृष्टि विषय का भाष्य उक्त ग्रन्थों में प्रस्तुत प्रमाणों के अनुसार और अनुकूल ही किया है। अथवा, शङ्कर अद्वैत दर्शन का प्रतिपाद्य सृष्टि नहीं है। प्राचाय ने सृष्टि को 'यावहारिक और प्रातिमात्रिक सत्ताओं के जन्मगत ही स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध में शङ्कर दर्शन में प्रतीत सृष्टि माया और अविद्या अध्यास और प्रवृत्ति के स्वरूपों का अध्ययन के निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं। ये सभी विषय परस्पर एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं किन्तु इनका हस्त रूप भी इनका अपना अपना तात्त्विक महत्त्व भी है। इसी विचार से इनका पृथक्-पृथक् विवेचन किया गया है।

प्राचाय शङ्कर के अनुसार सृष्टि का स्वरूप

छान्दाग्य उपनिषद् में कहा गया है कि 'पहले एक म' ही था^१। ऐतरेय उपनिषद् में कहा गया है कि 'पहले केवल आत्मा ही था और उसने ईक्षण किया कि लोकों की रचना करे'^२। इन वाक्यों से यह निश्चित होता है कि सृष्टि के पूर्व कोई अस्तित्व था और उस अस्तित्व में जगत् की अनवरूप पण्य सत्ता की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार एक सद्ब्रह्म या सत्तात्मा से सृष्टि के विकास होने की प्रतिपाद को सत्तापदान कहते हैं। तृतीय उपनिषद् के अनुसार पहले यह असद् ही था, इससे सत् उत्पन्न हुआ^३। इस प्रकार एक 'असत्' से सृष्टि के

१ सत्त्वं नामोत्तममत्र आसीत्कनवर्णितवम्। छान्दाग्य उपनिषद् १२।२।१।

२ आत्मा वा इमेकमवाप्य आत्मानं स इच्छन् लोकान्नुत्पन्नैः। ऐतरेय उपनिषद् १।२।१।

३ अथाद्वा इत्ययं आसीन् नतो वै सत्त्वं जायते। तैत्तिरीय उपनिषद् २।३।

विकास क्रम की प्रक्रिया को असत्त्वायवात् कहते हैं। आचार्य शाङ्कर असत्त्वाय वाद का खण्डन करते हैं। उनके मतानुसार असत् वात् से 'सद्' रूप में व्यक्त सत्त्व के अस्तित्व का निषेध नहीं होता। इस सद् वात् से कथित सत्त्व के अस्तित्व का प्रतिषेध किसी पदार्थ से नहीं हो सकता। सत्त्व काय रूप से ब्रह्म में वस्तुमान रहती है। इसलिए सत्त्व का कारण रूप ब्रह्म काय रूप सत्त्व की उत्पत्ति के पूर्व भी वस्तुमान वात्।

नाम रूपा में व्यक्त हो जाने पर वस्तु का निवेदन उपनिषद् में 'सद्' शब्द द्वारा होता है। यह सत्त्व प्रारम्भ में व्यावृत्त नहीं थी और नाम रूपा की अभिव्यक्ति भी नहीं थी। आचार्य शाङ्कर के अनुसार उस स्थिति को ही असत् नाम से अभिहित किया गया है^४। असत् काय-कारण में अभिनता है^५। इस प्रकार काय वस्तु का कारण स्वरूप ही है। इसी आधार पर काय जगत की भी एक कारण रूप में स्थिति है। आचार्य शाङ्कर कहते हैं कि ब्रह्म तीना काला में सत्ता से व्यभिचरित नहीं होता। उसी प्रकार काय जगत की सत्ता से भी ब्रह्म कभी व्यभिचरित या दूषित नहीं होता^६। इस सत्ता का अर्थ जगत की दयात्मक उपलब्धि नहीं है। इस सत्ता का स्वरूप ब्रह्म के साथ एक रूपता स्थापित करना है क्योंकि यावहारिक सत्ता का बाध परमाथ में हो जाता है।

सत्त्व-सम्बन्ध में कारण दो रूपों में ग्रहीत है—निमित्त और उपादान कारण। निविशय चतयादि के रूप में निमित्त कारण और सत्त्व-पदार्थों के रूप में उपादानता की उपनिषद् होती है। यदि यह कहा जाय कि ब्रह्म तो निर्गुण अर्थात् स्वरूपा में ही है तब उसमें स्थूल दश्यादि जागतिक उपलब्धियों की रचना नहीं हो सकती। आचार्य शाङ्कर के अनुसार ब्रह्म ही जगत का उपादान कारण भी है^७। काय कारण में अभेद है। उपादान कारण ही काय

४ प्रतिषेधमात्रहीनाऽस्य प्रतिषेधस्य प्रतिषेधमिति, नद्वय प्रतिषेध प्रागुपत्ते मत्त कायस्य प्रतिषेद्धु शक्तोनि। यत्रैव हीनोतीनापी कारणत्वना सत्त्व प्रागुपत्तेरपीति गम्यते।

ब्रह्मसूत्र भाष्य २।१।७।

५ नामरूप व्यावृत्त द्वि वस्तु सद्वात्वात् लोके प्रसिद्ध। अत प्राङ् नामरूप वाकरणारु दिवाऽस्तीत्युपनिषत्।

ब्रह्मसूत्र भाष्य २।१।७।

६ एक च पुन रुतवगतोऽप्यमन्त्रः कारणान् कावश्य।

ब्रह्मसूत्र भाष्य २।१।१६।

७ ब्रह्मसूत्र भाष्य २।१।१६।

८ उपादान — शक्ति के अनुसार जो जन्म उपनि होता है और जन्मों लीन होता है वह उस वस्तु का उपादान कारण है।

ब्रह्मसूत्र भाष्य १।४।२५।

म परिणत होता है। सृष्टि विषय म जगतादि विविधता का ब्रह्म-परिणाम भी कहा जाता है। परन्तु वं ब्रह्म परिणामवाद को स्वीकृत नहीं करन। उनके अनुसार एक ही ब्रह्म परिणाम रहित और परिणाम युक्त नहीं हो सकता^६। इस सम्बन्ध म प्रश्न है कि जस ब्रह्म आत्मा स अभिन है और तान मोक्ष का साधन है, उसी प्रकार यदि ब्रह्म परिणाम भी स्वीकार कर लिया जाय तो क्या सृष्टि है? इस पर भाषाय शङ्कर कहते हैं कि वस्तुतः जगत शब्द उपचार मात्र है। सृष्टि काय म एक निश्चित काय-कारण सत्ता अनुभूत है। दूष स हा दही बन सकता है मिटटी से नहीं। इसी प्रकार मिटटी स घटाणि बन सकते हैं, दुग्ध-दधि नहीं। कारण यह कि कारण वे सद होने स काय की सत्ता हो सकती है। दुग्ध से ही दधि-काय हो सकना है क्योंकि कारण अवस्थाम ही काय की स्थिति है^७। भाषाय शङ्कर के मतानुसार इस प्रकार असत्कायवाद अनुपपन्न है।

मिटटा स घट, धरवाणि अनेक रूपा का निर्माण होता है एव कारण स विलक्षण अनवविध कार्यों का प्रत्यक्ष और व्यवहार होता है। ऐसी दशा मे काय की सत्ता कारण स पथक उपलब्ध होता है। भाषाय शङ्कर के अनुसार काय-कारण मे संवया अभेद है^८। जिस प्रकार छातान वितान रूपो म उपलब्ध तन्तुओ द्वारा बने घट को तन्तुओ स पथक नहीं कर सकते हैं उसी प्रकार कारण-तन्तु और काय घट म संवया अभेद है। अथ पदार्थ की सत्ता म अन्य की उपलब्धि नहीं होती^९। अथ वे अस्तित्व म गौ की उपलब्धि नहीं हो सकती और गौ में अद्व की नहीं। उपनिषद् म कहा गया है कि पहले सद हा था अथवा एक आत्मा ही था^{१०}। वे मानते हैं कि अर्वाचीन काय की उत्पत्ति के पहल कारण रूप म ही काय वतमान था^{११}।

भाषाय शङ्कर वे मतानुसार परिणाम स कोई स्वतंत्र रूप स फल अभि प्रेत नहीं ह। सर्वमविशेष रहित ब्रह्म के तान से फल सिद्धि होती है।

६ ब्रह्मसूत्र भाष्य १२।१।१५।

७ ब्रह्मसूत्र भाष्य १२।१।१८।

११ भवति हि प्रत्यक्षापत्तयि कायकारणयोरनन्यत्वे । तद्यथा—तन्तुसंस्थाने पटे तन्तु व्यतिरिक्त्य पटोनाम काय नैवापत्तभ्यन्ते वेकलारतु तन्त्रव आतानवि नान्त प्रत्यक्षमुप लभ्यन्त, तथा तन्तुधरावोऽप्युप लभ्यन्त ।

१२ न च नियमलाऽयम्यभावेऽन्यस्योपलब्धिः स्या, नद्वारवो गोरन्य सन् गोमास एवोप लभ्यत ।

१३ ध्यानान्य उपनिषद् १।१।१।

१४ कारणानमैव कारणे सर्वं भवका रीनस्य ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य १२।१।१६।

अतः जगद्रूप से परिणत होने वाला ब्रह्म अथवा रूप से प्रतिपादित है^{१५} । परिणाम वस्तुतः वायु प्रपञ्च का प्रत्याख्यान नहीं करता । परन्तु आचार्य शाङ्कर सगुण उपासना में ब्रह्म परिणाम का उपयोगी भी मानते हैं^{१६} ।

चतुर्थ ही जगत का कारण हो सकता है जड़ नहीं । जिस प्रकार नेत्रादि से रूपादि की अयत्न होती है उसी प्रकार चतुर्थ द्वारा सृष्टि का होना प्रकृत है^{१७} । इस सम्बन्ध में वशात का जड़ प्रधान से उत्पत्ति मानने वाले साक्ष्य सिद्धांत से विरोध है । सत चित और अज्ञान स्वस्वभाव की स्वीकृति ब्रह्म के ग्राह्य स्वरूप के साथ कही जा चुकी है । सृष्टि के निरूपण में भी इन लक्षणों का आरोप ब्रह्म पर और जगत पर होना है । सत ब्रह्म ही जगत का कारण है^{१८} । वही जगत का कारण करने वाला और मूल चतुर्थादि को ग्राह्य मान नियंत्रित करने वाला कहा गया है^{१९} । ब्रह्म कारणवाद के पक्ष में आचार्य शाङ्कर की युक्तियाँ ये हैं —

१—साक्ष्य का प्रधान उड होने के कारण सृष्टि नहीं कर सकता ।

२—साक्ष्य का पुरुष स्वतः निष्क्रिय होने से सृष्टि नहीं कर सकता ।

३—जीव यावहारिक पराधीनता के कारण स्वतः सृष्टि उत्पन्न करने में समर्थ नहीं है ।

४—प्रकृति ईशानिय कर्तृत्व अज्ञान के लिए ईश्वर के अधीन है । अतः उससे स्वतंत्र सृष्टि नहीं हो सकती ।

वशात सूत्रों में अज्ञान और वद का भी प्रपञ्च कारण कहा गया है^{२०} । वद अज्ञान ही देवतादि की उत्पत्ति मानी गई है ।

अज्ञान का आचार्य शाङ्कर नित्य मानते हैं । उनके अनुसार नित्य अथ के साथ अज्ञान भी नित्य है । यह अज्ञान वाचक रूप में स्थित रहता है । इसी व्यावहायिक अथ से यावहाय अज्ञान की निष्पत्ति होती है । इस प्रकार अज्ञान से सृष्टि मानी गई है^{२१} । इससे उनका तर्क यह है कि अथ नित्य है । अथ के नित्य

१५ ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।१४ ।

१६ अत्रत्याख्यान का अर्थ व परिणामप्रक्रिया का अन्वयने सगुणरूपाननेरूपयाख्यान ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।१।१४ ।

१७ ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।१।१४ ।

१८ चतुर्थ ब्रह्म जगत का कारण । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।११ ।

१९ सा च प्रशासनात् । ब्रह्मसूत्र । १।१।११ ।

२० अज्ञान इति चिन्नात् प्रभवानुमानान्भाष्य ।

ब्रह्मसूत्र । १।३।२८ ।

२१ ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।३।२८ ।

होने से उभवा वाचक भी नित्य है। गल ही उस धन का वाचक है। अस्तु वेद गणानि सृष्टि के समान ही नित्य हैं। धन की नित्यता में प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण है। प्रत्यक्ष से तात्पर्य धुनि का न और अनुमान का लक्ष्य है स्मृति। धुनि और स्मृति में वेद गण से सृष्टि मानी गई है^{२२}। देवतानि समस्त जगत वेद गण से उत्पन्न होता है अतः वेद नित्य हैं^{२३}।

सृष्टि अनादि है। भूत, भविष्य वतमान जन्म स्मृति और प्रलय द्वारा सृष्टि नम बाधित नहीं होता। वस्तुतः प्रलय भा सृष्टि का एक रूपान्तर मात्र है। प्रलय द्वारा तत्त्वों का विनाश अथवा उच्छेदन नहीं होता। समस्त पदार्थों के आकार लुप्त हो जाते हैं। आचार्य गङ्कर के अनुमान जिस प्रकार प्राणी सो कर जगने पर पुनः पूर्ववत् व्यवहार करता है उसी प्रकार उत्तरोत्तर प्रलय मजनादि में व्यवहार चरिता रहता है^{२४}। इसी प्रकार वेद का नित्यत्व भी सृष्टि कल्याणतरो में बाधित नहीं होता। कौपीनिक उपनिषद् के अनुसार जिस प्रकार साया हृष्ठा पुरष जब जागता है तब अग्नि से स्फुलिंगा क समान आत्मा से प्राण देवता और लोक प्रकट हो जाते हैं^{२५}।

महाप्रलय में भी हिरण्यगर्भादि ईश्वरा को सब व्यवहार स्मरण रहते हैं। आचार्य गङ्कर का मत है कि यदि ऐसा महाप्रलय हो जिसमें सब व्यवहारों का उच्छेदन हो जाय तो भी परमेस्वर के अनुग्रह से हिरण्यगर्भादि ईश्वरों का पूर्वकल्प के व्यवहार का स्मरण रह सकता है^{२६}। अथवा प्रश्न यह होता है कि प्रत्येक कल्प में सृष्टि में मौजिबता रहता है अथवा पूर्वकल्प के समान ही उत्तरकल्प की भी सृष्टि होती है। आचार्य गङ्कर धुनि के आधार पर उत्तरसृष्टि भी पूर्व कल्प के अनुसार ही मानते हैं। यदि उत्तरकल्प में वितक्षणत्व स्वीकार कर लिया जायगा तो जीव व कर्मों और उसके फल की

२२ ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।३।२८।

२३ अत एव च नित्यत्वम् ।

ब्रह्मसूत्र । १।२।२६ ।

शास्त्र सिद्धान्त के अन्तर्गत दो वाक्यों का उल्लेख शंकर ने किया है— स्फोटवाद और वर्णवाद। आचार्य शंकर वर्णवाद और स्फोटवाद को प्राचीन आचार्यों के अनुसार ग्रहण करते हैं। सारास, व वेदान्त सन्तों के आधार पर वेदान्ति शास्त्रों को नित्य मानकर उनमें सृष्टि की उत्पत्ति मानते हैं।

२४ ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।३।३० ।

२५ ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।३।३० ।

२६ ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।३।३० ।

व्यवस्था बाधित होगी^{२०} । इसी प्रकार श्रुत संहिता में भी पूवकल्प के समान सूत्र चन्द्राणि पृथ्वी भूतरिदाणि की सृष्टि कही गई है^{२१} । आचार्य शाङ्कर का कथन है कि जगत का नाश हो जाने पर भी इसकी सृष्टि नष्ट नहीं है । उसी शक्ति से पुनः सृष्टि उत्पन्न होती है । शक्तियाँ अनेक प्रकार की नहीं हैं । इन्द्रिय और विषय के सम्बन्ध के समान लोक देव पशु मनुष्य वण आश्रम धर्म और पत्र की व्यवस्थाएँ भी अनादि हैं^{२२} ।

सृष्टि से सम्बन्धित ईशान और प्रलय श्रुतियाँ विशेष महत्त्व की हैं । एक कारण से अनेक रूप वार्यों में एकता और अनर्थात्मित स्थापित करना ईशान और प्रलय श्रुतियाँ का उद्देश्य है । अतः सिद्धांत की प्रतिष्ठा में सत्कायवादी की ये प्रतिश्राव्यें अद्वितीय ब्रह्म सत्य की स्थापना करती हैं । इनसे यह सिद्ध होता है कि काय वचिन्म्य होने पर भी कारण में वचिन्म्य नहीं है । दूसरे यह अनेक रूप सजन भी मूलतः एक रूप ही है^{२३} । सृष्टि रचना का क्या प्रयाजन है ? शाङ्कर का मत है कि परमात्मा प्राप्त काम है । उसे सृष्टि निमित्त में किसी प्रयोजन की अपेक्षा नहीं है । आचार्य शाङ्कर सृष्टि का अधिक महत्त्व भी नहीं देते क्योंकि वह अविद्या कल्पित और अपारमार्थिक है^{२४} । यदि ऐसा स्वीकार किया जाए तो परमात्मा में नष्टप्यादि दोष प्रसक्त होते हैं । ससार में कोई अतिमुखी और कोई अतिदुखी होता है । यह वषम्य भी ईश्वर पर आरोपित होता है । परन्तु बात ऐसी नहीं है । अनादि सृष्टि में कम भी अनादि है । मनुष्य या प्राणी अपने कमकमानुसार सुखी अथवा दुखी होता है^{२५} । उपनिषद् और ब्रह्मसूत्रों में पहले आकाश की उत्पत्ति मानी

२० वेदा य यानि कर्माणि प्राप्तं तेषां प्रतिषेद्धिरे ।

तान्येव ते प्रपन्नैः सन्नानां पुनः पुनः । महाभास्कराचार्यव । १.२.२५

मद्मनू भाष्य । १.१.३३ ।

२१ सूयान्द्रमसो धात्रा यथापूर्वमकल्पयत् ।

शिव उ प्रथिरी सन्तरिचमथो रव । ऋक सत्तिल । २ । १.६ । ३। मद्मनू भाष्य । १.१.३० ।

२२ मद्मनू भाष्य । १.१.२० ।

२३ तत्तत्त । द्वाप्तोऽय उपनिष । ६। ३। सत्तेव सोम्येऽमम आमोऽकमेव द्वितीयम् ।

द्वाप्तोऽय उपनिष । ६। २। १ ।

२४ लोकवस्तु लीला कल्पयत् ।

मद्मनू । २। १.३३ ।

२५ तत्तत्तत्त गगान्येवामाकाराणि कर्माणि कारणाणि भवन्त्येवमीश्वर

मापेक्षत्वात् वैषम्यनष्टं स्यान्मया दुष्यति । मद्मनू भाष्य । २। १.३४ ।

वैषम्यनष्टं स्ये न सापेक्षं वास्तुशक्तिं शयति । मद्मनू । २। १.३४ ।

न कर्माविभागाणि चन्नागाणि चान् । मद्मनू । २। १.३५ ।

गई है फिर वायु की वायु से तेज अथवा अग्नि की, अग्नि से जल की और जन से अन्न अथवा पृथ्वी की^{३३} । आत्मा से ही इन्द्रिया की उत्पत्ति होती है । भाषाम शङ्कर पंच भूतों और इन्द्रिया की उत्पत्ति में कोई क्रम नहीं मानते^{३४} । इसी प्रकार मुख्य प्राण की भी उत्पत्ति उसी अद्वितीय आत्मा से होती है^{३५} । नामरूप की रचना भी उसी से होती है । नामरूप व व्याकरण को ही सामूहिकवित्ति कहते हैं^{३६} । द्वात्रिंशत् उपनिषद् में नाम रूपाणि पदार्थों का त्रिविकरण कहा गया है । भाषाय शङ्कर के अनुसार प्रत्येक नामरूप का व्याकरण तत्र जल और अन्न की उत्पत्ति व कथन से किया गया है^{३७} । इसी प्रकार माय आत्मा अनात्मक भूमि व काय हैं^{३८} । इस प्रकार त्रिवत् पठति से मानरूपाणि का कथन है त्रिवत् पदार्थों का साम्य होना आवश्यक नहीं है । यदि एक धातु विशेष रूप से वनमान हो सकती है जैसे तेज से अग्नि का आधिक्य है और उत्क म जल का^{३९} । एकत्व के प्रसंग में तीन भूतों के सम्बन्धी भेद व्यवहार है । सप ह्य भेद व तिरोभूत होने पर रज्जु सत्य भवतिष्ठे रहेगा । अतः त्रिविकरण व्यावहारिक है पूरा सत्य नहीं है^{४०} ।

भाषाय शङ्कर का उद्देश्य परमाय का निवचन करना है व्यवहार की व्यवस्था देना नहीं । अस्तु के सृष्टि आत्मा व्यावहारिक अथवा पंच भौतिक तन्मा की सहायता मात्र परमाय कथन में लत है । सृष्टि उपनिषद् का प्रिय प्रतिपाद्य है और वनात-जान म ब्रह्म जिनासा व अन्तगत ब्रह्म की प्रामाणिकता जगत की जन्म स्थिति और प्रलय के द्वारा सिद्ध की गई है । सृष्टि-सम्बन्ध में प्रथम

- २२ यावद्विकार तु विभागे लोकेषु । ब्रह्मसूत्र २।३।७ ।
 एतन्मात्रैरवा व्याख्यात । ब्रह्मसूत्र २।२।१ ।
 तेषोऽतन्मया इयात् । ब्रह्मसूत्र २।३।१० ।
 आप । ब्रह्मसूत्र २।३।११ ।
 पश्चिदाधिकाररूपसाध्यान्तरस्य । ब्रह्मसूत्र २।३।१२ ।
 शङ्कर के अनुसार अन्न सत्त्व पृथ्वी का त्रिक है । ब्रह्मसूत्र भाष्य २।२।१३ ।

३४ ब्रह्मसूत्र भाष्य २।३।१५ ।

३५ श्रेष्ठत्वं । ब्रह्मसूत्र २।४।१ ।

२६ सप्तमूर्तिनिमित्तित्यु निवृत्तवत् उपदेशात् । ब्रह्मसूत्र २।४।१० ।

३७ ततोऽन्नोऽद्विक्त्वेनेजतत्तत्त्वात् । ब्रह्मसूत्र भाष्य २।४।२० ।

३८ मामाणि भूमि यथागन्धितरयोश्च । ब्रह्मसूत्र २।४।२३ ।

३९ वेसाथात्तु तद्वत्त्वात् । ब्रह्मसूत्र २।४।२२ ।

४० अनात्तत्र त्रिविकरणं तु त्रैक्यापत्तौ सत्या त मेतन्मूनजययोर्वरो लोकेषु प्रमित्यन्त ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य २।४।२२ ।

तो व्यावहारिक अथवा जागतिक प्रत्यक्ष स्वतः ही अनुभूत होता है। दूसरे, इस अज्ञेय विषय में मनुष्य बुद्धि सगम नहीं है। वेदांत इसकी अनिश्चनीय मानता है। पारमार्थिक क्षेत्र में सृष्टि आदि मार्थिक सत्य मान रह जाते हैं। सृष्टि पदार्थों के सम्बन्ध में आकाश वायु, जल आदि पंच तत्त्वा को ही वेदांत के अतगत प्रपञ्च की सत्ता दी गई है। छांदोग्य उपनिषद् में त्रिवत्करण पद्धति के द्वारा पत्वार्यों के अस्तित्व धारण का संकेत मिलता है^{४१}। परन्तु आचार्य साङ्ख्य ने त्रिवत्करण का वहीं पृथक् रूप से उल्लेख नहीं किया है। ब्रह्मसूत्रों में भी उन्होंने उमका भाष्य सूत्र के प्रसंगवत् ही किया है। सृष्टि उनका प्रतिपाद्य विषय न होने के कारण उमकी जो भी व्यवस्था दी गई है वह मार्थिक अथवा अविद्यात्मक ही है। परन्तु उत्तरकालीन अत वेदांत में पत्वार्यों का पञ्चीकरण किया गया है। जिस प्रकार त्रिवत्करण में तेज, जल और ध्वनि ये तीन तत्त्व ही समस्त नाम रूपादि के कारण हैं उसी प्रकार पञ्चीकरण में पंचतत्त्वा का सम्बन्ध प्रकृत किया गया है। पञ्च पंच महाभूत अपञ्चीकृत थे। अपञ्चीकृत महाभूत पांच विभागों में विभक्त नहीं होते हैं। ईश्वर की इच्छा से वे स्थूल पांच भूतों के रूप में उत्पन्न होते हैं। इन स्थूलभूत पंच महाभूतों का ही पञ्चीकरण होता है^{४२}।

पंच भूतों की पञ्चीकरण पद्धति

इसके अनुसार प्रत्येक पंच भूत को दो भागों में विभक्त किया जाता है। इस प्रकार पंच भूतों के दस भाग होते हैं। पुनःच उन दस भागों के पांच आधे आधे षोडशरूप दूसरे प्रत्येक पांच भागों को चार चार भागों में विभक्त किया जाता है। इस प्रकार परस्पर सब भिन्न भिन्न भूत भिन्नकर पञ्चीकृत कहलाते हैं। जिस प्रकार कोई पांच मित्र एक एक फल खाने लगे जिसमें सब प्रत्येक आधा अपने लिए रखे और अवशिष्ट अर्धभाग को सब परस्पर बाँट लें उसी प्रकार पांच तत्त्वा का मिलाप होता है^{४३}। जल आकाश के पञ्चीकरण में—

आकाश के दो भाग किये। इनमें से एक भाग अवशिष्ट रखा गया और

४१ आकाशो वै नान् नान् रूपयोर्निर्वहिता । छांदोग्य उपनिषद् । ६।१।१।

अग्नि का रोहित रूप, शुक्ल रूप पतल का, शृण्ण रूप अन्न का है।

छांदोग्य उपनिषद् । ६।१।४।

४२ य तीन देवता प्रत्येक त्रिवत्त्वाने हैं । छांदोग्य उपनिषद् । ६।३।४।

विचार चन्द्रोप्य—तृतीय कला ।

४३ विचार चन्द्रोप्य । कला ३।

द्वितीयाद्य क चार भाग क्रिय । ये भाग आकाश में नहीं मिलत । पुनश्च—

एक भाग वायु म मिले ।
 एक भाग तेज म मिले ।
 एक भाग जल मे मिले ।
 एक भाग पृथ्वी में मिले ।

अपचीकृत पाँच महाभूता का पचीकरण नहीं होता । इन्हें मूलम मत और तन्मात्रा भी कहते हैं^{४४} । काम शोध शोक मोह और भय ये आकाश के पाँच तत्व हैं । वायु के पाँच तत्व चलन बलमें घावन प्रसारण और श्रावु चन हैं । शुष्ण, तपणा आतम्य निद्रा और कान्ति ये तेज के पाँच तत्व हैं । गुफु शणित सार भूत्र और प्र... जन के तत्व हैं । पृथ्वी के पाच तत्व अस्थि मज्जा नाडी त्वचा और रोम हैं । ये पाचों तत्व पचीकरण के अनुसार पच भूतों के अंग हैं । जम आकाश में —

- १ शोक—आकाश का मुख्य भाग है ।
- २ काम—आकाश में तेज का भाग है ।
- ३ शोध—आकाश में वायु का भाग है ।
- ४ मोह—आकाश में जल का भाग है ।
- ५ भय—आकाश में पृथ्वी का भाग है ।

इसी प्रकार उभय क पचीस तत्व पचभूता के साथ समबिबत हैं^{४५} ।

अविद्या और माया

विद्यने वृष्टों पर सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय आदि शक्तियों पर विचार किया गया । वहाँ यह प्रतिपादित किया गया है कि शङ्कर सृष्टि को धारमायिक सत्य नहीं मानते । असु जो असत्य है वही अविद्या और माया है । यहाँ हम सृष्टि के अविद्यात्मक अथवा मायात्मक स्वरूप पर सन्निपत्त विवेचन प्रस्तुत करते हैं । ईशावास्योपनिषद् म कहा गया है कि जो अविद्या की उपासना करते हैं वे धीरे अघकार म प्रवेश करते हैं । भावाय शङ्कर ने यहाँ पर कम की अविद्या माना है^{४६} । इसा उपनिषद् म समृति और असमृति दो शब्दों का

^{४४} विचार शब्दोत्पत्त्या । कला ३ ।

^{४५} विचार चन्द्रोत्पत्त्या । कला ३ ।

उक्त शक्ति से सम्पूर्ण तत्व निम्नतः का उत्पत्ति है । स पद्धति का उत्पत्ति उत्तरकालीन ब्रह्म चिन्तन परम्परा का अंग है । उत्तरकालीन वेदों में भी शक्ति रूप प्राकृतिक माना गया है । भावाय शङ्कर के अनुसार सच्चिदानन्द के उत्पत्ति उत्पत्ति का अर्थ या प्रतिपाद नहीं है ।

^{४६} ईशावास्य उपनिषद् । भाष्य । १५ ।

प्रयोग हुआ है। आचार्य शाङ्कर के अनुसार सत्भूति अव्यावृत्त प्रकृति का वाचक शब्द है और सत्भूति हिरण्यगर्भ नामक वाचक शब्द का। उन्होंने अव्यावृत्त प्रकृति को अविद्या कहा है। ये दोनों व्यक्त और अव्यक्त प्रकृतियाँ हैं यह इन्होंने अविद्यात्मक मानते हैं^{४७}। ये दोनों उपासना के लक्ष्य हैं। मुख्य उपनिषद् में भी अविद्या शब्द से काम का ही बोध कराया गया है^{४८}। अविद्या को उन्होंने शक्ति माना है। यह शक्ति ब्रह्म की है। अविद्या स्वरूप बीज शक्ति अव्यक्त शब्द से अभिज्ञित की जाती है। यह अव्यक्त शक्ति परमेश्वर के अधीन रहती है। आचार्य शाङ्कर ने इसकी मायामयी और अज्ञान स्वरूपा सृष्टि करा है^{४९}। इस अविद्या से ही जीव के सब व्यवहार चलने हैं^{५०}। गीता में इस शक्ति को अक्षर कहा है। शाङ्कर इस अक्षर को भगवान की भाषा शक्ति मानते हैं^{५१}।

आचार्य शाङ्कर ने ब्रह्म और जगत् के निरूपण में अविद्या शब्द का प्रयोग किया है और माया का काम। माया शब्द का उन्होंने प्रयोग नहीं किया है। इस प्रधान उपनिषदा में इसका प्रयोग प्रायः २५ बार हुआ है। गीता में माया शब्द प्रायः ४० बार आया है। ब्रह्मसूत्र भाष्य में माया शब्द की केवल ३० बार ही पुनरावृत्ति हुई है। परन्तु साण्ड्याकारिकाओं के मूल में इसका प्रयोग २५ बार हुआ है। डॉ० रामानन्द तिवारी के अनुसार भाषाण्डिका का प्रयोग नत्तिक प्रसंग में किया गया है। उपनिषदा में इसका प्रयोग ईश्वर की रहस्यमयी शक्ति के रूप में हुआ है और न अविद्या वाचक के रूप में^{५२}।

डॉ० रामानन्द तिवारी ने 'शाङ्कराचार्य का आचार्य दान नामक ग्रन्थ में माया को छानना अथवा भिव्याचार रूपा माना है^{५३}।

श्वेताश्वतथ उपनिषद् में माया ईश्वर की सृजक शक्ति के रूप में अंकित हुई है और माया को ही प्रकृति कहा गया है^{५४}। ईश्वर की रहस्यमयी शक्ति की अभिव्यक्ति माया के रूप में हुई है। ईश्वर में माया का आश्रय होने के कारण ईश्वर को आचार्य शाङ्कर ने मायावी कहा है। डॉ० रामानन्द तिवारी

४७ ईशावास्य उपनिषद् भाष्य १।

४८ मुख्य उपनिषद् भाष्य १।२।१।१।

४९ ब्रह्मसूत्र भाष्य १।४।३।

५० गीता भाष्य १।५।१६।

५१ शाङ्कराचार्य का आचार्य दान।

५२ ब्रह्मसूत्र भाष्य १।४।३।

५३ शाङ्कराचार्य का आचार्य दान।

५४ माया तु प्रकृतिं विद्यामपि तु मद्भस्वम्। श्वेताश्वतथ उपनिषद् १।४।१।

के अनुसार मायावी उपमान का प्रयोग अपनी सृष्टि द्वारा अस्पष्ट रहने वाले ब्रह्म के अनिर्वाच्य स्वरूप के समान ही हुआ है^{५५}। माया शब्द का प्रयोग सृष्टि रचना एवं व्यवहार में अज्ञानता तथा मिथ्यात्व प्रतिपादन करने के लिए हुआ है। मिथ्यात्व का अर्थ अभाव नहीं है बल्कि परिवर्तनीयता, जागतिक पदार्थों का निषेध करने उनके अधिष्ठान स्वरूप ब्रह्म की प्रतिष्ठा है। इस मिथ्यात्व का ही दूसरा नाम अध्यास है। अध्यास अधिष्ठात्मक है।

अधिष्ठाता शब्द का प्रयोग सांगत्यान में भी हुआ है। सांगत्यान के अनुसार अनित्य, अविद्य, दुःख और आत्मा में निरत्य पवित्र, सुख और आत्म भाव की प्रतीति अधिष्ठा मानी गई है। योगत्यान में पुरुष और प्रकृति के समाग के कारण का भी अधिष्ठा कहा गया है^{५६}।

ब्रह्मसंहिता उपनिषद् में कहा गया है कि माया स इन्द्र अनेक रूप धारण करनेवाली है^{५७}। यही अनेक रूप में विकीर्ण सृष्टि को माध्यम रूप में माया अर्थात् हृदय है। आचार्य गङ्गुल ने मायावी शब्द का प्रयोग इसी भाव में किया है, ऐसा प्रतीत होता है। उनके अनुसार देवता शक्ति और मायावी शक्ति के द्वारा अपने स्वरूप का नाश करके बिना ही हाथा धाड़ शक्ति विचित्र सृष्टियाँ करने में जाती हैं^{५८}। माया में उपन्यास मिथ्यात्व ज्ञान प्रकाशन में सहायक है। आचार्य गङ्गुल इस मिथ्याज्ञान को 'याय सूत्र' के अनुसार ही मानते हैं। यह उनकी स्वल्प सृष्टि नहीं है। 'याय सूत्र' में कहा गया है कि दुःखजय प्रकृति दोष और मिथ्या ज्ञान का उत्तरोत्तर नाश होने से उसके पूर्व कालों का नाश होकर अथवा प्राप्त होता है^{५९}। गीता के मूल में माया शब्द का प्रथम प्रयोग है, ऐसा प्रतीत होता है। माया और अधिष्ठा में आचार्य गङ्गुल के अनुसार भेद नहीं है। माया मायाय और मायया में विभक्तियों में माया शब्द गीता में आया है। 'मामया शब्द' से आचार्य गङ्गुल 'यत्र पर भारद कठपुतली शक्ति की माया से विलाही समाना रहता है' ऐसा अर्थ करते हैं। ईश्वर भी सबके

५५ शक्तिज्ञान का आचार्य गङ्गुल।

५६ अनित्यसृष्टिबिन्दु सानानन्द नियमसृष्टिसिद्धिनिर्वाहविद्या। योगत्यान (१०५)।
स्वस्वादिगतयो रवरूपोपनिधिहेतु सयोग।
तस्य हृत्पुत्रिणा। योगत्यान (१०३)।

५७ ब्रह्मसंहिता उपनिषद् (१०५)।

५८ मन्त्रसूत्र भाष्य (१०)।

५९ दुःखजन प्रतीति माया ज्ञानानुत्तरोत्तरादिपदान्तरात्पदपदग

हृदयो मे स्थित होकर सब प्राणियों को आवागमन में घुमाता रहता है^६ । गीता के ७वें अध्याय के १५वें श्लोक में मायया शब्द पर प्रकाश नहीं डाला गया वहीं पर १४वें श्लोक में माया को दवी और त्रिगुणात्मक कहा गया है^७ । आचार्य शाङ्कर ने वहाँ उसे ईश्वर की शक्ति कहा है । उसी श्लोक में मायाम शब्द के लिए सब भूतों को मोहित रखने वाली माया कहा गया है^८ । यहाँ माया के आकार प्रकार पर विवेचन उपलब्ध नहीं है । गीता में माया पद का भाष्य शाब्दिक है । ब्रह्मसूत्र में मायामात्र पद का प्रयोग है^९ । यहाँ स्वप्न को मायामात्र कहा गया है । आचार्य शाङ्कर के अनुसार स्वप्न मूर्ति गाया है, जिसमें परमात्म की भाँष तक नहीं है^{१०} ।

अध्यास की छाया में ही अविद्या और माया पुष्ट होती हैं । वस्तुतः मिथ्या ज्ञान से मायात्मिकी प्रतीति होती है । जैसे मद अधकार में यह स्याणु है ऐसे विज्ञेय ज्ञान के अभाव के समय में पुरुष ज्ञान होता है । इसी प्रकार गुक्ति में यह रजत है ऐसा ज्ञान होता है । इसी प्रकार आत्मा अनात्मा का ज्ञान न होने से मैं आत्मिका सम्बन्ध सिद्ध होता है । आचार्य शाङ्कर के अनुसार आत्मा अनात्मा के भेद जानने वाले पंडितों के भी साधारण गृहस्थों के समान शरीर आदि में मैं ऐसा शब्द प्रयोग और ज्ञान भ्रान्ति से उत्पन्न होते हैं^{११} । यही मिथ्या ज्ञान है । यह मिथ्या ज्ञान ही सम्पूर्ण जगत में माया या अविद्या रूप में अध्यस्त है । इस मिथ्या ज्ञान से ही अद्वैतात्म तत्त्व में द्वैत की प्रसक्ति होती है । अद्वैत ब्रह्म में द्वैत ज्ञान होने का माध्यम उपाधि नाम से अभिहित किया जाता है । आचार्य शाङ्कर कहते हैं कि परमेश्वर तो अविद्या से कल्पित शरीर, कर्ता भोक्ता और विज्ञानात्मा से अर्थ है । जैसे डाल तलवार धारण करने वाले सूत्र से आकाश में चढ़ने वाले मायावी से भूमि पर खड़ा हुआ परमात्म रूप वही मायावी अर्थ है । अथवा जैसे उपाधि से परिच्छिन्न घटानाग उपाधि से अपरिच्छिन्न आकाश अर्थ है^{१२} ।

६ गीताभाष्य । १८।६१।

७ गीताभाष्य । ७।१४।१५।

८ गीताभाष्य । ७।१४।

९ ब्रह्मसूत्र भाष्य । ३।२।३।

१० ब्रह्मसूत्र भाष्य । ३।२।३।

११ ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।१।

१२ ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।१८।

उपाधि अविद्यात्मक है। आत्मा इसक ससग स ही देह, इन्द्रिय मन और बुद्धि रूप में उपजता होता है। भावाय गङ्गुर कहते हैं कि अपरिच्छिन्न आकाश ही घट कमण्डलु आदि उपाधियाँ स परिच्छिन्न-सा भासता है। भ्रान्तियाँ की भ्रान्ति से तत्वमसि इस प्रकार के आत्मा के एकरस क उपदेग के पहले कमल क तत्व आदि ने दिष्ट नहीं है^{१०}। सब सत्त्विक ब्रह्म आदि के द्वारा भावाय गङ्गुर यह प्रतिपादित करत हैं कि ईश्वर स सत्य ससारी नहीं है। ता भी इन अद्वैत स्वरूप में एक औपाधिक सत्ता बतमान है। यह औपाधिक विचारनाम व्यापारित है। जागतिक सत्तादि द्वैतात्मक प्रत्यक्ष पश्या उपाधि-सग स ग्रहण किय जात हैं। भावाय गङ्गुर के अनुसार घट कमण्डलु गुफा आदि उपाधियाँ के साथ जैसा आकाश का सम्बन्ध है उसी प्रकार देहादि सपाठ रूप उपाधियों के साथ आकाशवन ईश्वर का सम्बन्ध है। जम आकाश अभिन्न होने पर भी उपाधि क सम्बन्ध स घटाकाश करकाकाश गत्या का व्यवहार जान आदि लोक म दखा जाता है।

उपाधि-सम्बन्धित पश्याकाश आदि भद्र रूप भिष्याबुद्धि आवाय म पारान्त्रि होता है। उसा प्रकार दंडादि सपाठरूप उपाधि क साथ सम्बन्ध होने क कारण ईश्वर और ससारा की भेदबुद्धि भिष्याबुद्धि है^{११}। इस प्रकार व्यवहार म औपाधिक सत्ता है परमाय में नहीं। इसी सिद्धान्त क अनुसार कृतत्व भाकृतत्व अविद्यात्मक है। जीव का स्वरूप अविद्या स उन्नत दृष्टा है इसलिये उसम स्वप्न म दख हाथी आदि क व्यवहार के समान अविद्या विषय में ही कृतत्व आदि व्यवहारा का निर्देश है^{१२}।

अब प्रश्न यह है कि यह उपाधि किसम है ? यह यति आत्मा म हा तो आत्मा विचारी हागा। मति जीव म है ता उसका माय नहीं हो सकगा। गङ्गुर का कथन है कि जैसे गुद सफटिक की स्वच्छता और गुकन रूप विवक जान होने क पूर्व रक्त नीलादि उपाधियाँ स युक्त हाता है उसा प्रकार विवक जान का उत्पत्ति क पूर्व गरीर, इन्द्रिय, मन बुद्धि विषय वेत्नारूपी उपाधियाँ मे जीव सयुक्त होता है। यद्यपि पूर्व में मा सफटिक वैसा ही स्वतः था तो भी प्रमाणादि स उत्पन्न हुए विवक जान क अनन्तर वही सफटिक अपने स्वच्छ और गुकन रूप से प्रकट दृष्टा कहलाता है। उसा प्रकार देहादि उपाधियाँ स

१० अद्वैत भाष्य ११/१/७

११ अद्वैत भाष्य ११/१/१५

१२ अद्वैत भाष्य ११/१/२१

युवन जीव भी ससारी अथवा अपरमायिक सा प्रीत होता है। श्रुतिया से उत्पन्न पान गरीर के धर्मों से सम्बंधित है और परमाय पान म सहायक मात्र है^७। इन्द्रिया द्वारा बुद्धि के परिणाम रूप उपाधि विनोद के सम्बन्ध स विषया को ग्रहण करता हुआ स्थूल देह के साथ एवम की भांति को प्राप्त हुआ जीव जागता है^८।

समस्त नाम रूपात्मक सष्टि अविद्यात्मक और उपाधिजय है। इससे यह प्रकट है कि यदि सष्टि आदि मायिक ही हैं तो उनकी उत्पत्ति वस्तुतः नहः होता है और जगता का अभाव है। परन्तु आचार्य गान्धर्व के अनुसार ऐसी बात नहीं है। यद्यपि उपाधि अविद्यावृत्त है और ससारी जीव को आच्छान्ति किये है तो भी इनका आश्रय क्षेत्रज्ञ ब्रह्म है। जैसे मकड़ी धरने से ही तन्तु उत्पन्न करती है वगुली गुरु क बिना ही गभ धारण करती है या पक्षिनी बिना किसी साधन के एक सरोवर से दूसरे सरोवर म चली जाती है वस ही ब्रह्म भी बिना किसी साधन सामग्री के सष्टि करता है^९। अतः जो भी पदार्थ रूप जगत "वाक्यारिक" रूप से दृश्य है वह उपाधि आन्ति द्वैत प्रपञ्च की अपेक्षा नहीं रखता। अविद्यान्ति की अनादिता विद्यल पृष्ठा म कही जा चुकी है परन्तु मूल रूप म उसका कोई अस्तित्व नही है। फिर भी इसकी उपलब्धि होती है। ऐसी दशा म अविद्या की अनिवचनीयता प्रमाणित है। अस्तक्यायवाद का निरसन करते हुए आचार्य गान्धर्व का कथन है कि पूणवर्मा के अभिषेक के पूव वध्या पुत्र राजा था, है या होगा ऐसा नहीं कहा जा सकता। वध्यापुत्र कारक व्यापार से उत्पन्न नहः होता अतः जो असत् है उसकी उत्पत्ति त्रिकाल म नहीं है^{१०}। अतः यह अविद्याजय औपाधिक जगत-जीव व्यापार असत् तो नहः है परन्तु नेति-नेति आदेश के अनुसार ब्रह्म की निगुण निराकार क्वाति के रूप म वह सत भी नहीं कहा जा सकता^{११}। इसके अतिरिक्त काय की उपस्थिति कारण म है। अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं हो सकती क्योंकि वध्यापुत्र म काय का अभाव है^{१२}।

७ ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।१६।

७१ ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।१६।

७२ ब्रह्मसूत्र भाष्य १।२।१२५।

७३ ब्रह्मसूत्र भाष्य १।२।१२८।

७४ सतन्तामदुष्यतः । गीता १।३।२२।

७५ ब्रह्मसूत्र भा १।२।१।२८।

ऐतरेय उपनिषद में कहा गया है कि प्रज्ञान ब्रह्म है । यहाँ प्रज्ञान शब्द पर ध्यान देना चाहिए । उक्त उपनिषद में मज्जान^{७६} आचान^{७७}, विज्ञान प्रज्ञान, मेधा प्रति मनीषा,^{७८} जूति स्मृति सवल्प, प्रतु असु, काम और वग प्रज्ञान^६ के नाम बड़े गये हैं^{८०} । उसी के आगे प्रज्ञान को ही ब्रह्म इन्द्र प्रजापति, सम्पूर्ण देवता पृथ्वी आकाश, वायु जल, तेज, अण्डज जरायुज स्वेज उन्मिज, अद्रव यौ मनुष्य हाथी जीव जगम पतत्रि, स्थावर प्राणिवग सभी को प्रज्ञान स्वरूप ब्रह्म के अन्तर्भूत माना गया है^{८१} । ब्रह्म ही सबका लय स्थान कहा गया है । यहाँ प्रज्ञान शब्द चतुर्थ बोधक प्रतीत होता है और उससे ब्रह्म का सर्वमयता सिद्ध होती है । आचार्य गङ्कर इस प्रज्ञान को औपधाधिक मानते हैं^{८२} ।

आचार्य गङ्कर के अनुसार ब्रह्म सम्पूर्ण औपधाधिक विरोधता से रहित नित्य निरजन, निम्न निश्चय गान एव अद्वितीय है । वह निति नेति भाति क्रम से समस्त विषया का बाध करके ज्ञानन योग्य है तथा सग प्रकार के गालिक ज्ञान का अविषय है । वही अत्यन्त विगुद्ध प्रत्नारूप उपाधि के सबंध से सवन और जगन के सबमाधारण और अन्यक्त बीज का प्रवक्तक है । वही प्रज्ञान ब्रह्म याकृत जगन का बीजभूत विज्ञानात्मा का अभिमानी हिरण्यगम है । वही ब्रह्माण्ड के भीतर सबप्रथम उत्पन्न हुए विराट प्रजापति भाति सत्तावादा है । वही ब्रह्म अग्नि आदि की उपाधि में देवता सत्ता वाला है^{८३} । इस प्रकार उपाधि के अभास भी ब्रह्म में प्रमाणित होता है । अविद्या का विस्तृत रूप उसी ब्रह्म का प्रतिरूप है, परंतु ब्रह्म स्वतः अविद्या का स्वरूप नहीं है । अविद्या नसगिक अनादि सिद्ध है और जीव में अविद्या का अध्यास होता है । प्रज्ञान शब्द चतुर्थ स्वरूप होकर सृष्टिकर्ता आत्मा का वाचक है । औपधाधिक आत्मा माया का कारण है, और निरुपाधिक रूप में

७६ ऐतरेय उपनिषद । ३।१।२।

७७ वैश्व ।

७८ प्रमुना ।

७९ रागाग्निनित दु त ।

८० स्पर्शादि कामना ।

८१ ऐतरेय उपनिषत् । ३।१।३।

८२ उपाधि भूतान्मुपाधिजनितं गुणं ज्ञानं धेयानि । ऐतरेय उपनिषत् भाष्य । २।१।२।

८३ ऐतरेय उपनिषत् भाष्य । ३।१।३।

विगुण निर्गुण ब्रह्म है। जीव में अविद्या का अध्यास है। यद्यपि जीव भी ब्रह्म ही है परन्तु व्यावहारिकता द्वारा उसका स्वरूप प्रच्छन्न है। आचार्य शाङ्कर का मत है कि जीव में अविद्या उसी प्रकार अध्यस्त है जैसे गहरे अंधेरे में पड़ी हुई रस्सी में साँप का भ्रम होना। जिस प्रकार रज्जु को साँप समझ कर कोई मनुष्य भागता है और उसमें भय उत्पन्न होकर शरीर में कम्प रोमाञ्च मूर्च्छा आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। परन्तु जब अंध के द्वारा उस रज्जु को जाना जाता है कि यह साँप नहीं रस्सी है तब उसका साँप पानजय भय छूट जाता है। इसी प्रकार जीव में जब तक ब्रह्म का द्वैतजय विकार रहता है तब तक वह बद्ध है। किन्तु द्वैतजय पान को निरस्त हो जाने पर जीव ब्रह्म ही हो जाता है। इस प्रकार वस्तुतः जीव ब्रह्म ही है और परमायतन तो उसमें अविद्या का अध्यास ही होता है और न उसमें उसकी मुक्ति ही होती है^{८४}। अतः यहाँ भी ब्रह्म में विवक्त की सम्भावना है। विवक्त भावना का सङ्घिप्त परिचय हम शाङ्कर के अनुसार ब्रह्म का स्वरूप प्रकरण में दे चुके हैं। विवक्त भावना का विस्तृत विवेचन हम 'सत्ता' के अनुसार सष्टि प्रकरण में पुनः करेंगे।

आचार्य शाङ्कर के अनुसार माया शक्ति स्वरूपा है। माया का ज्ञान मन और वाणी के द्वारा नहीं हो सकता। गीता में इसको कूटस्थ कहा गया है^{८५}। आचार्य शाङ्कर के अनुसार कूटस्थ शक्ति का अर्थ जो कूट अथवा राशि की भाँति स्थित है उसको कूटस्थ कहते हैं। कूट नाम माया है। कूट शक्ति से वचना, छवना कुटिलता आदि भाव ध्वनित होते हैं। आचार्य शाङ्कर के अनुसार माया अनेक रूपा में स्थित है। अतः वह कूटस्थ है^{८६}।

अध्यास

पौछे अविद्या और माया प्रसंग में हमने अध्यास शब्द का प्रयोग किया है। यहाँ हम शाङ्कर दान में प्रयुक्त इस विगिण्ट शब्द और अध्यास सिद्धान्त पर सङ्घिप्त विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

आचार्य शाङ्कर जिस चरम सत्य का अनुभव करते हैं उसमें केवल अस्मद् प्रत्यय के अधिष्ठान स्वरूप आत्मा का साक्षात्कार है। इस अस्मद् के प्रतिरिक्त 'युष्मद्' की भावना और बुद्धिप्रकाश और अघकार के समान

८४ ब्रह्मसूत्र भाष्य। १।४।३।

८५ अथैकचक्षुःश्रुत्वात्। गीता। १२।३।

८६ अथैकचक्षुःश्रुत्वात्। गीता। १२।३।

विभाषा है। यह 'सुख' प्रत्यय विषयक विचार है। यह आत्मा का वाचक है और 'सुख' प्रत्यय 'सुख' व 'सुख' प्रत्ययों का। भाषाया गङ्गुर के अनुभव 'सुख' विषय है और 'सुख' विषय। विषय और विषयो का तात्पर्य 'सुख' है। इसी प्रकार 'सुख' और 'सुख' का तात्पर्य 'सुख' नहीं है। 'सुख' प्रत्यय 'सुख' प्रत्यय है और उसके अतिरिक्त विषय 'सुख' है। 'सुख' का अतिरिक्त 'सुख' इन्द्रियादि जड और अनात्म है अतएव उससे भिन्न है। इन प्रत्ययों का स्थिति विचार है। देह इन्द्रियादि सम्भव से ही सम्पुञ्ज 'सुख' और 'सुख' का प्रत्यय होता है। किन्तु जड तत्वों से निगुण निर्विकल्प आत्मा का अनुभव नहीं होता। भाषाया गङ्गुर का कथन है कि जो 'सुख' इन्द्रिय 'सुख' का वाह्यानुभूतिगता है वे मत्स्य का पूष रूप सम्पुञ्ज नहीं करती। इसका अतिरिक्त 'सुख' मत्स्य सत्य पदार्थ जगत की वास्तविकता का प्रकाश नहीं करत। वस्तुतः पदार्थ मत्स्य के मूल में एक ही तत्व की पतिष्ठा है अर्थात् प्रत्ययतः उसका मूल स्वरूप 'सुख' ही है। इस आच्छादक का भाषाया गङ्गुर 'सुख' नाम से अभिहित करने है। इस अध्याय का उत्पत्ति आत्मिक नहीं होती। यह स्वभाव सिद्ध है और 'सुख' है। इसका प्रकृति मत्स्य रूप धर्मों का महार का अर्थ 'सुख' मत्स्य का अर्थ होता है। अन्योय में अन्योय के धर्मों और स्वभाव का अर्थ होता है। अध्याय के स्वरूप विषय में यह कहा गया है कि इसके द्वारा 'सुख' और 'सुख' का मिथुनाकरण होता है। इसके सहयोग से ही निर्विकल्प मत्स्य आत्मा में यह मेरा यह मैं इस प्रकार की प्रतीति होती है। ये 'सुख' और प्रतीति वस्तुतः मिथ्या ज्ञान के कारण हैं।

भाषाया गङ्गुर का कथन है कि स्मृति रूप पूष दृष्टि का दूसरे में जो

८० सुखप्रत्ययगोचरयो विषयविषययो तस्य प्रकारवद्विरुद्धत्वभावयो।

मद्गमूत्र भाष्य १११११।

८१ इत्यन्तरनाशप्रयत्नादपि विविध विविध सुखप्रयत्नगोचरस्य विषयस्य तद्विभाषायां च अन्वयः।

मद्गमूत्र भाष्य १११११।

८२ नैमगकाय लोक व्यवहारः। मद्गमूत्र भाष्य।

८३ विषयिण्यन्तद्विभाषायां च विषय प्रयत्नो मित्येति भवितुं युक्तम्। अन्योयविषय अन्वयान्वायमकानाम अन्वय धर्मोऽथ अन्वय सत्यान्त मिथुनीकृत्य, अद्विदि ममेऽद्विदि मिति नैमगकाय लोक व्यवहारः। मद्गमूत्र भाष्य १११११।

८४ विषयान्न निमित्तः। मद्गमूत्र भाष्य १११११।

प्रवभास है वही अध्यास है^{६२} । इसके सम्बन्ध में प्रथम धारणायें भी हैं जिनका उन्होंने उल्लेख इस प्रकार किया है —

१—प्रथम म ध य धम के आरोप को अध्यास कहते हैं ।

२—जिसमें जिसका अध्यास है उसका भेद न समझने के कारण होने वाला भ्रम अध्यास है ।

३—जिसमें जिसका अध्यास है उसमें विरुद्ध धर्म वाल भाव को बलवाना को अध्यास कहते हैं ।

४—दूसरे में दूसरे के धर्म की प्रतीति अध्यास है^{६३} ।

५—इन सब मता से पथक भाचाय दाङ्कर के मतानुसार जिसमें वह नहीं है उसमें वह है ऐसी बुद्धि अध्यास है

अध्यास का विवरण इस प्रकार है —

१—वाह्य पदार्थों का आत्मा में अध्यास—जैसे पुत्र आदि में पूण और अपूण होने पर मैं पूण हूँ या मैं ही अपूण हूँ ऐसी प्रतीति ।

२ आत्मा में देह के धर्मों का अध्यास—जैसे मैं मोटा हूँ मैं बूढ़ हूँ, मैं गोरा हूँ मैं खड़ा हूँ ऐसी प्रतीति ।

३ इन्द्रिया के धर्मों का आत्मा में अध्यास—जैसे मैं गुं गा हूँ मैं बहरा हूँ आदि ।

४ अ—अतःकरण के धर्मों का आत्मा में अध्यास—जैसे सकल्प निश्चय आदि का आत्मा में आरोप करना ।

आ—मैं ज्ञान उत्पन्न करने वाले अज्ञानकरण का अतःकरण की वृत्तियाँ के साक्षी प्रत्यगात्मा में अध्यास ।

ई—सबसाक्षी प्रत्यगात्मा का अतःकरण में अध्यास^{६४} ।

इस अध्यास में ही समस्त लौकिक और बौद्धिक व्यवहार प्रवृत्त होते हैं । दाङ्कर के अनुसार सब विधि निषेध बोधक एवं माक्षपरक शास्त्र यावहारिक हैं^{६५} । वस्तुतः ये व्यवहार प्रविद्यात्मक हैं और अध्यास बुद्धि से उत्पन्न होते हैं ।

६२ ग्मदिरूप परत्र पूर्य्यावभास । त कचिन्वन्यान्य धर्माध्यास । अहमत्र भाष्य । १।१।१।

६३ इन सिद्धान्तों के मूल में आभरणात् अमनरणात् अस्यानि अन्यथास्यात् और अनिवचनापत्यानि आत्मा सिद्धान्त प्रकीर्त दे ।

अहमत्र भाष्य । १।१।१। रजप्रभा टीका । १।१।१।

६४ अहमत्र भाष्य । १।१।१।

६५ मैं प्रमाणप्रत्यक्षव्यवहारानि का वा कारण प्रकृता सवाण्ये त शास्त्राणि विधिप्रतिषेधनादपरायि । अहमत्र भाष्य । १।१।१।

इस प्रकार आचार्य शाङ्कर मिथ्यात्व की ओट में जागृतिव सत्ता का अभाव प्रतिपादित नहीं करते हैं। वे मिथ्यात्व के रूप में व्यायहारिक सत्ता का प्रतिषेध भी नहीं करते। उनके अध्यास सिद्धान्त का उद्देश्य है अनित्य स आहत नित्य आत्मा जड़ से अभिभूत चतुर्थ आत्मा और मिथ्यात्व में आवृद्ध अद्वितीय आत्मा की अनुभूति।

अब एक प्रश्न यह है कि आत्मा यदि अविषय है, तो उसमें अय विषय का अध्यास कैसे हो सकता है^१ १। आचार्य शाङ्कर का वचन है कि आत्मा अत्यन्त अविषय नहीं है। वह अह प्रत्यय का विषय है। आत्मा स्वयं प्रकाश और प्रत्यगात्मा है। आकाश में तल मलिनता का अध्यास अपनी करते हैं और प्रत्यगात्मा में अध्यास अविच्छेद है^२ २। इस प्रकार अध्यास का अधिष्ठान ब्रह्म नित्य गुण बुद्ध मुक्त-स्वभाव आत्मा सिद्ध होता है।

अध्यास सिद्धांत आचार्य शाङ्कर की माया और अविद्या सम्बन्धी स्थापनाओं के मूल में है। इस अध्यास की मुख्य घटना तो यह है कि जागृतिव सत्ताओं की निरात्मकता वञ्चित होकर भी उसका अधिष्ठान वाञ्छित नहीं होता। यद्यपि प्रमाण प्रमय आदि यावहारिक हैं ता भी आत्मा के स्वरूप में उनका प्रमाण स्वीकार किया गया है। आचार्य शाङ्कर के अनुसार जिसमें आत्म भाव अध्वस्त नहीं है उस शरीर से कोई व्यापार नहीं हो सकता। यदि ये सब अध्वस्त न हों, तो असत्ता प्रमाता नहीं हो सकता और प्रमाता के बिना प्रमाण की प्रवृत्ति नहीं होती^३ ३। अध्यास की भी महान व्यापकता है। इस सिद्धांत के द्वारा ब्रह्मात्मवय ज्ञान शाङ्कर का प्रतिपाद्य है। इन शास्त्राति प्रमाण के सम्बन्ध में कहा गया है कि जिस प्रकार मैं यह देखूँ यह ज्ञान की पत होने पर भी प्रमाण माना जाता है उसी प्रकार प्रत्यक्ष आति लौकिक प्रमाण भी आत्म साक्षात्कार पर्यन्त प्रमाण हैं^४ ४।

उत्तरवानीन अद्वैत वेदांत में अध्यास शास्त्र आति के पर्याय रूप में ग्रहीत हुआ है^५ ५। आति ज्ञान का विषय मिथ्यावस्तु और स्वत आति ज्ञान

१०१ आत्मा की अविषयता का प्रकार दे कि वह अध्यास अति शास्त्र रूपों में ही प्रत्यक्ष ज्ञान है और शास्त्राति उन्मत्त प्रमाण है। अन्यथा अध्यास के निरन्तर होने पर उन्मत्त प्रवृत्ति नहीं हो सकती। अतः वह शास्त्राति आति विषय नहीं किया जा सकता।

१ २ प्रथमा मा तावात्मा को कहते हैं। रत्नप्रभा टीका। १।१।१।

१०३ ब्रह्मसूत्र भाष्य। १।१।१।

१ ४ ब्रह्मसूत्र भाष्य। १।१।४।

१ ५ विचार शास्त्र का १।६।

अध्यास क्त गय है' १। अध्यास क दो भेद हैं—तानाध्यास और अथाध्यास। अथाध्यास छ प्रकार का है —

१ केवल सम्बन्धाध्यास—आत्मा म अनात्मा के तात्त्विक का हाना।

२ सम्बन्ध रहित सम्बन्धा का अध्यास—आत्मा में अनात्मा का सम्बन्ध और स्वरूप दोनों का अध्यास।

३ केवल धर्माध्यास—आत्मा म शरीर क वर्णादि और इन्द्रियादि क देनेसे आत्मा का धर्म ही अध्यस्त होता है उनके स्वरूप का अध्यास नहीं होता, यह केवल धर्माध्यास है।

४ अयोध्याध्यास—ताह और अग्नि के समान आत्मा म अनात्मा और अनात्मा म आत्मा का अयोध्याध्यास कहलाता है।

५ धर्म सहित धर्मों का अध्यास—अत करण क कर्तापन आत्मा धर्म और स्वरूप दोनों का अध्यास आत्मा म है।

६ अंतराध्यास—आत्मा का स्वरूप अनात्मा म अध्यस्त नहीं है परंतु अनात्मा आत्मा म अध्यस्त है। यही अंतराध्यास है' ७।

इसके अतिरिक्त अथाध्यास के दो विभाजन और हैं —

१ समर्गाध्यास या सम्बन्धाध्यास—आत्मा का अनात्मा म समर्गाध्यास है। आत्मा बाध नहा जाता वरन उसम सम्बन्ध का बाध होता है।

२ स्वरूपाध्यास—अविच्छात आत्मा का बाध नहीं होना। देहात्मा अनात्मा का ज्ञान हान म उसम स्वरूप का बाध होता है' ८। केवल धर्माध्यास धर्म सहित धर्मों का अध्यास और अंतराध्यास क अन्तगत है। आत्मा और अनात्मा क ज्ञान क निमित्त अयोध्याध्यास अधिक उपयोगी माना गया है' ९।

सत चित्त अनात्मा और अद्वैत से आत्मा के विक्षेपण है। अद्वैत, जड, पृथक् और द्वैत म अनात्मा क विक्षेपण है' १०। इन दोनों वर्गों का परस्पर

१०६ विष्णु चरित्र। कला। ६।

१०७ ,

१०८ , ,

१०९ , ,

११० विष्णु चरित्र। कला। ६।

अध्यास का अर्थ पद्याय माना गया है। मग आत्मा समर्गाध्यास क अनात्मा म स्वरूपाध्यास म ४ प्रकार की अन्तिम है — मग आत्मा क अनात्मा म अनात्मा की अन्तिम, विशास की अन्तिम और मग म पद्याय अनात्मा की अन्तिम।

अध्यास है। इस अध्यास रूप में ही प्रपञ्च आत्मा में अध्यस्त है। उदारवादीन अद्वैत वेदान्त में अध्यास का अर्थ भ्रांति किया गया है। रघाणु में पुष्प की प्रतीति महभूमि में जल की प्रतीति, आकाश में नीलिमा की प्रतीति, राजु में सप की प्रतीति अथवा दण्ड में नगरी की प्रतीति इसके दृष्टान्त हैं^{१११}। जगन्मिथ्यात्व सिद्धांत में ये दृष्टान्त प्रमाण माने जाते हैं। ब्रह्मगूत्र भाष्य अथवा उपनिषद् भाष्यो में आचार्य शाङ्कर ने इस मिथ्यात्व का अर्थिका के अंतगत ग्रहण किया है। आचार्य शाङ्कर उस अध्यास में भी एक प्रकार का सत्य अनुस्यूत मानते हैं। उसकी व्यावहारिक सत्ता का निग्रह वे नहीं करते। परंतु उत्तर युग के वेदान्त दान में सत्ता की स्वीकृति भ्रांति के रूप में हुई है। यह भ्रांति पांच प्रकार की है —

१—भेदभ्रान्ति — इसमें पांच प्रकार के भेद स्वीकृत हैं — जीव ईश्वर का भेद जीवों का पारस्परिक भेद जडा का भेद जीव जड का भेद और जड ईश्वर का भेद।

२—कर्त्ता भोक्तृत्वा की भ्रांति — अतःकरण के धर्मों का आत्मा में कर्त्तृत्व भोक्तृत्व रूप में प्रतीत होना उक्त भ्रांति है।

३—सग भ्रांति — आत्मा की देहादि रूप में अर्थात् राजातीय विजातीय और स्वगत भेदों की सम्बन्ध रूप में प्रतीति होना।

४—विकार भ्रांति — दुग्ध के विकार दधि के समाप्त की ब्रह्म के विकार रूप में जगत की प्रतीति होना।

५—ब्रह्म में पथक जागतिक सत्ता की प्रतीति होना^{११२}।

उक्त भ्रांतियों और अध्यास के सम्बन्ध में वेदान्त प्रथा में इस प्रकार के दृष्टान्त प्रसिद्ध हैं जसे—

१—दण्ड में मुख का प्रतिबिम्ब मिय्या है। नेत्रवत्ति ही दण्ड में प्रतिबिम्बित होकर स्वरूप का ज्ञान कराती है। मुख से मुख का प्रतिबिम्ब अभिन्न है। अतः प्रतिबिम्ब मुख सम्बन्ध से सत्य है। इसके विपरीत प्रतिबिम्ब की भिन्नता प्रतीत होना भ्रांति है। 'उसका अभेद ही सत्य है इस प्रकार इस ज्ञान से भेद भ्रांति की निवृत्ति होती है'^{११३}।

२—कर्त्ता भोक्तृत्वा की भ्रांति में स्फटिक और जल वस्तु का दृष्टान्त दिया जाता है। जल रक्त दस्त के संयोग से रक्त स्फटिक भी रक्त वस्तु प्रतीत

१११ विचार चद्रोप्य। कला। ६।

११२ विचार चद्रोप्य। कला। ६।

११३ विचार चद्रोप्य। कला। ६।

हाता है परन्तु उससे पथक उसका रग सत्त्व श्वेत है । उसी प्रकार अन्त नरण के पमों से भिन्न आत्मा कत त्व भोक्तत्व स रहित है ।

३—जसे घट क मयोग से आकाश घटाकाग सत्ता से युक्त होता है परन्तु घट की उत्पत्ति नाश गमनागमनादि आकाश को म्पग नहा करत । इया प्रकार आकाश के समान आत्मा भी असग है । इस दष्टात स मग भ्राति की निवत्ति कही गई है ।

४—जसे अकार दोप से रज्जु ही सप रूप म प्रतीत होती है अथवा जसे दुग्ध के विकार दधि का दुग्ध से भिन ग्रहण होता है परन्तु यह सब अविद्या के कारण इस रूप म प्रतीत होते हैं । जगत रूपी रज्जु म सप रूपी उपाधि का विवत है । जगत परिणाम रूप नहा है । इस प्रकार के नान से विकार भ्राति की निवत्ति होता है ।

५—जिस प्रकार एक स्वण खण्ड स अनेक कुण्डलादि की सृष्टि होती है और वे कुण्डलादि वस्तुत स्वण से भिन नही हात उसी प्रकार ब्रह्म से पथक जगत की सत्ता नही है^{११५} ।

प्रकृति का स्वरूप

पाणिनि सूत्र क अनुसार 'उत्पन्न करने वाली' शक्ति प्रकृति है^{११५} । इस परिभाषा के अनुसार प्रकृति सृष्टि रचना का साधन है । साख्य दशन के अनुसार सत्त्व, रज और तम गुणों की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं^{११६} । स्वनाश्वर उपनिषत् के अनुसार माया को प्रकृति कहा गया है^{११७} । हम इस प्रकरण म साख्य दशन के अनुसार प्रकृति क स्वरूप का बखन नहीं करेंगे । इस प्रकरण म हम उपनिषद वदात-ज्ञान और आचार्य शङ्कर सम्मत प्रकृति क स्वरूप का विचार करेंगे ।

प्रकृति के दो रूप हैं—परा और अपरा । गीताकार ने इह ही क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ नामा से अभिहित किया है । आचार्य शङ्कर क अनुसार अपरा प्रकृति निरुष्ट और अगुद है । यह अनधकारी और ससार बन्ध रूपा है^{११८} । परा प्रकृति क्षेत्रज्ञ है । यह सर्वांतर म प्रविष्ट होकर जगत को धारण करती है ।

११५ विचार ज्ञानेय । कला । ६ ।

११६ तन्नि वस्तु प्रकृति । पाणिनि सूत्र । १।१। ० ।

११७ अथ स्वप्नमा साम्यावस्था प्रकृति । साख्यशा । १।६१ ।

११७ माया तु प्रकृति विनामार्थिन तु शब्दवग्म । श्वेदानन्दर उपनिषत् । ५।१०।

११८ अपरा न परा निरुष्टा अशुद्धा अनधकारी समारबन्धात्मिक स्यम् ।

यही प्राप्तमहा उत्तम धीर गुण प्रकृति है^{१११}। इतर अतिरिक्त तब धीर धरता का धारण करके वाली प्रकृति मूल प्रकृति कहताही है। गीता भाष्य में आचार्य शाङ्ख्य ने अहकार को ही मूल प्रकृति माना है। अहकार ही मकरा प्रवृत्त है और अकार में प्रकृति का बीज भी अहकार है। इतरा धर्म्यत भी कहते हैं। उनका अनुसार जते विषयुक्त जन्म भी विषय कहा जाता है वन ही अहकार धीर योगा से युक्त अव्यक्त - मूल प्रकृति भी अकार तम में बही जाती है^{११२}। उतने मा, बुद्धि अविद्या अहकार एव मूल प्रकृति का उत्तरोत्तर एव दूसरे के मूल में माना है। अविद्या युक्त अव्यक्त मूल प्रकृति की सजा माला है^{११३}। परा धीर धरता प्रकृतिमें उत्पत्ति, प्रत्यय एव स्थिति में व्यक्त होकर ईश्वर के द्वारा सृष्टि का कारण होती है^{११४}।

अव्यक्त महत धीर भजा शक्त का प्रयोग साध्य दान के अनुसार है^{११५}। परंतु वेदांत में ये सब ईश्वर के अधीन माने गये हैं। प्रकृति अनादि है इसी लिए उससे लिए भजा शक्त का प्रयोग हुआ है। श्वेता शतर उपनिषद् में प्रकृति के लिए प्रधान शक्त का प्रयोग हुआ है^{११६}।

भजा शक्त की व्याख्या करते हुए आचार्य शाङ्ख्य का कथन है कि भजा पद तेज जन धीर अन्न समू धीर भूत समूहा की जननी है। भजा शक्त प्रकृति का बोधक है^{११७}। ये इतकी समस्त जगत् की उत्पत्तिकर्त्री परमेश्वरीय गणित मानते है^{११८}। इसी आधार पर प्रधान नाम की प्रकृति

११६ विगुण आत्मना धर्म गच्छत जन प्रविष्ट्या
गीता भाष्य १।५।

१२० गीता भाष्य १।७।

१२१ गीता भाष्य १।७।

अव्यक्त शक्त सात्वत स्थान का है त्रिमया तद्व्य सात्वत स्थान में स्वीकृत प्रकृति^{११९}। वेदांत में इसे ईश्वर के अधीन तब माना गया है।

१२२ ब्रह्मसूत्र भाष्य १।४।

१२३ ब्रह्मसूत्र भाष्य १।४।

१२४ ब्रह्मसूत्र भाष्य १।४।

१२५ गीता भाष्य ७।६।

१२६ शंकर के अनुसार अविद्या रूप बीज शक्ति का उत्तर शक्त में कही गयी है। अव्यक्त आकारा शक्त से भी कही गया है।

शंकराचार्य उपनिषद् १।५।१। ब्रह्मसूत्र भाष्य १।४।

श्री ईश्वराम गङ्गुल का स्व है जो इन्द्र के प्रधान है^{१२०} । चराचर जन्म की कारण भूत तत्र जन्म और मृत्यु का प्रकृति म'धता साम्य का कल्पना का गइ है । मृत्यु का मध्य बकरा है । आचार्य गङ्गुल का कथन है कि एक रात्रि जन्म और मृत्यु बग वाला बकरी जिसका मग मं बहुत स दन्वे हा जिसका ऊपर एक बकरा प्रेम करता हुआ पीछे फिर और एक भोग के उपरान्त उस त्याग द बम हा यह भी मृत्यु तत्र जन्म और मृत्यु प्रकृति स्वल्प बन्त स जन्म विकारा का उपाय करती है^{१२१} । मृत्यु तत्र जन्म और मृत्यु के लिए मृत्यु का प्रयोग किया गया है । मृत्यु प्रकार एक एक मृत्यु का प्रयोग वह रण्य उपनिषद् म हुआ है^{१२२} । साम्य दान के आचार्य इसे पचीस तत्वों का वाद्यक मानते हैं । परन्तु वयान्त इसे साम्य दान सम्मत प्रकृति का प्रकाशक नया मानता^{१२३} । आचार्य गङ्गुल के अनुसार एक जन्म का द्वारा प्राण चतु श्रोत्र मन आदि कह गये है^{१२४} । प्रकृति में तान गुणों की स्वीकृति है और वयान्त उसमें तीन तत्वा की अन्विति मानता है^{१२५} । गीताकार ने स्पष्टत ताना गुणों का समान्तर स्वीकार किया है । परन्तु माया म भी गुणों का अन्वितार करन म उसका परवसान साह्यात्म प्रकृति न हाकर माया में हो जाता है । आचार्य गङ्गुल के अनुसार समस्त कार्यो म बही तान के कारण और रूपन म विकारा का स्वय धारण करन वाली म न म प्रकृति ही महान ब्रह्म विद्यमान म निष्कृत की गई है^{१२६} । ब्रह्म सूत्रा म प्रकृति का यानि म अभिहित किया गया है^{१२७} । गीता म महान ब्रह्म को स्वय को यानि कहा गया है^{१२८} । आचार्य गङ्गुल के अनुसार मन्त यानि

१ ७ मृत्यु नान्यथेन । इन्द्रिय ११।६।१।
 १ ८ स्वयं कथं उपनिषद् ११।१०। इन्द्रिय माय ११।६।६।
 १२२ परमेष्वात्मपत्ता ज्यति अनुस वाचनवदशा चतुर्विधिय भूत यन्मय प्रकृति भूतानां । इन्द्रिय माय ११।६।६।
 १२० अनिपयमदशा राजे मन्मन्वाभिधिम्या । इन्द्रिय माय ११।६।१।
 १२१ ब्रह्मस्य माय ११।६।
 १२२ स्वयं जन्म इति जन्म प्रकृति मन्वया निजनि मन्वायां मन्मन्वाभिधिम्या ॥ ११। ११।६।१।
 १ ३ रीति माय ११।६।
 १ ४ यानि मन्मन्वाभिधिम्या । इन्द्रिय माय ११।६। ३।
 १ ५ मन्मन्वाभिधिम्या । इन्द्रिय माय ११।६।

म ईश्वर के गर्भाधान म हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति हाकर समस्त भूता की उत्पत्ति होती है^{१३१} ।

गीता म प्रकृति और पुरुष दाना को अनादि कहा गया है^{१३०} । आचार्य गान्धर्व क अनुसार पुरुष और प्रकृति ईश्वर की प्रकृतियाँ हैं । पुरुष परा और प्रकृति अपरा है । जीव क्षेत्रज्ञ और भोक्ता पुरुष क पर्याय हैं । यह पुरुष ही सुख दुःख वा भोक्ता है^{१३८} । पुरुष वा प्रकृति म भावित्व अविद्यामय है । आचार्य गान्धर्व प्रकृति को हा वाय कारण रूप हतु और पद के आकारों म परिणत हुा मानत हैं । भाग्यरूपा प्रकृति क साथ उसक विपरीत धम बाने पुरुष का भोक्ता भाव स तब अविद्या रूप गयाग हागा तभी ससार प्रतीत होगा^{१३६} । अतः पुरुष वा प्रकृति के साथ सयोग अविद्या के कारण है । ये दाना प्रकृतियाँ ससार वा अनादि सिद्ध कारण हैं । इन प्रकृतियाँ स ही जगत की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय हाती है^{१४} । एसी प्रकार प्रकृति ही क्षेत्र है और पुरुष क्षेत्रज्ञ है । आचार्य गान्धर्व शरीर वा वाय अथवा क्षेत्र और जीव को क्षेत्रज्ञ मानत हैं^{१४१} । क्षेत्रज्ञ म जीवत्व वा आरोप अविद्या के कारण होता है । उनका मत है कि अविद्या द्वारा आरोपित धम से ब्रह्म अथवा आत्मा वा उपकार वा अस्कार नहीं होता । इसी प्रकार अविद्या द्वारा जीवत्व क्षेत्रज्ञ को विकृत नग करता^{१४२} ।

साध्य के अनुसार सष्टि की तीन अवस्थायें हैं—प्रकृति प्रकृति विकृति और विकृति । मूल प्रकृति किसी तत्त्व की विकृति नहीं है । महत् आदि प्रकृति

१३६ प्रकृति पुरुष त्रैव विद्यानात्नी उभावपि । गीता १२।१६।

१३७ पुरुष सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतु रच्यते । गीता १२।२ ।

१३८ गीता भाष्य १२।२ ।

१२६ गीता भाष्य १२।१ ।

१४ वाच्या प्रकृतिभ्यां शब्दो नगत्पत्तिस्थितिप्रलयनेतु तेषु अनादी सद्यो समासस्य वाग्यन । गीता भाष्य १२।१६।

१४१ शरीर कीनेव क्षेत्रमित्यभिधीयते । गीता १२।१।

क्षेत्रज्ञं यपि मा विद्धि सञ्ज्ञेषु भाग्न । गीता १२।१।

१४२ न ह स्वस्वमपि लान् अविद्यायतेन धैर्य कल्पन्ति उपकारो अपकारो । गीता भाष्य १ । । शरीर क अनुसार शरीर को चाण आण से बचाया जाता है अथवा यण राने राने छाण होता है अथवा यह क्षेत्र क समान कमपन्न प्राप्त होते हैं इत्यदि शरीर को क्षेत्र कहन है । गीता भाष्य १२।१।

श्रीर विवृति दोना ही हैं । पुरुष न प्रवृत्ति ही है और न विवृति ही १४३ । परतु ब्रह्मन्त क अनुसार पुरुष श्रीर प्रकृति ब्रह्मवाद क अनभूत हैं । आचार्य गङ्गुल का ब्रह्म निमित्त श्रीर उपादान कारण दोना ही हैं । उनका मत है कि ब्रह्म क अतिरिक्त अय अविच्छाता न होने के कारण ब्रह्म का ही निमित्त कारण समझना चाहिए । जमे लोक मे मत्तिका सुवर्ण आदि उपादान कारण कुम्हार मुनार आदि अविच्छाताका की अपेक्षा रखकर पवत्त हात हैं वसे ही ब्रह्म उपादान होकर अय अविच्छाता की अपेक्षा नहा रखता क्याकि उत्पत्ति क पूव एक ही मद्दिनीय का कथन ह । आचार्य गङ्गुल क अनुसार अय अविच्छाता क अभाव से आत्मा कर्ता है श्रीर अय उपादान क अभाव से आत्मा मे प्रकृतित्व है १४४ । आचार्य गङ्गुल के काय कारण भेद के अतगत उपादान काय भी है श्रीर कारण भी है । इसी प्रकार उपादान कारण ब्रह्मकाय भी है श्रीर वदात कथित प्रवृत्ति भा है । सृष्टि द्वारा आत्मा क बहुत रूपों म होने का सकल्प कथित है श्रीर बहुत प्रजा रूपा म होना प्रसिद्ध है । आचार्य गङ्गुल क अनुसार एस प्रकार अनेक रूपों म उत्पन्न होने का सकल्प आत्मा करता है । इसस उपादान स्वरूप म ब्रह्म प्रकृति है १४५ । छान्दाग्य उपनिषद म कहा गया है यह सब भूत आकाश मे उत्पन्न हात हैं श्रीर आकाश म ही लीन होते हैं १४६ । आचार्य गङ्गुल क अनुसार जा जिनम उत्पन्न हाता है उसी म लीन होता है । इस सिद्धात के अनुसार उनका कथन है कि काय का प्रत्य भी उपादान से अय या भिन नही दिखाई देता । अत उपादान स्वरूप ब्रह्म प्रवृत्ति है । तत्तिरीय उपनिषद मे कहा गया है कि उसन आत्मा को स्वय रचा १४७ । सिद्ध बन्धु विवत रूप स साध्य हा सकनी है । अत ब्रह्मभूता म जगत का आत्मा का परिणाम कहा गया है १४८ । आचार्य गङ्गुल क अनुसार आत्मा यद्यपि पूव सिद्ध है तो भा उसने अपने को त्रिप विकार रूप स परिणत किया । इन प्रवाग भी ब्रह्म

१४३ मूल प्रकृतिविवृतिनव्याया प्रवृत्ति विवृत्त्या सप्त ।

योगेश्वर विकारी न प्रकृतिन विवृति पुष्प । साम्य कारिक ॥ ।

१४४ तन्माधिष्ठानान्तराभावात्प्रथम क त्वसुपादानान्तराभावाच्च प्रकृतिवत्न ।

मदस्य भाष्य । १।४।२३।

१४५ बहुव्यामिति प्रत्यगात्मविपत्त्या बहुभावाधिष्ठानस्य प्रकृतिरयपि गम्यते ।

मदस्य भाष्य । १।४। ४।

१४६ छान्दाग्य उपनिषत् । १।६।१।

१४७ तन्मानं स्वयमनुत्त । तैत्तिरीय उपनिषत् । २।३।

१४८ आत्मकते परिष्कारात् । मदस्य भाष्य । १।४।२६।

म प्रकृतित्व है^{१५६} । ब्रह्म म उपात्ताना होने से ब्रह्मगूना म इमी हेतु ब्रह्म का योनि कहा गया है । यह यानि गच्छ प्रकृति याना^{१५७} । इस द्विररण म ब्रह्म को ही प्रकृति का कारण कहा गया है । परंतु अत मिश्रण के अनुसार केवल ब्रह्म ही सत्य है । अत यह प्र न है रि प्रकृति की ब्रह्म म क्या स्थिति है । ऐसी दशा म प्रकृति का कवन यावहायि सत्य माना जायेगा । व्यवहार सम्पूर्ण सत्य नहीं है कश्चि व अपरमायिक है । आचाय शाङ्कर क अनुसार वाजीगर की माया के समान इस मायारहित मसार वक्ष रूप म सनातन प्रकृति विस्तार का प्राप्त हुई है^{१५८} । त्रिगुणात्मिका माया का नाम प्रकृति है । उस प्रकृति द्वारा ही मन वाणी और शरीर का हान वाले सार कम सब प्रकार स सम्पान्ति हात है^{१५९} । प्रकृति वस्तुतः सजनात्मक सत्य है जिसम परमाय का लेश भी नहीं है । ब्रह्म म सम्पान्ति उपादानता म निमित्त क साथ उसका अभेद है । सम्पूर्ण जागतिन अथवा अनौकिक सत्य ब्रह्म क ही अत है । अत उपात्तान की ब्रह्म से पृथक् सत्ता नहीं है । उपादान म म्यूलता है जिसम परिवर्तन की प्रतिव्रिया होती है । आचाय शाङ्कर क अनुसार इस परिवर्तन म ब्रह्म ही केवल अपरिवर्तनीय है । अत उपात्तान स्वरूप प्रकृति ब्रह्म म अधिष्ठित है और उसने अनुपासन म सजन स्थिति और प्रलय का स्वरूप धारण क्रिय हुए है^{१६०} । यद्यपि प्रकृति अधिष्ठात्मक है तो भी उसकी अनात्ति सत्ता कही गई है । आचाय शाङ्कर ने उसे ही शक्ति स्वरूपा माना है ।

सष्टि का कन रूप प्रकृति जय है । असंग होने से ब्रह्म म कत त्व नहीं है । आचाय शाङ्कर का मत है कि इन्द्रिय रूप गुण ही गुणो मे व्यवहार कर रहे हैं आत्मा म परमायत व्यवहार नहा है^{१६१} । गीता मे गुण और कम का विभाग कहा गया है । इस विभाग से प्रकृति त्रियागीन होती है^{१६२} । एक

१५६ पूर्वसिद्धादि मनामा विशेषेण विकारात्मना परिणमयामामाऽऽमानमिति अतश्च प्रकृतिरैव । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।४।२७

१५७ यानिरन ति गीयते । ब्रह्मसूत्र । १।४।२७।
यानिराच्छव प्रकृतिवत्त ममधिगतो लोके । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।४।२७।

१५८ गता भाष्य । १।४।४।

१५९ गता भाष्य । १३ २६।

१५९ मया वक्षेण प्रकृति गीयते सत्त्वाचरम । गीता । ६।१७०।

१५५ गीता भाष्य । १।१७०।

१५५ त्रिगुणात्मक माया क अन्तर्भव पंच गुणमून मन बुद्धि अकार तथा पंच शाने वा पंच कर्मिया इन सम्प्राय का नाम गुणविभाग है । इनकी पारम्परिक चष्टा का नाम कमविभाग है । गीता भाष्य । ४।१३।

प्रश्न यह है कि कम करने वाला पुष्प है अथवा प्रवृत्ति । या तो स्पष्ट है कि गुणा क वगनाव म क्रिया हा रही है । परन्तु गुणा की मत्ता पुष्प स पषक नहीं है । किन्तु पुष्प अकता है । एसी स्थिति म कमगलता का उत्तरदायी कौन हाता है ? इस सम्बन्ध म दा वान म्मनसनीय हैं । एक ता यह कि पुष्प की सत्ता म ही सब क्रियायें हाता हैं क्याकि सब वृद्ध ब्रह्म हा है १५१ । सत नानवरजा का कयन ह कि जिस प्रकार ह्मने मन्व प्रौर घ्म आदि में पृष्ठा तत्त्व म्मय उहा पदाथों क प्राकार म रन्ता ह स्थल प्रौर काल के बिना भिन्न हुए समस्त स्वता धार ममस्त काला म जो क्रिया सभी सूक्ष्म भूता द्वारा हाती है वह क्रिया ब्रह्म वस्तु क हाय म है उहा वस्तु का विस्व वाहुत कहत है । इसका कारण यही है कि वह ब्रह्म वस्तु हा सर्वाकार होकर सग क्रियायें करता रहता है १५२ । दूसरा बात यह है कि ब्रह्म म क्त त्व आदि नहा हात । यदि उसम क्त त्व आदि मान निय जाय तो ब्रह्म म भाग का प्रमग भायगा । यही नहीं निर्विकार ब्रह्म विकारी हागा । इस प्रकार निगुण ब्रह्म क स्वप्न म प्रकथान हाण । सत नानवर के अनुसार जिस प्रकार सपाकान प्रात कान प्रौर मपल्ल कान आदि निमान के क्रमग चरत रहन पर भी प्राकाग म कभी किमी प्रकार का परिवर्तन नहीं हाता उसी प्रकार ब्रह्म म किमी प्रकार का परिवर्तन नहा हाता । विश्व की उत्पत्ति क समय जा ब्रह्मा यः स्थिति क समय विष्णु धार नाम स्यात्मक सात हाते पर जो म्द्र कहलाता है वह इन तीना गुणा क तुष्ट हा जाने पर पूय अवगिष्ट रहता है जा पपन का गूस्त्व नष्ट करण प्रौर सत्तादि ताना गुणा का नाप हाकर गूय स्य म अवगिष्ट रहता है वहा महागूय है १५३ । पुष्प इस स्वरूप क साथ क्त त्व से युक्त रहता है । वस्तुन उसम क्त त्व न रहन पर भा उसका आरोप करना अविद्या प्रौर अनान क ही कारण है । सत नानवरजी कहत हैं कि यह वान वृद्ध उहा प्रकार है जिस प्रकार तपाये हुए लाह पर घन का चाटें पडती हैं प्रौर उनक सम्बन्ध में साधारण लाग यही सममत्र है कि य चाटें अग्नि पर पडती हैं अथवा जिस प्रकार पाना क हिलन पर उसम चन्द्रमा क एक प्रतिबिम्ब क स्थान पर अनेक प्रतिबिम्ब स्थिताइ पडत है प्रौर उन प्रतिबिम्बा के घनत्व का आरोप

१५६ सत्त्वत्विक म्म । छाण्डोग्य उपनिषत् । ३।१।१।

१५७ द्वितीयाध्यायः । १३।१ ।

१५८ त्रितीयाध्यायः । १३।१०।

अविचारो साग प्रतिबिम्बित होते पर वरन है^{१४६} । प्रकृति को इसी गुण से जीवन प्राप्त होता है और इसी की सामर्थ्य से यह ससार की उत्पत्ति करती है । इस प्रकार प्रकृति की ब्रह्म त विवत रूप म प्रकृति की गई है ।

प्रकृति के इस गुण सिद्धांत के आधार पर माया का भी गीता म गुणमयी कहा गया है^{१४७} । एक ओर सत्त्व रज म प्रकृति की परिणति होती है और दूसरी ओर उसका पयवसान माया म होता है । प्रकृति सिद्धांत मूलतः साह्य दान का है जिसका वगान न स्वीकार कर दिया है । सत्त्व सम्बन्ध म वगान का अर्थ मत है । सत्त्व की प्रतिष्ठा और ईश्वर एव प्रवण द्वारा विद्व म ब्रह्मकारिता की दृष्टि है । परंतु प्रकृति मत वगान की माया के साथ एकरस हो गई है । आचार्य शाङ्कर का कथन है कि प्रकृति माया है और उसका अधिष्ठाता सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म उपाधि के कारण मायावी है^{१४८} । यह प्रकृति ही माया रूप म ब्रह्म म अध्वस्त है । शाङ्कर के अनुसार उस प्रकृति परमेश्वर के रज्जु अति अधिष्ठाता म कलिन सपात्ति म मायिक अवयवा का अवास है और इसी से भू वाक्चित् सम्पूर्ण जगत् प्राप्त है^{१४९} । सत पानेश्वर जी कहते हैं कि उस प्रकृति का हा गुण नाम है । वह क्षण क्षण अपने रूप और रंग दिग्गलानी है और उसी के कारण जड पदार्थ भी मत्त हा जात हैं । वही नामा की प्रसिद्ध करती है वही प्रम को पूरा बनानी है और वही चिद्रिया को जगाती है । यह भ्रम का असीम प्रदण है भ्रमर्या की मूर्ति है और सभी प्रकार के विकार उत्पन्न करती है । यह वासना रूपी बलनी की छतरी या मडप है जिस पर बेल चन्नी है और फलती फूटनी है । यह भ्रांति के वन की लक्ष्मी है और इसीलिए इसका सुप्रसिद्ध नाम दवी माया रखा गया है^{१५०} ।

५

१५० विन्नी चानेश्वरी । १ । १६।

१६० तैवी छ यपागुणनी भम माया दुरयया । गीता । १५। ५।

१६१ श्वेतारवन्तर उपनिषत् भाष्य । ४। १०।

१६२ श्वेतारवन्तर उपनिषत् भाष्य । ४। १ ।

१६३ विन्नी चानेश्वरी । १३। २।

तृतीय प्रकरण

आचार्य शङ्कर के अनुसार आत्मा अथवा जीव का स्वरूप

आचार्य शङ्कर व अनुसार ब्रह्म का स्वरूप प्रकाश में बताया जा चुका है कि ब्रह्म अद्वितीय एवं निगुण है किन्तु वह गुणों का अधिष्ठाता और कारण भी है। ब्रह्म गुणों और कारणों के द्वारा एक से अनक रूपों में प्रकट होता है। अनक जीव भी इसी प्रकार एक ब्रह्म के स्वरूप हीत हुए भी अनक रूपों में प्रत्यक्ष होता है। तब आत्मा और जीव में क्या अन्तर है? यदि अन्तर है तो क्यों है? इन्हीं बातों पर इस प्रकरण में विचार किया गया है।

प्रस्तुत प्रकरण के शीर्षक में आत्मा अथवा जीव शब्दों का प्रयोग किया गया है। वस्तुतः शङ्कर के अनुसार जीव एवं आत्मा में पारमाधिक्य भेद नहीं है इस सम्बन्ध में हम इस प्रकरण में विचार करेंगे। किन्तु हम यहाँ जीव शब्द से आत्मा का वाच्यारिक रूप ग्रहण करेंगे और आत्मा से पारमाधिक्य ब्रह्म का अद्वैत स्वरूप। यहाँ आत्मा के पारमाधिक्य और वाच्यारिक रूपों का आधार मानकर आत्मा अथवा जीव शब्दों का प्रयोग किया गया है।

आचार्य शङ्कर के अनुसार आत्मा हम प्रत्यय का विषय और स्वप्रकाश है^१। रत्न प्रभा टीका के अनुसार 'अहम् इत्याकारक अहकार का मान ही आत्मा है'^२। 'विवेक भूषामणि' के अनुसार आत्मा अहम् पद की प्रतीति से सङ्गित होता है। यह नित्य और अज्ञान घन, अखण्ड, अद्वितीय चतुर्व्य स्वरूप बुद्धि का साक्षी और सन् धर्मत भेदो स भिन्न^३। वस्तुतः अहम् पद का

१ अम्यप्रत्यय विषयवान् । अक्षय्यत्वं भाष्य । १।१।१।

२ अहमिति अहकारविषयमान रूपस्य आत्मनो । रत्नप्रभा टीका । १।१।१।

३ नियाद्रयाम्यवद्विदक रूपो

उक्त्यान्विताकी मत्सद्विषयत्वं ।

अहम्प्रत्ययविषय

प्रथमज्ञानरूपेण परमात्मा । विवेक चूडामणि । २५२।

विषय आत्मा नहा है वरत समस्त विषय अन्तर्ग म आश्रित है ।

जिसी भी पत्ता की उपलब्धि या पान बिना विषय और विषयी के संयोग के सम्भव नहा । विषय और विषयी का संयोग अद्वैत का स्वरूप ही है । अत आत्मा विषयी है और जगत की पत्ताय गता विषय रूप है । जब तक गता के व्यवहार में मैं व मेरा सम्बन्ध नही स्थापित हाता तब तक वस्तु की प्रतीति और उपलब्धि नही होती । किन्तु भौतिक पत्ता सत्ता की उपलब्धि भी अह के सम्बन्ध से हाती है । विवेक चूडामणि के अनुसार अहम् प्रत्यय का आधार स्वयं नित्य पदाय है^४ । यह नित्य पत्ता ही आत्मा है ।

ऊपर हम कह चुके है कि आत्मा अह प्रत्यय का आश्रय है और जब तक किसी विषय में मैं मेरा सम्बन्ध नहा हाता तब तक वस्तु का पान और उपलब्धि नही हाती । अत आत्मा ही जगत एवं समस्त पत्ताय सत्ता का अधिष्ठाना है । पत्ताय सत्ता का परिवर्तन हाता रहता है । परन्तु आत्मा जगत सत्ता का आधार है एवं भौतिक परिवर्तना से लकर देह तक प्रकृति के समस्त विकार और विषय असत्य और परिवर्तनीय है किन्तु आत्मा कभी परिवर्तित नहा हाती^५ । आत्मा ही सम्पूर्ण प्रपञ्च का अधिष्ठान है । विवेक चूडामणि के अनुसार आत्मा सबका दृष्टा है आत्मा का दृष्टा कोई नही है । आत्मा बुद्धि को प्रकाशित करता है किन्तु इसमें बुद्धि प्रकाशित नहा कर सकती^६ । आत्मा ही चतन सत्य है और इसी हेतु जड पदार्थों का दृष्टा और प्रकाशक है । आत्मा में ही जगत की स्थिति है । वस्तुत आत्मा स्वतः जगत रूप नही है क्यकि जड और अनात्मा पत्ताय सत्ता का चतन आत्मा में अभाव है । विवेक चूडामणि के अनुसार आत्मा से समस्त जगत व्याप्त है किन्तु उसका कोई व्याप्त नहा कर सकता । जगत अनात्म पत्ताय है परन्तु चतन आत्मा का अधिष्ठान होने के कारण विश्व आभासित होता है । जिस

४ अग्नि करिण स्वयं नि मन्प्रयदग्निम्बन । अवगानयताची संप्रकोशमिच्छण ।
विवेक चूडामणि । २७ ।

५ तयो विकाराप्रतरहमुमा दद्यामाना विवशरत सुर्वे ।
दग्नेऽयथाभावितयं क्षीयामपवमा मातुक्ता भनान्यथा । विवेक चूडामणि । ३५१ ।

६ य परयति तयं सुखं य न परयति कश्चन ।
यश्चनयति बुद्ध्या न तु य चतनयययग । विवेक चूडामणि । १२६ ।

७ यन विश्वनि व्याप्तं यन्म व्याप्तानि कश्चन ।
आमारूपमि सर्वं य भातननुमा यवग । विवेक चूडामणि । १३ ।

प्रकार मूय व प्रकाशित हान पर समस्त पन्थ प्रकाशित हात हैं उसी प्रकार आत्मा बुद्धि रूपा गुहा म स्थित हाकर जगत का प्रकाशित करता है^८ ।

न गराह हा आत्मा है न इन्द्रिया ही । आत्मा गरीर का धारण करने वाला अधिष्ठाता है । इन्द्रिया गरीर मन एव बुद्धि आत्मा बिना आत्म चेतन्य व आत्रय व क्रिया करने म असमर्थ हैं । 'विवेक चूडामणि' व अनुसार आत्मा का सन्निधि म इन्द्रिया गरीर और मन आत्मा क्रिया करत हैं । आत्मा मन और अहंकार रूप विकारा दह इन्द्रिया एव प्राणों की क्रियाया का ताता है । जिस प्रकार लोह का गाना अग्नि स तप जान पर शानिमा और ऊष्णता आत्मा रूपा का धारण करता है किन्तु लोह पिण्ड वस्तुन कुछ नहीं करता, उसी प्रकार आत्मा अमग है और भौतिक विषया का अनुवतन करती हुई भी वृद्ध म चप्य नहा करता और न विवृत्त ही हाता है ।

दस प्रकार आत्मा व निम्ननिमित्त पण हैं —

१ आत्मा अत्यल्प विषया की विषयी है एसा तम पिछल पष्ठा पर बह चुन हैं ।

२ आत्मा स्वत गरीर इन्द्रिया और मन त्यात्मा व विकारा का अधिष्ठाता हात हुए म विकारा स प्रभावित नहीं होना । आत्मा अधिष्ठाता होन व कारण ममग विकारा का साक्षी है । ऊपर हम एसा निश्चित कर चुन हैं ।

३ आत्मा नित्य है, एव समस्त भौतिक विषय अनिय हैं । उपयुक्त विवचन स यह सिद्ध हाता है ।

विवेक चूडामणि के अनुसार परमापठ आत्मा जन्म नहीं लता, बुद्धि को प्राप्त नहीं हाता क्षीण नहीं हाता और न विकारा स रूपित हाता है । जिस प्रकार घट व नष्ट हो जान पर घट म स्थित आवाग नष्ट नहीं हाता, वरन आवाग रूप हा रहता है उसी प्रकार आत्मा गराहात्मा व नष्ट हा जाने पर भी अविच्छिन्न रहता है^९ । आत्मा प्रवृत्ति और उसके विकारा स मित्त है । विकार रहित होने के कारण आत्मा गुड है । आत्मा जानस्वप्न है क्योंकि

^८ अत्रैव सत्त्वमग्नि धातुः सत्त्वमग्निः सत्त्वमग्निः सत्त्वमग्निः ।

आत्मा उभै रविकप्रकाश स्वप्नजना विवक्षित प्रकाशयन् । विवेक चूडामणि १७ ५१

^९ हाता मनोऽहं इति विविधियाया देहेन्द्रियप्राणवद्विद्यायाः ।

अथाग्निश्चाननुवतमानो न चप्यन विवक्षति किंचन ॥ विवेक चूडामणि १२५१

^{१०} न तावत् नो भिद्यत न वरत न क्षात्र न विकराति निय ।

विनायनानेऽपि वृथ्यमुपि न लीयत कुम इवान्तर स्वप्न ॥ विवेक चूडामणि १२६१

वह सत और असत को प्रवासित करता है। आत्मा जागृति स्वप्न और सुषुप्ति में 'ब्रह्मम्' भाव से यतमान रहता है। जागृत अवस्था में आत्मा विषया और पदार्थों का व्यवहार करता है। स्वप्न अवस्था में आत्मा असत पदार्थों का नाता है। सुषुप्ति में आत्मा विषया से रहित होकर गुण का अनुभव करता है। इस सम्बन्ध में हम सन्ता के अनुसार सच्चिदानन्द का स्वरूप प्रकरणा एवम् इति प्रकरणे म् अग्रे पृष्ठा पर सविस्तार विचार करेंगे। यहाँ इस विषय का केवल इतना ही प्रयोजन है कि आत्मा इन अवस्थाओं का साक्षी है और बुद्धि रूप में विषया का द्रष्टा है। इस सम्बन्ध की पुष्टि विवेक भूडामणि स होती है^{११}।

ब्रह्मसूत्र भाष्य में कहा गया है कि आत्मा प्रसिद्ध है अथवा सर्वत्र ज्ञान और अनुभव में नित्य आता है^{१२}।

यदि आत्मा प्रसिद्ध न होता तो वह अनुभव और ज्ञान के द्वारा ग्रहीत न होता। जो वस्तु अस्तित्व में नहीं है वह त्रिबाल में भी अस्तित्व में नहीं आ सकती। यदि आत्मा अप्रसिद्ध होता तो उसकी उपलब्धि कभी नहीं हो सकती थी। अतः आचार्य शाङ्कर ने आत्मा को प्रसिद्ध ही कहा है। आत्मा की प्रसिद्धि इसलिए है कि नित्य प्रति क व्यवहार का 'मैं' मरी बुद्धि का आश्रय यह आत्मा ही है। प्रसिद्ध होने से आत्मा स्वयं सिद्ध है। आत्मा की सिद्धि के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है क्योंकि आत्मा स्वतः प्रमाण का आश्रय है। अतः आचार्य शाङ्कर के अनुसार आत्मा प्रमाण प्रस्तुत करने से पहले ही सिद्ध है। आत्मा स्वयंसिद्ध है, अतः स्वयंसिद्ध आत्मा का निराकरण नहीं हो सकता^{१३}।

यदि आत्मा स्वयंसिद्ध और प्रसिद्ध है तो उसकी उपलब्धि क्या नहीं होती। अथवा यदि आत्मा स्वयंसिद्ध और प्रसिद्ध है तो यह स्वतः प्राप्त है और उसको प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार श्रुति-सम्मत

११ प्रकृतिविकृतिभिर्न गुडनाशरवभाव सत्सत्त्वमशेष भानयन्निर्विशय ।

वित्तसुप्ति परमा मा जाग्रत्सत्त्ववशास्वहमहमिति साचान सानिरूपणमुद्धे ।

विवेक चूडामणि । १३७ ।

१२ अत्यगाया प्रसद्धे । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।१।

१३ आ ता तु प्रमाणात्त्विवहारात्प्र वात प्रागेव प्रमाणात्त्विवहारात् ।

सिध्पति । न त्रेणस्य निराकरण सम्भति । ब्रह्मसूत्र भा १।१।३।७।

साधन ज्ञान अथवा कम की भी आवश्यकता नहीं होगी। इसके उत्तर में ब्रह्म सूत्र भाष्य में कहा गया है कि विषय और विषयी का तादात्म्य उसी प्रकार विरुद्ध है जिस प्रकार अघ्नोर और प्रकाश के विराधी स्वभावा का तादात्म्य। इसी प्रकार अतय स्वरूप आत्मा का भी जब वह एक इन्द्रिया के साथ तादात्म्य नहीं हो सकता। जाडघ अतय आदि घन और अहकार एक आत्मा रूपी घर्मा अत्यन्त भिन्न है। इस प्रकार आत्म और अनात्म का भेद ज्ञान न होने पर एक के स्वरूप का दूसरे के घर्मा में अध्यास अथवा मिथ्या बुद्धि उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार सत्य और अज्ञान का मिश्रणीकरण करके 'यह मैं' 'यह मेरा' आदि मिथ्याज्ञान में स्वाभाविक लोक-व्यवहार चलता है' १४। यहाँ उपयुक्त कथन का तात्पर्य यही है कि आत्मा अनात्म पदार्थों में मिथ्या ज्ञान के कारण अध्यस्त हो जाता है। अत आत्म ज्ञान नहीं हो पाता और प्राणी की बुद्धि अनात्म पदार्थों में भटकती रहती है। व्यवहार सत्ता का ही ज्ञान प्रयत्न होता है आत्मा का नहीं। आचार्य शङ्कर के अनुसार अध्यास अनात्म अनात्म स्वाभाविक और मिथ्याज्ञान रूप है। अध्यास के कारण ही आत्मा में अतय एव भोक्तय उत्पन्न होते हैं। यह अध्यास ही सबको प्रत्यय हाता है' १५।

'विवेक चूडामणि के अनुसार आत्मा अन्न प्राण मन विज्ञान और आनन्दमय इन पांच कोशा से ढका हुआ है। जिस प्रकार वापी का जल गवाले उत्पन्न करके अपने का ही आच्छादित कर लेता है, उसी प्रकार पचकोशों द्वारा आत्मा अन्न का ढर लेता है, अत आत्मा का प्रत्ययीकरण नहीं होता। जिस प्रकार गवाले के हट जाने पर तण्या को गत करने वाला जल प्रतीत हान लगता है उसी प्रकार पच कोशों का अपवाद हो जाने पर पचकोशातीत

१४ विषयविषयिणा तत्र प्रकाशवद्विरुद्धस्वभावयो रनंतरभावानुपपत्त्या निद्राया मद्रमाणांमपि सुषुप्तौ रनंतरभावानुपपत्तिः, इत्याऽऽरन्तप्रत्ययोचरे विषयिण विज्ञानके सुषुप्तप्रत्ययगावरेत्य विषयस्य तद्रमाणा च अध्यासः, तद्विषयवत्त विषयिणस्तद्रमाणा च विषय अथासा मिथ्याभि भविषु सुषुप्ते। तथापि अन्त्यान्वयितान् प्रत्यान्वयामकताम् अन्त्यान्वय धर्मात्तच अतय रनंतराविवेकन, अहमि मममिति नैसर्गिकाऽय लोक व्यवहार। मद्रस्य भाष्य १।१।१।

१५ पचायनान्तरिना नैसर्गिकाऽयासा मिथ्याप्रवदन्त कृत्वमोक्त त्व प्रवक्त सबलोक प्रवद। मद्रस्य भाष्य १।१।१।

आत्मा भासित होने लगता है^{११} ।

इस प्रकार आत्मा विकार रहित गुड एव अन्तीय सत्य है किन्तु उसमें बुद्धि के अघ्यस्त होने के कारण विकारा एव अनात्म पदार्थों की प्रतीति होती है । अघ्यास मिथ्या ज्ञानमूलक है तो भी स्वाभाविक है । यद्यपि अघ्यामत्रय पदार्थों की प्रतीति आत्मा के अधिष्ठान में ही होती है तथापि पदार्थों का तादात्म्य आत्मा के स्वरूप के साथ नहीं हो सकता । सत्य आत्मा और असत्य अनात्म पदार्थों का सयोग हो जाने के कारण आत्मा स्वयंसिद्ध और प्रसिद्ध होते हुए भी इन्द्रिय-जय जनि द्वारा मुलभ नहीं है ।

पञ्चकोण का वरुण तत्तिरीय उपनिषद में हुआ है । काण गण तलवार के म्यान घन के भाण्डार और काणकार नामक कीड़े के गृह का बाध कराता है । ये पाच कोण आत्मा को भावत करत हैं । अत यहाँ कोण गण से आत्मा के आच्छादक तत्त्वा का बाध होता है^{१०} । आत्म अनात्म विभाग के अनुसार ये कोण अनात्म कहे जायेंगे । अन्तमय कोण अन्न द्वारा प्रसूत रजो वीच द्वारा सम्पन्न होता है जन्म के अन्तर वड्डिवान होता है एव मृत्यु द्वारा अन्तमय गरीर का नाश होता है । यह स्थूत्र देह ही अन्तमय कोण कहा गया है^{१८} । इसी गरीर से दुःख मुखादि भागे जात है । जन्म के पूर्व और मरण के उपरांत यह गरीर नहीं होता । आत्मा शाश्वत भाव रूप है और शरीर के नष्ट एव उत्पन्न होने पर नष्ट या उत्पन्न नहीं होता । आचार्य शङ्कर के अनुसार देहादि को सघात कहा गया है । ये देहादि अविद्या के काय है । आत्मा से ये सबथा पृथक् ह और आकाश सम्यघ से घट कमण्डलु के समान औपाधिक हैं^{१६} । गीता में गरीर का क्षेत्र कहा गया है^{१२} । गरीर

१६ कोशैरन्तमयावै पत्रभिरामान सन्नतो भाति ।

नित्रशक्तिसमुपान शबालपटनैरिवाम्बु बापीस्थग ॥ विवेक चू । मणि । १५१ ।

तच्छब्दानापनये सम्यक् सक्ति प्रतीयते शुद्धम् ।

त लामन्तापहर सग सौम्यप्र पर पुस ॥ विवेक चू । मणि । १५२ ।

पचानीमपि कोशानामपवा विभायय शुद्ध ।

नित्याननैकरम प्रत्यग्रय । पर स्वयन्मानि ॥ विवेक चू । मणि । १५३ ।

१७ विकार चन्द्रोऽय । कला ५ ।

१८ विकार चन्द्रोऽय । कला ५ ।

१९ अक्षय भाष्य । १११ ।

२० १ शरीर का क्षेत्र इति शिव पद । गीता । १३ । १ ।

स्थान चरक संहिता में आकाशादि पंच सूक्ष्म भूता, महत्त्व (बुद्धि) अथवा प्रकृत और अहंकार ये आठ भूत प्रकृतियाँ मानी गई हैं। पंच कर्मेन्द्रियाँ पंच ज्ञानादि मन और इन्हीं रूप रसादि विषयों से मिलकर सोनह विकार कहे गये हैं^{२१}। इसका अनुसार अथवा अतिरिक्त भूत प्रकृति और विकार क्षेत्र की संज्ञा पाते हैं। इस अथवा अथवा भावना और सारथ प्रतिपादित विकार सिद्धांत को आचार्य गङ्कर नगीता के मायम स ग्रहण किया है। इन सभी तत्वों का उल्लेख गीता में हुआ है। गीता में क्षेत्र या शरीर के निर्माता विभिन्न तत्वों का विकरण नहीं मिलता। किन्तु हम चरक संहिता शरीर स्थान के अनुसार क्षेत्र की संज्ञा का जो विचार कर चुके हैं, वह गीता सिद्धांत के अनुकूल है^{२२}।

अब हम अनुभव का अथवा अतन्त ग्रहीत शरीर के स्वरूप का संप्लित विवेचन करेंगे। विचार चन्द्रोदय के अनुसार स्थूल देह पंच तत्त्वों और उनके पांच भूतों से युक्त एक समन्वय मात्र है^{२३}। स्थूल देह के सात धर्म कहे गये हैं^{२४}।

सूक्ष्म शरीर के सत्रह तत्व हैं — पंच ज्ञानेन्द्रियाँ पंच कर्मेन्द्रियाँ पंच प्राण और मन एक बुद्धि^{२५}। प्राणमय का ही सूक्ष्म देह रूप है। इस प्राण गण

२१ सात्त्विकबुद्धिरव्यक्तमहत्करणधाम्पुत्रम् ।

भूतप्रकृति सुष्ठिा विकाराश्चैव पोषण । चरक संहिता । शरीर स्थान । ६२ ।

२० बुद्ध्यादिभिः पञ्चैव पञ्च कर्मेन्द्रियाणि च ।

समन्वयश्च परार्था विकारा इति सुष्ठिा । चरक संहिता । शरीर स्थान । ६ ।

र्णत क्षेत्र समुच्छिा मवमव्यक्तवर्तितम् ।

अव्यक्तमस्य नेत्रस्य क्षेत्रज्ञमप्या विट् । चरक संहिता । शरीर स्थान । ६४ ।

२२ यदा इमं पञ्च तत्त्वों और उनका पाँच भूतों से युक्त समन्वय का विकरण यदा देते हैं ।

(१) आकाश के पंच तत्व — शम, वायु, शक्ति, माह और मय ।

(२) वायु के पंच तत्व — ध्वनि, धवन, धावन, प्रसारण और अतन्त ।

(३) तेज के पंच तत्व — क्षण, त्पा, आलस्य, निद्रा और वाग्नि ।

(४) पृथ्वी के पंच तत्व — शुक्र, शक्ति, लाल, भूत और रवे ।

(५) पञ्चों के पंच तत्व — अग्नि, माम, नाडी, देवा और लोम ।

विचार चन्द्रोदय । कला । ३ ।

२४ नाम त्ति आश्रम धर, सन्वय परिमाण शर त्ति मरक य शरीर के धर्म हैं ।

विचार चन्द्रोदय । कला । १ ।

२५ ध्यान त्ति, त्त विचार और प्राण त्ति दान्ति, या ह । नरक पालि पाठ उपम्य और शुभ य कर्मेन्द्रियाँ हैं । प्राण, अपान समान उत्पन्न और व्याप्त य पञ्च प्राण हैं । संवय विकृत्या मक मन, निश्चयान्तिशक्ति, लक्षणा ।

का प्रयोग वायु चिन्मय जीव और ब्रह्म का त्रिगुण दृष्टा है^{११} । परन्तु प्राण का ब्रह्म स्वरूप स लेकर इन्द्रियान्त्रिक रूप में व्यक्त होना कारण मूढ मत्तो ब्रह्म तात्मा है और औपाधिक भूतों विचार समूह क्षेत्र माय । आत्मा ही प्राण का स्वरूप है क्योंकि चतुर्थ इसका लक्षण है ।

कारण शरीर अज्ञान स्वरूप है । स्वप्न का कारण निरात्म्य अज्ञान है । जाग्रत अवस्था में भी मैं ब्रह्म का नहीं जानता हूँ अथवा मैं यह नहीं जानता हूँ इस अनुभव का विषय अज्ञान है । सुषुप्ति में भी मैं उस अवस्था में कुछ नहीं जानता था । इस प्रकार का अज्ञान स्वरूप अनुभव हाता है^{१०} ।

मनोमय शरीर पंच तानेन्द्रिया स युक्त है । यह देह का अहता है । ब्रह्मि में ममता करने वाला है और इन्द्रिया द्वारा बहिर्गमन करता है । परन्तु आत्मा निर्विकार है । अतः मनोमय कोण की अहता और कतत्व औपाधिक हैं । आचार्य शाङ्कर के अनुसार आत्मा ही उपाधियुक्त हाकर अतः कारण होता है । यह भिन्न भिन्न स्थानों पर मन बुद्धि विज्ञान और चित्त आदि अनेक प्रकार से बहा जाता है^{१२} । मन आत्मा का उपाधियुक्त स्वरूप है । औपाधिक कतत्व के कारण मन में मवलम्बत्व प्रतीत होता है ।

मन के ऊपर बुद्धि की प्रतिष्ठा है क्योंकि सत्त्व विकल्पा में निश्चय का समरण बुद्धि द्वारा होता है । अज्ञ की अपक्षा प्राण प्राण की अपेक्षा मन और मन की अपक्षा बुद्धि अधिक सूक्ष्म है । अतः मनोमय कोण पर विज्ञान मय कोण की स्थिति है । परन्तु बुद्धि का कतत्व भी औपाधिक है । आत्मा उस बुद्धि का सन्योग स ही कतत्व धारण करता है । आचार्य शाङ्कर के अनुसार आत्मा न तो स्वतः ध्यान करता है और न चेतता है । किन्तु बुद्धि के ध्यान करने पर मानो वह ध्यान करता है एव बुद्धि का चलने पर माना चलना सा है । यह आत्मा बुद्धि की उपाधि धारण करने पर विकृत होता है । इसका यह कतत्व भाक्तत्व मिथ्या ज्ञानमूलक है^{१६} । पंच तानेन्द्रिय युक्त बुद्धि विज्ञानमय कोण है^३ । सुषुप्ति काल में चिन्मासयुक्त बुद्धि विलीन होती है और जाग्रत में नष्ट स गित तक शरीर में व्यापक हाकर व्यवहार करती

११ प्राणान्तर ब्रह्मसूत्र । ३।१।३। प्राणमन्त्र । ब्रह्मसूत्र । १।३।४।

१० विचार शब्दोप्य । कला । २।

१२ ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।१।३०।

१३ ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।३।३०।

१४ विचार शब्दोप्य । कला । १५।

है^{३१} । बुद्धि विनाशनी है और आत्मा अविनाशी है । यह विज्ञानमय वाग भी प्राण और मन व समान सूक्ष्म देह रूप है । आनन्दमय को सम्पूर्ण कोण का प्ररूप है । आनन्द की प्ररणा में समस्त अवहार और कम हात हैं । उपनिषद् में भी कहा गया है कि पुत्र आत्मा के लिए प्रिय हाता है^{३२} । आनन्द भाग वरत समय बुद्धि अनमुखा हाती है । पुण्यवम फन के अनुभव काल में आनन्द की अनुभूति आत्मस्वरूप में हाती है । तत्तिरोप उचनपद में यह आनन्द प्रिय, मोद और प्रमोद तीन प्रकार का कहा गया है । आनन्द वृत्ति पुण्य फन की निवृत्ति होने पर निद्रा रूप में विलीन हाती है । आनन्द का तिर प्रिय वृत्ति काला कहा गया है । अभीष्ट पदाथ की उपलब्धि होने पर मोक्षवृत्ति हाती है । इस आनन्द दण्ड या एक पक्ष भी कहते हैं । अभीष्ट वस्तु के उपयोग से प्रमोक्ष वृत्ति हाती है । प्रमोक्ष वृत्ति द्वितीय अथवा वाय फन है । अज्ञान की वृत्ति में आत्मस्वरूप भूत आनन्द प्रतिबिम्बित हाता है । बिम्ब रूप आत्मा का स्वरूपभूत आनन्द इस आनन्दमय वाग का आधार है^{३३} । इस ही ब्रह्म-पुच्छ कहा गया है^{३४} । यह आनन्द हा कारण देह रूप है । आत्मा इस आनन्द का अधिष्ठान है । आचार्य गङ्कर क अनुसार आनन्द ब्रह्म का विकार नहा है और न सगुण ब्रह्म का प्रतिपादक है । ब्रह्म निविकार है और आनन्दमयत्व आदि ब्रह्म में आरोपित नही हाते^{३५} । यद्यपि पचकोण का इस प्रकार निराकरण कर देने पर ब्रह्म की अनुभवगम्यता बाधित हागी, परंतु आत्मा के जिस अनुभव में पचकोण का जान हाता है उसका निवारण करने वाला चतुर्थ आत्मा है । अत आत्मा पचकोणातीत है^{३६} ।

माण्डूक्य उपनिषद् में आत्मा की तीन अवस्थाओं में एकरूपता स्थापित की गई है । ये अवस्थाएँ जागृति स्वप्न और सुषुप्ति हैं । आचार्य गौडपाद क अनुसार जागृत स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं में अंतर नही है । उक्त आचार्यों क अनुसार जागृत और स्वप्न में भेद नहा है । आत्मा इनसे अतीत है । जागृति अवहार निपट मिथ्यात्व है^{३७} । परंतु आचार्य गङ्कर ने

३१ विचार गणन्य । कला । ५।

३२ आनन्दमय उपनिषद् । ४। १। ६।

३३ विचार गणन्य । कला । ५।

३४ मण्डूक्य उपनिषद् । तैत्तिरीय उपनिषद् । २। १।

३५ ब्रह्मसूत्र भाष्य । १। १। १६।

३६ विचार गणन्य । कला । ५।

३७ गौडपाद वार्त्ता । अर्थ प्रकरण । २६।

स्वप्न और जाग्रत का भ्रम स्वीकार किया है। आचार्य शाङ्कर ने बौद्धात्म विज्ञान और गूढ मता का वर्णन करते हुए जाग्रत का एक सत्य स्वीकार किया है^{३८}। जाग्रत्यां भ्रम व्यवहार म सत्य है वयानि पारमार्थिक आत्मा म भ्रवस्था भ्रम नहीं हा सत्यता। जाग्रतास्था मे आत्मा ग्यून नेट म अन्तार करती है। उपाधि योग म मन और इन्द्रिया क सम्बन्ध स जीव जाग्रत दगागा का अनुभव करता है। इस अवस्था म आत्मा का देहाध्याम वगा जा सत्यता है^{३९}। इसी प्रकार आचार्य शाङ्कर स्वप्न वा जाग्रति क अनभूत विषया वा परिणाम मानते है। जाग्रत अवस्था म अनभूत विषया वा रूप वामनामय है। आचार्य शाङ्कर क अनुसार आत्मा वासनायुक्त मन स स्वप्न देगती है^{४०}। सुषुप्ति मे जाग्रत और स्वप्न दोनो की उपाधिया का अन्त हा जाता है। इस काल म आत्मा आत्मा म ही विनीत होती है। यह विनीतीकरण आत्मा के पारमार्थिक रूप के साथ सम्बन्धित नहा है। विगुद्ध चेतन आत्मा म आत्मा वा विनीतीकरण व्यवहार के कारण ह^{४१}। हृदय गत् की युत्पत्ति से आचार्य शाङ्कर हृदय म आत्मा की स्थिति निश्चित करत है। यह आत्मा ही हृदय रूप म सत गत् से वाय होती है^{४२}। इस प्रकार आत्मा स्वय सिद्ध ह और प्रत्येक दगा म वह अपने स्वल्प स च्युन नहीं होती। आचार्य शाङ्कर का कथन है कि आत्मा का अय स्वहन है यह प्रसिद्ध है^{४३}।

जाग्रत अवस्था म चौदह इन्द्रिया अन्तारम कहताती है^{४४}। इन चौदह अध्यात्मा के चौदह देवता है^{४५}। इनक चौदह विषय है^{४६}। आत्मा इन

३८ ब्रह्मसूत्र भाष्य। २।२।२८, १।२।१६।

३९ मन मगारोपात्रिविशयमम्बन्धात्त्रिदयाधान गृह्यतरन्तिशेषन्तो जीवो पागति।

ब्रह्मसूत्र भाष्य। २।२।१६।

४० तदासनाविशिष्ट स्वप्न न इत्यन मन शब्दावाया भवति। ब्रह्मसूत्र भाष्य। २।२।१६।

४१ सुषुप्तावस्थासु उपाधितृप्तविशयाभावान् रवामनि प्रलीन इति। ब्रह्मसूत्र भाष्य। २।२।१६।

४२ स्वमा मान मत्तत्वाव्यमपत्ता भवति। ब्रह्मसूत्र भाष्य। २।२।१६।

४३ आत्मा हि नाम स्वरूपम। ब्रह्मसूत्र भाष्य। २।२।१६।

४४ पंच कर्मेन्द्रिया पंच ज्ञानेन्द्रिया और चार अन्त करण य अया म ह।

४५ त्रिकपाल वायु सय वरुण और अश्विनीनुमार पांच ज्ञानेन्द्रिया क देवता ह। अग्नि मद्र वातन प्रजापति इन पंच कर्मेन्द्रिया क देवता ह। गत् ब्रह्मा वासुदेव और रुद्रय अन्त करण क देवता ह। ग चौदह अभिदेव ह। विचार उद्गोप्य। कथा। १५।

४६ शब्द रसा रूप रस गंध बचन आशान प्रान रन्निभोग, गन्विगजन मकल्प विकल्प निगद तिलन अहम्यता ये चौदह अधिभूत ह। विचार उद्गोप्य कथा। १५।

समस्त अवधारणों का ज्ञान है। जागृति में इनका स्थान नष्ट बनती वाली, सूत्र भाग, क्रियाशक्ति और रजोगुण है। उस समय आत्मा 'चित्त' नाम का ज्ञान होता है। चापत क अनुभूत विषयों और भागों के सम्कारों से मुक्त इनकी चिन्ति ज्ञान के हृत्कारणों भाग के समान भूमि हित्वा नाडी में होता है। स्वप्नावस्था में इन सम्कारों के कारण स्वप्न अनुभूति होती है^{१०}। उस समय आत्म का स्थान स्थान होता है। स्वप्नावस्था में मध्यमा वाली भूमि भाग ज्ञान शक्ति है एवं आत्मा सनातुण में बनता है। स्वप्न में वह आत्मा तजस नाम का ज्ञान होता है। आत्मा दस अवस्थाओं की भांति साक्षात् और ज्ञान आत्मा का ज्ञान है। सुषुप्ति में भी आत्मा उसका स्थान होता है। पुण्य एवं साक्षर उच्छ्रिता है ता वह उसके सुप्त और तत्त्वज्ञान का कथन करता है। इस अवस्था में बुद्धि आत्मा में विद्यमान रहती है किन्तु ज्ञान द्वारा अनुभूत रहती है। सुषुप्ति अवस्था में आत्मा स्थान में स्थित है। चमकी वाली पश्यती और ज्ञान का ज्ञान दृश्य शक्ति है। इसका गुण समागुण है। इसका अभिमान में आत्मा प्राप्त नाम वाला होता है^{११}।

सुषुप्ति में भी आत्मा जागृति और स्वप्न के समान ही स्थित रहता है। इस अवस्था में विचार के द्वारा ज्ञान से जीव चार स्थानों में स्थित जाना है।

१ जिस प्रकार किसान का भूषण कुण्ड में गिर पड़े और वह व्यक्ति उसका उपचार के लिए उसमें उतर कर उसकी लगाव। वह व्यक्ति जल के अन्दर से पानी नहीं कह सकता कि उस समय जल अथवा पानी में। वास्तविकता का कार्य है और जल और जल में विराट है, अतः जल के अन्दर से उसकी वाणी प्रकटित नहीं होती। इस प्रकार निश्चयों में आत्मा के अस्तित्व का निश्चय सुप्त पुरुष नहीं कर सकता है। परन्तु सुषुप्ति का ज्ञान के अज्ञान का स्मरण रहता है।

२ जिस प्रकार ताप संचयन में घृत्त इन्दीमूत्र होता है और ताप के विद्यमान से एकत्रोन्मूत्र उसी प्रकार सुषुप्ति में अज्ञान और जागृति में बुद्धि रूप होकर आत्मा प्रकट स्थित रहता है और जागृत और सुषुप्ति का अनुभव करता है।

३ जिस प्रकार ज्ञान छोड़ा के लिए जानक घर के बाहर जान और

१० स्वप्नावस्था के अर्थ में [२१]१०८।

११ चित्त स्थान में [२१]११।

परिधात होने पर पुनः मात प्रोक्त विधाम् करता है। उसी प्रकार आत्मा परमात्मसाहचर्य से युक्त होकर प्रकृत रूप माना के सुषुप्ति बाह्य म सुप्ति होता है।

३ जिस प्रकार जल रात्रि म घट का चरितरूप रहता है उसी प्रकार सुषुप्ति अवस्था म आत्मा की स्थिति होती है। जल रात्रि म घट भी जल रूप रहता है परंतु रात्रि सयोग म वह बाहर निकाला जाता है और पुनः घट रूप म प्रपञ्च होता है। उसी प्रकार आत्मा सुषुप्ति म विलीन होकर अज्ञान रूप होता है और जागृत अवस्था म पुनः घट के समान व्यावहारिक अनुभूतियों का विषय होता है।

इन दृष्टान्तों के अनुसार आत्मा त्रिकाल का साक्षी और भाता है^{४६}। व्यवहार म इस प्रकार आत्मा साक्षित्व का प्रमाण और परमात्म म नूटस्थ ब्रह्म का स्वरूप होत है। सुषुप्ति और स्वप्न के तीन तीन भेद कहे गये हैं^{४७}।

आचार्य शाङ्कर आत्मा की एक रसता के प्रतिपादन म कहते हैं कि पुरुष स्वप्न मे हाथी देखता है और जगकर उसी का कथन करता है कि आज मैंने स्वप्न म हाथी देखा था परंतु अब नहीं देख रहा हू। इस कथन से उसका निषेध भी करता है। दोनों का दृष्टा यही आत्मा है। सुषुप्ति म आचार्य शाङ्कर के अनुसार विषय विनाश का अभाव है किंतु विज्ञाता का प्रतिषेध नहीं होता^{४८}। जागृत और स्वप्न का परस्पर अभिचार होता है। इस अभिचार म आत्मा सतुष्ट नहीं होती। परंतु सुषुप्ति म प्रपञ्च का परित्याग होता है और आत्मा निष्प्रपञ्च होता है। आत्मा अपने सत्स्वरूप से युक्त होता है और निष्प्रपञ्च हो कर ब्रह्म स्वरूप होता है। यह कथन ब्रह्म काय और कारण की अभिन्नता प्रदर्शित करने के लक्ष्य से किया गया है^{४९}। सुषुप्ति म आत्मा को स्वरूप जान रहता है परंतु विशेष जान नहीं रहता। वह व्यापक उपनिषद मे कहा गया है कि दृष्टा की दृष्टि का लोप

४६ विचार उक्तोक्त्यः। कता। १५।

४७ सुषुप्ति प्रायः सुषुप्तिस्वप्न सुषुप्ति सुषुप्ति ये तीन प्रकार की सुषुप्तिर्याः। स्वप्न जागृत, स्वप्न स्वप्न स्वप्न सुषुप्ति ये तीन स्वप्नः। सुषुप्ति मूर्द्धा आर समाधि ये तीन भिन्न अशास्त्रे। विचार उक्तोक्त्यः। कता। १६।

४८ ब्रह्मसूत्र भाष्य। १। ३। १६।

४९ ब्रह्मसूत्र भाष्य। १। ३। १६।

नहीं होता है। उस प्रकार अन्न-पाणी का उद्भवन ही ज्ञान पर भी उन्नत साधनों के निष्कर्षण की सम्भावना नहीं है। आत्मा ही उन्नत अन्न-पाणी की साधनी है^{५३}।

आचार्य गङ्गूर आत्मा को अन्न और अन्न का मागी मानते हैं। शरीर स्थान चरक सहिता में आत्मा का भूत्राणि भावों का साक्षात् कहा गया है। इसका अनुसार अन्न आत्मा ही साक्षी ही सत्वता है अन्नन आत्मा नहीं। मर्त्य जब है और यह साक्ष्य मतानुसार सृष्टि का बाज माना गया है। परन्तु शरीर स्थान चरक सहिता में अन्न आत्मा का ही सृष्टि का कर्ता माना गया है। शरीर स्थान का यह सिद्धान्त बदान व अनुबन्ध है।

आत्मा सत् चतुर्वर्ग और आनन्द स्वरूप है। आचार्य गङ्गूर के अनुसार ब्रह्म का स्वरूप प्रकरण में ब्रह्म की सत् चित्त और आनन्द स्वभाव का वर्णन किया जा चुका है। गङ्गूर मत के अनुसार आत्मा और ब्रह्म एक स्वरूप हैं अतः यहाँ भी ब्रह्म व समान आत्मा व इन दोनों रूपों का वर्णन करना आवश्यक है। सत् चित्त व कर्माणि सत्कारा व रूप में यह अनादि सत् है। समस्त पदार्थों का एकमात्र अधिष्ठान होने से भी यह सत् है। अनिष्टान में अज्ञेय प्रकार इन तीनों रूपों को आचार्य मानकर साक्षात्कार का प्रतिष्ठा की गई है।

आत्मा चतुर्वर्ग स्वरूप है परन्तु उग्रम का विचार सन्नित्त नहीं है। यह चतुर्वर्ग आत्मा सामान्य और विषय तो अज्ञ द्वारा उल्लिखित किया गया है। एक ही सबव्यापी आत्मा सामान्य है और विभिन्न इच्छाशक्तियों में विकसित जीव अथवा पशु रूप में विकीर्ण विषय चतुर्वर्ग है। आत्मा का सत् स्वरूप त्रिकाना वाचिन है और चित्त स्वप्न त्रिकान का ताता है। आनन्द त्रिकान में परम प्रेम का विषय है। अनात्मता नाम रूप और वस्तु के आकारों में व्यक्त है। य नाम रूप और वस्तु ही अज्ञ व कारण हैं और इनसे उत्पन्न आत्मा आनन्दमय है। आत्म-पदार्थों के विरुद्ध अनात्म पदार्थ अप्रिय हैं। जस आत्मा के लिए द्रव्य प्रिय है परन्तु द्रव्य से भा पुत्र प्रिय है, पुत्र की अन्वय गुरार अधिक प्रिय है। इसी प्रकार शरीर का अन्वय इच्छा अधिक प्रिय है। अन्वयान् स प्राण प्रथवा मन अधिक प्रिय है। परन्तु इन सबसे भी आत्मा प्रिय है क्योंकि आधि न्याधि स अधिक पाण्डित्य हाकर पुत्र्य वदना है कि मेरे प्राण

जाय तब मैं सुखी होऊंगा^{५४} । इसमें सिद्ध है कि आत्मा सर्वाधिक प्रिय है । अतः प्रेम का विषय होने के कारण आत्मा ध्यान रूप स्वरूप है ।

आत्मा व विनोद चतुर्थ रूप को चिन्ताभाग भी कहते हैं । अतः करण की वस्तुओं में सामान्य चतुर्थ ब्रह्म के प्रतिबिम्ब को चिन्ताभास कहते हैं । यह चिन्ताभास चतुर्थ के लक्षणों से रहित होता है परन्तु तब के समान भासित होता है । इस चिन्ताभास की अल्प देग काल— अतः करण और अज्ञान में स्थिति है । इस चिन्ताभास विनोद व दो रूप हैं । अज्ञान की भाँति अवस्था में जब यह प्रतीत नहीं होना परन्तु प्रतीति से भाँति की निवृत्ति होती है तब यह अविच्छिन्न विनोद कहनाता है^{५५} । परन्तु भाँति चिन्ता में इसकी प्रतीति हाती है और ज्ञान दान में नहीं होती । तब यह अल्प देग काल विनोद होता है और कल्पित विनोद कहनाता है । जन्मे सूय का प्रकाश सबत्र समान रूप से प्राप्त है परन्तु इसका प्रतिबिम्ब केवल जन या दण्ड में ही उपाधि रूप से प्रतिबिम्बित हाता है । अथवा जैसे सूय काल में मणि केवल वस्त्र या कपास आदि को ही जलाती है अन्य पदार्थों को नहीं उसी प्रकार उपाधि स्वरूप आत्मा विनोद रूप में व्यक्त होना है । इस विनोद चतुर्थ से ही जीव में व्यावहारिकता आती है । आचार्य साङ्ख्य ने इसको ही अधकार के समान युष्मत् प्रत्यय का विषय माना है^{५६} ।

सामान्य चतुर्थ त्रिकाल में एकरस रहता है । इसमें विनोद उपाधि रूप में विषय की प्रतीति होती है । विनोद चतुर्थ व्यावहारिक और सामान्य पारमार्थिक है । सामान्य ब्रह्म सत्य है और विनोद चिन्ताभास रूप में मिथ्या है विनोद चतुर्थ में कृतापना भोक्तापना बन्धमोक्ष जन्म मरण और योनि प्राप्ति अल्पस्त हैं । यह सत्कार विनोद रूप है और अनारम्भ है । आत्मस्वरूप ब्रह्म सामान्य चतुर्थ है^{५७} । सामान्य चतुर्थ ब्रह्म बुद्धि कल्पित सर्वत्र और काल में व्याप्त है । सामान्य चतुर्थ में ही एक रज्जु में दण्ड सप, रेखा और धारा की भाँति होती है । इस दण्ड सप आदि रूपने में रज्जु ही 'सामान्य इत् अण है । यह सामान्य इत् अण परिचारी नहीं है अर्थात् विकार रहित है क्योंकि भाँति और अन्ति निवृत्ति दोनों कालों में रज्जु शाश्वत सत्य है ।

५४ विचार चतुर्थ्य । कला । २ ।

५५ विचार चतुर्थ्य । कला । १ ।

५६ विचार चतुर्थ्य । कला । १ ।

५७ विचार चतुर्थ्य । कला । १ ।

सामान्य चतुर्थ अस्ति भाति और प्रिय रूप सब पदार्थों का जाता है । सामान्य चतुर्थ सर्वाधिक सूक्ष्म और व्यापक है ।

आत्मा को विभाषित करने वाले दो प्रकार के विभाषण हैं—विधेयमुखा और प्रतिधेयमुखी^{५८} । आत्मा उत्पत्ति और नाश रहित होने के कारण नित्य है । बुद्धि और ह्याम में रहित होने से वह अज्यय है । मायादि मत्ता में रहित होने में आत्मा शुद्ध है । वह सजानीय विजातीय, स्वगत और विगत भेदा से रहित है । शरीर रूप क्षेत्र का जाता होने में आत्मा क्षेत्रज्ञ है । समस्त पदार्थों का अधिष्ठाता होने से आश्रय है । विकार रहित होने से आत्मा अविश्रिय है । आत्मज्ञान के लिए दूसरे पर निर्भर न होने के कारण आत्मा स्वयं प्रकाश है । ऊण नामि के समान जगत का अभिन्न निमित्तोपादान कारण होने से हेतु है । आत्मा सबको व्यापक है । भेद रहित होने के कारण आत्मा असंगी है । किसी आवरण से बाधित न होने के कारण आत्मा अनावृत है । इस प्रकार आत्मा के ये द्वादश धर्म बतल गये हैं^{५९} । ज्ञानात्मा नाम से बुद्धि का महानात्मा नाम में महानस्व और ज्ञानात्मा नाम में शुद्ध ब्रह्म का कथन होता है । स्थूल सूक्ष्म सघात समूह का मिथ्यात्मा कहते हैं । गौणात्मा से पुत्र का कथन और मुख्यात्मा में बूटरम ब्रह्म लक्षित है । सकल्प विकल्प रूप वृत्ति मन निश्चय रूप बुद्धि, चिन्तन रूप चित्त, वृत्ति और अहकार अह्मने की वृत्ति से युक्त होने से यह आत्मा ही चार अन्त करणों में व्यवहन हुई है । आचार्य गङ्कर के अनुसार आत्मा का उपाधि भूत अन्त करण मन, बुद्धि विज्ञान और चित्त आदि अनेक प्रकार से कहा जाता है । वृत्ति विभाग से सशय वृत्ति के कारण आत्मा ही मन सत्ता वाला होता है^{६०} । इसी प्रकार अन्त करण भी उपाधि भूत आत्मा का स्वरूप है^{६१} । आचार्य गङ्कर ने छायात्मा और विज्ञान आत्मा का उल्लेख अपने भाष्य में किया है । छायात्मा प्रतिबिम्ब भाष्य है । यह नष्ट हो जाना जाता है^{६२} । विज्ञानात्मा नाम से जीव

५८ सनत्ति, आनन्द स्वयं प्रकाश कर्म्य साही, रघ्या, उपस्था आदि विस्मयुमी लक्षण है । विचार चन्द्रोत्प । कला । ७।

अनन्त अग्रण्ट, अमग, अद्वितीय अथवा निर्वाक, निर्गण अथवा, अक्षय और अक्षर निर्धनुग लक्षण है । विचार चन्द्रोत्प । कला । ७।

५९ विचार चन्द्रोत्प । कला । १६।

६० विचार चन्द्रोत्प । कला । १६।

६१ उपाधिभूतमन्त करण मना बुद्धिविज्ञान चित्तमिति चाऽनेक म । मध्ययुज । २। ३। ३०।

६२ वृत्ति विभागेन सरावाग्निवृत्तिक मन इ युष्यते । मध्ययुज भाष्य । २। ३। ३०।

का बचन होता है। यह इन्द्रिया से गुप्त होता है। आत्मा शाङ्कर ने औपार्थिक जीव स्वरूप विज्ञान आत्मा को परमात्मा से अलग बना है^{१३}।

आत्मा के पारमार्थिक रूप में वस्तुतः कत त्व का अभाव है। यदि आत्मा को कर्ता मान लिया जाय तो उसमें स्वाभाविक कत त्व मानना पड़ेगा। कत त्व होने से मोक्ष प्रसंग का अभाव होगा क्योंकि कम के स्वाभाविक होने से आत्मा की कम से त्रिवान में भी निवृत्ति न हो सकेगी। जस अग्नि का ऊष्णत्व से वियोग नहीं होता उसी प्रकार कत त्वमय आत्मा ने कम का निराकरण नहीं हो सकता। ऐसा होने से पुरुषार्थ की सिद्धि नहीं हो सकती^{१४}। कमस्वभावी होने से समाधि की भी सिद्धि नहीं हो सकती^{१५}। आचार्य शाङ्कर के अनुसार आत्मा में जो कत त्व अस्त है वह स्वाभाविक नहीं है। वहद्वारण्यक उपनिषद् में आत्मा के लिए ध्यान करता हुआ सा चिन्तन करता हुआ सा आदि वाक्यों का प्रयोग हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि वस्तुतः आत्मा ध्यान या चिन्तन नहीं करता बरन बसा करता हुआ सा प्रतीत होता है^{१६}।

ब्रह्मसूत्र में आत्मा के कत त्व का दाख्यान करने के लिए गित्या का उदाहरण दिया गया है। जिस प्रकार बर्तई बगूला आदि लेकर कम करता है और थककर दुखी होता है उसी प्रकार आत्मा कम में अस्त होकर दुख का अनुभव करता है। परन्तु अपने घर जाकर जिस प्रकार अपने बसूले आदि अलग रखकर बढई स्वस्थ और सुखी होता है उसी प्रकार आत्मा कत त्व से मुक्त होकर ब्रह्मस्वरूप में प्रतिष्ठित होता है। आचार्य शाङ्कर के अनुसार अविद्या कल्पित द्वन्द्व से मुक्त हुआ आत्मा स्वप्न और जागृति अवस्था में कर्ता होकर दुखी होता है। यह आत्मा अपने परब्रह्म स्वरूप में प्रवृत्त करके कारण सघाता से मुक्त होता है एवं सुषुप्ति अवस्था में अकर्ता होकर सुखी होता है। इसी प्रकार मुक्ति की अवस्था में भी विद्या रूपी प्रतीप से अविद्या अंधकार को दूर करके आत्मा ही केवल गान्त और सुखी होता है। जस बढई अपने व्यापार

६३ ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।५।१७।

६४ पुरुषार्थ—धर्म अथ काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ हैं। विचार चतुष्टय उपासधान ।

६५ समाध्यानात् । ब्रह्मसूत्र । ३।३६।

न स्वाभाविककल यमात्मानं स भवति अनिर्माद्यप्रसंगान् । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।३।४०।

६६ अग्नेरिवौषध्यात् । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।३।४ ।

न च पुरुषार्थनिधि । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।३।४ ।

ध्यातृत्व लेनायत्तव । वहद्वारण्यक उपनिषत् । ४।३।७।

कम की अपेक्षा से वर्त्ता होता है परन्तु अपने शरीर से वह अकर्ता है, इसी प्रकार आत्मा भा अपने कम आत्मा उपकरणों की अपेक्षा से वर्त्ता होता है अथवा अपने स्वरूप से तो आत्मा अकर्ता है^{१०} । परन्तु आत्मा निरवयव है । उपाधिभूत मन आत्मा का ग्रहण या त्याग कर आत्मा में दुःख या सुख का आराप होता है । यह आत्मा मन सहित ही आत्मा में विहार करता है । आचार्य गङ्कर के अनुसार यह विहार वासनामय है, पारमार्थिक नहीं^{११} । इसके विपरीत बुद्धि आत्मा एवं इंद्रिया में कम करने की स्वतंत्र शक्ति नहीं है । ये कम औपाधिक होने हैं^{१२} । बुद्धि अत्रियात्मा के द्वारा उपाधिभूत वेत त्व होता है । किन्तु आत्मा में परमायत वेत त्व का अभाव है । अतः यहाँ भा विवृत भावना का सम्भावना है । विवृत भावना का सम्बन्ध भी गङ्कर के अनुसार 'ब्रह्म का स्वरूप प्रकरण में सन्निपत्त विवेचन किया जा चुका है ।

यह आत्मा ही जीव है । आचार्य गङ्कर के अनुसार सृष्टि का प्रारम्भ में यह शरीर आत्मा ही प्राण धारण करने वाला है । इसलिए भी एक सत्कार की अनादिता व्यक्त करने वाला होने से यह आत्मा ही जीव नाम कहलाता है^{१३} । जीव चेतन है अतः यह प्रजात्मा भी है^{१४} । प्रजात्मा गण्ड स मुख्य प्राण का भी कथन होता है । प्राण का अर्थ जीव है एक वही मुख्य प्राण है । इन प्रकार प्राण और प्रजात्मा साथ रहते हैं^{१५} । आचार्य गङ्कर के अनुसार प्राण गण्ड से न वायु का ही कथन किया गया है और न इंद्रिया के व्यापार का ही । वायु का अध्यात्मभाव का प्राप्न होने पर एक पुन उसकी

६७ यथा च तन्नामयः । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।४०।

६८ तत्रा लान् वास्तान्किरणहन्त क्ता टु ली भवन्ति स एव स्वयं प्राप्ता विदुष्वत्वात्प्रा
निकरण स्वस्थो निवृत्ता निव्यापार सुगता भवत्येवमविद्याप्रत्युपस्थापितः तमुपत आत्मा
स्वप्नवगतिनावर्षण कन्दु ली भवन्ति, पर ब्रह्म प्रविश्य विमुक्तवापकरण
सपात्रोत्कर्त्ता सुगी भवन्ति । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।३।४०।
समना एव भवन्ते विद्वरन्ति । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।३।६०।

काननामय एव न तु पारमार्थिकः । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।१।४०।

६९ क्व त्वमप्या मन उपाधिनिमित्तमवन्ति । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।१।४१।

७० सगप्रमुत्तं तारारमा मान जावरात्मन प्राणधारणनिमित्तेना मिचपन्ननात्ति मस्य इति
दरायति । आत्मात्वेतु प्राणवधारितप्राण सन का प्राणधारणनिमित्तेन
सगप्रमुत्तमित्तमवत् । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।१।३६।

७१ प्रजा मत्वमपि जीवे तावच्चयन वादुपपन्नम् । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।१।३७।

७२ जीवमुन्वप्राणपरिमदे च प्राणप्रवा मना । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१। १।

पाँच अवस्थायें होने पर वह प्राण कहताता है^{३३} । प्राण की पाँच वृत्तियाँ मानी गई हैं । वे वृत्तियाँ प्राण अपान उष्ण व्याण और समान हैं^{३४} । प्राण मन के समान पाँच वृत्तियाँ वाला माना गया है^{३५} । अतः प्राण जीव का उपकरण कहा गया है^{३६} । आचार्य गान्धर्व मुख्य प्राण और अय प्राण में बलक्षण्य मानते हैं । वाक्य आदि के तीन होने पर भी मुख्य प्राण जागता रहता है । अय प्राण मृत्यु से आश्रित होने पर मुख्य प्राण नहीं ।^{३७} इन्द्रिया और मुख्य प्राण के भी भेद हैं । इन्द्रियाँ विषय पान के लिए हैं पर तु मुख्य प्राण नहीं^{३८} ।

छादोग्यापनिषद् में जीव के लिए सम्प्रसात् गन्त का प्रयोग हुआ है^{३९} । सम्प्रसात् गन्त आत्मा के पारमार्थिक स्वरूप का विनापक है । आचार्य गान्धर्व के अनुसार सम्प्रसात् गन्त में उक्त जीव जाग्रतवस्था में इन्द्रियाँ का अयक्ष होता है । जाग्रत अवस्था की वासनाओं से युक्त होकर नाडी में प्रविष्ट होकर बड़ी स्वप्न का कारण होता है । तब वही आत्मा स्थूल और सूक्ष्म गरीराभिमान से वृथक होकर सुषुप्तावस्था में विनानतत्व का परित्याग करके ब्रह्म में एकाकार होकर अपने स्वरूप में उक्त होता है^{४०} । यद्यपि जीव और ब्रह्म के ऐक्य का प्रतिपादन करना आचार्य गान्धर्व का उद्देश्य है किन्तु जीव के जीवत्व और ब्रह्मत्व में ऐक्य की प्रतिष्ठा के तब तक नहीं मानते जब तक कि जीव अपनी साधना से आत्म अनात्म का पान नही कर लेता । मुमुक्षुत्व प्राप्त करने के लिए आचार्य गान्धर्व षट् साधन सम्पत्ति का होना आवश्यक मानते हैं^{४१} । इससे जीव की जागतिक सत्ता का गौडपाद के समान

३३ वायुरेवाऽयमन्या ममाप न । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।४।६।

३४ प्राणोऽपानो व्याण उष्ण समान । बह्वारण्यक उनिषत् । १।५।३।

३५ प्रमाणविषय विकल्पनिश्चयतत । योग सूत्र । १।६।

३६ चावोपकरणं वमपि प्राणस्य । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।४।२।

३७ तत्त्वान्तरं भूता सुगन्धिनः । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।४।२८।

वैलक्षण्यम् । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।४।२६।

३८ विषयाचोऽनन्तुव चैन्द्रियाणां न प्राण । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।४।२६।

३९ अथ य एष सम्प्रसात् । छादोग्य उपनिषत् । ८।३।४।

४० सम्प्रसात्शब्दान्ति जीवो जागरितवस्तारे दृष्टद्विषयवरा यज्ञो भूत्वा तद्वामना निर्मितारण स्वप्नान्तापीचरानुभूय ज्ञान शरणं प्रेम्सुख्यरूपान्तरिरीरभिमानान समुदाय सुपुला बस्थाया परज्यानिराकाराशक्ति परे शब्दापमम्यय विरायविवानवत्त्व च परित्यज्य स्वेन रूपणाभिनियवते । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।३।२ ।

४१ ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।१।१।

उहने कहा भा तिरस्कार नहा किया । परमाय जान क लिए व व्यावहारिक प्रमाण प्रमथ विधान स्वीकार करते हैं । इसी प्रकार यद्यपि जीव ब्रह्म ही है, परन्तु उसमें व्यवहार भेद भी है । भावाय गङ्कर उन्नम और ब्रह्म में लौकिक भेद मानते हैं । जीव म परमेश्वर क संपूर्ण धम नहीं है^{८२} । जाव की महिमा धम्य है^{८३} । ब्रह्मसूत्रों में भा इस भेद का निर्णय है^{८४} । परन्तु यह भेद व्यावहारिक है और उपासना क लिए उपयोग है । जान-ज्ञान के लिए नहीं । मनोभवत्वादि गुण ब्रह्म म हा समुक्त हैं जाव म नहा । जीव शरीर में हा रहन वाला है । वह इस भोग के अधिष्ठान का त्यागकर भयन नहा जाता है^{८५} । कठउपनिषद् म जावात्मा और परमात्मा का कर्जन छाया और ताप क रूपक क द्वारा किया गया है^{८६} । भावाय गङ्कर न यहा जावात्मा और परमात्मा का भेद स्पष्ट किया है । यह भेद व्यावहारिक है । यद्यपि छाया और ताप दाता विद्वद् स्वभाव वाच हैं पर तु य विराज अनिच्छात्म्य है । इसी प्रकार मुष्क उपनिषद् म एक वष पर ११ वषया का प्रनग आया है^{८७} । कठ उपनिषद् म आत्मा का रती और शरीर का रथ माना गया है^{८८} । इसी प्रकार भावाय गङ्कर क अनुसार ये पभा धव्याम प्रकरण क अन्तगत हैं । भक्षण करन क कारण एक पमी जीवात्मा और दूसरा दृष्टा हान क कारण परमात्मा है । इन दोनों में दृष्टा और दृष्ट्य भव है । मण्ड उपनिषद् म कहा है कि जाव गाव करता है । परन्तु माग समय से गोक रहित हाकर परमात्मा का महिमा का जानना है^{८९} । बिना माय दहन वाला क्षत्रन है

८२ धर्मेश्वरस्यैवैवमिदं सुविकारकारणत्वात् । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।१० ।

८३ न साधारण्यं तदुच्यते । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।११ ।

८४ अनुपपत्तेस्तु न शरीर । ब्रह्मसूत्र । १।१।१२ ।

८५ जी-स्तु शरीरं प्रव भवति तस्य भागधिष्ठानादसाध्यान्वयं
व दमागत । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।१३ ।

कनकन न्यपन्नाच्च । ब्रह्मसूत्र । १।१।१४ ।

८६ कठ उपनिषद् । १।३।१ ।

मुहा प्रविष्टावासानो द्वि उपासनात् । ब्रह्मसूत्र । १।२।११ ।

८७ मुष्क उपनिषद् । २।१।१ ।

विशेषज्ञानं । ब्रह्मसूत्र । १।२।१० ।

८८ कठ उपनिषद् । १।३।२ । १।१।१० ।

८९ “उपासन्यं विपन्नं ग्वावति इयन्निगाधिष्ठानात्मा भवति अनन्तन्त्या ।

अभिवाक्येति इयन्तान्चतन वाच्य परमात्मा । ऋद्धध्वन्मावेन ।

और जीवात्मा का साक्षी है। अत्रण भ्रमया जीवात्मा के वास्तव भोक्तृत्व प्रविद्याजय हैं। आचार्य शङ्कर के अनुसार स्वप्न व हाथी के समान जीव के पारमार्थिक स्वरूप मय तत्त्व प्राप्ति प्रविद्यावृत्त है^६।

जीव का व्यवहार औपाधिक है। आचार्य शङ्कर के अनुसार आत्मा का अनात्म पदार्थों में अभिनिवृत्त होता है। अनात्म में अभिनिवृत्त होने के कारण देहादि सघाता की उपनिधि होती है। यह उपाधि मिथ्या बुद्धि के कारण होती है। सासारिकता औपाधिक है और ससारी की ईशान शक्ति के लिए देह इंद्रियो आदि की आवश्यकता है^{६१}। जीव ससारा है और बुद्धि प्राप्ति उपाधियों का अभिमानो^{६२}। आत्मा से जैसे उपाधि परिच्छिन्न होता जाता है उस उस अवस्था विगेष के साथ आत्मा ही मन बुद्धि चित और ज्ञान आदि नामा द्वारा सम्बाधित किया जाता है। आचार्य शङ्कर के अनुसार उपाधि शून्य से प्राय बुद्धि का बोध होता है। आत्मा न चलन करता है और न ध्यान करता है परन्तु बुद्धि के चलन पर मानो चलता है और बुद्धि के ध्यान करने पर मानो ध्यान सा करता है। बुद्धि रूप उपाधि के साथ आत्मा का सम्बन्ध होकर मिथ्या ज्ञानमूलक व्यवहार होता है। व्यवहार का ज्ञान बुद्धि के उपाधि होने के कारण है^{६३}। आचार्य शङ्कर का बुद्धि के प्रति उपाधि कथन का विगेष आग्रह है। आत्मा की सासारिक बुद्धि के सयोग नाग तक निवृत्ति नही होती। भ्रमया जब तक बुद्धि रूप उपाधि के साथ सम्बन्ध है तब तक जीवन और ससारित्व है^{६४}। इस प्रकार बुद्धि और ब्रह्म के समाग से यावहारिक जीव की स्थिति होती है। आत्मा के पारमार्थिक स्वरूप में वह नित्य है और उपाधि के साथ मरण एव जन्म वर्मा जीव कहलाता है। वस्तुतः जीव के विभाग नही होते, परन्तु आकाश में घटादि के सम्बन्ध के समान बुद्धि आदि उपाधियों से जीव विभक्त सा प्रतीत होता है^{६५}। जीव के

६ समाने वधे पुरो निमग्नाऽनीशया शक्ति मुह्यमान । मुह्यक उपनिषत् ॥११॥२॥

६१ ब्रह्मसूत्र भाष्य ॥१॥२॥३॥ (४) ब्रह्मसूत्र भाष्य ॥१॥२॥ ४॥

६२ आचार्य बुद्ध्यायुपाधिपरिच्छिन्न अभिमानो । ब्रह्मसूत्र भाष्य ॥१॥३॥१॥

६३ ब्रह्मसूत्र भाष्य ॥२॥३॥३॥

६४ बुद्ध्या ध्यायन्ती चलन्त्या बुद्धी चलनावेति । अपि न मिथ्याज्ञानपुरमरायना मनो मुह्युपाधिबन्ध । ब्रह्मसूत्र भाष्य ॥२॥ ३॥

६५ यावत्प्रमभावित्वात् बुद्धि मयागरय ।

मुह्युपाधिबन्धनात् जीवस्य जीवस्य ससारित्वेन । मुह्युपाधिबन्ध परिच्छिन्न स्वरूपव्यतिरेक्यात् । ब्रह्मसूत्र भाष्य ॥२॥३॥

जन्म मरण भी उपाधि के कारण हैं, क्योंकि उपाधि के जन्म से इसका जन्म और तन्नुसार मरण होता है^{६६} ।

हिरण्यगर्भ आत्मा का जीवधन कहा जाता है । आचार्य शङ्कर के अनुसार यह हिरण्यगर्भ सर्वोद्दिष्टा से युक्त है । हिरण्यगर्भ ब्रह्म लोक का निवासी है । उद्दिष्टा से आवत जीवों का यह निवास-स्थान है । अतः यह जीवधन ब्रह्म लोक कहा जाता है^{६७} । यह हिरण्यगर्भ जीव त्र्यष्टिमा की समष्टि है । शरीर में ब्रह्म का निवास है । वह जीव रूप में शरीर रूप पुर में रहता है अतः उसका ब्रह्मपुर कहते हैं^{६८} । आचार्य शङ्कर के अनुसार जिस प्रकार शालग्राम में विष्णु सन्निहित है उसी प्रकार इस जीवपुर में ब्रह्म सन्निहित है^{६९} । परन्तु बुद्धि आदि उपाधियों के अभिमानी जीव में ब्रह्म ही नाम रूप वाला होकर अनुभव का विषय होता है । उनके कथनानुसार शरीर से पथक टूटकर जो अपना स्वरूप प्राप्त करता है वही उसका पारमार्थिक स्वरूप है^{७०} । यह जीव शरीर रूप पुर में रहने के कारण पुरुष कहलाता है^{७१} । आत्मा के शरीर में रहने से वह शरीर होता है । वेह इन्द्रिय मन बुद्धि आदि उपाधियों से परिच्छिन्न होने से शरीर शून्य से आत्मा का कथन होता है । उनके अनुसार यही पर शरीर की वृत्तति कही गई है ।^{७२}

परमावता जीव में परिमाण नहीं है । अर्थात् अभाक्ता असंख्य नित्य मुक्त, मन स्वरूप होने से आत्मा के विभाग नहीं हो सकत । व्यवहार में जीव के छाट-बूट होने और स्थूल सूक्ष्म होने के विधान हैं । ये सब बुद्धि रूप उपाधि के घनों से अघनास के कारण हैं । आचार्य शङ्कर का मत है कि जीव में बुद्धि के गुणों की प्रधानता होने से बुद्धि के परिमाण में जीव के परिमाण का कथन

६६ बुद्ध्यान् उपाधिनिमित्तं स्वयं प्रविभागप्रतिदानमाकाराद्येव धर्मात्मस्वधर्मिष्ठिनः ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।३।१७

६७ जीवानां हि सर्वेषां कर्णपरिवर्तानां सर्वकरणात्मनि हिरण्यगर्भे ब्रह्मलोकनिवासनि सदानुपपत्तेर्भवति ब्रह्मलोकनिवासिनः । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।३।१३।

६८ ब्रह्मण्य पुरे सन् शरीरं ब्रह्मपुरं त्र्युच्यते । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।३।१५।

यथा शालग्रामात् विष्णुः सन्निहितः । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।३।१५।

६९ पारमार्थिकं स्वरूपं यत् शरीरान् समुत्पाद्य तत्रैव रूपस्याऽभिनिष्पद्यते ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।२।१६।

१०० ब्रह्मसूत्र भाष्य ।

१०१ ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।५।१५।

१०२ ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।२।६।

होता है। इसमें विपरीत उत्पत्ति, परिमाण आदि स्वाभाविक नहीं है^३। बुद्धि के अभिप्राय से ही जीव का स्थान दृश्य है^४।

जीवात्मा विभु है अणु नहीं^५। जीव चतुर्थ है और नवम प्राप्त है। जैसे अग्नि का स्वरूप उष्णता और प्रकाश है वैसे ही जीव में चतुर्थ स्वाभाविक है। दूसरे गुण और गुणों का विभाग नहीं है। अतः जाव चतुर्थ स्वरूप है और उसके लण्ड नहीं हो सकते। आचार्य साङ्ख्य भ्रगुत्व का अस्वाकार भी नहीं करते परन्तु वह भ्रगुत्व बुद्धि या उपाधि का मायम संहा गृहीत है^६।

पारमार्थिक आत्मा में कत त्व नहीं है किन्तु यावहारिक रूप में जीव रूप में आत्मा कत त्व का प्रख हाती है। यह कत त्व वस्तुतः अविद्याजन्य होता है और ईश्वर अधिष्ठान रूप होकर जीव के कत त्व का प्रख होता है। जीव के कत त्व का ईश्वर नियामक है। जीव में राग द्वेष की प्रेरणा होती है। आचार्य साङ्ख्य का मत है कि अपने कत त्व में जीव स्वतंत्र नहीं है। कम का चेतयिता ईश्वर है। कृपि आदि कम यद्यपि जीव द्वारा होते दखे जाते हैं परन्तु जीव ईश्वर की प्रेरणा के बिना निया नहीं कर सकता^७। यहाँ जीव से निष्प्रिय आत्मा और ईश्वर से मायावी ब्रह्म का अय ग्रहण करना चाहिए।

ईश्वर प्रेरक है और जीव उस पर निभर है। यह प्रेरणा मायामयी है। यह अनादि है और जीव का कम और उसके फल के लिए ईश्वर पर आश्रित है^८। इस सम्बन्ध में गीता में कहा गया है कि सबके हृदय में रहकर

१३ नदि बुद्धे गुणविना केवनम्याऽऽगम समारित्वमग्नि बुद्ध युपाधिर्मायान निमित्त बुद्धिपरिमाणोऽस्य परिमाणवपत्तेः । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।३।२६।

१४ हृदयायननववर्नापि बुद्धेरेव तन्मायानत्वात् । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।३।२६।

१५ तन्गुणासारवात्तु तन्वपदरा प्राश्रवत् । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।३।२६।

१६ चैतन्यमेव ह्यस्य स्वरूपमग्नेरिवाऽप्यप्रकारौ ताऽप्र गुणगुणि विभागो विद्यते ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।३।२६।

१७ यद्यपि रागादिप्रयुक्त सामग्रामग्नयश्च जीव यद्यपि त लोके कृष्यादिपु कमसु नेश्वरकारणत्व प्रसिद्धा तथा सवान्मेव प्र त्प्राश्रवरा हतुकर्तेति ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।३।४१।

१८ ईश्वर मभूतानां तन्मायानत्वात् । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।३।४१।

परायत्तेऽपि हि कत के कराश्व जीव कुत त द्वि तर्माश्वर कारयति पूव महात्मनि तां तां मया ययत्तम । अथात्तत्वात्तीरत्य ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।३।४१।

ईश्वर जीव को माया द्वारा यत्र म चत् दृष्टे मनुष्य के समान घुमा रहा है। आचार्य गङ्कर का कथन है कि जीव द्वारा पानित विधि नियथा का नियोक्ता ईश्वर है। जाव उसक अतीत रहन वाला है। जीव और ईश्वर की प्रेरण और प्ररित हान की परम्परा बीजादुर 'याम स सिद्ध है' ६।

अन यह है कि जब आचार्य गङ्कर नात्र और ब्रह्म का एक स्वीकार करत हैं तब तो जीव का भी ईश्वर के समान साम्यगाना होना चाहिए। उसी क लक्षणों और गुणा न युक्त हाने म जीव का मायादि कम विपाक या अपान का अनुभव नहा हाना चाहिए। परन्तु आचार्य गङ्कर न जीव की व्यावहारिकता म उनके समार धर्मित्व का तिरस्कार नहा किया। कम और उसक फल क लिए नात्र ईश्वर क अधान है। अविद्या के कारण जीवत्व है, अयथा नहीं। आचार्य गङ्कर का मत है कि जीव और ईश्वर म यद्यपि समान धर्मित्व है तो भी जीव म अविद्या का प्रवधान है। म व्यवधान के कारण ही जाव का ईश्वर धम निगभूत है^{११}। जिस प्रकार अरणि म दहन और प्रकाश गानों ही हैं परन्तु व उममें सनिहित रहत हैं सभी प्रकार ईश्वर धम जाव म समाहित रहत हैं। नाम र्पाति अविद्या उपाधिया से प्रद्वल रहने क कारण एवय भ्रम स आवन रहता है^{१२}। यह निगभाव भ्रम क कारण है।

ईश्वर मे जाव क यथन और योग हाते हैं। आचार्य गङ्कर क अनुसार ईश्वर क स्वरूप का जान हान स माय और अज्ञान स यजन होता है^{१३}।

ब्रह्मसूत्रा म जाव को ईश्वर का अण कहा गया है^{१४}। आचार्य गङ्कर क अनुसार जीव और ईश्वर म अग्नि और उमक विरपृतिग क समान भत् है। उन दाना म मत् प्रतान हान दृष्ट भी उनका उपाता म अभिन्नव है। सभी प्रकार नात्र और ब्रह्म म चतुय साम्य है। उस प्रकार का अभेत् जेत

१ निगमित्वयपत्तिवता । अत्र भाष्य । १०।५।

११० अहमनु भाष्य । १०।१।

१११ द । अहमनु भाष्य । अत्र भाष्य । अहमनु भाष्य । १०।५।

११२ उतो नि । अहमनु भाष्य । अत्र भाष्य । १०।५।

अहमनु भाष्य । अत्र भाष्य । अहमनु भाष्य । १०।५।

११३ अतो नान । अहमनु भाष्य । अत्र भाष्य । अहमनु भाष्य । १०।५।

हुए भी उनमें भेद की प्रतिष्ठा की गई है^{११४} । इस भेद से शेषक स्वाधी भाग में भी विरोध रहा है । ईश्वर निरतिगय है । आचार्य शाङ्कर ने अनुमा-
र ईश्वर निरतिशय उपाधि से हीन उपाधि वात जीवा का नाशक है^{११५} ।

देह सम्बन्ध का गान भ्राति के कारण होता है । उपाधिवग उत्पन्न देहादि का नाश प्रज्ञा का ही रूप है । आचार्य शाङ्कर का मन म इस देह सम्बन्ध से जीव के बन्धन और मोक्ष सम्भव हैं । परमात्मिक आत्मा म ये नहीं होते है^{११६} । जैसे अपवित्र स्थान का सूय परिहृत और पवित्र का प्राप्य है, श्रवण गौ मूत्र पवित्र और श्रवण अपवित्र कहा जाता है उसी प्रकार एक ही आत्मा म श्रुता परिहार की व्यवस्था होती है । म श्रुता परिहार का उद्देश्य है एक आत्मा म कम और श्रवण का प्रदान करना । जीव के बन्धनों का नाशक आत्मा म सहत होना चाहिए । जीव के समान ईश्वर को भी एकात्म रूप होने के कारण दुःखी और सुखी होना चाहिए । परन्तु ऐसा न हो पाता^{११७} । ब्रह्ममूत्र म जीव को ब्रह्म का आभासमात्र कहा गया है^{११८} । आचार्य शाङ्कर ने अनुमा-र जीव जल म पड़ हुए सूय के प्रतिबिम्ब के समान है । जीव परमात्मा का आभासमात्र है । यहाँ जीव की प्रावहारिक गत्ता को नक्षय किया गया है । जिस प्रकार जल म सूय प्रतिबिम्ब न तो साक्षात् सूय हो होता है और न सूय से पृथक् प्रतिबिम्ब की कोई स्थिति होती है उसी प्रकार प्रावहारिक जीव न तो शुद्ध परमात्मा ही है और न उससे भिन्न कोई श्रवण तत्त्व । इसी प्रकार सूय प्रतिबिम्ब के दोलायित होने पर सूय नहीं हिलता और इसी दृष्टान्त से एक जीव के कम या फल से दूसरे जीव में उसकी प्रतिबिम्ब नहीं होती है । यह आभास श्रवण द्वारा उत्पन्न हुआ है । परमात्मत आभास का कोई

११४ नैतन्य चाऽविराष्ट जाविश्वरयोयथाऽग्निविस्फुल्लिगयोरोरुष्यम ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।३।४३।

११५ निरतिशयोपाधिम्भ-नश्चेश्वरो विहीनोपाधि सम्पन्ना जीवान प्रशास्मानि ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।३।४५।

११६ (विशि) 'एमा करे' यद् अनुष्ठा है ।

(निषेध) 'एमा न करे' यद् परिहार है ।

११७ कम-यन्तिकर फ-व्यतिकरो वा न भविष्यति । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।३।४६।

११८ आभास एव च । ब्रह्मसूत्र । २।३।५ ।

स्वरूप नहीं है^{११६}। चरक सत्त्वा गौरी म्यान में कहा गया है कि आत्मा देवी व गुरारी है। उसका सम्बन्ध अपने गुरार की स्पर्शियों से रहता है अतः वह दूसरे को बनाया का अनुभव नहीं करता^{११७}। यहाँ आचार्य गङ्गुल का आभासवात् प्रतिष्ठित हाठा है। यह आभास विवत भावना का सूत्रपात करता है। विवत भावना का सगुण परिवेष हम गङ्गुल क अनुसार ब्रह्म का स्वरूप और सष्टि माया अथवा अष्टि प्रकरण में देख सकते हैं।

जीव का कत त्व भाक्त त्व औपाधिक है। उसका ससार से सम्बन्ध व्यावहारिक है। इसका प्रतिरूप आचार्य गङ्गुल जीव और ब्रह्म में भेद नहीं मानते। इनमें भ्रष्टान्तर करना अज्ञान का स्वरूप है। उपाधिकतम हान पर जीव ब्रह्म हा हाठा है। आचार्य गङ्गुल जीव से परमायत विकार नहीं मानते। इस सम्बन्ध से आचार्य गङ्गुल ब्रह्मसूत्र में आये हुए काण्डान्त क सिद्धान्त का भावना दत्त हैं। आत्मा ही ब्रह्म है अतः ब्रह्म से अतिरिक्त अथ आत्मा का अभाव है। आचार्य गङ्गुल जीव और ब्रह्म का एकात्मा में तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि आदि उपनिषद् वाक्यों का प्रमाण मानते हैं। जीव और ब्रह्म का अन्तःस्वभाविक है। अतः ता अविद्या से उत्पन्न हाठा है। इसके नाश से जीव अविनाश परमात्मा क भाव उक्तता प्राप्त करता है^{११८}। इस्वर में और जीव से घ्यान और ध्यय का अन्तःस्वभाव है। जिस प्रकार अन्तः आकार में रहकर सब एक ही रूप रहता है उसी प्रकार घ्यात रूप में जीव भक्त होत हुए भी ध्यय रूप से जान और ब्रह्म का अन्तःस्वभाव है^{११९}। अन्तःस्वभाव प्रकाश और उसके आशय का अन्तःस्वभाव भी है और अन्तःस्वभाव भी है। सूत्र और उसके प्रकाश में

११६ आभास एव चैव तत्र परमात्मनो तत्त्वमसि प्रतिष्ठितम् ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । १८/१०

नैरगिन्तु तन्मयी कर्मान्ते इत्ययुक्तान्तर कल्पय, एवं नवनिर्गम कल्पयन्मन्त्रिन्तु
उपनिषदस्य तन्मन्त्रः । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १० । १५०

१२० ददां सुखं तामा भुक्त्वा स्वर्गानन्तरि ।

सदा सदाश्रयणान् नानामात्रा वेत्ति वेत्ता ॥ चरकसत्त्वा । गौरीम्यान ।

१२१ अतोऽनन्तं तथा च निमित्तम् । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १०/१६।

आभासिकवाच्यमन्त्राद्विद्वान्वाच । प्राक् नानात्मनः स गङ्गुलि ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । १०/१६।

१२२ उभयपक्षोऽप्यवच्छिन्नवत् । ब्रह्मसूत्र । ३/१०/७।

उभयपक्षोऽप्यवच्छिन्नवत् तत्त्व भवितुमर्हति यथाद्विद्वान्मन्त्रं कुर्वन्नाभास
प्राप्तुं वीचीति तु मेऽप्यविद्वानिति । ब्रह्मसूत्र भाष्य । ३/१०/७।

अत्यन्त भक्त नहीं है यद्यपि तबो में तास्त्रियता एक रूप है । तब ही ईश्वर और जीव में अभेद और भेद है^{१२३} । परन्तु यह भक्त कथनामात्र है । सत्य चाहे वक्राकार हो चाहे युग्मनाकार या त्रिडाकार हो ता भी सत्य एक ही है । उसी प्रकार सत्य और उससे प्रकृत में वक्ष्यमाण का भेद है । आचार्य शाङ्कर के अनुसार अभेद प्रतिपाद्य है और भक्त तो उपमाना के लिए ही उपयोगी है । यहाँ जीव और ब्रह्म के अभेद में तात्पर्य है । भेद ग्रहणानावरथा तब ही स्थित है परन्तु अभेद सत्य और प्रकृत के ऐक्य का गान होने अथवा सत्य की एक रूपता होने के समान सत्य का अन्तिम निष्पत्ति है^{१२४} । इस प्रकार शाङ्कर सिद्धान्त के अनुसार जीव और ब्रह्म में अभेद की प्रतिष्ठा है ।

तत्त्वमसि वाक्य के द्वारा आचार्य शाङ्कर जीव और ब्रह्म की एकता प्रतिपादित करते हैं । तत्त्वमसि वाक्य का अर्थ 'वह ब्रह्म तू है' अर्थ होता है । यह वाक्य छान्दोग्य उपनिषद् में श्वेत वेतु और उसके पिता की पारस्परिक ज्ञान वाता में प्रयुक्त हुआ है^{१२५} । 'विचार चन्द्रोदय' के अनुसार तत्त्वमसि वाक्य का वाच्य अर्थ ईश्वर और लक्ष्य अर्थ शुद्ध ब्रह्म है । तब परम का वाच्य अर्थ जीव और लक्ष्य अर्थ वृत्तस्थ साक्षी आत्मा है । इसी प्रकार 'अहं ब्रह्मास्मि'^{१२६} अर्थमात्मा ब्रह्म वाक्या का लक्ष्य अर्थ और वाच्यार्थ ग्रहण होते हैं । विचार चन्द्रोदय के अनुसार तत्त्वमसि वाक्य की वही गई हैं—जहत अजहत और भागत्याग । तत्त्वमसि वाक्य में भाग त्याग लक्षणा है । इस लक्षणा से विरोधी भाग का त्याग होता है और अविरोधी का ग्रहण होता है । इस लक्षणा से माया वाक्या का त्याग होता है और अविरोधी शुद्ध चतुर्थ ब्रह्म का ग्रहण होता है ।^{१२७} इस प्रकार आचार्य शाङ्कर ने जीव और ब्रह्म की एकता प्रतिपादित की गई है ।

१२३ प्रकाशानन्दवक्त्रेण तास्त्रियता । मङ्गलम् । ३।२।२८।

१२४ अभेदमेव सति प्रतिपाद्य वेदो निर्दिशति भेदं तु पृथक्सिद्धमेवानुवादत्पर्यन्तरं विवक्षया ।

मङ्गलम् भाष्य । ३।२।२६।

१२५ छान्दोग्य उपनिषद् । ६।१ । ११।१२।१३।१४।१५।१६।

१२६ ब्रह्मसूत्रस्य उपनिषद् । १।४।१ । १५।१६।

१२७ विचार चन्द्रोदय । कला । ११।१।४।१ ।

चतुर्थ प्रकरण

आचार्य गङ्कर के अनुसार ब्रह्म जिज्ञासा का स्वरूप

यस प्रकरण में हम आचार्य गङ्कर के अनुसार ब्रह्म जिज्ञासा के स्वरूप पर विचार करेंगे। ब्रह्म जिज्ञासा ब्रह्म ज्ञान का साधन है। गङ्कर के अनुसार मानव जन्म के साधनों पर विचार करने हुए ब्रह्म जिज्ञासा के स्वरूप का विवरण करना आवश्यक है।

ब्रह्मसूत्र का आरम्भ ब्रह्म जिज्ञासा का ही उद्देश्य है^१। आचार्य गङ्कर के अनुसार ब्रह्म का जिज्ञासा ब्रह्म जिज्ञासा है^२। ब्रह्मसूत्र भाष्य में ज्ञान के अर्थ का विचार कहा गया है^३। ब्रह्म प्रसिद्ध है। प्रसिद्ध होने के कारण ब्रह्म की जिज्ञासा करना व्यर्थ है ज्ञान कहना उचित नहीं है। इस सम्बन्ध में आचार्य गङ्कर का मत है कि अनेक दृष्टियों से ब्रह्म नामित मनुष्यों का विचार करके ब्रह्म जिज्ञासा द्वारा भाग साधन की प्रतिष्ठा करना आवश्यक है। ब्रह्म ज्ञान के अतिरिक्त अन्य मनुष्यों में भाग का विधान नहीं है। अतः ब्रह्म जिज्ञासा करना उचित है^४।

आचार्य गङ्कर के अनुसार आत्मा ही ब्रह्म है। इस आत्मा का ज्ञान सबको होना है। मैं नहीं हूँ ऐसा ज्ञान किसी का नहीं होता। यदि आत्मा का अस्तित्व प्रसिद्ध न होता तो मैं नहीं हूँ इस प्रकार का ज्ञान होता। अतः ब्रह्मरूप आत्मा के प्रसिद्ध होने के कारण ब्रह्म जिज्ञासा करना उचित है^५। प्रसिद्ध आत्मा की ही जिज्ञासा हो सकती है क्योंकि अप्रसिद्ध वस्तु का ज्ञान

१ अथाने ब्रह्मजिज्ञासा । ब्रह्मसूत्र । १।१।१।

२ ब्रह्मसूत्र जिज्ञासा ब्रह्म जिज्ञासा । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।१।

३ आनुमिच्छा जिज्ञासा । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।१।

४ ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।१।

५ सर्वोक्तं मास्ति त्वं प्रत्यन्तित्वात्प्रसिद्धीति । यदि हि मास्ति त्वं प्रसिद्धं तदा सर्वे लोको ज्ञानवन्तानि प्रतीयात् । आत्मा च ब्रह्म । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।१।

नहीं हो सकता और पाप का भाष्य न होने से जिज्ञासा का प्रश्न भी न उत्पन्न सकेगा । अतः ब्रह्म की जिज्ञासा कारणीय है ।

पूर्व भीमासा दान म धम जिज्ञासा का प्रतिपादन किया गया है^६ । आचार्यी पृष्ठा पर हम आचार्य शाङ्कर के अनुसार धम और ब्रह्म जिज्ञासा का की तुलना करते हुए ब्रह्ममूत्र सम्मत ब्रह्म जिज्ञासा की प्रतिष्ठा करेंगे । हम धम पात्र से पूर्व भीमासा-दान सम्मत चोत्पन्ना लक्षणयुक्त अर्थात् कमलाण्ड विषय की ही ग्रहण करेंगे^७ । हम यह कह सकते हैं कि धम पात्र से बन्धिक आदि कर्मों का ही ग्रहण होता है ।

वेदान्त सूत्रो अथवा उत्तर भीमासा और पूर्व भीमासा के ब्रह्म और धम दोनों ही के पृथक् लक्ष्य हैं । जिस प्रकार पूर्व और उत्तर का भ्रम स्पष्ट है वैसे ही धम और ब्रह्म दोनों जिज्ञासाओं में पूर्व और उत्तर का सम्बन्ध प्रतीत होता है । परन्तु आचार्य शाङ्कर ने कहीं भी दोनों जिज्ञासाओं का अर्थोपार्थ श्रयित्व स्वीकार नहीं किया । प्रत्युत दोनों जिज्ञासाओं का क्षेत्र और लक्ष्य भिन्न भिन्न है यह उनका अभिमत है । उनके अनुसार धम जगत की स्थिति का कारण है । धम प्राणियों की उत्पत्ति और मोक्ष का हेतु है । वर्णाश्रम धम और कत्याण कामनाओं में निमित्त धम का अनुष्ठान होता है^८ । यह धम प्रवृत्ति अर्थात् लोकासक्ति रूप कहा गया है । आचार्य शाङ्कर का मत है कि सृष्टि रचना और उससे पाननकर्ता प्रजापतियों को यह प्रवृत्ति धम ग्रहण कराया गया^९ । तदुपरान्त तान वराहम्युक्त निवृत्ति धम का ग्रहण श्रद्ध्यात्मिका ने किया । धम और ब्रह्म की इन जिज्ञासाओं के इस भ्रम से पूर्व और उत्तर का भ्रम तो सिद्ध होता है परन्तु दोनों धर्मों में समन्वय लक्षित नहीं होता अपितु इसका प्रतिबुल वेदान्त भाष्य में धम और ब्रह्म जिज्ञासाओं में अद्वैता में भेद स्थापित किया गया है^{१०} ।

६ अथानो धम विज्ञाना । पूर्व भीमासा आश्रमसूत्र १।१।१।

७ चोत्पन्ना लक्षणा-धर्मो धम । पूर्व भीमासा आश्रमसूत्र १।१।२।

८ जगत स्थितिकारण प्राणिना साक्षात् अभ्युत्थयन् ज्ञेयमदत्तु य स धर्मो ब्रह्मण्यम्
वर्षिभिः प्राणमिभि च ज्ञेयोऽर्थानि अनुष्ठीयमान । गीता भाष्य उपोद्धान्त ।

९ सम्भवा प्रजापतीन् प्रवृत्तिलक्षण धम प्राण्यमासा । गीता भाष्य उपोद्धान्त ।

१० गीता भाष्य उपोद्धान्त ।

धम ज्ञान में अनुष्ठान की अपेक्षा और उसका फल अस्म्युत्पन्न है। धम जिज्ञासा का विषय है। धम और यह धम पुरुष व्यापार के अधीन है। धम में विधि अथवा वनिक कमकाण्ड बोध की प्रवृत्ति नहीं होती। विधि तो क्रिया साध्य है अतः इन्द्रियों के संयोग से पन्थाय ज्ञानमात्र होता है ज्ञान की प्रवृत्ति नहीं होती है। धम ज्ञान के फल स्वार्थाभिमुख है। परन्तु ये सुख अनित्य हैं। आचार्य शङ्कर के इस कथन से यह सिद्ध होता है कि धम जिज्ञासा अथवा धम ज्ञान का तत्त्व अस्म्युत्पन्न या लौकिक सुख अथवा अस्थिर स्वर्गमात्र है^{११}। इससे विरुद्ध ब्रह्म ज्ञान का फल मोक्ष है। उसमें अनुष्ठान का अपेक्षा नहीं है। ब्रह्म जिज्ञासा का विषय पुरुष व्यापार के आधान नहीं है। ब्रह्म प्रमाण से तय नहीं है, वरन् स्वयमिदं है। प्रस्तुत ब्रह्म जिज्ञासा का कारण असाधारण है। इसकी विशेषता यह है कि ब्रह्म ज्ञान के पूर्व धम जिज्ञासा की अपेक्षा नहीं है। ब्रह्म जिज्ञासा धम जिज्ञासा के पूर्व ही सक्ता है और उसके उद्धारण भी। परन्तु ब्रह्म ज्ञान में भी नियमित्य विवेक, विराग गम दम और मुमुक्षुत्व साधनों की आवश्यकता आचार्य शङ्कर मानते हैं^{१२}। इन साधना पर हम आगे के प्रकरणों में सविस्तार विचार करेंगे। धम जिज्ञासा के उद्धारण भी ब्रह्म जिज्ञासा का कोई नियम नहीं है। ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए वान्त अथवा उपनिषत् में प्रतिष्ठित ज्ञानमात्र पर्याप्त है। छान्दोग्य उपनिषत् के अनुसार कम द्वारा उपार्जित भोग शीघ्र ही जाने पर पुनः पुनः जन्म मरण का भय रहता है^{१३}। अतः ब्रह्मज्ञान से ही आचार्य शङ्कर परम पुरुषाय अथवा मोक्ष की उपलब्धि मानते हैं^{१४}।

आचार्य शङ्कर के अनुसार जानने की इच्छा जिज्ञासा है^{१५}। ब्रह्म की जिज्ञासा पुरुषाय अथवा ब्रह्मज्ञान का साधन है। विचार चन्द्रान्य के अनुसार समस्त पुरुषों की इच्छा का विषय ही पुरुषाय है^{१६}। धम अथ, काम और मोक्ष की प्राप्ति पुरुषाय की इच्छा के विषय हैं। इनमें मोक्ष परम पुरुषाय है।

११ अध्याय ब्रह्म जिज्ञासा । ब्रह्मसूत्र १।१।१।

१२ ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।१।

१३ पुरुषत्रयो लोक लोकात् । छान्दोग्य उपनिषत् १।६।१।

१४ ब्रह्म विज्ञानाधिप पुरुषाय । ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।१।

१५ ब्रह्म ज्ञानिज्ञा जिज्ञासा । ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।१।

१६ धम, अथ काम, मोक्ष य पुरुषाय है । इनमें मोक्ष सुख है और शेष गैर है ।

अध्यास होने के कारण धरतु की वास्तविकता प्रत्यक्ष नहीं होती। ब्रह्म ज्ञान के हेतु शास्त्रात्मना अनात्मा क भेद का ज्ञान ही वास्तविक है। शास्त्र में आचार्य शङ्कर प्रत्यक्ष एव शास्त्राभि प्रमाण नहीं मानते। इगारा कारण यह है कि प्रमाण के यहण करने में अद्विधा और शास्त्र का आधार लिया जाता है। परंतु यह आधार स्वतः मिथ्या ज्ञानमूलक है। इस प्रकार प्रमाणाभि वास्तविक हैं। यह आत्म तत्त्व का ज्ञान केवल यन्त्र से प्राप्त होता है। इस ज्ञान का क्षुधा इत्यादि अद्विजय विषया से सम्बन्ध नहीं है। ब्रह्मज्ञान के धर्म में ब्राह्मण धर्मिय आभि वास्तविक भेद नहीं है। इस ज्ञान से असंख्य अर्थों परमात्म स्वरूप आत्म तत्त्व की उपलब्धि होती है। आचार्य शङ्कर के अनुसार इस आत्मा की कर्माधिकार में अर्थ ही नहीं है^{१७}। अध्यास ही धर्म का हेतु कहा गया है। अध्यास या मिथ्या बुद्धि नाश होने पर ब्रह्म और आत्मा क ऐश्वर्य का ज्ञान होता है। जिज्ञासा का लक्ष्य इस प्रकार आत्मा अनात्मा में भेद ज्ञान है।

आचार्य शङ्कर का धर्म जिज्ञासा से तात्पर्य कमवाण्ड से है। उनके मन से कम और ब्रह्म विद्या में विलक्षणत्व है। कम काया वचन और मन से हाते हैं और मन वाणी और शरीर के अन्तर्गत होते हैं। कर्मों में इन्द्रिय संयोग की अर्थ ही है। ये धर्म धर्म अविद्यात्मक है। शरीर क सुखा और दुःखा के तारतम्य से ये उत्पन्न हाते हैं। धर्म धर्म उत्पन्न सुख दुःख ही अनित्य सत्ता रूप में विद्यमान है^{१८}।

आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिपादित ब्रह्म ज्ञान धर्म ज्ञान से सर्वथा भिन्न है। आत्मा अनात्मा क समान सर्व व्यापी है। उसे कूटस्थ और नित्य कहा गया है। उसमें किसी भी विकार का लक्षण भी नहीं है। आचार्य शङ्कर उसे नित्य तत्त्व निरवयव एव स्वयं प्रकाश्य मानते हैं। आत्मा में धर्म धर्म का सश्लेष विज्ञान में भी नहीं हो सकता^{१९}। यह ब्रह्म ज्ञान कम फल से भिन्न

१७ शास्त्राभि तु षड्वहारे यथापि बुद्धिपूर्वकारी तावन्ति वासन परलोकमन्वधमभिव्रियते, तथापि न यन्त्रान्तवेद्यमनायाः शरीरानपेक्षमद्वैतान्त्रिके गन्तव्ये ११ कमभिव्रियतेऽपद्यते।

ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।१।

१८ कम अन्वधमभिव्रियतेऽपद्यते ११ परलोकमन्वधमभिव्रियते, तथापि न यन्त्रान्तवेद्यमनायाः शरीरानपेक्षमद्वैतान्त्रिके गन्तव्ये ११ कमभिव्रियतेऽपद्यते।

ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।१।

१९ पारमार्थिकता कृत्वा नित्यम योमवसुवव्यापिसवविश्रियारहित नित्यतत्त्व नित्यवयव यथापि नित्यवयवम। यत्र धर्मात्मा सत् कार्येण कालत्रय न नोपावते।

ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।१।

है। ब्रह्मसूत्रा का जिज्ञास्य कम फल विलक्षण यह ब्रह्म ही है^{२०}। अनुष्ठान द्वारा उपार्जित फल अनित्य है। परन्तु आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित मोक्ष नित्य है। नित्य के साथ अनित्य का सयोग नहीं हो सकता है। केवल ब्रह्म नित्य है और अविद्यात्मक ससार अनित्य है। अतः ब्रह्म और जगत् का तादात्म्य नष्ट हो सकता है। इसी हेतु उनका कथन है कि मोक्ष को घम से उत्पन्न हुआ नहीं माना जा सकता। घम के साथ प्रिय अप्रिय विषयों का सम्पर्क रहता है जो नित्य नहीं कह जा सकता। मोक्ष में प्रिय अप्रिय सुख दुःखान्ति का प्रतिगोष है जो घम के साथ संगत नहीं होते। घम का सम्बन्ध शरीर और इन्द्रियान्ति के साथ है। शरीरान्ति का अनित्यता के साथ ही घम भी अनित्य है। परन्तु शरीर से रहित स्थिति मोक्ष मानी गई है^{२१}। अस्तु घम और ब्रह्म की जिज्ञासा संवदा पथक है। घम अशुभ का व्यवस्थापक और ब्रह्म निःश्रेयस ज्ञान का स्वल्प है। कठोपनिषद् में पय म धम आर श्रेय से आत्मा का अथ ग्रहण करना संगत प्रतीत होता है।

आचार्य शङ्कर शास्त्र प्रमाण को ज्ञान का 'यावहारिक साधन मानते हैं। नसर्गिक अविद्या के कारण 'यावहारिक ज्ञान ही अविद्यात्मक है। परन्तु वह नहीं कहते कि यावहारिक ज्ञान से समुद्रभूत शास्त्रादि मिथ्यात्मक ज्ञान के कारण संवदा पथक है। वरन् शास्त्र को व ज्ञान का साधनमात्र मानते हैं। साध्य की उपलब्धि पथक 'यावहारिक शास्त्रान्ति ज्ञान की अपेक्षा है एवं तदुपरान्त साधनो का कोई मूल्य नहीं रह जाता। शास्त्र यद्यपि 'यावहारिक है, परन्तु उसका प्रयोजन अविद्याकल्पित भेद की निवृत्ति करता है। आचार्य शङ्कर के अनुसार शास्त्र ब्रह्म प्रमाण है क्योंकि उसका ज्ञान चाहे भल ही वह व्यावहारिक हो, अविद्या की निरावृत्ति करता है^{२२}। शास्त्र का उद्देश्य वेदना वेदयित्री और वेद्य आदि भेदों को दूर करना है। ये भेद ही अविद्या में कल्पित हैं। ब्रह्म प्रत्यगात्मा होने के कारण उसके ज्ञान के लिए किसी बाह्य उपकरण की आवश्यकता नहीं है। आचार्य शङ्कर के अनुसार शास्त्र का उद्देश्य ज्ञान का विषयत्व रूप से प्रतिपादन करना नहीं है। शास्त्र का उद्देश्य ज्ञान की उस परम्परा को स्थिर रखना है जिससे आत्मस्वरूप का बोध कराया जाता

२० यस्वेय जिज्ञासा प्रस्तुता। ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।१४।

२१ तदन्तःशरीरक मोक्षान्वयम्। ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।१४।

२२ अविद्याकल्पितमे निवृत्तिरुक्तावा 'दात्रस्तम्। अगमन भाष्य १।१।१४।

है। शास्त्र से ब्रह्म का प्रतिष्ठा नहीं होगी^{२३}। यहाँ 'इत्ता गच्छ' का अभिप्राय लौकिक प्रमाणों से भौतिक परमाथ स्वरूप का ज्ञान करना है। किन्तु लौकिक प्रमाण ब्रह्म ज्ञान होने तक केवल साधनमात्र है। इसी प्रकार शास्त्रादि प्रमाण भी लौकिक ज्ञान से युक्त हाकर भी भौतिक ब्रह्म का ज्ञान कराते हैं। ब्रह्म ज्ञान का विषय नहीं है परन्तु स्वतः ज्ञान स्वरूप है। शास्त्र प्रमाण की सीमा ब्रह्म ज्ञान होने तक है। ज्ञान परमाच्च अनुभूति है। यह ब्रह्मास्मि इस ज्ञान के होने तक शास्त्र का उपासना है। यह ज्ञान देयता और उपा देयता से रहित है। इसका कोई विषय नहीं है, अतः इस प्रमाता की भवेना नहीं है^{२४}।

२३ नहि शास्त्रमिन्त्या विषयम् नान् प्रतिविषयव्यपति। प्रत्यगात्मवेना विषयया प्रतिपाद्यविषयकल्पित वेदवेदिति वेदान्तिभेदभेदपनयति। ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।४।

२४ तस्माद् ब्रह्मात्मवत्त्वमाना एव सर्वे विषय सर्वाणि चैतराणि प्रमाण्यानि। न ज्ञेयानुपादेवादे तात्मानगती निर्बिषयाण्यप्रमानकाणि च प्रमाण्यानि भवितुमशक्नुवतीति।

ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।४।

पञ्चम प्रकरण

आचार्य शङ्कर के अनुसार विद्या का स्वरूप

आत्मज्ञान की उपनिषि में विद्या सर्वश्रेष्ठ साधन है। विद्या ही अविद्या का नाश करती है। अस्तु, इस प्रकरण में विद्या की परिभाषा, स्वरूप और उसके महत्त्व का विवेचन किया गया है।

विद्या ज्ञान का मुख्य साधन है। आचार्य शङ्कर के अनुसार वस्तु के स्वरूप निर्धारण को विद्या कहते हैं। उन्होंने सत्य और अनत, आत्म और अनात्म का मिथुनाकरण अविद्यात्मक माना है^१। इस मिथुनीकृत व्यावहारिक भाव में पारमार्थिक आत्मभाव का अनुसंधान विद्या द्वारा होता है। मुष्क उपनिषद् में दो विद्यायें कही गयी हैं—परा और अपरा^२। अपरा विद्या व्यावहारिक ज्ञान और कमकाण्ड के अनुरूप है। आचार्य शङ्कर के अनुसार छह वर्णों में अपरा विद्यायें हैं^३। वन भी अपरा क्षत्र में प्राप्त हैं। अपरा विद्या ब्रह्म ज्ञान में उपयोजनी नहीं है। आचार्य शङ्कर के अनुसार इस विद्या का विषय संसार है। इस विद्या में कर्ता, कम एवं ब्राह्म साधना का उपादयता है। ब्रह्म ज्ञान के लिए कमफल की अपेक्षा नहीं है परन्तु अज्ञान में कम के साथ उसका फल भी सम्बद्ध है। कम और उसके फल में अज्ञान-यायितता है। अतः अपरा विद्या द्वारा प्रतीत कम साधना और उसके अनुत्पन्न फल-व्यवस्था ज्ञान का साधन नहीं है^४। अपरा विद्या को आचार्य शङ्कर ने दुःख रूपा माना है।^५

१ त्वित्तेन च वस्तुस्वरूपावधारण विद्यायाः । सङ्ख्य भाष्य । १।१।१।

२ मुष्क उपनिषद् । १।१।१५।

३ शिवा कथा व्याकरण निम्न छन्दो ज्योतिषिन् सागानिषद्वारा विद्या ।

मुष्क उपनिषद् भाष्य । १।१।१५।

४ तत्रापरविद्या समारा दुःखस्वरूपा ।

मुष्क उपनिषद् । सङ्ख्य भाष्य । १।१।२।

५ मुष्क उपनिषद् । सङ्ख्य भाष्य । १।१।२।

अपरा का सम्बन्ध कम और सत्तार त गाय है । कम की साधना दोषरूपा है । क्याकि कम अनित्य है और उतारा पन भी अनित्य है । उनही मा यता है कि कम चार प्रकार के हैं — जाय उताय प्राप्य और त्रिवाय अपरा सम्भाय । य कम पन परिणाम याल हैं और अनित्य है^६ । य कम प्रविद्यात्मक कालि स्तम्भ के समान था । ग यन तगरन । तामन हैं । कम और कमत्रय पन जल मुत्तुत्त और पन क सत्तय धरण रयायी है । आराय शाङ्खर का वयन है कि कमठ पुस्त्य मन्नातन का अधिनारा नया हो सकता^७ । इस विद्या का अधिनारा मोष का अधिनारा था होता । उत कवल स्वग का अधिनार है । यहाँ यह वान परत विद्या क प्रमन म कटी गई है । उनके अनुमार इस विद्या का उतसेवा त्रिरप्यगभ म पयवसित होना है^८ । अपरा विद्या द्व तात्मक है । यन अग्निहाशानि ती कम स्वरूप है । सगुण विद्या अपरा विद्या का ही रूप है । अपर, और सगुण विद्या म साम्य है । ताना ही विद्यायें जोक का विषय है । सत्तार त्रिगुणात्मक है और अपरा विद्या ती सत्तार रूप है । सगुण और अपरा दोनों ही विद्यायें कम का लभ्य करता हैं । गुणों की स्थिति म भेद उत्पन्न हाता है । यहा गुणों का तात्पर्य प्रकृति के तीन गुणा स है । गुणा के सम्बन्ध म हम प्रकृति प्रकरण म विचार कर चुके हैं । सगुण विद्या म उपास्य और उपासक का भेद है । इसी प्रकार अपरा विद्या भी द्व तात्मक है । गुणों के सहयोग से कम की उत्पत्ति होती है । सगुण विद्या से यहाँ कमकाड सम्बन्धी साधन का इव ग्रहण करना चाहिए । प्रकृति के गुणों से कम उत्पन्न होते हैं । उसी प्रकार सगुण विद्या मे कम का अपधा है । त्रिगुण विद्या ब्रह्म विद्या है । त्रिगुण विद्या मे कम साधन की प्रादम्यकता नहीं ।

गीता म कहा गया है कि जा मुभको तिस भाव से भजता है मैं उसको

६ काय उपायना य सरकाय विवाय वा कम्पुनाच्चातिद्या ।

मुस्तक उपनिषद् भाष्य ।

७ काली गभवनामातान मागमरीच्युक्त गधन्नगराहात्खन पचुद्वुत्पेन समान प्रतिवृत्त ७२-७३-७४, १. मुस्तक उपनिषद् भाष्य ।

८ न हि कर्मिणो ब्रह्म निष्ठना सम्भवति । मुस्तक उपनिषद् भाष्य ।

९ यद्विरण्यगभप्रारनवनानम् । मुस्तक उपनिषद् ।

१ गीता । ४। ११।

उसा रूप में प्राप्त होता है^{११} । जिस कामना से अग्निहोत्राणि किये जाते हैं, तनुसार फल होता है । आचार्य ने कहा भी है कि गुणा के अवाप और उद्वाप से न उत्पन्न होता है । उस भेद के अनुकूल ही फल में भी भेद होता है । इसी प्रकार के फल की व्यवस्था कम में भी है^{१२} । अपरा विद्या उपनिषद् का ब्रह्म विषय है । गुण सिद्धान्त का अणुन स्वताश्चतर उपनिषद् में हुआ है ।

उपनिषद् में परा विद्या का विवेचन हुआ है । मुण्डक उपनिषद् भाष्य में आचार्य गङ्गुलर ने इसे अक्षर विषयक कहा है ।^{१३} परा विद्या अक्षर ब्रह्म वाचक है । यह निगुण स्वरूप की प्रतिष्ठा करती है । न ता गरीर के समान इसका क्षरण होता है और न राजा के वाप के समान इसका व्यय ही होता है अतः इसको अक्षर कहा गया है^{१४} । यह परा विद्या ही ब्रह्म विद्या नाम से अभिहित की जाती है । यह अक्षर उत्पत्ति कला का ज्ञान और जीवों का कारण है^{१५} । अपरा का विषय कम फल है । यह सापक्ष्य सत्य हैं परन्तु परा की परमाय स्वरूप कहा गया है । यह अद्वितीय और निरपेक्ष है^{१६} । अपरा द्वारा उपदिष्ट अग्निहोत्राणि अविद्या और कम के समुच्चय है परन्तु परा ब्रह्म ज्ञान की प्रतिष्ठा करती है । अपरा लोकासक्ति का स्वरूप है और परा लोक से विरक्ति का । परा विद्या के क्षत्र में कम का विरोध है । परा विद्या वस्तुतः कम का निरोधक बहिष्कार नहीं करती । किन्तु इसका अनुसार कम विषय रूप से अभ्युदय और सगुण उपासना में उपयोगी है । आचार्य गङ्गुलर के अनुसार कम विद्या का साधन मात्र है । परन्तु वह कम जो केवल अभ्युदय का साधक है वह अज्ञान का कारण है ।

अतः अर्थात् विधान ब्रह्म विद्या की प्राप्ति के साधन मात्र हैं । विद्या अपनी उदात्ति के लिए कम की अवेगता रखती है । आचार्य गङ्गुलर के अनुसार अश्व म

११ सऽणुणामु तु विद्यासु गुणावापोद्वापराणां पन्नेनियम
कमपचवन् ।
नर निगुणाया विद्याया गुणामावात् । महाभूत भाष्य । ३।४।५-७।
१२ उपनिषद् आक्षर विषय । मुण्डक उपनिषद् भाष्य । १।१।३।
१३ नहि अनपश्य स्वागारवचनवर्णा सम्भवति स्वय शरीस्वैव । नापि काशारव्य लक्षणा
दय । मुण्डक उपनिषद् भाष्य । १।१।६।
१४ ज्ञानेनोपदिष्टिषिष्यतया भूयन्तो अक्षर ब्रह्म । मुण्डक उपनिषद् भाष्य । १।१।८।
१५ एतद्विद्विषय कम फललक्षणा सत्य तन्निषेधिकम् । परवि । विषय परमाय
मन्त्रलक्षणात् । मुण्डक उपनिषद् भाष्य । १।१।११।

रथ खींचने की योग्यता है किन्तु हन खींचने की नहीं^{१६} । इसी प्रकार कम केवल ज्ञान को प्राप्त कराने का साधनमात्र है स्वतः साध्य नहीं है ।

निगुण विद्या और परा विद्या में समन्वय है । सगुण विद्या में कम से ऐश्वर्य की प्राप्ति मानी गई है । सगुण विद्या का उद्देश्य ऐश्वर्य होना हुए भी उससे पाप की निवृत्ति होती है । किन्तु निगुण विद्या के अनुसार आत्मा में काम आदि की स्वीकृति नहीं है । परा विद्या अन्तरात्मिका है । अन्तर ब्रह्म ही परा विद्या का उद्देश्य है । निगुण विद्या का उद्देश्य ऐश्वर्य आदि की प्राप्ति नहीं है । आचार्य शाङ्कर के अनुसार परा विद्या से कम का प्रत्याह होता है । निगुण विद्या के अनुसार आत्मा में त्रिकान्त में भी कत त्व भाक्त त्व नहीं होते । इसके विपरीत कत त्व भाक्त त्व से रहित आत्मा में मैं हूँ ऐसा ज्ञान होता है । आचार्य शाङ्कर के अनुसार निगुण विद्या ही मोक्ष का साधन है । सगुण विद्या में तो यज्ञ आदि विधानों की स्वीकृति है किन्तु निगुण विद्या में किसी विधान की आवश्यकता नहीं है । आत्मज्ञान मात्र से आचार्य शाङ्कर कम का नाग मानते हैं^{१७} ।

अपरा विद्या में लोकसक्ति है परन्तु परा में नहीं है । यह परा विद्या ही ब्रह्म विद्या नाम से प्रसिद्ध है । निगुण अथवा परा विद्या में आश्रय घम की अनिवायता नहीं है । आचार्य शाङ्कर के अनुसार ब्रह्म विद्या में सत्यासक्त साधनों का ही अधिकार है^{१८} । उनका अनुसार ब्रह्म विद्या अग्रजन्मा ब्रह्मा के द्वारा कही गई थी । अतः इसे ब्रह्म विद्या नाम से अभिहित किया जाता है । यह समस्त विद्याओं की अभिवृत्ति का हेतु है^{१९} ।

विद्या ज्ञान का साधन है । विद्या की साधनता प्रति व्यापक है । आचार्य शाङ्कर के अनुसार कमकाण्ड और उपासना काण्ड तथा योगादि साधन भी विद्या के अङ्ग हैं । परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि विद्या इन साधनों के

१६ यथा न योग्यतावशानाऽरथो न तामलावपथे सुचने रथवयाया तु सुज्यने एवमात्मकमणि विद्यया फलमिदं नोपैक्ष्यते उपसी त्वेक्ष्यते ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । ३।४।२६।

१७ निगुणाया तु विद्याया यद्यपि विधान नास्ति तथाप्यकथामकरोषान् कमप्रत्याह सिद्धिं त्रिष्वपि कालेष्वकत त्वाभात् (वरवरूप ब्रह्ममरिगणव एव च शब्द उपपद्यते । ब्रह्मसूत्र भाष्य । ६।१।१३।

१८ अधिकारस्यापि स्यात्तन्निष्ठैव ब्रह्म विद्या । मुष्क उपनिषत् । सन्ध भाष्य ।

१९ सा ब्रह्मप्रावायनेनोक्तेनि ब्रह्म विद्या सच विद्याप्रतिष्ठात्र सबविद्याभिन्वक्तिहतु वा सच विद्याप्रयामियन् । मुष्क उपनिषत् । सन्ध भाष्य ।

अधीन रहकर पनवता हाती है। विद्या इन साधनों से स्वतंत्र है। विद्या मुक्ति का साधन अवश्य है, परन्तु मुक्ति वाय नहीं है। इसका तात्पर्य यह है कि विद्या स्वतः मुक्तिम्बन्ध नहीं है। आचार्य गङ्गुल के मतानुसार मुक्ति का स्वयं सिद्ध है। जनों में विभेद और अनेकहाना है, परन्तु विद्या में अथवा विद्या के उद्देश्य में कोई अंतर नहीं है। विद्या कम और उपासना के अनन्तित रहकर भी पनवता हाती है। इस प्रकार विद्या-साधनता में बध्म भन ही हो परन्तु उमका लभ्य मुक्ति है^{२०} ।

उपनिषत् में अनेक विद्याप्रा का कथन हुआ है परन्तु सभी विद्याप्रा का लभ्य आत्मनान प्राप्त करना है। छान्दोग्य उपनिषत् में कहा गया है कि तथा में दाना हुआ घृत या जल पलक में ही जाता है, सभी प्रकार प्रत्येक विद्या का एक ही पन है^{२१} । विद्या का साधनता में कम और उपासना सहायारी उपकरण हैं। यह उपकरणता विद्या प्राप्ति में सहायकमात्र है। आचार्य गङ्गुल के अनुसार वेदान्तों में विद्या और उपासना धातु का प्रयोग-साम्य उपलभ्य हाता है। इन दाना में उपक्रमण और उपसहार का अभाव-अधिता है। वहीं विद्या से उपक्रमण और वहीं उपासना से उपसहार उपलभ्य हाता है^{२२} । इस प्रकार विद्या और उपासना का सम्बन्ध परिरक्षित हाता है। परन्तु यह सम्बन्ध विद्या का ही पयवमायी है। विद्या का उपलभ्य हान पर अथ साधन की आवश्यकता नहीं रहती ।



२० अद्वैत भाष्य । ४। १। १३।

२१ छान्दोग्य उपनिषत् । १। १५। १।

२२ विद्युपासनायुक्तवेदान्तसम्बन्धविषय प्रश्नोत्तर । स्वतन्त्रिणापकम्बपात्तिनोप
५ इति । अद्वैत भाष्य । ४। १। १।

षष्ठम प्रकरण

आचार्य शङ्कर के अनुसार कर्म का स्वरूप

कर्म सिद्धान्त का वैदिक दृष्टान्त में विशिष्ट स्थान है। पूर्व भीमात्मा दृष्टान्त में कर्म का ही प्रतिपादन किया गया है। गीता में कर्म-याग और कर्म-संन्यास का बहण है, किन्तु आचार्य शङ्कर का साध्य कर्म नहीं है। उनका लक्ष्य है अद्वैत ज्ञान। फिर भी वे कर्म की निन्दा या उपेक्षा नहीं करते। वे कर्म का सत्त्वशुद्धि और लोकसंग्रह के लिए उपयोगी मानते हैं। ज्ञान प्राप्ति के निमित्त भी कर्म की उपयोगिता है। इस प्रकार आचार्य कर्म को लक्ष्य नहीं मानते। हाँ, ज्ञान लाभ पर्यन्त काइ भी साधन उसकी उपलब्धि में सहायक हो सकता है।

आचार्य शङ्कर के अनुसार समस्त त्रियमाण-प्रापार कर्म है^१। कर्म के लिए देहाणि चेष्टायै अनिवाय है^२। कर्म नसर्गिक है और इसी को सत्कार अथवा विश्व नाम से अभिहित किया जाता है। कर्म की उत्पत्ति में गुण और स्वभाव ये दो सहकारी कारण हैं। कर्म सिद्धान्त समस्त लौकिक व व्यावहारिक सत्या की प्रतिष्ठा करता है और जगत को त्रय अथवा विभाजन प्रदान करता है। गुण प्रकृति के अन्तर्भूत हैं और कर्म गुणों से उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार गुण प्रकृति में स्वभावतः वर्तमान हैं अथवा गुणों का समुच्चय ही प्रकृति है उसी प्रकार कर्मों में गुणों की स्वाभाविक स्थिति है। इसी प्रकार कर्म भी स्वाभाविक हैं। आचार्य शङ्कर के अनुसार जन्मान्तरो म किये गए कर्म सत्कार रूप में रहते हैं। वे ही सत्कार वर्तमान जन्म में कर्म रूप में व्यक्त होते हैं। सत्कारों की यह अभिव्यक्ति ही स्वभाव है अथवा सत्कार रूप स्वभाव ही गुणों का कारण है^३।

१ कर्मणिकर्म त्रियये इति व्यापारमान् । गीता भाष्य । १८।१८।

२ कर्म नाम देहाणि चेष्ये लोक प्रसिद्ध । गीता भाष्य । १८।१६।

३ जन्मान्तकृतकारण-प्रायेणो वृत्तमानजन्मनि स्वकायाभिमुख्येन अभिव्यक्त स्वभाव मयमेवा यथा गुणानां तन्मात्रप्रभवा गुणा । गीता भाष्य । १८।१७।

वण चार हैं—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र । ब्राह्मण के गम दम, तप इत्यादि सात्त्विक कम हैं । क्षत्रिय के गौरव तेज आदि रजोगुणी कम हैं । इनमें सत्व गुण गौण है । तमोगुण गौण और रजोगुण प्रधान कृषि आदि वैश्य कम हैं । शूद्र के कर्मों में तमोगुण की प्रधानता और रज की गौणता है* । परन्तु यह विभाग ईश्वरकृत है । वण और कम विभाग मायिक और 'यावहारिक है' । ये विभाजन ईश्वरकृत होने पर भी पारमार्थिक नहीं हैं ।

आश्रम धर्म की व्यवस्था सामाजिक है । उसमें कम का अधिक महत्त्व है । अमुमुक्षु के लिए नित्य कर्मों की व्यवस्था दी गई है । आश्रम-कर्म विद्या की प्राप्ति में उपयोगी हैं । आश्रम कर्मों में अग्निहोत्रादि का विशिष्ट स्थान है^४ । आश्रम धर्म में कम की अपेक्षा है किन्तु कम से विद्या उत्कृष्ट है । विद्या के लिए कम आश्रयित्व की अनिवार्यता नहीं है* । आचार्य गङ्कर ब्रह्म के कम कण्ड को अत्यन्त निहास्य नहीं मानते । उनके अनुसार अनुष्ठित यज्ञादि मुमुक्षु के पान-साधक हैं^५ । ज्ञान के दो प्रकार के साधन हैं—अन्तरंग और बहिरंग । जितन विविदिषा अथवा जिज्ञासा के साथ सम्युक्त यज्ञादि उसके बहिरंग साधन हैं । विद्या के साथ गम दम आदि का संयोग होकर वे विद्या के अन्तरंग साधन हैं^६ । परन्तु विद्या पक्ष में उसके फल के लिए यज्ञादि की अत्यन्त आवश्यकता नहीं । विद्या के लिए गमादि साधनों की आवश्यकता है । आश्रम धर्म की प्रतिष्ठा से ज्ञान का कोई सम्बन्ध नहीं । ये 'यावहारिक धर्म हैं और विधि मात्र हैं । तब प्रश्न यह है कि संन्यासधर्म में कम की व्यवस्था किस प्रकार से हो सकेगी ? आचार्य गङ्कर के अनुसार आश्रम में विहित कम न करने से आश्रम धर्म बाधित होता है । परन्तु संन्यास आश्रम में वसा नहीं होता । गम, दम आदि ब्रह्म निष्ठा के पोषक हैं । यह ब्रह्म निष्ठा ही संन्यास आश्रम का कम है जबकि यज्ञादि दूसरे आश्रमों के कम हैं । इस प्रकार आश्रम की अवस्थिति विद्या के लिए अनिवार्य नहीं है । कम की आवश्यकता वस्तुतः दो प्रकार से है—लोक संप्रह के लिए और चित्त शुद्धि के लिए । लोक संप्रह

४ गीता भाष्य १४।१३।

५ मायामन्त्रव्याख्यान । गीता भाष्य १४।२१।

६ यज्ञानिन्याश्रमकर्माणि च भवन्ति विद्यामहाकारिणि । ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१४।३५।

७ अनाश्रमि वेन वतमानोऽपि विद्यायामभिव्रियते । ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१४।३६।

८ यज्ञानि मुमुक्षोर्बान्मावतानि । ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१४।२७।

९ विद्या सांग्नानि शमाग्नीनि

विविदिषामयोगान्त्सु बाह्यानिनराणि यज्ञानिनेति ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१४।२७।

व लिए यदि कम न किया जाय तो सामाजिक व्यवस्था भंग होगी और अशान्ति होगी। लोक सग्रह के लिए किए गए कम से समस्त लौकिक अशुभकार्य सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। गीता में कहा गया है कि जगत् व्यग्रहार श्रेष्ठ जन करते हैं वसा ही दूसरे लोग भी करने हैं। यही पर अशान्ति यह भी कहा गया है कि ज्ञानिया का कर्मसिद्धि मनुष्या में बुद्धि भेद नही उत्पन्न करना चाहिए^१। आचार्य शाङ्कर का मत है कि ज्ञानिया के कम लोक सग्रह के लिए है^२। कम का दूसरा हेतु चित्त गुद्धि कहा गया है। आचार्य शाङ्कर के अनुसार अज्ञान में अथवा अज्ञान द्वारा किए गए दान या तप या यज्ञ से भी अज्ञान कारण गुद्धि हाता है। तदुपरांत ही परमात्म विषयक ज्ञान प्राप्त करने की भूमिका प्रस्तुत होती है^३।

मनुष्य के लिए कम न करना असम्भव है। अज्ञान चेतन का वह प्रतिरूप और लक्षण है। मनुष्य बिना कम किए नहीं रह सकता। आचार्य शाङ्कर के कथनानुसार ज्ञान होने के पूर्व कम का अज्ञेयत त्याग नहीं हो सकता। शरीर इन्द्रियादि चाहे अविद्या कल्पित हा या सत्य परतु कम इनका धर्म है। तब तक कम का आत्मा में अध्यारोप है ही। अज्ञान अज्ञानी कर्मों का निरूपत त्याग नही कर सकता^४। अब यहाँ प्रश्न अज्ञान का होता है। कम त्याग को अज्ञान कहा जाता है। आचार्य शाङ्कर के अनुसार अविद्या कल्पित कम न करके चुपचाप बठ जाने का नाम ही अज्ञान है^५।

गीता में कहा गया है कि कम त्रिगुणात्मक प्रकृति से उत्पन्न होते हैं। मनुष्य इन कर्मों व करने को परवर्ग है। अज्ञान पालन के करने के हेतु जो मनुष्य कर्मोन्द्रिया का रोक कर बठे रहत हैं व मिथ्याचारी है^६। आचार्य

१ यथाशक्ति श्रेष्ठस्तत्त्वेनोच्यते । गीता । ३। २१।

न बुद्धिभेदजनयन्नाज्ञाना कममग्निनाम । गीता । ३। ३।

२ लोक सग्रह व यज्ञपूर्व यथाशक्त । गीता भाष्य । ३। १।

३ गीता भाष्य । २। १।

४ अज्ञानं रागादज्ञानो वा कमणि प्रवृत्तय यज्ञेन दानेन तपसा वा विशुद्ध सत्त्वस्य ज्ञान उच्यते । गीता भाष्य । २। १।

५ यदि दन्तुभूता गुणा यदि वा अविद्याकल्पिता तद्भव कर्म तन्मात्रमज्ञि अविद्या चाया रापिनन् अविद्यान करिच्य घणमपि अज्ञान त्वन्तु शनोति । गी । भाष्य । १। ५। ५।

६ अज्ञानं च कम सर्व प्राणी प्रकृति प्रकृतियो वा मन्वन्तस्मान्मि गुणै ।

गीता भाष्य । ३। ५।

कर्मोन्द्रियाणि वस्तानैनि सयम्य संहृय य आग्नेतिष्ठति मनसा स्मरन्चिन्तयन् इन्द्रियाथान विषयान विमूना मा विमूनान्त करणो मिथ्याचारी मयाचार पापाचार । गीता भाष्य । ३। ५।

गङ्गुल का भी मत है कि कम का प्रयोजन भोग है। अतः भोग व बिना कम भोग नहीं होता। अतः जान व लिंग कम भोग की परिसमाप्ति आवश्यक है^{१४}।

कम भोग का कारण भोग के उत्पन्न होना सगत ही है। कम में एक गति की स्थिति है। कम शक्ति से ही कम फल प्राप्त होता है। इस शक्ति का नाम तो नही हो सकता, परन्तु विद्या द्वारा यह प्रनिवृद्ध होती है। आचार्य गङ्गुल के अनुसार गार्होदय नाम द्वारा इस गति का प्रनिवृद्ध या अप्रतिबन्ध नहीं हो सकता^{१५}। विद्या द्वारा कम का कारण होना है। अतः कम मुख्यतः अधिद्यावान का विषय है। यहाँ तक कि आचार्य गङ्गुल ने कहा भी है कि अज्ञानिया के लिए ही कम योग है। ज्ञानिया में क्रिया का अभाव है। अतः कम को निष्ठा उनका लक्ष्य नही है^{१६}। इस प्रकार कम को लोक और व्यवहार में आवश्यकता होते हुए भी परमात्म में उसका महत्व नहीं है। हाँ, साधना-क्षेत्र में वित्त शुद्धि और नाक-अग्रह के निमित्त कम का महत्ता है। पर वृ विद्या की उत्पत्ति में भी कम अधिद्यावान का ही आश्रय है। विद्या स्वतंत्र है और उसकी उत्पत्ति में कम की आवश्यकता नहीं भी हो सकता है। अतः कम ही मोक्ष का स्वतंत्र साधन नहीं हो सकता^{१७}।

कम का अर्थ है—उसका फल या व्यवहार। कम में फल का अर्थ है परन्तु फल आचार्य गङ्गुल के अनुसार माया काय है। वस्तुतः कम भी त्रिगुणामय ही है और उपाधि का स्यांग कम में है। अतः फल में भी कम की अनुरूपता है। फल कम कारक है और कर्ता द्वारा निष्पन्न होता है। यह जीवात्मा के आश्रित-सा प्रतीत होता है परन्तु वस्तुतः जात्रात्मा इससे निर्लिप्त है। यह अधिद्या जनिता और मट्टामोह का कारण है। आचार्य गङ्गुल के अनुसार यह फल वात्रीय का माया के समान है और निस्सार है। इसका अन्तिम अस्वभाव है^{१८}। गीता में अनिष्ट इष्ट और मिथ ये तीन प्रकार के

१४ नदि भोगे कर्मधीने । अहस्तु माय । ४। १। १३।

१५ नदि कर्म कर्म फलानि शक्तिमवचानीम् । विषय एव सा मा तु विद्यादिना कारणा-
निगम प्रनिवृद्धन । अहस्तु माय । १। १। २।

१६ अज्ञानान् अस्ति कर्मयोग । गी । माय । ३। ५।

१७ कमनिष्ठाया ज्ञाननिष्ठायातिष्ठेत्तु जन । गी । माय । ३। ५।

१८ वाकानेककारकव्यापारलिप्यन्त मन् अधिद्याद्वन् इन्द्रजित्मायोपम महाभाइकर
प्रयोगो मायमपि इव पशुना नयन अज्ञान मन्दति । गी । माय । १। ५। २।

कम बहे गए हैं। पशु पक्षी आदि योनि रूप अनिष्ट, देव योनि में इष्ट और मिश्रित रूप में मनुष्य योनियाँ व्यक्त होती हैं। आचार्य शाङ्कर के अनुसार अनानियो को ये फल, मरणोपरांत मिलते हैं। परमाय साधका को ये फल स्पश नहीं करते^{२१}।

इन कर्मों के तीन साधन हैं—मन, वाणी और शरीर। ये कम ब्रह्मा से लेकर स्थावर तक में वतमान हैं। इनके फल अथम और धम रूपों में हैं। सुख दुःख रूप में इनका प्रत्यक्ष होता है। आचार्य शाङ्कर के अनुसार इनका उपयोग मन वाणी और शरीर से होता है^{२२}। फल की दृष्टि से कम तीन प्रकार के माने गये हैं—सचित, आगामी और प्रारब्ध^{२३}। सचित कम जन्मांतरो में किए गए कर्मों के समूह को कहते हैं। ये सचित कम वतमान जन्म में भोगे जाते हैं। आगामी कम वतमान जन्म में क्रियमाण होते हैं और भावी जन्म के सस्कारों का संचय करते हैं। प्रारब्ध कम वतमान जन्म के प्रारम्भक कम हैं। ये पिछले जन्म के किए गये कर्मों के सस्कार रूपा में वतमान जीवन का भविष्य प्ररित करते हैं^{२४}। कर्मों का क्षेत्र सीमित नहीं है। जीवन की आवश्यकता के अनुकूल वे अपना रूप धारण करते हैं—जसे नित्य कम नमित्त कम निधि और निषिद्ध कम काम्य कम और निष्काम कम इसी प्रकार विहित कम शारीर कम भी है। इनमें से कुछ कम वदिक विधान का अनुसरण करते हैं। जैसे यज्ञ करो और यह विधि कम हैं। हिंसा न करो यह निषिद्ध है। विहित कम विधि के अतभूत हैं। बल्कि सहिताओं में उपदिष्ट यज्ञ और अग्निहोत्र विहित कम हैं। कुछ कम जीवन यात्रा के लिए आवश्यक हैं—जसे नित्य कम। नमित्त कर्मों में किसी विशेष कामना की प्रेरणा होती है। काम्य कम कामना के पूरक हैं। शरीर द्वारा होने वाले शारीर कम हैं जबकि चित्तन आदि मानसिक कम हैं। वाणी द्वारा प्रसूत क्रिया वाचिक कम है। गीता में निष्काम कम की योजना प्रस्तुत की गई है। अथ कर्मों और निष्काम कम में अंतर केवल यही है कि अथ कर्मों में फल की अपेक्षा है, परन्तु निष्काम कम में फल की कामना नहीं रहती। गीता में कम ने एक

२१ अनिष्ट नरकतिथ्याग्निदण्डम् इष्ट देवाग्नि लक्षण अज्ञाना कर्मिणा अपरमायसाया
मिना प्रेत्य शरीरपातम् उच्यते । न तु परमाय सन्वसिना । गीता भाष्य । १८।१२।

२ विचार चन्द्रोप्य । कला । १६ ।

२३ शारीर वाचिक मानस च कम धुनित्ति मिद्ध धमारय । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।४।

२४ विचार चन्द्रोप्य । कला । १६ ।

तात्त्विक स्वरूप स्वीकार कर लिया है। वही कम गन् का विनोय भय है वेद विहित कम। विक्रम का भय है वेद विरुद्ध कम और भयम का भय है कम का त्याग। कम की तात्त्विक विवचना करने हुए गीता में कहा गया है कि कम की गति गहन है^{१५}।

गीता में प्रयुक्त कम गन् विहित कर्मों का प्रतिपादक है। परन्तु कम भौतिक और अविद्यात्मक हैं। निगुण और निष्क्रिय आत्मा में क्रिया का कोई सम्बन्ध नहीं है। कम की आलोचना से आचार्य शङ्कर का तात्त्विक कम काण्ड की ज्ञान प्राप्ति में असमयता प्रदर्शित करना है। कम में फल की अनिर्वायना है। कम फल सदा प्रतिफलित होता रहता है। इस प्रकार जन्मांतर शृंखला का कहीं भ्रवसान ही नहीं होना। कम का फल स्वर्ग है। स्वर्ग मुखा में अस्थायित्व है। पुण्य ही स्वर्ग के मुखा के रूप में व्यक्त होता है। उन पुण्य के क्षीण हो जाने में प्राणा स्वर्ग में च्युत हो जाता है। आचार्य शङ्कर के अनुसार ब्रह्मज्ञान ही मुख का व्यवस्थापक है। गीता में कहा गया है कि बहिर कमकाण्ड के क्षीण हो जाने पर मृत्यु लोक की प्राप्ति प्राणी का पुनर्हाती है। स्वर्ग की प्राप्ति से मोक्ष नहीं है। इससे आवागमन का उच्छेदन नहीं होता^{१६}। मुण्डक उपनिषद् में भी कहा गया है कि कमठा का कमफल विषयक राग रहता है^{१७} जिससे वे ज्ञान से वंचित रहते हैं। कर्मों दुःखी होकर स्वर्ग से पथक हो जाते हैं। कम अविद्यात्मक और अनित्य है। उससे मोक्ष की स्थिति नहीं हो सकती। आचार्य शङ्कर के अनुसार मोक्ष नित्य है। किसी नित्य वस्तु का आरम्भ होने में ही कम का अन्त होता है। अतः कम

^{१५} कम की गहनता का अर्थ है कम की अनेकरूपता है। कम यों तो बधनकारक है परन्तु कम की दुरावता बधन को मुक्त करने वाली है। कम का भाग ही दहा याग का रूप ले लेता है। कम भा है —

१ याग कमसु कौशलम् । गीता १०।२०।

२ कर्मा कर्मयोगिनि । गीता १०।२७।

आचार्य शङ्कर ने कम की इस गन्ता का वाद महत्व नहा दिया। गीता भाष्य में गहन शब्द का अर्थ उन्होंने कठिन किया है। याग की वत् ही ही निष्काम कम याग का प्रतिपादन करते हैं आचार्य शङ्कर के अनुसार आनिष्क कर्म है।

^{१६} छोटे पुण्य मृत्यु लोक विरामि ।

गणगण वामनामा लभन्ते । गी १।१८ २१।

^{१७} यः कर्मिणो न प्रवेत्सति रागात्तेनावुरा क्षीणलोकारव्यवन्तः । मुण्डक उपनिषद् १।१।६।

घनित्य है। अस्तु मोक्ष वर्मादिषु यही है^{२८}। अतः प्रकार कम मोक्ष प्राप्ति के लिए अस्मत्प्रथम है। कम केवल अस्मत्प्रथम ही नहीं बरन् कम के नाश होने पर ही ज्ञान की उपनिषद् होती है। ज्ञान कम का अस्तित्व है^{२९}।

त्रिया की फल की अज्ञानता है परन्तु मोक्ष त्रिया का फल नहीं है। ज्ञान का मोक्ष ही लक्ष्य है। मोक्ष त्रिया साध्य नहीं है। कम की जो भी प्रतिष्ठा गङ्गा ने स्वीकार की है वह व्यावहारिक है। त्रिया के लिए गरीरान्त्रि की आवश्यकता है परन्तु ज्ञान के लिए बाह्य साधना की अज्ञानता है। अज्ञानता में अज्ञानत्व भोक्तृत्व न होने के कारण त्रिया का अज्ञान सत्य से कोई प्रयोजन अज्ञानता गङ्गा नहीं मानते। उनके अनुसार मोक्ष में ज्ञान के अनिश्चित त्रिया का लक्ष्य भी सम्बन्ध नहीं है। त्रिया पुरुष-यापार है। वह सर्वज्ञ के अज्ञान है। ब्रह्मसूत्र भाष्य में ज्ञान को मानसिक त्रिया कहा गया है। परन्तु यह मानसिक त्रिया अथ गरीरिक त्रियासे भिन्न है। उसका तात्पर्य यह है कि ज्ञान मानसिक त्रिया होते हुए भी इन्द्रियान्त्रि के द्वारा साध्य नहीं है। अतः प्रभा टीका में कहा गया है कि ज्ञान अस्तुत्र है अज्ञान साध्य नहीं है। अतः ज्ञान इन्द्रियान्त्रि की अपेक्षा रखकर उत्पन्न नहीं होता^३। तब अतः यह होता है कि उपनिषद् में श्रवण मनन निदिध्यासन की प्रतिपालना क्यों उपनिषद् हुई है? त्रिया रूप साधन होने के कारण अज्ञान गङ्गा के सिद्धांत के अनुसार इसका अस्तित्व होना चाहिए। परन्तु अज्ञान गङ्गा मानते हैं कि ये श्रवणादि विषयास मनोव्युत्पत्ति को विमुक्त करते हैं। अतः ज्ञान प्राप्ति में इनका महत्त्व है। ज्ञानोत्पत्ति में गमात्रि पटसम्पत्ति साधन को अज्ञान गङ्गा अत्यन्त उपयोगी मानते हैं। अतः ज्ञान त्रिया अज्ञान से अज्ञान होने से कम में अज्ञान है^{३१}।

ज्ञान से राग की शक्ति होती है। कम से राग की शक्ति नहीं होती। ज्ञान प्राप्ति के अनन्तर अज्ञान कर्मों की प्रेरणा होती है। तब प्रश्न है कि जो ज्ञान साधन को मान्य में स्थित करता है उसका फल तो मोक्ष के अनन्तर अज्ञान कर्मों की प्रेरणा का कारण हो सकता है। इसके अनिश्चित ज्ञान का अस्तित्व

२८ अज्ञान ज्ञान किञ्चिदज्ञाने लोके अज्ञाने अज्ञाने अज्ञाने। अज्ञाने न कमार्थो मोक्षः।

तत्तरीय उपनिषद्। सम्बन्ध भाष्य।

२९ अतः कम अज्ञाने अज्ञाने अज्ञाने अज्ञाने अज्ञाने अज्ञाने। गीता भाष्य। ४।३।

३ अतः ज्ञान नाममानसी त्रिया। ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।४।

मानसमपि ज्ञान न विधियन्त्या त्रिया अस्तुत्र वा। ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।४।

३१ अज्ञाने अज्ञाने अज्ञाने अज्ञाने अज्ञाने अज्ञाने। ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।४।

भी अवशिष्ट रहना होगा। इस सम्बन्ध में आचार्य गङ्गुर का मत है कि जिस प्रकार अग्नि लकड़ी को जलाकर स्वतः शीत हो जाती है उसी प्रकार ज्ञान राग का नाश करके स्वतः शीत हो जाता है^{३२}।

अनार्य मुदृत और दुष्कृत कर्मों का नाश विद्या से ही होता है। इन कर्मों के नाश के लिए इनके आगम के नाश पर्यन्त प्रतीक्षा करनी पड़ती है। आचार्य गङ्गुर कहते हैं कि जिस प्रकार कुम्भकार चक्र चला कर उस छोड़ देता है, परन्तु चक्र और भाँवण स निरन्तर घूमता रहता है उसी प्रकार कर्मों के सत्कारण जानी का शरीर भी ज्ञान हो जाने पर भी श्रियाए करता रहता है। परन्तु ज्ञान से मिथ्या ज्ञान और कम का निषेध हो जाता है^{३३}। अतः पुण्य-पापों का ज्ञान से क्षय होता है। ज्ञाननिष्ठा में आचार्य गङ्गुर को कम और ज्ञान का समुच्चय ही भाव्य नशा है। मोक्ष के लिए ज्ञान अकेला ही समय है^{३४}।



३२ अथे ज्ञानं ननु स्वयमवापराभ्यति । अक्षयम् भाष्य । १।१।४।

३३ न तावन्नाशित्याऽऽरंभान् कमागव ज्ञानोपसिद्धयर्थम् । आश्रिते च तस्मिन्नुपाय
चक्रवत् चक्रवत्यान्तराले प्रवृत्तौ चोत्पत्तिं भवति वगन्व्यप्रतिपादनम् । अकृतान्त-
बोधोऽपि हि मिथ्याज्ञानभावनेन कनत्युच्चिन्नचित्तोऽपि ज्ञानमपि तु मिथ्याज्ञान द्विवृत्तान्
वन् सरकारवमात्रं कश्चिन् कानननुवन्त । अक्षयम् भाष्य । ४।१।१५।
मुह्यं दुष्टं तत्र विद्यामानव्याप्तयः । अक्षयम् भाष्य । ४।१।१५।

३४ ज्ञानमस्यै सन्नुच्चयो । गीता । सम्बन्ध भाष्य । ३।

यवना एव ज्ञानो माद्य । गीता । सम्बन्ध भाष्य । ३।

सप्तम प्रकरण

आचार्य शङ्कर के अनुसार उपासना का स्वरूप

अनेक उपासनाओं का वर्णन उपनिषदों में हुआ है। ये उपासनाएँ भी गाना लक्षि में सहायक हैं। कर्म व समान उपासना भी प्राप्त्य व प्राप्ति-काल तक साधनरूपा है। ये उपासनाएँ यद्यपि अनेक विधि हैं, किन्तु इन सबका लक्ष्य एक ही ब्रह्म की अनेक रूपा में अर्चना करना है।

आचार्य शङ्कर के अनुसार उपास्य वस्तु को शास्त्रावत विधि से बुद्धि का विषय बनाकर, उसके समीप पहुँचकर तलधारा के तुल्य समानवक्तियों के प्रवाह से दीर्घ काल तक उसमें स्थित रहना उपासना कहलाता है।¹ उनकी इस परिभाषा से उपासना की कई विशेषताएँ व्यक्त होती हैं। उपासना में शास्त्र और बुद्धि की अपेक्षा है। उपासना (उप + आसन) गन्ध का अर्थ उपास्य के निकट स्थित होना है। तलधारा तुल्य समान वक्तियों का प्रवाह साधक के ध्यान की अपेक्षा रखता है। अतः उपासना में शास्त्र, बुद्धि भक्ति और ध्यान का महत्त्व उक्त परिभाषा के अनुसार निश्चित होना है।

उपासना का लक्ष्य ब्रह्म है। यहाँ प्रश्न यह होता है कि ब्रह्म तो अतीन्द्रिय सत्य है। उसमें उपास्य और उपासक भेद भी प्रसक्त नहीं हो सकते। ब्रह्म या मोक्ष काय नहीं है परन्तु उपासना त्रिया-सापेक्ष्य है। जीव और ब्रह्म में अभेद है। अतः उपासना की आवश्यकता नहीं है। आचार्य शङ्कर के अनुसार ब्रह्म अतीन्द्रिय सत्य अवश्य है परन्तु उसकी साधना व्यवहार का ही अङ्ग है। अति को वह ज्ञान प्राप्ति में प्रमाण मानते हैं। परन्तु यह प्रमाण प्रमेय साधारण पृणत लौकिक है। अति ज्ञान की अपेक्षा परमाय सत्य की उपलब्धि पयत ही रहती है। व्यवहार की अवस्था में प्रमाण और प्रमेय साधारण एवं उपास्य उपासक भेद मान्य हैं। जिस प्रकार कम की साधना अज्ञानियों की है उसी

¹ उपासन नाम यथाशास्त्रम् उपारयत्य अवरय विपयीकरणेन सामीप्यम् उपगम्य तलधारावत नमानप्रत्यवप्रचारेण तीरकान यन् आसन तन् उपासनम् आचरन्ते । गीता भाष्य १२।३।

प्रकार उपासना भी अविद्यात्मक है^२ । इस भेद के आधार पर आचार्य शङ्कर उपासना प्रयोजन में विविधता लक्षित करते हैं । अम्युदय और कम समद्धि उपासना के प्रयोजन हैं । इसके भेद का कारण उपाधि वषम्य और गुणा से प्रसून विविधता है । आचार्य शङ्कर के अनुसार यद्यपि गुणा से विशिष्ट एक ही ईश्वर उपास्य है तो भी जो उपासक जिस गुण की उपासना करता है तदनुसार उसे फला की उपलब्धि होती है^३ । इस अनेकरूपता का कारण चित्तरूपी उपाधिभेद कहा गया है । ऐश्वर्य अथवा शक्ति विनोप के भेद से एक ही कूटस्थ नित्य एव एकरूप आत्मा में विविधता है^४ ।

तब प्रश्न यह है कि ब्रह्म तो एकदेगीय नहीं है । अतः उस असीम की उपासना असम्भव है । आचार्य शङ्कर के अनुसार समस्त पृथ्वी का अधिपति अयोध्या का भी अधिपति होता है । इसी प्रकार सबव्यापक ब्रह्म हृदय में भी व्याप्त है । जैसे हरि के ध्यान के लिए शालग्राम में ध्यान हाता है उसी प्रकार ईश्वर में अणुत्वात् गुण सगत हैं । इस एकदेगीय उपासना में बुद्धि विज्ञान से ईश्वर ग्राह्य है । उपासना से ईश्वर प्रसन्न होता है^५ । शङ्कर सिद्धांत में साधना के दो पक्ष सगुण और निगुण सबत्र उपलब्ध हैं । उपासना की दृष्टि में भी इस प्रकार सुविधा है । आचार्य शङ्कर का लक्ष्य है निगुण ब्रह्म और यह ब्रह्म ही सत्य अथवा मोक्ष की पराकाष्ठा है । इसकी उपलब्धि कत साध्य नहीं है पर तु साधना की यह ज्ञानमयी उच्च स्थिति सब सुख में नहीं है । अतः शङ्कर के अनुसार ब्रह्म यद्यपि निगुण है तो भी उपासना के लिए उसमें नाम रूपा की अधिवृत्ति की जाती है । उपनिषदों में प्रतीकोपासना का व्याख्यान हुआ है । वहाँ ब्रह्म में अङ्गापागा का वणन है । छात्योग्य उपनिषद में उसे 'सुनहरी मूछा' वाला कहा गया है । इसी प्रकार आक्ष में जो पुरुष है वह

२ तत्राविद्यावस्थाया ब्रह्मण उपास्योपासकान्तिवृत्तौ सर्वोयवहार विद्याविधाविषयमदत्त ब्रह्मणा दिरूपना । ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।१२।

३ तत्र कानिचित् ब्रह्मण उपासनायभ्युत्पन्नानि, कानिचित् क्रमसुखयथानि, कानिचित् कमसमगदयथानि । तेषा गुणा विरोधाधिभेदं भेदं यथागुणोपासनमेव फलानि भिद्यते । ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।१३।

४ चित्तोपा विरोधोपारतम्यात् न कूरयनि यग्यैकरूपस्याऽभ्युत्तरोत्तरमाविष्टुत्पन्नार तम्यभैरवराक्तिविशेषे । ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।१३।

५ एवमणीयस्वाङ्गुणगणोपत ईश्वररात्र ह्यप्युपपत्तीन निनायो द्रष्टव्य उपनिश्यते । यथा श भद्रामे हरि । तत्राऽस्य बुद्धिविज्ञान ग्राहकन । मन्वगताऽपीश्वरगन्धोपत्यमान प्रतीयन्ति । ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।१७।

आत्मा है एसा बचन है^१ । अतः सगुण स्वरूप ही उपास्य है । उपासना में केवल मूर्तरूपता की प्रधानता ही नहीं बरन् भावरूपता भी प्रायः है जमे ब्रह्म की मुख रूप में उपासना । गुण गुण हैं परन्तु ब्रह्म त्रिगुण है । आचार्य शाङ्कर के अनुसार मुख गुण होते हुए भी गुणी ब्रह्म के स्वरूप में उपास्य है ।^२ उपासना गुण साध्य है । अतः उसमें प्रत्येक कोटि की व्यावहारिकता के लिए स्थान है । इस प्रकार उपास्य के सगुण रूप में स्थल स्थान, भावरूपता और मूर्तरूपता सम्भव है । आचार्य शाङ्कर के अनुसार ब्रह्म यद्यपि सर्वव्यापक है तो भी हृत्पद्मादि स्थान विशेष से उसका विशेष सम्बन्ध ध्यान की दृष्टि से है^३ ।

प्रतीक उपासना एक माधन हो सकती है किन्तु साध्य नहीं । छान्दोग्य उपनिषद् में कहा है कि मन ब्रह्म है यह अध्यात्म है आकाश ब्रह्म है इस प्रकार की उपासना करनी चाहिए^४ । आचार्य शाङ्कर यहाँ मन और आकाशदि से आत्मा को स्वीकार नहीं करते^५ । यदि प्रतीका को ब्रह्म का विकार मानकर उसकी उपासना की जाए तो भी उसमें दोष है, क्योंकि तब प्रतीक के नामादि समूह विकार रूप होंगे । परन्तु ब्रह्म अविनाशी है । अस्तु प्रतीक में ब्रह्मरूपि से उपासना युक्त नहीं है^६ । आचार्य शाङ्कर का मत है कि यहाँ विष्णु प्रतिमा के समान ब्रह्मरूपि का अध्यारापण है^७ । तब प्रश्न यह है कि उस उपासना का फल कौन देगा क्योंकि प्रतिमा के समान प्रतीक फल नहीं दे सकता । उनकी भावना है कि अतिसिद्ध उपासना का फल देने वाला भी ब्रह्म है ।

६ त्रिगुणमपि सर्वब्रह्म नामरूपगतैर्गुणैः सगुणमुपासनाय तत्र तन्नोपनिषत् ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।२।१४।

द्विरग्यस्मत् । छान्दोग्य उपनिषद् । १।३।६।

य एषोऽद्विषि पुरयो दृश्यत एष आत्मेति । छान्दोग्य उपनिषद् । ४।१५।१।

७ अथ हि मुखस्यापि गुणस्य गुणिकत्वं ध्येयत्वम् । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।२।१५।

८ ब्रह्मणस्तु व्यापिनोऽपि दष्ट उपलभ्यर्थो हृत्पद्मादिशिविशेषमन्त्रव्ययः ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।२।१५।

९ मनो ब्रह्मो युषामीनेत्यज्यात्ममन्त्राधिष्ठितमाकारो ब्रह्मेति । छान्दोग्य उपनिषद् । ३।२८।१।

१० न हि स उपासकः प्रतीकानि व्यस्तान्या मतेनाश्रयत । ब्रह्मसूत्र भाष्य । ४।१।४।

११ न प्रतीकं न हि स । ब्रह्मसूत्र भाष्य । ४।१।४।

१२ ब्रह्मण उपास्यत्वं य प्रतीकसु तद्व्यवहारोपेण प्रतिमात्त्विव विष्णोर्गोपनात् ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । ४।१।५।

ब्रह्ममूत्रा म कहा गया है कि उपासना बठकर करनी चाहिए^{१३} । आचार्य गङ्कर एक ही प्रत्यय के प्रवाह को उपासनामानते हैं^{१४} । यह प्रत्यय प्रवाह बठने के अतिरिक्त किसी म्यनि म सुकर नही है । अय स्थिति म चित्त विश्लेष होने का भय है । इसीलिए योग सूत्रा म आसन का महत्व कहा गया है । उपासना म ध्यान अपेक्षित है । ध्यान के लिए भी स्थित हाना अनिवाय है^{१५} । 'ध्यायति गङ्' स आचार्य गङ्कर अङ्ग की चेष्टाआ की गिथिनता, दष्टि की स्थिरता, चित्त की एक विषय म आसक्ति का अय लत है^{१६} । उपासना म स्थिरता की अपक्षा ह । अत मूत्रा म अवलत्व शब्द स बठकर उपासना करने का सकत है^{१७} । उपासना म एकाग्रता का महत्व है^{१८} । आचार्य गङ्कर व अनुसार दिशा, देग और कान का विचार बधिक आरम्भा म रखा जाता ह परतु उपासना व लिए ऐसा काई नियम नही है । जिस दश काल या दिना मे उपासना को एकाग्रता प्राप्त हो उसी म उपासना करनी चाहिए । या तो अभोष्ट एकाग्रता सबत्र समान ही है^{१९} ।

उपासना के सम्बन्ध म ब्रह्ममूत्र के भाष्य म गङ्कर का जो व्याख्यान हुआ है, वह उपनिषद् म वर्णित अनेक उपासनाआ व प्रसगां से युक्त है । वे आत्मा की उपासना का पयवमायिनी उपासना मानते है । जो भी उपासना होती है वह आत्मा को ही प्राप्त होनी है । उनका मत है कि आत्मरूप से ही परमेश्वर का ग्रहण करना चाहिए । जावानोपनिषद म कहा गया है कि 'ह भगवति देवते तू ही में और मैं ही तू हू । इसी प्रकार मैं ब्रह्म हूँ वाक्य उपासना व लिए आत्मा का ग्रहण कराता है । मैं ब्रह्म हूँ इस वाक्य से आचार्य गङ्कर जीव को पारमायिक सत्य लक्ष्य करते हैं । इसका उद्देश्य है कि ससारी जीव ससारीपन का त्याग करके ईश्वर रूप हो जाता है । तब प्रश्न यह है कि जीव का ईश्वर भानन से ससार के घम पाप-मुण्य उसम भी आरोपित हागे और इस प्रकार अयवस्था और सिद्धात हानि हागी । आचार्य गङ्कर के

१३ आनीन सभवात् । ब्रह्ममूत्र । ४।१।७।

१४ योग मूत्र । ३।४६।

१५ ध्यानाच्च । ब्रह्ममूत्र । ४।१।८।

१६ प्रशिक्षि नागचष्टेऽनु प्रतिष्ठितं चिन्तयेकविषया चिन्तित्तोपुपचयमायो ।

ब्रह्ममूत्र भाष्य । ४।१।८।

१७ अवच व चोच्च । ब्रह्ममूत्र । ४।१।९।

१८ तयकाग्रता तया विराभात् । ब्रह्ममूत्र । ४।१।११।

१९ मनस माकर्षणैकाग्रता भवति नत्रैवोपानीत । ब्रह्ममूत्र भाष्य । ४।१।११।

अनुसार जीव की इस प्रकार की विपरीत गुणता मिथ्या है। इस प्रकार 'मैं ईश्वर हूँ' इस भावना से उपासना ही आचार्य शङ्कर मुत्तियुक्त मानते हैं^{२०}।

उपासना अभ्युत्थ की साधनभूता है। इन उपासनाओं का फल कवल्य मोक्ष का समीपवर्ती कहा गया है। किन्तु अत्र त ज्ञान और उपासनाओं में अन्तर है। आचार्य शङ्कर का मत है कि मनोमय और प्राणमय शरीर इत्यादि वाक्या के अनुसार ये उपासनाएँ किञ्चित् विचार वाली हैं। अविद्या की विकारिता से युक्त हुई ये उपासनाएँ ब्रह्म से सम्बन्ध रखती हैं। इनका कर्माङ्गण सम्बन्ध है और कमफल की समृद्धि इनका फल है। इह कवल्य मोक्ष का समीपवर्ती कहा गया है परन्तु कमफल की समृद्धि से तो मोक्ष साधित नहीं होता। आचार्य शङ्कर का मत है कि उपासना किसी गात्रोक्त अवलम्ब को ग्रहण करती है। उनके अनुसार अग्ने तक्ष्य के प्रति आसक्त और अयो के प्रति विरक्त होकर चित्तवृत्ति को उपासना एक धारा में प्रवाहित कर देता है। परन्तु अद्र तजान अत्रिय आत्मा में आरोपित कारक भेदों और फल भेदों का निराकरण करता है। उनके विचारानुसार यह अद्र तजान रज्जु में प्रतीत होने वाले सपत्त्व को निवृत्त करता है और रज्जुत्व का ज्ञान कराता है^{२१}। उपासनाओं से भी चित्तगुद्ध होता है। शास्त्र का आलम्बन होने से ये उपासनाएँ चित्तगुद्धि की सुगम साधन हैं। ये वस्तु तत्त्व की प्रकाशिका हैं और अत्र त ज्ञान की उपहारिणी कही गई हैं^{२२}। इस प्रकार कम साधना के समकक्ष होते हुए भी उपासनाएँ कम से अष्ट हैं।

२० समाधिणः समार वापोऽनेश्वरा मत्त्व प्रतिषिपन् विहितमिति । एव च स यद् देशवरयाऽप्यन्तपामना दगुणता विपरीतगुणता विवरस्य निष्येति च्यवतिष्ठते । तस्मान् अन्तदेवेश्वरे मनोऽधीन । ब्रह्मसूत्र भाष्य १।४।१।३।

२१ अभ्युत्थसाधनान्युपासनान्युत्थते । कैवल्यमनिवृत्त्यर्थानि चाद्र ता नोपदिक्लमद्वा विषयाणि मनोमय प्राणशरीर इत्यादीनि कमसमृद्धिफलानि च कमागमम्बधानि । स्वाभाविकरयात्मन्यत्रियऽध्यारोपितस्य कर्त्रीकारकविवाक्यफलभङ्गविज्ञानस्य निवृत्तकम्ब्र तविज्ञानम रज्जुवात्विषसर्पाय यामेपलक्षणज्ञानस्य रज्जुवात्त्रिरूपनिश्चय । प्रकाशानिमित्त । उपासन तु यथाशास्त्रसमर्थित किञ्चित्त्वलम्बनमुपासनाय तस्मिन् समान चित्तवृत्तिमत्तानकरणे तद्विलक्षणप्र ययानत्तरितमिति विशय ।

छान्दोग्य उपनिषद् भाष्य ।

२२ स वस्तुद्विकरत्वेन वस्तुतत्त्वावभासकत्वाद्दे तद्वानोपकारकात्त्वानलम्बनविषयत्वात्सुपासनायानि ।

छान्दोग्य उपनिषद् सम्बन्ध भाष्य ।

उपासना म उपास्यापासक भेद बतमान है । यह भू अनानाश्रम्या क कारण है । परन्तु उपासना का लक्ष्य अनन्त प्रतिमान ही है । आचाय शङ्कर ने इस उपासना भू को मराध्य-मराधक भाव नाम स अभिहित किया है । सरावन गब्द स भक्ति, ध्यान, प्राणिवान और अनुष्ठान अथ प्रकृ हान है^{२३} । आचाय शङ्कर न इन उपासना भावों क चार उपाहरण लिए हैं । अम मुष्क में कहा गया है कि ' ध्यान करता हुआ निष्कन आत्मा का दन्ता है । यह ध्यात ध्यानय भाव कहलाता है । इसी प्रकार 'पर म पर' निव्य पुष्प का प्राप्न करता है । यही दण्ट्यता भाव हुआ । कही कहा गया है कि गृह सब भूना के अन्त्यन्तर म रू कर नियमन करता है । य भाव का नियन नियनव्य रूप कहलाता है^{२४} । इसी प्रकार गन्त गन्त-यत्व भाव है । परन्तु यह भेदभाव कथनमात्र है । जस सप का बभ्रावार दण्ट्यकार कृत्न म सन क म्दरु म विगिण्टता नहा आनी वस हा एन भावा म उपास्य उपासक भेद हात हुण भी जान रू का प्रविष्टा म काई व्यवधान नहा है^{२५} । यही आचाय शङ्कर के भदाभद सिद्धान्त का रूस्म है ।

मराधन और भक्ति गू समानार्थी हैं । आचाय शङ्कर क अनुसार भजन भक्ति है^{२६} । इस भजन गब्द क भाव म मवा गू का भाव शङ्कर न गूण किया है^{२७} । परन्तु इस सवा गब्द की स्परखा आचाय शङ्कर ने निश्चित नहा की । इसा प्रकार म 'उपासत' गू का भी अर्थ कहा कहा मवत हुआ है^{२८} । अन्त प्रतीत होता है कि भक्ति और उपासना दाना म माम्य है । परन्तु इस साम्य का अर्थ यह नहा रि म जाना एक-दूसर न पयाय है । भक्ति उपासना का अतवर्ती भाव है । उपासना गू एक औपनिषत् प है । दान्ताय और बह्दारष्यक उपनिषत् म अन्क उपासनाया का वणन है । भक्ति गू का प्रयोग उपनिषदा म नहा सा है । गीता म भक्ति गू का प्राचुय है और वही उमका विगिण्ट अर्थ है । भक्ति क्षेत्र म भक्तियाग जाना की विापना

२२ मरान क भक्ति गानप्रशिक्षणा नुदानन । अद्वय भाष्य । २।२। ६।

म गू पूर्वप्रद्वनवानु यथावववव । अद्वय भाष्य । १।२।०।

२४ तानु त परय निष्कन यवनन । मुष्क उचिनन । २।१।१।

परापर पुष्पुपै निव्यन । मुष्क उपनिषत् । ३। १।

२५ उमवदपशास्त्रिकुष्कवा । अद्वय । १।२।०।

६ भजन भाष्य । गीता भाष्य । ०।१।०।

२७ भन्त सवन्त । गीता भाष्य । ३।१।३।

२८ उपासतु सब त । गीता भाष्य । ६।१।४।

है। आचार्य शाङ्कर ने अपने भाष्या में भक्ति गान का बहुत ही कम प्रयोग किया है। उपनिषद् भाष्या में भी यानका ही इस शब्द का प्रयोग मिलता। गीता भाष्य में भी भक्ति की उत्पत्ति और उसके स्वरूप का आकलन नहीं मिलता। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि भक्ति सिद्धांत में आचार्य शाङ्कर विरोधी थे। उनका उद्देश्य था निगुण ब्रह्म की ज्ञान साधना। उनका यह दृढ़ मत है कि ज्ञान साधना के लिए वस्तुतः किसी बाह्यापकरण की आवश्यकता नहीं है। ज्ञान स्वतः समय है। वह ज्ञान परम गति का स्वरूप ही है। व्यवहार में कम अवस्था का लोप नहीं किया जा सकता। ज्ञान की प्राप्ति में अर्थ साधना को उद्धाने ज्ञान की उत्पत्ति में उपयोगी मान लिया है। उद्धाने ब्रह्म मर्यादा और भद्र त सिद्धांत ज्ञान का समावेश किया है।

अब हम उपासना के क्षेत्र में भक्ति का विवेचन करते हैं। ऐसा करना महा इसलिए आवश्यक है कि निगुण सत्त भक्ति प्रधान ब्रह्म है। ब्रह्म उपासना का उनके वाक्य में अभाव है। शाङ्कर मत का स्वरूप प्रस्तुत करने के लिए उपासना का विवेचन करना आवश्यक है। निगुण ब्रह्म की परा भक्ति आचार्य शाङ्कर का लक्ष्य है। परा भक्ति परब्रह्म का ज्ञान कराती है। यह भक्ति स्वतः ज्ञान स्वरूप है और भद्र त सत्य की रक्षा करती है। गीता की भक्ति का अनन्य भाव भी उसी परा भक्ति का स्वरूप है^{२६}। आचार्य शाङ्कर ने अनन्य गान का अर्थ आत्मा स्वीकार किया है क्योंकि एक के अतिरिक्त अन्य आत्मा नहीं है। गीता में आत्मा जिज्ञासु और अर्थार्थी इन तीन प्रकार के भक्तों का कथन है। इनके अतिरिक्त चौथा भक्त ज्ञानी भी है। यह ज्ञानी भक्त ही आचार्य शाङ्कर का लक्ष्य है। इस ज्ञान स्वरूप भक्ति के लिए उद्धाने ज्ञान निष्ठा गान का प्रयोग किया है। यह ज्ञान निष्ठा ही परा भक्ति है। उनके अनुसार मर्त्या हूँ मेरा यह कम है इत्यादि कारक भेद बुद्धि जनित समस्त कर्मों के साथ सहित क्षेत्रज्ञ और ईश्वर की एकता का ज्ञान और स्वरूपानुभव में दृढ़ रहना परा ज्ञान निष्ठा कहलाती है^३। आचार्य शाङ्कर का कथन है कि अंतरात्मविषयक प्रतीति की निरंतरता रखने का नाम ज्ञान निष्ठा है^{३१}। कर्मों से पूजन का आयोजन करना भक्ति का अङ्ग है।

२६ अनन्याश्चिन्तो।गीता।६:२।

अथभू। पर देव नारायणन आत्मत्वेन गता सान। गीता भाष्य ६:२२।

३ क्षेत्रज्ञपरमात्मैव च ज्ञानस्य कर्मात्कारकभेदबुद्धिनिबन्धनवकमसन्धानमद्विदस्य स्वात्मानुभवनिरचयरूपस्य दत्त अवस्थान सा पराज्ञान निष्ठा। गीता भाष्य।१८:५५।

३१ प्रथमा मविषयप्रययमज्ञानकरणानिवेश च ज्ञाननिष्ठा। गीता भाष्य।१८:५५।

इस भक्तियोग की सिद्धि कही गई है। आचार्य शङ्कर का मत है कि यह सिद्धि ही ज्ञान निष्ठा की योग्यता है^{३२}। कर्मों से पूजन करने का लक्ष्य निष्काम कर्मयोग की उपलब्धि है। कर्म करके फल की प्राप्ति का इष्ट साध्य पर समर्पित करने का विधान गीता के कर्म योग में है^{३३}। कर्मों द्वारा पूजन का लक्ष्य कर्मफल त्याग है। भक्ति शब्द का प्रयोग कामना और कर्म के साथ और निष्ठा का ज्ञान के साथ गीता भाष्य में अधिक मिलता है।

आत्मा अकर्ता और अमोक्षा है। अतः भक्ति में क्रिया की अपेक्षा में अविद्या का सङ्ग है। भक्ति ज्ञान का साधन हो सकती है परन्तु स्वतः सार नहीं। शङ्कर ने प्रायः भक्ति का सम्बन्ध साध्य और साधक की अनन्यता के साथ माना है। ऐसी स्थिति में वह भक्ति ज्ञान स्वरूप हाती है। गीता में इस अनन्य योग कहा गया है और यही अद्वैतभारिणी भक्ति है^{३४}। इस अद्वैतभारिणी भक्ति का अन्तर्भाव परा ज्ञान निष्ठा में है। भक्ति की साधना रूपना श्रिया रूप है। क्रियात्मकता आत्मा का स्वरूप प्रतिष्ठित नहीं करती। अतः आचार्य शङ्कर का मत है कि इस निष्ठा में कर्म की अनिवायता नहीं है। इस ज्ञान निष्ठा का फल है आत्म बल्य। यह फल निश्चित है^{३५}। इस निष्ठा में कर्म मयास की अपेक्षा है। कर्म अविद्यात्मक है अतः भक्ति का जहाँ तक सम्बन्ध कर्म से है वह भी अनान की सूचिका है। आचार्य शङ्कर के अनुसार ज्ञाननिष्ठा से ससार की आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाता है^{३६}।

इस प्रकार परा भक्ति अभेद की प्रतिपादिका है और स्वतः ज्ञान का स्वरूप ही है। आचार्य शङ्कर का प्रतिपाद्य है अद्वैत ज्ञान। इस ज्ञान में कर्म का अपेक्षा उद्दान स्वीकार नहीं की। तत्तिरीय संहिता में कहा गया है कि 'पुत्र आत्मा ही है'^{३७}। यह प्रम सम्बन्ध यद्यपि व्यावहारिक है तो

३२ स्वकर्मणा गवत अभ्यचनभक्तियोगस्य सिद्धि प्राप्ति फल ज्ञाननिष्ठायोग्यता।

गीता भाष्य १२।१५।

३३ तत् कुम्भ मन्दणम्। गीता १६।२७।

३४ भक्तिज्ञानयोगिन भक्तिरव्यभिचारिणी। गीता १२।१०।

पुत्र निश्चिन्ना अद्वैतभारिणी बुद्धि अनन्ययोग तेन भवन भक्ति। साचञ्चाम्।

गीता भाष्य १२।११।

३५ न ज्ञाननिष्ठा कर्ममहिता उपपद्यते। गीता भाष्य १२।१६।

३६ ज्ञाननिष्ठायान् आत्यन्तिक ससारोपरम्। गीता १२।१६।

अरे न वा पुत्रायान कामाय पुत्रा श्रिया भवत्थामनन्तु कामाय पुत्रा श्रिया भवन्ति।

बह्मसंस्कृत उ०नि० १०।४।५।

३७ ज्ञाना वै पुत्र नामानि। गीता भाष्य १२।१६।

भी इससे यह पता होता है कि व्यावहारिक गीणना और अज्ञान की जो भी प्रतीति है वह आत्मस्वरूप में होती है। अतः आत्मा के लिए अनात्मा का भेद अवगत करना ही विद्या का स्वरूप है। यह परा स्थिति इस अनात्मा से रहित अतः आत्मा का स्वरूप है^{३८}।



^{३८} पुरुष से परे पाप भाया लभ्यन्वना । गीता १-१२२।

अष्टम प्रकरण

आचार्य गङ्कर के अनुसार आचार्य अथवा सगुदरु का महत्त्व

माग्वीय भाषना में आचार्य और मन्त्रगुरु का स्थान सर्वोच्च है। साधन की प्राप्ति गुरु से ही होती है। इन उपनिषद् गणित आदि विद्या आदि का भी साधन क्यों न हो बिना गुरु-द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता। सभी साधनों परमप्राप्त हैं श्री गुरु परम शिष्य परमप्राप्तों में ही साधन प्राप्त सुखित रहता है। आचार्य गङ्कर के अनुसार इस लक्ष्य प्रकरण में तत्त्व-धी महत्त्व पर विचार किया गया * ।

ज्ञान प्राप्ति के लिए आचार्य के समीप जान की परम्परा उपनिषद् काल से ही प्राप्त होती है। छांदाग्य उपनिषद् में मत्स्यकाम जायाल रक्व और जानश्रुति उद्धारक, वतकतु विगवन इन्द्र सनकुमार और नारद व मवाद विद्या की प्राप्ति में आचार्य का महत्त्व प्रदर्शित करते हैं। मुष्क उपनिषद् में गौतम और अगिरा भी इससे प्रमाण हैं। ततिरीय उपनिषद् प्रथम बल्ली व दसवें अनुवाक में गुरु न शिष्य को उपदेश दिया है। प्रश्न उपनिषद् में कहा है कि मुनेगा, सयकाम, सौयायिणि कोण्य और कयधी गिष्य रूप में पिप्यता क पाम गए। कठ उपनिषद् में यम और नचिकता का मवाद भी जान के लिए आचार्य का आवश्यकता का प्रमाण है।

ज्ञान प्राप्त करके गुरु गिष्य में कोई भेद नहीं रहता। मुष्क उपनिषद् में सम्बन्ध भाष्य में बराग्यपूर्वक गुरु-द्वारा म ब्रह्मविद्या की प्राप्ति कही गई है। गीता में कहा गया है कि तत्त्वज्ञानी आचार्य का प्रमन करके, सेवा करने उनसे ज्ञान प्राप्ति के सम्बन्ध में प्रश्न करना चाहिए। ज्ञान प्राप्ति के उद्देश्य में

* विद्य वेदाग्य पूर्वक गुरु प्रसारलभ्या ब्रह्मविद्यानादन्ना वत्स्यैव भवति ।

बिना प्रकाश के अंधता ही होती है, अंधता ही है, अंधता ही है इस प्रकार के प्रश्न गुरु के निवृत्त पहुँचकर गिष्य करता है^२ ।

भद्र त सिद्धांत का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भी इस गुरु गिष्य परम्परा का पालन होता था है । एक प्रश्न यह है कि जब ज्ञान स्वरूप आत्मा एक ही है तब गुरु गिष्य भेद नहीं होना चाहिए और एकरस ज्ञान स्वरूप आत्मा में अनेक विधि अज्ञान का संचरण भी नहीं होना चाहिए । ऐसी दशा में यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि अज्ञानादि भेद अविद्या कल्पित हैं । इसी प्रकार गुरु गिष्य भेद भी अविद्या-कल्पित ही है । परंतु इस अविद्या का विनाश भी अविद्यात्मक साधना से होता है । विद्या का प्राप्ति के लिए इसा हेतु कम के महत्त्व की अवहेलना आचार्य शाङ्कर ने नहीं की । इसी प्रकार गुरु गिष्य भेद व्यावहारिक होकर भी परमाथ के साधक हैं । गुरु के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने गिष्य एक गुरु में कोई भेद नहीं रहता ।

आचार्य शाङ्कर के अनुसार आचार्य के द्वारा बार बार उपदेश करने पर ही ब्रह्म का ज्ञान जा सकता है । तब प्रवचन बहुश्रवण, तप और यज्ञ से ब्रह्मज्ञान नहीं होता^३ । छान्दोग्य उपनिषद् भाष्य में कहा गया है कि गुरुजना के पास विनयपूर्वक जाना चाहिए क्योंकि उनसे विद्या प्राप्ति होती है और वह विद्या त्रिलोकी के राज्य से भी बढ़कर है^४ ।



२ तद्विद्धि प्रशिक्षात्तेन परिप्रश्नेन सेवया । उपदेश्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्परिशीलम् ।

गीता १४।३४।

कथं कथं कथं मोक्षं का विद्या का च अविद्या इति परिप्रश्नेन । गीता भाष्य १४।३४।

३ ब्रह्म च एवमाचार्योपदेशपरम्परया एवाभिगन्तव्यं न तदनं प्रवचनमेवा बहुश्रुतयौ यथाभिपश्यत् । ब्रह्म उपनिषद् भाष्य १२।३।

४ विनयेन गुरुवाभिगन्तव्या त्रैलोक्ये यथा गुरुतराविद्या ।

छान्दोग्य उपनिषद् भाष्य १८।७।२।

आचार्य शङ्कर के अनुसार ज्ञान का स्वरूप

ज्ञान आचार्य शङ्कर का प्रतिपाद्य और लक्ष्य है। यह ज्ञान धारा जीव और ब्रह्म का अभेद निश्चिन करती है। यम ज्ञान और अविद्या के स्वरूपों की बान्धुविक्राना का परिचय मिलता है। मनुष्य के घर्न अर्थ काम और माद पुरुषार्थों में परम पुम्पार्थ यानी ज्ञान है। यमक द्वारा ही अज्ञान अनात्म विवक टपलथ होता है और प्राणी मायालय विकारों स मुक्त हो आत्मज्ञान का अधिष्ठाती हाकर ब्रह्मत्व हो जाता है।

आचार्य शङ्कर के अनुसार ज्ञान और आचार्य के उपदेश से आत्मा अनात्मता विद्या अविद्या अन्ति पन्थों का बोध ही ज्ञान कहलाता है।^१ ज्ञान की यह परिभाषा उसके तात्त्विक स्वरूप का निष्प नही करती। यह ज्ञान साधन का निरूपण करती है। ज्ञान की साध्यता के सम्बन्ध म उनका मत है कि इस ज्ञान को जान लेने पर जगत म पुरुषाय का कोई साधन जानना नैप नहीं रहता^२। प्रश्न है कि आचार्य शङ्कर ने तो ज्ञानात्ति प्रमाणा को यावहारिक माना है। तब असत्य वेदान्त ज्ञान से सत्य ब्रह्म का ज्ञान असभव है। परन्तु आचार्य शङ्कर के अनुसार परमाय ज्ञान के लिए व्यवहार की महत्ता है। य ति-स्मृति और प्रत्यक्षात्ति प्रमाणा की आवश्यकता उस काल तक के लिए है जब तक ज्ञान नही हो जाता। ज्ञान के अनन्तर य य है। स्वप्ना वस्था म सपदण उत्कस्तान काय असत्य हैं। परन्तु इनका ज्ञान रूप फल सत्य है। जाग्रत अवस्था म भी सत्ता अन्ति सत्य हैं। इसी प्रकार ज्ञान सवत्र एक रस सत्य है—स्वप्न और जागति म एव व्यवहार और परमाय में भी^३। किस प्रकार रेखाधो म अङ्कित असत्य अक्षरा से सत्य अक्षरा का ज्ञान होता

^१ ज्ञान शास्त्रेण आचार्येण य आ मातीनाम् अववाः । गता माय । ३।५१।

^२ य ज्ञानम् वा वा न इद भूय पुन पुम्पायमानम् अवजिष्यते । गीता भाष्य । ७।२।

^३ ययपि स्वप्नशास्त्रावस्थस्य सपशास्त्रोक्तानामानाति कायननन तथापि तत्त्वगति । सत्यमेव ज्ञानम् प्रतिबुद्ध्यात्त्ववाच्यमानत्वात् । ब्रह्मसूत्र भाष्य । ३।१।१५।

है उसी प्रकार असत्य व्यवहार से सत्य परमाणु प्राप्त होता है^४ । जिन प्रकार जाग्रतावस्था के पूर्व स्वप्न व्यवहार सत्य प्रतीत होते हैं, वैसे ही ज्ञान के पूर्व सब व्यवहार भी सत्य हैं । गुप्तावस्था में मनुष्य भ्रान्त पक्षियों को देखकर उह सत्य ही समझता है । इसी प्रकार ज्ञान के पूर्व व्यापारिक ज्ञान भी सत्य है । उपयुक्त परिभाषा में ज्ञान की प्राप्ति में आचार्य और शास्त्र प्रमाण हैं और उनसे प्राप्त होने वाले ज्ञान का तत्त्व आत्मा अथवा ब्रह्म पारमार्थिक सत्य है और ज्ञान साधन व्यावहारिक है^५ । इस ज्ञान के द्वारा द्वैत सत्ता का निरसन करके आत्मा में अनात्मा जड में चतुः, भेद में अभेद दोष की उपलब्धि होती है ।

ज्ञान स्वतः मोक्ष स्वल्प है । इसका सम्बन्ध क्रिया से नहीं है । नित्य होने से इसकी उत्पत्ति नहीं कही जा सकती^६ । मुक्त होने से इसमें बाधन का सङ्ग नहीं हो सकता । निर्विकार होने से इसमें विकार नहीं घटना है । अखण्ड होने से यह अबाध है । यदि इसकी प्राप्ति माना जाए तो स्वात्मरूप में स्थित होने के कारण उसको प्राप्य नहीं कहा जा सकता । मोक्ष को सस्वार भी नहीं माना जा सकता । दोष होने पर सस्कार की अपेक्षा होती है । परन्तु मोक्ष नित्य शुद्ध ब्रह्म का स्वरूप भूत है^७ । इस प्रकार मोक्ष में उत्पत्ति विकार प्राप्ति और सस्वार या क्रिया का सम्बन्ध नहीं है । आचार्य शाङ्कर के अनुसार मोक्ष में ज्ञान के अनिरिक्त क्रिया की गणना भी सम्बन्ध नहीं है^८ । क्रिया में पुरुष व्यापार की अपेक्षा है किन्तु ज्ञान में पुरुष सकल्प तत्त्व का स्थान नहीं है^९ । आचार्य शाङ्कर ने स्वोक्त क्रिया है कि प्रमाणों से भी ज्ञान प्राप्त होता है । ये प्रमाणों के वस्तु के यथावत् स्वरूप का ग्राहक मानते हैं^{१०} । ज्ञान

४ तत्राकारान्मिद्याद्वरणनिवृत्तिरिति । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।१।१४।

५ स व्यापारवामिव प्राग भ्रान्तमनाविज्ञानान् सत्यबोधपक्षे । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।१।१४।
प्राग ब्रह्म मत्प्रतिबोधेन पश्यन् सर्वो लौकिको धृत्किश्च व्यवहारः ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।४।

६ अज्ञानपाथो मोक्षगतस्य मानस बाधिक बाधिक वा कायमपेक्षतः । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।४।

७ तथा विकारत्वे च तयो पक्षमोक्षस्य भवन्नित्यत्वात् । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।४।

८ नापिमस्त्राणो माद्यः । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।४।

९ तन्मात्रज्ञानमिव क्रियागोचरमानस्वात्मनप्रवरा इत् तदपश्यन् ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।४।

१० निचा हि ज्ञानस्य यत्र वस्तुवस्वरूपनिरपेक्षत्वं चोद्यते, पुरुषचित्तं व्यापारगोचराच्च ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।४।

११ ज्ञानं तु प्रमाणं तत्र प्रमाणं च यथाभूतवस्तुविषयम् । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।४।

मानसिक है। वस्तु ध्यान और ज्ञान में अंतर है। जिस प्रकार अग्नि का अग्नि व विधि है और निया वस्तु प्रत्यक्ष है, उसी प्रकार ज्ञान में विधि या निया का अभाव नहीं वरन स्वयं सिद्ध सत्य है। इस ज्ञान-रूप में ग्रहण या त्याग कुछ नहीं होता क्योंकि कर्तव्य और कर्म से उसका सम्बन्ध नहीं है। ज्ञान ब्रह्म और मोक्ष वस्तुतः एक ही सत्य व विभिन्न नाम हैं। अज्ञान ही ब्रह्म है या मोक्ष ही ब्रह्म है या ब्रह्म ही ज्ञान या मोक्ष है य शब्द या वाक्य एक दूसरे के पर्याय हैं। ज्ञान साधन ब्रह्म साध्य और मोक्ष उसका फल व वस्तुतः एक ही सत्य के रूप हैं। वयं वेदित और वन्ता भूः ब्रह्म ज्ञान में नही है^{१२}। अद्वैत ज्ञान का लक्ष्य है द्वैत ज्ञान का निराकरण^{१३}।

द्वैत ज्ञान इन रूपों में उपलब्ध होता है —

१ जड़ और चेतन में भूः है। इसमें अनात्मा में आत्मा का अभाव होता है। अज्ञान के कारण परीर को आत्मा समझने की प्रेरणा मिलती है।

२ जीव और ब्रह्म में भूः है। इसमें जागृतिक व्यवहारों की अनेकरूपता में ज्ञान की प्रतीति होती है। प्रत्यक्ष जीव स्वतन्त्रता में ग्रहण होता है और अपरोक्ष ब्रह्म का ज्ञान नहीं होता। विषयो-मुख द्विद्रव्यों ब्रह्म को विषय नहीं करती।

३ आत्मा में ही कत त्व भाक्त्य है।

४ जगत ब्रह्म से विलक्षण है।

अद्वैत ज्ञान इन भूः का निराकरण करता है। इसमें चेतन और आत्मा पारमार्थिक है। जड़ता अविद्या काय है। आत्मा ब्रह्म रूप में चेतन और पारमार्थिक है। जड़ता प्रपञ्च काय है। जड़ता ही मोक्ष का प्रतिबन्ध है। जड़ता पारमार्थिक सत्य है। जड़ और चेतन के आधार पर ज्ञान के मिथ्या और सम्पूर्ण भूः किये गए हैं^{१४}। आचार्य गङ्गुल का मत है कि काय प्रपञ्च में विविध विविध आत्मा नैव नही है। अविद्यात्मक प्रपञ्च का विनाश द्वारा वापस हो जाने पर एकरस अद्वितीय आत्मा ही परम सत्य है^{१५}। इस द्वैत ज्ञान में आत्मा अनात्मा का अभाव कहा जायगा। यः अज्ञान मिथ्या ज्ञान का अण

१२ आत्म ज्ञान ज्ञानाशेषान्नाय वा न भवति । अणुसूत्र भाष्य । १।१।४।

१३ अज्ञानमवेनाविषयत्वा प्रतिपाद्यं विद्याकृपिन वेद्य वेत्ति त्रेत्यात्मन्यपनयति ।

अणुसूत्र भाष्य । १।१।४।

१४ स्वयंभूतवशात्तौ । अणुसूत्रभाष्य । अणुसूत्र भाष्य । १।१।४।

१५ अविद्यात्त एवप्रपञ्च विद्या प्रविद्यापयन्तमद्वैकभावानुभूतमात्मज्ञानपरमसिद्धि ।

अणुसूत्र भाष्य । १।१।४।

है। इस सिद्धांत के अनुसार मिथ्या ज्ञान भी जान ही बना जाएगा। वस्तुतः भ्रान्त ज्ञान किसी अभाव को सूचित नहीं करता, यद्यपि ज्ञान में शरीर मन आदि आदि का समग्र या अध्यास होने से सम्बन्ध [ज्ञान में प्रवृत्तता रहती है। प्रवृत्तता के निराकरण से स्वयं सिद्ध ज्ञान की उपलब्धि होती है क्योंकि आत्मा नित्य प्राप्त है।

आत्मा का शरीर में अध्यास होने से मैं मरा व्यवहार होता है। भ्रान्त ज्ञान वस्तुतः सत्य और भ्रान्त का मिथुनीकरण है। अध्यास स्मतिरूप कहा गया है। पूर्व में देने या मुने हुए रूप या पन्थ का आभास स्मति है^{१६}। योग दर्शन के अनुसार अनुभूत विषयो की बुद्धि उत्पन्न होना स्मति कहा गया है^{१७}। यहाँ आचार्य शाङ्कर की और योग सूत्रों की परिभाषाओं में साम्य प्रतीत होता है। यह स्मति आचार्य शाङ्कर के लिए अध्यास रूप है। याग के अनुसार स्मति एक वृत्ति है और आचार्य शाङ्कर के अनुसार उपाधि। उपाधि निवृत्ति होने पर चित्त का समाधान होता है और वृत्ति के निरोध होने से योग। योग का लक्ष्य है समाधि और आचार्य शाङ्कर के अनुसार आत्मा ही समाधि है। इस प्रकार दोना की साधना में साम्य है। दोना ही मोक्ष के लिए ज्ञान की परमोत्कृष्टता स्वीकार करते हैं। दोना ही ज्ञान के लिए शरीर की आवश्यकता नहीं मानते^{१८}।

आचार्य शाङ्कर के अनुसार जीवात्मा सत्यस्वरूप आत्मा के साथ एक होकर ब्रह्मरूप हो जाती है। वाय कारण अभेद होने से ब्रह्म प्रपञ्च से अभिन्न माना जाएगा^{१९}। इस प्रकार भ्रान्त भी ब्रह्मरूप अथवा ज्ञान रूप है^{२०}। कारण से वाय का अभेद होने से ज्ञान भ्रान्त दो हो नहीं सकते। यहाँ भ्रान्त वाय वादिक कहा जाएगा और व्यवहार के उच्छेद होने पर स्वयं प्रकाश नित्य ज्ञान अवशिष्ट रहगा। व्यवहार दण्ड में भविष्य का फल प्रय और विद्या का श्रेय

१६ स्मतिरूप परम पूर्वव्यासभाष्य । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।१।

१७ अनुभूतविषयात्मप्रमोष स्मति । योग सूत्र । १।

१८ यागसूत्रों में विदेह मुक्ति बदा गर्ह है।

योगसूत्र । १।४२।

समाधि आत्मा । गीता भाष्य । २।१३।

१९ सत्मात् च प्र चपरिणान स्यात्मानमपत्तेनिष्प्रपञ्चमज्ञात्कवम् प्रपञ्चस्य ब्रह्मप्रभवत्वात् कायकारणानन्यथावायेन ब्रह्मायनिरिक यवजातीयक । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।१।६।

२० विद्यापिब श्रेय प्रेय तु अविद्यावाप्यम् । श्रेय माद्य रवरूप और प्रेय भोग रूप है।

गीता भाष्य । १।३।१।

कहा गया है^{२१} । तब प्रश्न यह है कि अविद्यात्मक व्यवहार व आत्मा के साथ नित्य होने से मोक्ष विधान कस मिद्ध होगा । आचार्य गङ्गुल का मत है कि मूलतः आत्मा में आकाश की मनीनता के समान अज्ञान की स्थिति है । इस अविद्यात्मक दशा में वह साक्षरित्व प्राप्त हुआ-सा ही जाना है किन्तु वस्तुतः उस साक्षरित्व प्राप्त नहीं है^{२२} । जन्म मनुष्य बुद्धि द्वारा स्तम्भ का ज्ञान हो जाने पर भी स्तम्भ के घम मनुष्य में और मनुष्य के घम स्तम्भ में नहीं आ जात उसी प्रकार गरीर और चतन आत्मा की साधर्म्यता नहीं है^{२३} । आचार्य गङ्गुल यह नहीं कहते कि अविद्या समार और अज्ञान जन्म कोई भाव नही है । परन्तु ज्ञान ज्ञान में इनका अभाव होता है । मग्नपणा के जल से ऊपर भूमि पकयुक्त नहीं हो सकता । इसी प्रकार ज्ञान स्वरूप ब्रह्म सत्त्व एकरस है और उसमें अविद्याकृत द्वैत विकार लिप्त नहीं रह सकता^{२४} । अस्तु, यह कहा जा सकता है कि अविद्या के कारण ही ज्ञान अज्ञान का भेद है प्रथया परमाय में इस भेद के लिए भी स्थान नहीं है । ऐसी ज्ञान में ज्ञान और अज्ञान जाना ही कल्पित होंगे । तदुपरान्त परमाय में मन वाणी की अविषयता की भावता में उस परम सत्य ब्रह्म का निवचन नहीं होगा । आचार्य गङ्गुल ज्ञान की उस अवस्था के सम्बन्ध में कहते हैं कि अविद्युत और विज्ञान स्वप्न आत्मा में जातापन का उपचारमात्र है । जड़ अग्नि में उष्णता स्वाभाविक है । परन्तु फिर भी उसमें ज्वलन त्रिया का उपचार जाना है^{२५} । इस प्रकार व्यवहार में मोक्ष की अपेक्षा से बन्ध और मुक्ति की मायता है । परन्तु मोक्ष स्वरूप परमाय में बन्ध का अभाव है । बन्ध के अभाव में मोक्ष स्वप्न स्वात्मभूत रह जायेगा । उस स्थिति का निवचन 'यावद्वहारिक या अविद्यात्मक ही होगा^{२६} । अतः पूर्वापर बन्ध मोक्ष या ज्ञान अज्ञान में

२१ गीता भाष्य । १३।१।

२२ अविद्याकृतप्राप्तिरिति समारित्वम इव भवति । गीता भाष्य । १३ । १ ।

२३ यथा ग्याणी पुष्पनिश्चयो न च प्लावण पुष्पधनं स्थाना भवति ग्यापुष्पानां वा पुष्पस्य तथा न चैतन्मूर्तिं ददस्य दन्धमौ वा चतनस्य । गीता भाष्य । १३ । १ ।

२४ भराच्यममा उपरज्जो न पश्रीत्रियडं समारमसारिणो अविद्याकल्पितवापपणा प्रत्युक्तं । गीता भाष्य । १३ । १ ।

२५ विज्ञानस्वरूपस्य एव अविद्यवस्य विज्ञानरूपेण चागतं । यथा उष्णतानायेय अग्ने तपि त्रिणोपचर तन्त । गीता भाष्य । १३ । १ ।

२६ किं च बन्धमुत्पादयते पौवानधनिरूपणान् बन्धावमा पृथक् प्रकृत्या अनादिनी अनवती च तथा च प्रनापविद्ध तथा मादावतया अतिमन् अनन्ता च प्रनापविद्धा ।

वस्तुतः कोई प्रगति निश्चिन्ता नहीं किया जा सकता। इस ज्ञान में न स्थिति है और न गति ही। यदि स्थिति होगी तो मोक्ष या बंध की स्थिति नित्य ही जाएगी। इस प्रकार की नित्यता मोक्ष और बंध की नित्य ही बना देगी या अनित्यता में परिणत हो जाएगी। ऐसी दशा में यमहार और मोक्ष दोनों ही समभव हो जाएंगे। अतः गति और स्थिति की प्रमादलता का ज्ञान निश्चिन्त नहीं किया जा सकता^{१९}। व्यवहार में अज्ञान और ज्ञान की स्वीकृति है परमाद्य में नहीं।

ज्ञान का ज्ञान शरीर और ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। शरीर और ज्ञान दोनों ही अविद्यात्मक हैं। इनसे उत्पन्न द्वन्द्व है देहात्मभाव का प्ररणा दन है। शरीर वस्तुतः ज्ञान स्वरूप है और ज्ञान घटना शरीर से होती है। आचार्य साङ्ख्य के अनुसार आत्मा का शरीर के साथ सम्बन्ध नहीं है। शरीर ही आत्मा है ज्ञाने मिथ्याभिमान कहा गया है। शरीर और आत्मा में कायकारण भाव या सम्बन्ध नहीं है। इस कायकारण सिद्धांत को अनात्मि भो न्ती कह सकते क्योंकि आत्मा का ज्ञान के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि कहा जाय कि आत्मा में स्वामी और सबक भाव होने से शरीर का कत त्व आत्मा को प्राप्त होता है तो यह बयन भी विरुद्ध है। आचार्य साङ्ख्य इस भाव को मिथ्याभिमान का कारण उत्पन्न हुआ मानता है। शरीर में मैं मरा अनुभूति निरप मिथ्यत्न बुद्धि है। यह शरीरात्म बुद्धि आत्मा अनात्मा के विवेक न होने से उत्पन्न होती है। जैसे यह स्यागु है या पुष्ट अथवा यह रजत है या शुक्ति। यहाँ इस प्रकार का सदा आत्मा के सम्बन्ध में नहीं हो सकता। यह द्वन्द्व ज्ञान ठीक तभी तक है जब तक वस्तु का यथाथ ज्ञान नहीं हो जाता^{२०}।

तब प्रश्न यह होगा कि यदि शरीर और ज्ञान का सम्बन्ध आत्मा से नहीं है तो मोक्ष फल सिद्ध होगा। आचार्य साङ्ख्य के अनुसार मोक्ष में शरीर की आवश्यकता नहीं है और न शरीरत्व मोक्ष में बाधक है क्योंकि जीवित शरीर का साथ भी अशरीरत्व प्राप्त होता है। अतः मरणोपरांत ही अशरीरत्व होना सिद्ध नहीं है। ज्ञान ज्ञान की अनुभूति में अशरीरत्व माना गया है। जस

२७ जगभाधिवैच निनिमित्तवे न स्वत आभावात् न अपरमाद्यत्वप्रमगः ।

गीता भाष्य १३।२।

२० ज्ञानमा शरीरायमिमानन्वच्छेत् निश्चाद्यन मुक्त्वा यत् शरीरत्वं शब्द कल्पयित्वा त्रियात्मगवाया भावात्मात्मान कत्वात्पुष्यते न वा मनो धन दान्निबन्धनीरान्नि स्वग्वानि सम्बन्ध निमित्त विविदन्ध कल्पयित्वा । निश्चाभि मानस्तु प्रत्यक्ष सम्बन्धतु । अज्ञानमा १३।२।४।

काई पुरुष कुण्डल रहित होने पर कुण्डल पहन लेने क सुख का अभिमान नहीं करता है। इसी प्रकार देहाभिमान त्याग देने पर देह का व्यवधान नष्ट होता^{२६}। जस किसी गृहस्थ मे अपने धन का अभिमान होता है और धन क चोरी जाने पर वह दुःखी होता है। परन्तु यदि वह गृह त्याग और साधना ही तो उस धनापहरण मे उम दुःख नही होता। द्यान्वय उपनिषत् क अनुसार भा गरास्त्वभिमान छाड दन मे गरीर की अनुभूति नही होती^{२७}। यही नही गरास्त्व स हा समस्त साधन होते हो यह भी नियम नही है। ज्ञान की साधना मे अगरीरत्व की अपेक्षा है। आचार्य शङ्कर क अनुसार स्वप्न मे गरीर का प्रिया नही होनी परन्तु फिर भी वहाँ चलन, धावन स्नान, हास्य प्रापार प्रयत्न होता ह। ऐस ही अगरीरत्व मे ज्ञान की अनुभूति होती है। शीपक के प्रकाश स अघकार मे रखी हुई वस्तु की उपलब्धि होनी अवश्य ह परन्तु शीपक और उपलब्धि मे साध्य नही कहा जा सकता। इसी प्रकार ज्ञान मे गरीर की उपयोगिता हो सकती है परन्तु आत्मा और देह धम मे सधमता नही है। अस्तु गरीर की नितात अपेक्षा ज्ञान की उपलब्धि मे नही है। आचार्य शङ्कर ने इसके लिए स्वप्न की चेष्टा रहित स्थित मे भी उपलब्धि का उदाहरण दिया है^{२८}। ज्ञान साधना मे ज्ञान की साधना है। आचार्य शङ्कर क अनुसार आत्मा उपलब्धि स्वरूप ही है। यह उपलब्धि नित्य है^{२९}।

गरीर रहित ज्ञान दत्ता मे मुक्त साधन का प्रकार क है जीवमुक्त और विदेह मुक्त^{३०}। दैहिक प्रयत्न की प्रतीति होने हुए भी ब्रह्म स्वरूप मे स्थिति जीवमुक्त दत्ता कहताती है। जीवमुक्त के लिए अविद्या की आवरण गति

२६ न च कुण्डलिन कुण्डलित्वाभिमाननिमित्तं सुखं दृष्टमिति तस्यैव कुण्डलधनुस्तस्य कुण्डलित्वाभिमान रहितस्य तस्यैव कुण्डलित्वाभिमाननिमित्तं सुखं भवति ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।४।

२७ अगरीरं वा न सन्न न प्रियाप्रियं स्वगतं । द्यान्वय उपनिषत् । ७।१२।१।

मिथ्याप्रयत्नमित्तं वा न सरागरत्वस्य सिद्धं शीवोऽपि विदुषोऽगरीरत्वम् ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।४।

३१ पञ्च सति देह उपलब्धिभवति, अमति च न भवति न तद्वधमोभवितुमर्हति । उपकरण वमादेयापि प्रतीतिवत् तपोपयोगोपपत्तौ न चाऽयत्नं देहव्योपनानुपपत्त्याऽपि हरत्ये निरचष्टेऽग्निमे देहे म्वन्ने नानाविधोपलब्धिदानानां । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।३।५।४।

३२ उपलब्धि स्वरूप एव च न आत्मा । ब्रह्मसूत्र भाष्य । ३।३।५।४।

नित्यस्य चपलस्यै प्रकल्पमानं । ब्रह्मसूत्र भाष्य । ३।३।५।४।

३३ विचार चद्रोऽप्य । कला ११।४।

का ता पान से नाग हो जाता है परंतु प्रारम्भ के कारण दग्ध बीज के समान
विक्षय गमित रहती है। अतः उसको प्रपच की प्रतीति हाती है। यह प्रतीति
उसी प्रकार है जिस प्रकार सप रजु का पान हो जाने पर भी भय के सस्कार
रूप म कम्प और रोमाच हाते रहते हैं। जमे कुम्भकार दग्ध ग चक्र को
चक्रा कर छोड़ देना है परंतु चक्र वेग से चलता रहना है इसी प्रकार
जीवमुक्त के प्रारम्भ कर्मों के सस्कार प्रवर्तित होते हैं। इसे ही बाधितानुवृत्ति
भी कहते हैं^{३४}। विदेहमुक्ति म प्रपच की प्रतीति नहीं होती। इसम प्रारम्भ
कर्मों का नाग हो जाता है। इसम स्थूल सूक्ष्म शरीर गुद्ध चतन म लीन हो
जाते हैं। ये शरीर अनान क परिणाम स प्राप्त हाते हैं। अनान का नाग
होने से यह विदेहमुक्त जानस्वल्प ब्रह्म ही हो जाता है^{३५}।

आचार्य शाङ्कर के अनुसार आत्मा का त्रिया स कोई सम्बन्ध नहीं है।
त्रिया विकार है और जो उसके ससग म रहता है उसको भी विवृत्त करता
है। यदि आत्मा मे त्रिया की स्वीकृति होगी तो वह अनित्य हो जाएगा^{३६}।
अब कम फल भोक्ता का प्रश्न आता है। आचार्य शाङ्कर के अनुसार चिकित्सा
स शरीर के स्वस्थ होने पर आत्मा म में आरोग्य है ऐसी बुद्धि उत्पन्न होती
है। इस आरोग्यता का अनुभव करने वाला और उसम अभिमान रखने वाला
आत्मा में मरा इस बुद्धि रूप म भोक्ता होता है। वही कमफल करके फल
भोगी होता है। परंतु विकारबुद्धि से रहित होकर वह जानस्वल्प आत्मा
होता है^{३७}। मोक्ष ब्रह्म का स्वरूपभूत है। नित्यता उसकी विशेषता है। अन
त्रिया और फल से उसका ससग नहीं है^{३८}। आचार्य शाङ्कर के अनुसार ब्रह्म
सूत्रा म जिस ब्रह्म की जिज्ञासा की गई है वह मोक्ष ही है। वह मोक्ष को कम
फल से विलक्षण मानते हैं। ब्रह्म कमफल से भिन्न है, अतः वही मोक्ष है^{३९}।

आचार्य शाङ्कर का मत है कि मिथ्या ज्ञान आत्मा और ब्रह्म के एकत्व

३४ विचार चद्रोप्य। १४।

३५ विचार चद्रोप्य। १४।

३६ दणामा त्रियया वित्रियेतानि कत्वमा क्त प्रमयेन। ब्रह्मसूत्र भाष्य। १। १। ४।

३७ तेनैव क्कचक्री अहप्रययविपयेण प्रयथिना सर्वा त्रिया निवत्यन्ते तत्फल च स
पवाशनाति। ब्रह्मसूत्र भाष्य। १। १। ४।

३८ निय शुद्ध ब्रह्म स्वरूपत्वा मोक्षस्य। ब्रह्मसूत्र भाष्य। १। १। ४।

३९ सत्तेन शरीरैव मोक्षत्वात् अतन्त ब्रह्म यस्मैय जिज्ञासा प्रवृत्त।

ज्ञान न हान से हाना है' । यह मिथ्या ज्ञान शरीर के अन्दर उसके फल द्वारा निष्पन्न होता है । इससे जीव और ब्रह्म का भेद प्रसक्त होता है । जब और ब्रह्म में अभेद दान ही अद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपाद्य है । अभेद ज्ञान का अवगति करने में सूचित किया जाता है । इस एतत्त्व ज्ञान के द्वारा ही जीव जगत् और ब्रह्म का एक रूप में दर्शाया गया है । ज्ञान-साधना का चरम अनुभूति यह एतत्त्व ही है । आचार्य शङ्कर के अनुसार इस एतत्त्व ज्ञान के उपरांत जानने के लिए कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहता^{४०} ।

जब ब्रह्म की एकता के लिए आचार्य शङ्कर ध्यायोग्य उपनिषद् का तत्त्वमसि वाक्य प्रमाण मानते हैं । इस ऐक्य की अनुभूति के लिए बह्मरूपक उपनिषद् का 'अहं ब्रह्मास्मि' वाक्य भी प्रमाण है । तत्त्व ब्रह्म का वाचक है । 'तत्त्वदं म ब्रह्म के' 'दाणवन्ता सम्बन्ध का बोध होता है'^{४१} । यह पद अनुमात्रात्मक है^{४२} । तब पद प्रत्यगात्मा और चतय को उक्त करता है^{४३} । शरीर धर्मों का भाग्य पद वाचक है । ज्ञान स्वतः चतय स्वरूप है । देहानि से इस चतय का कोई सम्बन्ध नहीं है । अतः यह चतय अतीन्द्रिय ज्ञान का स्वरूप है क्योंकि सुषुप्ति में शरीरता की निवृत्तता में भी चतय का अनुभव होता है । अतः ज्ञान में जड़ता नहीं है । ज्ञान में जड़ बुद्धि से सम्बन्ध अविद्या या अज्ञानात्मक नहीं है । आचार्य शङ्कर के अनुसार यह दुःख बना रहित चतय का अनुभव उल्लेख की पराकाष्ठा है^{४४} । तब और तब पद का अभेद प्रतिपादन आचार्य शङ्कर का लक्ष्य है । भेद द्वैत अध्यात्म रूप और अविद्यात्मक है । तब पद में ब्रह्म और तब से जीव का कथन है । आचार्य शङ्कर के अनुसार इन दोनों का उद्देश्य है जीव से सत्सारित्व का निरसन करना और जीव को ब्रह्म में प्रतिष्ठित करना^{४५} । इस ज्ञान स्वरूप ऐक्य के अधिगम से सत्सार और उसके धर्मों का निराकरण होता है ।

४० निष्कामानापायस्य ब्रह्मैवैकबिज्ञानात्मकत्वम् । ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।४।

४१ अपि चाऽन्वयिन् प्रनाशमात्मैकव्ययप्रतिपादकं नाऽन्य परकिञ्चिदाच्ययन्ति ।

—ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।१४।

४२ तत्त्वमसि च प्रकृतं सत् ब्रह्मैवैतन्न जगत्प्रतिशरणनिर्भीषणम् । ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।१०

४३ सर्वमज्ञानं धनकोऽनुभवमज्ञानको ब्रह्मसमकल्पनायाः । ब्रह्मसूत्रभाष्य १।१।११।

४४ (अनपेक्षार्थं) अपि प्रदद्यात्तानां शोभुः दद्यात्तान्मय प्रदद्यात्तानां समाख्यानान्तरैकव्ययनत्वनन्वयधारेण । ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।१२।

४५ सद्यः सविनिशुक्तकवेन्यामकोऽहमिदमेव आत्मानुभवः । न चैकान्यानुभवतः किञ्चिन्वयनं कथं शिष्यतः । ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।१३।

४६ सत्सारित्वं सत्सारिवाद्यन्तरवर्गानां प्रत्ययान्तरव्यतिरिक्तिः । ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।१३।

जीव म वापहारिकता गही रहता और यह स्वतः परमायस्वरूप ही जाता है। ऐस्य ज्ञान म वन य और कर्मों का विध्वंस हो जाता है। आचार्य शाङ्कर क अनुसार यह ब्रह्मात्मन्य ज्ञान वेगतिषा का भूषण है^{४८}। भद्रत दत्त द्वा द्वय प्रकार भद्र विधूनन करके अभेद की प्रतिष्ठा करता है। भेद का प्रभाव परमाय म है अथवा भेद की अपेक्षा स अभेद जात होता है। इस प्रकार अभेद के लिए भेद का महत्व है।

इस प्रकार आचार्य शाङ्कर ज्ञानस्वरूप चतय धात्मा का जड पञ्च तरवा से पञ्च मानते हैं। जड म चतय बुद्धि ज्ञान है। चार्वाक आदि जडवाग आत्मा की पक्षी जत तज और वायु क प्रतिरिक्त बुद्ध नटा मानत हैं। वे आवाग की सूक्ष्म धमता को स्वीकार नही करत। इन चार भूता क संयोग स आचार्य शाङ्कर चतय की निष्पत्ति नही मानत। उनक अनुसार चतय भूतात्मक है एसा मानन पर विषय और विषयित्त का विराध होगा। एसी दत्ता म या तो विषय की ही स्थिति होगी या विषयित्त की। परन्तु विषय का विषयी होना आवश्यक है। जैसे अग्नि स्वय का नटा जलाती, कुत्त नट स्वय अपने कधा पर गही चड सजता। इसी प्रकार क्रिया का अपने म ही विराध नही हो सवता। ऐम ही भूत स्वय चतय की निष्पत्ति नही कर सकत^{४९}। यदि चतय भूत भौतिका का धम होगा ता भूत और भौतिक स्वय उस चतय से विषय नही किए जा सजने। अत चतय जडता से पृषक है। स्मृति चतय की उपनिध हो सकती है क्यकि वही साक्षी रूप म ब्रह्म है। भौतिक पन्थ प्रतिक्षण परिवतनीय है किन्तु यह चतयस्वरूप ज्ञान इस क्षणिकता म स्थिर रहता है। इस प्रकार ज्ञान और नय भाव की प्रसक्ति होनी है। परन्तु फिर भी ज्ञान और ज्ञेय भेद अविद्यात्मक है क्यकि ज्ञय स्वतः ज्ञानस्वरूप ही है^{४६}। अत ज्ञान नित्य है।

पारमार्थिक ज्ञान का स्वरूप मन वाणी का विषय नही है। द्रव्य का निरसन हो जाने पर भद्रत की स्थिति क्या होती है? आचार्य शाङ्कर इसका त्रिदशम्य ग होने के कारण अनिवचनीय कहते हैं। उनके अनुसार

४७ अत्रकारा क्षयमारमाक यत् ब्रह्मा मावगौ स या सकलव्यथा क्षान्ति एतद्व्यथा चति।

ब्रह्मसूत्र भाष्य

४८ नग्निरप्य सन रसात्मान ऋति नदि नः शिञ्जित सन स्वस्वधमधिरोह्यति नड भूतभौतिक धर्मेष सत्ता चैतन्यन भूतभौतिकानि विषयीत्रियरन्।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । ३। ३। ४।

४९ तियः चोपलने षकरूप्यात् रनृयाद्युपपत्तेरव। ब्रह्मसूत्र भाष्य । ३। ३। ४।

बह्मरूपक उपनिषद् का नति नति परब्रह्म का निषेध नहीं करता । ब्रह्म सद्रूप है ज्ञान रूप नहीं है ऐसा नहीं कहा जा सकता । 'सो प्रकार ब्रह्म ज्ञान रूप है सद्रूप नहीं है यह भी नहीं कह सकते । ब्रह्म की उभयरूपता स्वीकार करने से भी विरोध होगा^{५१} । सत्ता और ज्ञान का अभिन्नता नाव लन से भी सद्रूपता ज्ञानरूपता या उभयरूपता निविषयक होगा । आचार्य गङ्कर प्रपञ्च विलय द्वारा निराकार ब्रह्म की प्रतिष्ठा का भी समीचीन नही मानते । उनके अनुसार उग्रामना विधान में अधिकृत प्रपञ्च विलयायक नही है^{५२} । अस्तु ब्रह्म का स्वरूप ऐसा ही है या ऐसा नहीं है, यह निश्चित नही कहा जा सकता । ऐसा अवस्था में नति नति पद से ब्रह्म के अनिश्चय का स्पष्ट होता है । यही ब्रह्म का प्रतिषेध होता हुआ प्रतीत होता है । किन्तु आचार्य गङ्कर के अनुसार ब्रह्म में मन-वाणी की अविषयता का अभाव प्रस्तावित नहीं होता^{५३} । ब्रह्म स्वरूप की यह अतीन्द्रियता ब्रह्म की प्रापञ्चितता का प्रतिपरमाण्विक प्रकट करती है । ब्रह्म प्रत्यगात्मक रूप है । यह प्रतिषेध प्रपञ्च का प्रतिषेध करके ब्रह्म का परिचय रक्ता है^{५४} । आचार्य गङ्कर के अनुसार ब्रह्म का प्रतिषेध इसलिए नहीं हो सकता कि वही समस्त कलनात्मा का मूल है^{५५} । अतः निरासा यह है कि यदि यह ब्रह्म नहीं है, तो क्या अन्य ब्रह्म है ? आचार्य गङ्कर के अनुसार विषय समूह के प्रतिषिद्ध हो जान पर अविषयब्रह्म का ज्ञान प्रस्तुत होता है । अतः यह ब्रह्म अन्य से अतिप्रतिषिद्ध है । इस प्रतिषेध का पदवसान अभाव में नही, ब्रह्म में है । यदि प्रतिषेध का पदवसान अभाव में होगा तो सत्य का सत्य निश्चित नही हो सकता । अतः ब्रह्म ही सत्य का सत्य है^{५६} । ब्रह्म ही माय कहा गया है ।

निगुण ब्रह्म में गति का विरोध है । निगुण विद्या में क्रिया का विरोध होने में माक्षम गति नहीं है । अतः मुक्त हुए पुरुष का पुनर्जन्म नहीं

- ५१ न च सत्त्वज्ञानमव ब्रह्म न दोष लक्षणमिति गङ्क बन्तुम् । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।२।२१।
- ५२ यत्प्रादुराकाशात्स्वित्वादि श्रुत्यै अन्वयित्वात्पुत्रेणानाकारप्रतिषेधया एव न प्रथमया इति तद्वि न सुनाचानमिव तद्वत् । ब्रह्मसूत्र भाष्य । ३।२।२१।
- ५३ वाच मनसा त्वचक्षुः श्रुत्यानामाभिप्रायैः शक्तिरायत । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।२।२२।
- ५४ ब्रह्मणो रूपप्रपञ्च प्रतिषेधनि परिशिष्टमिष्ट ब्रह्मैतदव्यपगतयत्न । ब्रह्मसूत्र भाष्य । ३।२।२२।
- ५५ प्रतिषेधेन न तु ब्रह्मणो सत्कलानमूलत्वान् । ब्रह्मसूत्र भाष्य । ३।२।२३।
- ५६ मनत्रय विज्ञानतत्त्व प्रतिषेधात्प्रथमं ब्रह्मणाना ब्रह्मेति । ब्रह्मसूत्र भाष्य । ३।२।२३।
- ५७ ब्रह्मवैश्वानरं प्रतिषेधेन सुनाचानमिति अभाववशमेतत्तु प्रतिषेध विस्तारस्य सत्यमित्युच्यते । ब्रह्मसूत्र भाष्य । ३।२।२२।

होता^{५०} । सगुण विद्या म भी आचार्य गान्धर्व सम्यक् ज्ञान का आश्रय स्वीकार करते हैं । सगुण विद्या द्वारा भी सम्यक् ज्ञान म पयवसायी होकर साधक का पुनजन्म नहीं होता^{५८} । मोक्ष म वस्तुतः फल नहीं है । धर्म की निवृत्ति ही मोक्षरूप फल है^{५६} । आचार्य गान्धर्व क भ्रमणार इग पृथ्वी त तृतीय दिव में ब्रह्मलोक है । उसम दा 'धर और व्य नामक दा समुद्राकार सरोवर हैं । वहीं धर्मत स्नानवाही अन्वत्य दृश है वहीं हिरण्यगर्भ की अमराजिता पुरी है । वही ब्रह्मपुरी है । वहा ब्रह्म निर्मित मुक्कणमय वस्त्र है । इम प्रकार के अयवान् ब्रह्मलोक के सम्बन्ध म प्रसक्त होने हैं । कमठ इम लोक को भोग कर वापस लौटत हैं पर तु जानी नहा लौटत^{५१} । इस प्रकार का बणन गका का कारण नहा है । स्वर्ग मोक्ष क सम्बन्ध म कविन बणन को अयवान् क रूप म उहनि ग्रहण किया है । मुक्त का ब्रह्म के साथ अविनाग रहना है^{५२} । आचार्य गान्धर्व का प्रतिपाद्य है अमद । अतः मुक्त का ब्रह्मरूपता अभेदस्वरूप है । तत्तिराय उपनिषत् म इसका ही स्वाराय प्राप्ति कहा गया है^{५३} ।

गति का सम्बन्ध केवल काय ब्रह्म म है । परब्रह्म म गति नहीं हा सकती क्याकि वह गमन करनेवाला का प्रत्यगात्मा है^{५४} । अतः मान्य की जानरूपता ब्रह्म क निगुण स्वरूप म अभ्युपगम रानी है । सगुण स्वरूप अविद्यात्मक हान क कारण गति जस विचार उसम अज्ञान है ।



५० तत्प्रयत्नवत् सि सगुणराजानानप्यनावृत्तिमिदमाल । ब्रह्मसूत्र भाष्य । ४।४।२२।

५८ अनावृत्ति शान्तात्नान्ति शान्तात् । ब्रह्मसूत्र । ४।४। २।

५६ फलत्वमिद्विरपिमाद्यस्य क धनिवृत्तिना । द्या । ब्रह्मसूत्र भाष्य । ४।४। १।

६० ब्रह्मसूत्र भाष्य । ४।४। २।

६१ परेणाऽऽरतना मुक्ताऽवनिष्टत । ब्रह्मसूत्र भाष्य । ४।४।४।

६२ आन्तानि स्वाराज्यात् । तत्तृतीय उपनिषत् । १।६।२।

६३ अस्य हि कायब्रह्मणोऽन्वयवमुपपद्यते प्रत्यावधाने न तु परस्मिन् ब्रह्मणि गन्तव्यत्वात् । गतिं वापरूपेणैव स गन्तव्यत्वं प्रयोगान्वायं गन्तव्यात् । ब्रह्मसूत्र भाष्य । ४।१।७।

दशम प्रकरण
**आचार्य शङ्कर के अनुसार श्रुति, युक्ति और
 अनुभव का महत्त्व**

आत्मज्ञान की उपलब्धि में श्रुति, युक्ति और अनुभव की अपेक्षा है। श्रुति ज्ञान का स्वतः प्रमाण है। इस अतिरिक्त आचार्य शङ्कर व्यक्ति अथवा तर्क के बौद्धिक पक्ष की भी अपेक्षा नहीं करते। अधिकारी भेद से साधन भद होना स्वाभाविक है। इस उक्त मायमों से ज्ञान प्राप्ति होती है। अनुभव तो साधन साध ही है। अनुभव ही ज्ञान को आत्मा में आसृष्ट करता है। यहाँ इन्हीं साधनों के महत्त्व का संक्षिप्त विवेचन किया गया है।

छा दोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि सत्य की जिज्ञासा करनी चाहिए^१। आचार्य शङ्कर इस जिज्ञासा के द्वारा सत्य के अनुसंधान का उद्देश्य रखते हैं। इस सत्य के प्रकाशन में श्रुति समर्थ है। श्रुति उनका अनुसार नसंगिक ज्ञान है। यह पुरुष काय नहीं है। अतः पौरुषपय नहीं है। सत्य के प्रमाण के लिए श्रुति सर्वश्रेष्ठ साधन है। आचार्य शङ्कर का कथन है कि श्रुति प्रदीप के समान सत्य का प्रकाशन करती है^२। श्रुति सत्य उदभाषित करके बड़ी अनुकम्पा करती है। शङ्कर इस अनुकम्पा को मातस्नेह रूप में मानते हैं^३। यह सत्यान्घाटन बड़े यत्न से होना है^४। इस यत्न में केवल आचार्य और शास्त्र ही सहायक हैं^५। शास्त्र केवल सहायक है उस सत्य का वारक नहीं। अतः शास्त्र को चापकमात्र कहा गया है^६। इस चापना-व्यापार में भी श्रुति पणार्थों के अयथाभाव का विरोध नहीं करती और न पणार्थों का अयथा करती है। श्रुति का उद्देश्य केवल यथाथ का प्रकाशन करना है।

१ सत्य त्वेन विनिश्चयितव्यम् । छान्दोग्य उपनिषद् । ७।१।६।

२ प्रतीपत्स्त्वैव विनिश्चयित । ब्रह्मसूत्र भाष्य । १।१।३।

३ श्रुतिरनुकम्पयात् मा वन । कटोपनिषद् । १।३।१४।

४ महान यत्न आरभ्य । ब्रह्मसूत्र भाष्य उपनिषद् भाष्य । १।४।६।

५ केवल शास्त्राचार्योपदेशान्मन । छान्दोग्य उपनिषद् भाष्य । ६।१।१।

६ शास्त्रादिरास्य न चापक इति । ब्रह्मसूत्र भाष्य उपनिषद् भाष्य । १।४।१।

केन उपनिषत् के वाक्य भाष्य में कहा गया है कि आगम और आचार्य से एकत्वभाव का अनुभव होता है । यही आगम का श्रुति का पर्याय है । इस प्रकार ज्ञान साधना में श्रुति का परम महत्त्व है ।

वेदांत दर्शन का श्रुति ज्ञान ही है । उसकी सूत्र परम्परा में उपनिषत् की ही ध्वनि प्रतिध्वनि है । सत्य के प्रकाश में श्रुति और स्मृतियाँ का हाँ आश्रय लिया गया है । न केवल आचार्य शाङ्कर अपने मन का पुष्टि के लिए श्रुति प्रमाण को स्वीकारते हैं वरन् सूत्रकार वात्स्यायन भी 'श्रुतश्च न तत्त्वाच्च जने अनन्त सूत्रा सं श्रुति च प्रति आग्रहं अनुग्रहं प्रकटं करतं है ।

ज्ञान साधना में तब श्रवण युक्ति का भी अधिक महत्त्व है । जगत् शिवा में शाङ्कर नागाजु न जिस बीड़ा से तब याजना में बम नहीं है । अन्तर इतना आवश्यक है कि नागाजु न जिस प्रकार अपनी कारिकायाँ में समस्त पदार्थों की उद्घाटन धारणा पर दृष्ट है आचार्य शाङ्कर उतने ही श्रुति सम्मत ग्रन्थ की प्रतिष्ठा करने में बनी है । आचार्य शाङ्कर का अभिमत है कि भद्रत ज्ञान तक से भी प्राप्त हो सकता है^७ । परन्तु तब का स्वरूप श्रुति का विरोधी नही होना चाहिए । बिना शास्त्रीय आधार के तब अस्थिर होते हैं^८ । कल्पना के आधार पर तब में स्थिरता नहीं आती क्योंकि कल्पना निरकुश है । आचार्य शाङ्कर के अनुसार कल्पना पर आधारित तर्कों के लिए अधिक प्रचण्ड बुद्धियाँ द्वारा कल्पित युक्तियाँ में कभी स्वायत्त नहीं जा सकता । ससार भर के समस्त तार्किक एकत्रित होकर एकमत स्थिर नही कर सकते । उस प्रकार एक का तब दूसरे के लिए तर्कभासमात्र हो सकता है । पुरष बुद्धि विलक्षण है और इस अस्थिरता से जो क 'यवहार उच्छिन्न होने को आगवा है' । ऐसी दशा में तब का महत्त्व श्रुति प्रतिष्ठित अवाभास का निणय करने में है^९ ।

तब द्वारा तथ्य ग्रहण करने में आचार्य शाङ्कर बड़े सचेष्ट है । व तब

७ आगमाचार्याः भानुभवप्रत्ययान्वयविषयत्वेन सगद्यदम् ।

धन उपनिषत् वाक्य भाष्य । २।१।

८ भद्रत किमानुमानेण प्रतिपत्तयमादि तर्केण पयत् आह—शक्यते तर्केणाप शानुम् । माण्डूक्य कारिका भाष्य । भद्रत प्रकरणे । १। २०-वध भाष्य ।

९ यस्मान्निरागमा पुरषात्प्रेक्षामानन्विधनास्तरका अप्रतिष्ठिता भवन्ति निरकुशत्वान् । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।१।११।

१० पुरषमनिद्वैरूप्यात् सक्तकाप्रतिष्ठा । च लोकयवहाराद्दृष्टप्रमगः ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।१।११

११ सन्दर्भानुसारण तर्केणव । ब्रह्मसूत्र भाष्य । । १।११।

अप्रतिष्ठा को तक का भ्रूषण मानते हैं। इस अप्रतिष्ठा का फल यह है कि उससे दुष्ट तक का निराकरण होता है और निदुष्टता का स्वीकार होता है^{१२}। तक की आवश्यकता सम्यक ज्ञान की उपलब्धि में सहायक है। परन्तु बिना गान्धाधार के मत में स्थिरता नहीं आ सकती। अतः सम्यक ज्ञान के लिए ही इसकी आवश्यकता है। मातृ ज्ञान एकस्य है और वास्तविक तर्कों द्वारा उसमें विविधता सिद्ध होने की आशा है। इसलिये तक श्रुति के निषेध में सहायक और सम्यक ज्ञान का प्रापक होना चाहिए। जल और वितण्डादि के लिए आचार्य गङ्गार के युक्ति क्षेत्र में कोई स्थान नहीं है।

ज्ञान केवल श्रुति और युक्ति से प्रतिपादित वाचिक मायता नहीं है। ब्रह्म की अनुभूति इस ज्ञान साधना का लक्ष्य है। साधना का अन्तिम चरण साध्य का अनुभव ही है। यह अनुभव अविद्या का निवारण करने वाला और मातृ का साधन है। अनुभव ब्रह्म विज्ञान का अन्तिम फल है^{१३}। ज्ञान-साधना का लक्ष्य है कम से निवृत्ति। इस निवृत्ति से ज्ञान का अनुभव रूप फल प्राप्त होता है^{१४}। ब्रह्मदेता के आरंभ कर्मों के क्षीण होने पर कवत्य का अनुभव कहा गया है^{१५}। ज्ञान का कम से विरोध है। कमफल का अनुभव तो इन्द्रियों से भी हो जाता है परन्तु ज्ञान के कमरूप न होने से भी उसका अनुभव होता है। आचार्य गङ्गार के अनुसार भी वह विद्यापत्र अनुभव से सिद्ध होता है और प्रत्यक्ष है। त्रिया के फल के लिए कालान्तर की आवश्यकता है^{१६}।

मह अनुभव ज्ञ से रहित होता है। इसमें आत्मा एकरस रहती है और ससार का उसमें कोई सम्बन्ध नहीं रहता। कम और उसका फल के विकल्प अनुभव में नहीं होता। आचार्य गङ्गार के अनुसार ज्ञानफल का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। 'तत्त्वमसि' रूप आत्मा का प्रतीति होने से आत्मा का ससारित्व

१२ अयमेव च त्वस्यैवकारो यन्प्रतिष्ठितव नाम । एवहि गान्धर्वपरिलोकोन निरवय
स्तत प्रतिष्ठोभोभवति । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।१।११।

१३ अनुभववाच्यमानं च ब्रह्मविज्ञानमविद्याया निवारक मातृज्ञानेन च दृष्टयन्त उपपद्यते ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।१।१४।

१४ अनुभवास्तेन तु ज्ञानफलम् । ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।२।३०।

१५ ब्रह्मविद्यां प्रारब्धमगजये क्व यन्ननुभवति । ब्रह्मसूत्र भाष्य । ३। ३०।

१६ अनुभवास्तेन च विद्याफलं न विद्याफलवत् कालान्तरमावी दम्बन्वचाम ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।४।१५।

पुप्त हो जाता है^{१७} । तैत्तिरीय उपनिषद् भाष्य^{१८} में अनुभूति की उच्चा का दिग्दान कराया गया है । साधारण उस आमात्य का अनुभव करता है । उच्छेदात्मक ससाररूप शून्य का प्रत्यक्ष अनुभूति आत्मरक्षण में है । उस महती कीर्ति पवत के गृष्ट भाग के समान ऊँची है । मैं उत्कृष्ट परिणतत्व हूँ मैं ही गानहार परब्रह्म हूँ मैं ही श्रुति और स्मृति में प्रसिद्ध विगुद, मूल में स्थित अमृत हूँ । इस प्रकार स्वरूप में अवस्थित आत्मा अनुभूति की परम दान का लाभ करता है^{१९} । इस अनुभूति का सर्वोत्कृष्ट रूप है आत्मा में ब्रह्मत्व का प्राप्ति करना । आचार्य शाङ्कर के अनुसार जिसको मैं ब्रह्म हूँ ऐसा अनुभव हा गया वह पढ़ने के समान ससारी नहीं रह जाता^{२०} ।

यह अनुभव ही विज्ञान प्राप्त से अभिहित किया गया है । आचार्य शाङ्कर के अनुसार अतःकरण में प्रत्यक्ष अनुभव करने का नाम विज्ञान है^{२१} । व ज्ञान को भी विशेष रूप से अनुभव करने को विज्ञान कहते हैं^{२२} । वे इसे निश्चयात्मिका बुद्धि मानते हैं^{२३} । विज्ञान को यथादि का हेतु कहा गया है^{२४} । इस प्रकार विज्ञान आत्मा के स्वरूप का निश्चय करने वाला सिद्ध होता है । अतः अनुभव से आत्मा का निश्चय मात्र होता है । इस निश्चय के उपरांत ज्ञान अथवा आत्मा की अवस्थिति में बुद्धि आदि द्वारा परायण अनुभव नहीं हा सकता क्योंकि वहाँ किसीके द्वारा कौन किसको देखे^{२५} । इस प्रकार उपनिषद् का वचन यथाथ होता है । यह विज्ञान ही महत्त्व है । इसके द्वारा ही सप्टयाणि काय होते हैं । आचार्य शाङ्कर के अनुसार महत्त्व ही बुद्धि के सम्पूर्ण विज्ञान का कारण है^{२६} । ज्ञानेश्वरी के अनुसार भी ज्ञान स भिन जो कुछ प्रपच है, उसी को विज्ञान कहा गया है^{२७} । यह बुद्धि ही

१७ प्रयच्छाश्रम चेत् पत्यन् 'तवममि' श्लेषमपार्याहमत्वप्रतिपत्तौ सत्या समार्याहमत्वप्रतिपत्तौ स याससावतिवव्यावृत्ते । मद्गमन भाष्य । १।४।१।

१८ तैत्तिरीय उपनिषद् भाष्य । १।१२ ।

१९ तैत्तिरीय उपनिषद् भाष्य । १।१२ ।

२० नाऽवगतमदा मभावंय यथापूव ससारित्व शस्य दशयितु । मद्गमन भाष्य । १।४।४।

२१ विज्ञान तु शारानो ज्ञानाना तथा एव स्वानुभवकरण । गीता भाष्य । ६।८।

२२ विज्ञान विशेषतः अनुभव । गीता भाष्य । ३।४।१।

२३ बुद्धिनिश्चयात्मिका विज्ञान । तैत्तिरीय उपनिषद् भाष्य । ४।१।

२४ विज्ञान पूर्वको णि यथाणि । तैत्तिरीय उपनिषद् भाष्य । ४।१।

२५ वन वम् पश्येत् । तैत्तिरीय उपनिषद् । ४।१।

२६ सबुद्धिविज्ञानाना 'य मद्गमन कारणम् । तैत्तिरीय उपनिषद् भाष्य । ४।२।

२७ ज्ञानेश्वरी । तैत्तिरीय उपनिषद् भाष्य । ४।१।

प्रत्यक्ष का निश्चय रूप में अनुभव करता है। अतः बुद्धि का विज्ञान मानन में कोई आशंका प्रतीत नहीं होती। तत्त्विकीय उपनिषद् में इस प्रकार मानस्य बोध के ऊपर विज्ञानमय काण का प्रतिष्ठा है। इससे सिद्ध होता है कि अनुभव ही विज्ञान है और यह विज्ञान ही निश्चयात्मिका बुद्धि का वाचक है। अनुभव ही आत्मा का निश्चय होता है। अतः अनुभव ही विज्ञान का स्रोत है। अतः अद्वैत सिद्धान्त में प्रतिष्ठित किया गया है। अनुभव ही प्रत्यक्षता कही गई है और यह प्रत्यक्षता बुद्धिप्रकाश है। अतः अनुभव बुद्धि का ही स्वरूप है जो आत्मा का ज्ञानमय स्वरूप का अवर्गित म दत्ता दत्ता है।



एकादश प्रकरण

आचार्य शङ्कर के अनुसार साधन चतुष्टय का स्वरूप और महत्त्व

यस प्रकरण में हम अद्वैत सिद्धान्त सम्बन्धित साधनों पर विचार करेंगे जिनसे आत्मज्ञान की उपलब्धि होती है। इस प्रबंध के पिछले प्रकरणों में हम ब्रह्म और आत्मा के स्वरूपों पर विचार कर चुके हैं और आचार्य शङ्कर के अनुसार ज्ञान का स्वरूप प्रकरण में यह निश्चय कर चुके हैं कि ब्रह्म अथवा आत्मा की उपलब्धि ज्ञान द्वारा होती है। इस प्रकरण में हम ज्ञान प्राप्ति के साधन साधन चतुष्टय पर विचार करेंगे एवं क्रमपूर्वक उन साधनों का अध्ययन सन्त काय में भी करेंगे।

बृहदारण्यक उपनिषद् में ज्ञान दात उपरत तितिक्षु और समाहित साधका का उल्लेख हुआ है। उक्त उपनिषद् में उक्त साधकों के द्वारा आत्मा का दर्शन करना कहा गया है^१। ब्रह्मसूत्रों में भी इन साधनों की ज्ञान प्राप्ति में आवश्यकता स्वीकार की गई है^२। आचार्य शङ्कर के अनुसार ज्ञान इत्यादि साधन जिनका विस्तृत विवेचन हम इस प्रकरण में करेंगे विद्या के अङ्ग है। ये साधन विद्या के अन्तर्गत साधन हैं और यन्त्रि नाम विद्या के बहिरंग साधन हैं^३। विवेक छूड़ामणि के अनुसार ये साधन चतुष्टय इस प्रकार हैं —

(१) विवेक ।

(२) वराग्य ।

१ तन्मादेव विद्वान्तो दात उपरनिमित्तित्वं समाहितो भूया मयेवाज्ञानं परयति ।

बृहदारण्यक उपनिषद् । ४।४।२३।

२ साधनेन स्वात्तमधि तु यद्विपरिगमया तेषामवरवकुण्डलवान् ।

मङ्गलम् । ३।४।२७।

३ तन्नाथेव विदिति विद्या सयोगात्तु तस्या नीतराणि यन्मानीनीति विवेकतज्यम् ।

मङ्गलम् भाष्य । १।४।२७।

(२) गमाणि पत्रक श्रयात् गम दम उपरति निनिता, धडा और समाधान ।

(४) मुमुक्षुत्व ।^४

इन उपर्युक्त साधनों का अरोगानुभूति क अनुसार नित्य परिचय यहाँ दिया जाएगा । सन्त काव्य म इनका विवचन करत समय इन साधना पर विस्तारपूर्वक विचार किया जाएगा ।

अरोगानुभूति के अनुसार आत्मा का स्वरूप नित्य है और दस्य जागतिर सत्ता अनित्य । इस प्रकार का नित्यानित्य निश्चय दृष्ट कर आत्मबन्धु का विवक होता है । 'अ निश्चय का हो निश्चयानित्य निश्चय कर्त्तु हैं' । ब्रह्म स तकर न्यावर पयन्त समस्त विषया में काक विद्या क समान वराग्य होना ही निमल वराग्य है^५ । वासनाघ्रा का त्याग गम है और बाह्य दृष्टिमा का राकना दम कहलाता है । विषया म विमुख हाना उपरति और सम्पूर्ण दुःखा का सन्त करना निश्चय है । गान्ध और प्राचाय क वाक्य म भक्ति का रखना श्रद्धा है और अपने वास्तविक लक्ष्य अथवा आत्मज्ञान म वित्त का एकाग्रता हाना समाधान है^६ ।

अरोगानुभूति क अनुसार मरी मसार-व्ययन म क्व मुक्ति हागा एसी दृष्ट बुद्धि का मुमुक्षा कहत हैं^७ ।

^४ सारतन्त्र उच्यते क्वचिदपि मरिचि ।

अनु सुखत्र सन्निधौ यन्नावे न तिष्ठति ॥ विवेक चूनामणि । १०॥

आगे निश्चयि यन्मुविवक परिगच्छते ।

अनुपत्त मोदिरात्तन्त्रम् ॥ विवक चूनामणि । १६॥

रागि पश्यन्तिमुमुक्षुविति शुभम् । विवक चूनामणि । ०॥

^५ निवना चरन्ति हि तत्र लक्ष्मणम् ।

अथ या निश्चर सन्निधौ यन्मुनि सुखे ॥ विवेक चूनामणि । १५॥

^६ ब्रह्मनिष्ठाकारान्तु वैराग्य विवदधतु ।

दरेव काक विष्णो वैराग्य तद्धि निन्दनम् ॥ अरोगानुभूति । १४॥

^७ अत्रैव यन्ना लोका गमयन्ति निश्चिन्त ।

निष्करो वाह्ये चीना दम इ चमिभाव ॥ अरोगानुभूति । १६॥

विरम्य परावृत्त परमोपरमिदम् ।

सदन सुख दुःखाना विनिष्ठा मा मुमा मत्रा ॥ अरोगानुभूति । १७॥

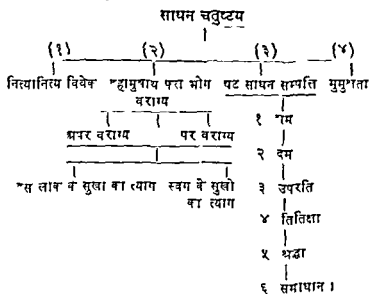
निगनाचाप वाक्पु मरिचि श्रद्धेति विश्रुता ।

विशेषाय तु मन्त्रेण मनागलनिधि रमन् ॥ अरोगानुभूति । १८॥

^८ समार बन्धनिस्तु क्व क्व न । रागका विमो ।

इति वा सुदृष्टा बुद्धिभन्ता सा मुमुक्षा ॥ अरोगानुभूति । १६॥

साधन चतुष्टय आत्मान प्राप्ति का साधन है। इन साधनों का महत्व इसलिये है कि ये नित्य शुद्ध, मुक्त स्वभाव शून्य स्वरूप में अध्यस्त विकारों का परिहार कर देते हैं। विकार परिहार हो जाने पर अवशिष्ट तत्त्व आत्मा की अनुभूति ही होती है। साधन चतुष्टय का महत्त्व हम निम्न प्रकार चित्रित कर सकते हैं —



इन सभी साधनों का विस्तारपूर्वक अध्ययन हम इस प्रबंध के अगले पृष्ठा पर सत काय का अनुशीलन करते हुए करेंगे।

चतुर्थ खण्ड

निर्गुण काव्य का साधना पक्ष और उस पर
शाङ्कर अद्वैत वेदान्त का प्रभाव

परिचय

प्रबन्ध में हम गान्धेयों में हम निम्नलिखित बातों में विचार करेंगे। साधना पत्र में हम शरीर के आध्यात्मिक साधना विचार करते हुए निम्नलिखित बातों में विचार करने का प्रयत्न करेंगे। इन बातों में विचार करने का प्रयत्न करेंगे।

उपरोक्त साधनों का निम्नलिखित बातों में विचार करेंगे —

- (१) ज्ञान का स्वरूप।
- (२) कर्म का स्वरूप।
- (३) उपासना और भक्ति का स्वरूप।

उपर्युक्त बातों में विचार करने के लिए निम्नलिखित बातों में विचार करेंगे —

- (१) सद्गुरु।
- (२) श्रुति यज्ञ और अनुभव।

साधन चतुष्टय वर्ग में अन्तर्गत साधन विचार करने का प्रयत्न करेंगे।

- (१) नित्यानित्य विचार
- (२) इन्द्रियार्थ फल भाग वराह
- (३) धर्म सम्पत्ति साधना —

१ श्रम।

२ धर्म।

उपरनि।

४ नितिन्या।

५ श्रद्धा।

६ समाधान।

(४) मुमुक्षुत्व।

निम्नलिखित बातों में उपरोक्त साधन सम्पत्ति का विचार प्रबन्ध का उपसंहार प्रस्तुत करेंगे।

पन्द्रहवाँ प्रकरण

निर्गुण काठ्य मे ब्रह्म का स्वरूप

'ब्रह्म का स्वरूप' नामक प्रकरण के प्रथम में आचार्य शङ्कर के अनुसार ब्रह्म का स्वरूप कहा गया है। ब्रह्मसूत्रों के प्रारम्भिक सूत्रों में भी ब्रह्म की स्वरूप स्था का निश्चय हुआ है तत्परचात् वाकारेण ब्रह्म न निमित्त आर उपादान कारणेण स्या का निर्देश दिया गया है। वहाँ हम यह चुक है कि घटिका बनाने वाला कुम्भकार विम प्रकार घण्टी का निमित्त कारण है उभी प्रकार मणि की रचना करने के कारण ब्रह्म ब्रह्म का निमित्त कारण है। विम प्रकार निष्टी म घण्टी का निर्माण होता है उभी प्रकार ब्रह्म के स्वरूप से ही मणि की रचना होती है। अतः ब्रह्म ही ब्रह्म का उपादान कारण भी है। इसी आधार पर हमने ब्रह्म के स्वरूप का निष्कर्ष करने हुए कारण ब्रह्म और कार्य ब्रह्म का सत्ताएँ मानी हैं। इसके साथ ही हम य भी चुक है कि कार्य और कारण में मवया अमर है। अतः कार्य और कारण में अज्ञानरूप आर व्यावहारिक है। वस्तुतः परमात्म-स्वरूप ब्रह्म में कइ अर नहीं है।

'ब्रह्म का स्वरूप' प्रकरण में ही हमने ब्रह्म में तीन स्वरूपों की प्रतिष्ठा की है। ये स्वरूप हैं—सत चित् और आनन्द। हम वहाँ पर यह भी कह चुक है कि ब्रह्म के ये स्वरूप उसी प्रकार नित्य हैं जिस प्रकार मूय और मूय का प्रकाश। ब्रह्ममूय भाव्य से हमने इस सम्बन्ध में यह दृष्टाव दिया है कि यदि मूय कभी प्रकाश देता और कभी न देता तो हम उसके प्रकाश को अनित्य कहते, किन्तु मूय स्वयं और नित्य प्रकाश है उसी प्रकार ब्रह्म में सत चित् और आनन्दस्वरूप नित्य प्रतिष्ठित हैं।

उक्त सतम में ही हमने जहाँ ब्रह्म स्वरूप में आकार की प्रतिष्ठा का प्रश्न उठाया है वहाँ कहा जा चुका है कि विद्या और अविद्या के विषय विभाग के आधार पर अमवा उपासना भेद के आधार पर ही ब्रह्म स्वरूप में साकार या

निराकार पक्षा का निश्चयन होता है। यस्तुत आचार्य शाङ्कर ने ब्रह्म का निराकार ही माना है।

पीछे हमने बताया है कि ब्रह्मगूना प्रपञ्चा उपनिषत् म भवतार का प्रसङ्ग नहीं है। गीता भाष्य के उपासना म आचार्य शाङ्कर ने 'अपने अज्ञान स देवकी के गभ से श्रीकृष्ण के प्रकट होने का उल्लेख किया है। अतः यहाँ निश्चय होता है कि शाङ्कर ने भवतार का विरोध नहीं किया। फिर भी भवतारी की मायता यहाँ प्रासङ्गिक ही कही जाएगी, क्योंकि अज्ञान आचार्य शाङ्कर के भाष्या म इस भावना का अभाव है।

ब्रह्म की सगुणता और निगुणता का प्रश्न उठाते हुए पीछे हमने शाङ्कर दगन के अतगत बताया है कि सगुणता वस्तुत आचार्य शाङ्कर का सत्य नहीं है। यद्यपि आचार्य शाङ्कर ने सगुणता का विरोध नहीं किया और कहा भी इस प्रकार की युक्ति प्रस्तुत नहीं की कि ब्रह्म सगुण होता ही नहीं। प्रत्युत आचार्य शाङ्कर ने यह कहा है कि सगुण ब्रह्म म ही समस्त व्यावहारिक और उपासना सम्बन्धी विषय निष्पन्न होते हैं। पुनश्च आचार्य शाङ्कर ने यह भी कहा है कि जो जिस गुण की उपासना करता है उपासक को तन्नुसार ही फल मिलत है। आचार्य शाङ्कर ने मन्द बुद्धि पुरुषों के लिए ब्रह्म की सगुणता स्वीकार की है। निगुण ब्रह्म से ही सृष्टि आदि की सम्भावना शाङ्कर दगन म निश्चय की गई है। विवत भावना की ओर भी इसी प्रसङ्ग म संकेत किया जा चुका है और निगुण एव निराकार स्वरूप की अकथनीयता का परिचय दिया जा चुका है।

पीछे क पृष्ठा म प्राय भाष्या के आधार पर शाङ्कर सिद्धांत का निरूपण हुआ है किन्तु भाष्या म प्रस्तुत की गई व्याख्याएँ बहुत विस्तृत हैं इसलिए स्वयं आचार्य शाङ्कर ने स्व अभिमत को अधिक सुस्पष्ट करने के लिए अनेक छोटे छोटे प्रश्नों की रचना की थी। इस दृष्टि से विवेक चूडामणि की उपयोगिता विशेष है। इसम सिद्धांत मूल रूप में कहा गया है किन्तु उसकी एक स्पष्ट और सुनिश्चित दिशा है जिसके आधार पर शाङ्कर मत का अध्ययन सुकर बनाया जा सकता है। इसी बात का ध्यान में रखकर यहाँ पुन विवेक चूडामणि के आधार पर ब्रह्म के स्वरूप का उल्लेख करते हुए अपने मूल विषय का विवेचन प्रारम्भ करेंगे।

विवेक चूडामणि में कहा गया है कि परब्रह्म सत अन्तिम गुण विज्ञानधन निमल अन्तिम त रहित अक्रिय और सत्य अज्ञान त इस स्वरूप

है^१ । ब्रह्म समस्त मायिक भदा से रहित है । नित्य सुख स्वरूप, कलारहित और प्रमाणादि का अविषय है । वह अस्त अन्वयक अनाम, अनायस्वरूप और स्वयंप्रकाश है^२ ।

ब्रह्म जाना नय और जान से शून्य है, अनन्त और निर्विकल्पक^३ । ब्रह्म स्वरूप अन्वयक चतय नाम है^४ । वह त्याग एवं ग्रहण के योग्य नहीं है और मन वाली द्वारा नहीं जाना जा सकता । वह अपनी स्थिति की सिद्धि के लिए किसी प्रमाण की अपेक्षा नहीं रखता । वह आदि अन्त से रहित पूरा और महान तत्त्वस्वरूप है^५ ।

ब्रह्म को जाति कुल, नाति और गात्र से परे बना गया है । वह नाम रूप गुण और दोष से रहित है । ब्रह्म दग, काल और वस्तु रूपता से भी भिन्न है^६ । वह प्रकृति से परे है और बाणी द्वारा उसके स्वरूप का बयन नहीं हो सकता । ब्रह्म निकारा से रहित है, अतः वह शुद्ध कहा गया है । ब्रह्म पतय से ही ससार से चतय का प्रकानि होती है । अतः ब्रह्म विन्धन है । ब्रह्म अनादि है^७ । ब्रह्म जगत के कल्पित रूप का भी आधार है । ब्रह्म स्वयं अपन से ही आधिन है । ब्रह्म मन और अस्त दाना से भिन्न है । वह निरवयव निरयम और अविषय से युक्त है^८ । ब्रह्म मन से विचार नहीं है—अम

- १ अतः पर ब्रह्म मन्दिना विमुक्त विमानन निरानन्दम् ।
प्रमाणात्मनि निमित्तय निरानन्दरूपम् । २३।
निरानन्दमात्रम् अतः नित्यं सुखं निर्विकल्पकम् ।
अरूपमनन्दमात्रमव्ययं तस्य विविक्तं स्वयम् । २०।

विवेकचूडामणि ।

- ३ शान्ति श्रेयसात् शून्यमनसो निर्विकल्पकम् ।
तन्नायकस्य चित्तस्य तत्त्व विबुधम् । २१।
४ अन्वयमनुपाय मनो विमानावरम् ।
अप्रमयमनायनं ब्रह्मरूपं मन्मत् ॥२४॥
५ आत्मीयो मुक्त्यायतनानामरूपपुण्यस्य रचितम् ।
दशकावधिपणिते चित्ते यद् ब्रह्म तन्मनि भाशयामि । २५।
६ यत्परमं अनायासं गात्रं विमलवाप्यस्य ।
शुद्धचरणानां सुखं अस्तं तत्तं मनि भाशयामि ॥२६॥
७ आनन्दोपनयनात्कामाद्यम् ।
रूपस्य च सत्सिद्धिर्ब्रह्मम् ॥
निष्कलं निरूपमानं द्विदम् ।
ब्रह्म तत्तं मनि भाशयामि ॥२७॥

विवेकचूडामणि ।

वद्धि परिणति अपक्षय, व्याधि और नाग । वह जगत की सत्त्वि और उसका नाग करता है^८ । ब्रह्म सत्ता में जाय ब्रह्म का भू और जगत ब्रह्म का भू नहीं हैं । ब्रह्म जगत रूप में दूध से दही जन्म के समान परिणाम नहीं है । ब्रह्म को उस जल राशि के समान कहा गया है जिसमें सहरे नहीं होता । ब्रह्म नित्य भुवन है । वह कभी बधन में नहीं पड़ता । ब्रह्म में व्यावहारिक विभागों का भी पूरण अभाव है^९ । ब्रह्म एक ही है परन्तु अनेकत्व का सत्त्व पदार्थों का कारण है । उसके अनिश्चित सत्त्व के पदार्थों का कार्य कारण भी नहीं है । किन्तु ब्रह्म स्वयं ही वाय और कारण भावा से रहित है^{१०} । ब्रह्म में किसी प्रकार का विकल्प नहीं है । उसका कभी नाग नहीं होता । ब्रह्म धर और अर भावा से भी रहित है । ब्रह्म का नित्य अव्यय धान स्वस्व और निर्णय कहा गया है^{११} । ब्रह्म सत् स्वरूप है, अतः ब्रह्म अभावस्वरूप नहीं है । वह सुषण के समान गुड है । जिस प्रकार एक ही सुषण राशि से अनेक नाम रूप वान आभूषणों का निर्माण होता है उसी प्रकार ब्रह्म में नाग विष सत्त्व पदार्थों की स्थिति है । किन्तु भ्रम वग मनुष्य उन आभूषणों को एक सुषण रूप में कह कर अनेक नाम और रूपा द्वारा अभिहित करता है । इसी प्रकार व्यवहार में भय वग ब्रह्म स्वरूप का ज्ञान न रह कर अनेक पदार्थों में नाम रूपा का आभास होता है^{१२} । ब्रह्म स्वरूप से पर और कुछ नहीं है । वह अच्युत प्रकृति से भी परे है । ब्रह्म एक रस और सबका अन्तरात्मा है । ब्रह्म अनन्त, अव्यय और सच्चिदानन्द स्वरूप है^{१३} ।

- ८ जमवद्धिपरिणयपक्षयसाधनानानविहीनमयम ।
विरवमध्यवन्धानकारणं जगत्तत्त्वमनि भावयात्मनि । २५६ ।
९ अस्तमेमनपान्नाद्यण निरुत्तरगताराशिनिरवचनम् ।
नित्यमुक्तमविभक्तमूर्तियत् ब्रह्म तत्त्वमनि भावयात्मनि । २६० ।
१० एकमेव सत्त्वेव कारणं कारणान्तरनिरामकारणम् ।
शानकारणविलक्षणं तस्य ब्रह्म तत्त्वमनि भावयात्मनि । २६१ ।

विश्वेश्वरामण्डल ।

- ११ निर्विकल्पकमनोपमं चरत्तत्त्वराशरत्रितक्षण परमम् ।
नियमय्यसुखं निरञ्जनं ब्रह्म तत्त्वमनि भावयात्मनि । २६२ ।
१२ यद्धिमानि सत्त्वेकधा अमान्तामरं रूपगुणविक्रिया मना ।
हेमवत्सत्यमि विषमं ब्रह्म तत्त्वमनि भावयात्मनि । २६३ ।
१३ यच्चकार्ययनपरं परापरं प्रयत्नकरममामलक्षणम् ।
सत्याचसुखमनन्तमयं ब्रह्म तत्त्वमनि भावयात्मनि । २६४ ।

विश्वेश्वरामण्डल ।

अब हम सत काय म ब्रह्म के स्वरूप का अध्ययन करेंगे । सबसे पहले हम ब्रह्म की कारण रूपता पर विचार करेंगे । इस सम्बन्ध मे हम सत काय म स्थित हैं कि ब्रह्म की सृष्टि कारण रूपता इस प्रकार है —

१ एक कुम्हार के समान ब्रह्म जगत का कारण है ।

२ ब्रह्म एक ऐन्द्रिजानिक के समान जगत का कारण है ।

ब्रह्म ही माया द्वारा एक मे अनक रूप हा गया है ।

४ ब्रह्म न जगत की सृष्टि तो की है किन्तु ब्रह्म की कारण रूपता प्रत्यक्ष नहीं है केवल जगत रूपी काय ही प्रत्यक्ष है ।

उपयुक्त वाता को ध्यान म रखकर हम सत काय म ब्रह्म स्वरूप का निरूपण करेंगे । सत कबीरदास मानते हैं कि जिस प्रकार कुम्हार पात्रा का निर्माण करता है उसी प्रकार ब्रह्म भी अपने ही स्वरूप से अनक प्रकार की सृष्टि करता है । अनकरूप सृष्टि करने पर ब्रह्म के स्वरूप म विषमता नहीं आती । सूय वा प्रतिबिम्ब सूय स पृथक् नहा हाता है ता भा प्रतिबिम्ब सूय वा रूप नहीं हाता । सूय के अस्तित्व स ही प्रतिबिम्ब का भी अस्तित्व रहता है । इसी प्रकार अनेकविध सृष्टि ब्रह्म का काय है । किन्तु ब्रह्म स्वतः काय से पृथक् है उसी प्रकार जिस प्रकार सूय प्रतिबिम्ब स पृथक् है । सृष्टि-काय ब्रह्म अधिष्ठान पर उसा प्रकार अधिष्ठित है जिस प्रकार मूय व अस्तित्व से ही प्रतिबिम्ब का अस्तित्व रहता है । सत कबीर ने उपयुक्त प्रकार से ब्रह्म को जगत का निमित्त और उपादान कारण स्वीकार किया है । सृष्टि वस्तुतः एक चित्र क समान है । यह चित्र रूपा सृष्टि ब्रह्म-कारण का काय ही है । परन्तु यह चित्र काय होने के कारण नाश और परिवर्तन को प्राप्त हाता है । इस चित्र का सूत्रधार ब्रह्म ही है जो एक नित्य सत्य है । इस प्रकार सन्त कबीर के ब्रह्म सम्बन्धी इन विचारा म विवत भावना का समावना है । विवत सिद्धांत के अनुमान ब्रह्म सत्य तत्त्व है और समस्त काय जगत वा अधिष्ठान हात हुए भी काय व दोषा अथवा विकारा स मुक्त रहता है ।^{१४} इन विचारा स स्पष्ट हाता है कि ब्रह्म व कारण और कायरूपता म अमद

१४ ध्यान करता भय बुजाना, बहु विध सृष्टि रचो दरहाण ।

विभिना तु भ किय ई धाना । प्रतिबिम्बना माहि समाना ।

निन यदु चित्र बनाइया सो साचा सुत धार ।

कहे कबीर ते जन भल न चित्रवत लेहि विचार ॥

है। ऊपर दिये हुए मूल और निम्न के दुष्प्रभाव से वाय और कारण की अभिन्नता स्पष्ट है।

सत्त दादू दयाल के अनुसार ब्रह्म जगत कारण है। जिस प्रकार कुम्हार अनेक प्रकार के घटानि का कारण है उसी प्रकार ब्रह्म अनेक स्वरूपक मण्डि का कारण है। सत्त दादू दयाल ने भी ब्रह्म से मण्डि होना कहा है। सृष्टि रचना के लिए ब्रह्म का अथ साधन अथवा उपानान की आवश्यकता नहीं पड़ती वरन् ब्रह्म के स्वयं का ही जगत्कारणत्व में विकास हुआ है। सृष्टि स्थिति और प्रलय का अधिष्ठान भी ब्रह्म है। यदि कहा जाय कि ब्रह्म सृष्टि रचना करके सृष्टि से पृथक् हो जाता है तो अनुचित होगा क्योंकि किसी पृथक् तत्व से सृष्टि का निर्माण नहीं हुआ। ब्रह्म से ही जगत की रचना हुई है। ब्रह्म ही उस सृष्टि का अधिष्ठान है और वही उसका प्रत्यक्ष कारण है। सत्त दादू दयाल का मत है कि ब्रह्म अपने स्वयं से जगत की रचना करता है और स्वयं ही उसका दृष्टा होता है। सृष्टि एक वाजी अथवा खेन कौतुक या सीता मात्र है। जिस प्रकार खेल और कौतुक का प्रयोजन केवल आनन्द या मनोरजन होता है उसी प्रकार सृष्टि, ब्रह्म के आनन्द की अभिव्यक्ति मनोरजन आदि के लिए हाते हैं। सृष्टि का पारमार्थिक रूप नित्य नहीं है। यही वाय और कारण की अभेदरूपता स्वीकृत की गई है। जिस प्रकार ऐन्द्रजातिक का कौतुक इन्द्रजात है अथवा कौतुक ऐन्द्रजालिक से पृथक् नहीं है और कौतुक के समाप्त होने पर प्रत्यक्ष कौतुक का अस्तित्व ऐन्द्रजालिक में ही हा जाता है उसी प्रकार जगत्कारण का अस्तित्व ब्रह्म कारण में हा जाता है। सत्त दादू दयाल के अनुसार सृष्टि की उपानान रचना अथवा वायरूपता परमावत गता है। फिर भी वाय की उपानान होती है। किन्तु जिस वाय की उपलब्धि होती है उसका रूप अनित्य है। अतः ब्रह्म की निमित्त कारण रूपाता वा हम प्रत्यक्ष तो नहीं करते फिर भी अनेक रूप वाय एक ही निमित्त कारण से उत्पन्न हाते हैं। सत्त दादू दयाल ने इसीलिए निमित्त कारण रूप ब्रह्म को अप्रत्यक्ष कहा है^{१५}।

१५ निरजन द्वार ये सब द्वार ।

उत्पत्ति परने कर आने द्वार नाग व य ।

आप ह्ये बुलाय करण बूँत ये सब लाइ ।

आप करि अगोत्र बडा दुनी मन को मोइ ।

आप थ उपाद बाजी निरपि देय सत्त ।

बाजीगर को यदु भेद आने सदन साग समार ॥ —दादू दयाल की वाणी ।

सत जगजीवन साहस्र के गणे में भी ब्रह्म की अनिर्गुण निमित्त और उपादान कारण-रूपता स्पष्ट है। इनका कथन है कि ब्रह्म रूपी कुम्हार पापा की रचना कर रहा है। यह ब्रह्म का कुम्हार अनन्त स्वरूप है। इसकी सृष्टि अनन्त विचित्रताया से पूर्ण है। वह अग्नि प्रज्वलित करके उससे जल निकालता है। वह अनन्त प्रकार के रसायन पदार्थों का शृंगार करता है। ब्रह्म ही पवन का रूप है वही वायु स गत उत्पन्न करता है। किन्तु ब्रह्म स्वतः ही पवन का रूप है और स्वयं ही उस पवन से वाद्य ध्वनि उत्पन्न करता है। वह ब्रह्म समस्त पदार्थों में व्याप्त है। किन्तु सबमें व्याप्त रहते हुए भी वह किसी पदार्थ का रूप नहीं है। ब्रह्म निमित्त कारण है और अन्तर्गत पदार्थों की सत्ता की उत्पत्ति करता है। किन्तु कारण स उत्पन्न विनाशनीय काय का वह अंग नहीं है। समस्त सृष्टि व पदार्थों में अनित्यता प्रत्यक्ष होती है। किन्तु ब्रह्म नित्य है। अन्त ब्रह्म काय का रूप नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त विना ब्रह्म कारण व काय हान की संभावना भी नहीं है। यद्यपि ब्रह्म काय का अनित्य स्वरूप नहीं है तो भी काय की ब्रह्म से पृथक् सत्ता भी नहीं है। इसी हेतु सत जगजीवन साहस्र व अनुसार पवन स्वरूप ब्रह्म ही वह यत्र है जिसमें ध्वनि का विस्फुरण होता है और ब्रह्म स्वतः उस यत्र का वाद्य है। समस्त सृष्टि कायों का वह कारण है किन्तु काय की सामाग्रा म ब्रह्म का अनन्त स्वरूप बाधा नहीं जा सकता। इनके सिद्धांत म ब्रह्म का इस पदार्थ गत के साथ खेलना माना गया है। खेलना यत्र जगत् व्यवहार की अनित्यता का सूचक है। किन्तु ब्रह्म जगत् व्यवहार म पारंगत भा कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता ही नित्य है। व्यवहार का अधिष्ठाता होते हुए भी ब्रह्म अनित्य व्यवहार का अंग नहीं हो सकता। इस प्रकार सत जगजीवन साहस्र के अनुसार भी ब्रह्म म जगत् की काय श्रुता का दिव्य रूप ही उपलब्ध होता है।

सन करीर दास के अनुसार ब्रह्म न सत रज और तमागुण से सृष्टि की रचना की है। सृष्टि की रचना ब्रह्म न आत्मस्वरूप स की है और सृष्टि पदार्थों

१. माया एक ब्रह्मणो कुम्हारः।

तदेवकारेण का अन्त न पापा नम निरवन्तहारः।

अग्नि उदाय निवामन पालो रश्मि रश्मि रूप मवारः।

पवन मक्ष तद् वातहि आपहि आप वशावनहारः।

जगजीवन आधुनि सव गुणन आधुनि सव त्वरः।

जगजीवन साहस्र की शान्तावती। भाग २। शब्द ६।

के बीच में अपने को छिपा लिया है। ब्रह्म प्राण स्वल्प है एवं भावविषय मृष्टि का विस्तार एक यक्ष के भोज पत्तनवा के समान हो गया है। त्रिगुणयुक्त यह विस्तार स्वल्प सत्तार ब्रह्म का स्वल्प नहीं है। इस सत्तार के भोज प्रसार के भोगों और सुखा का अध्ययन यद्यपि श्रेष्ठ है तो भी ब्रह्म की स्थिति इनमें नहीं है। ब्रह्म इन अनेकरूप मृष्ट पदार्थों में पश्य है। ब्रह्म को सत्तार की वायरूपता स्पष्ट नहीं करनी। उसने सत्तार की रचना अपने स्वरूप से ही की है और मृष्टि की रचना करके वह स्वयं ही अपने स्वरूप को विस्मृत कर बैठा है। सत्त कबीर ने यहाँ पर ब्रह्म में विवक्षित रूप में माया की स्थिति स्वीकार की है। यद्यपि ब्रह्म समस्त काय जगत का कारण है तो भी काय के विचारों द्वारा दूषित नहीं किया जाता^{१०}। ब्रह्म में हम विवक्षित भावना की सम्भावना यहाँ करते हैं। यद्यपि ब्रह्म का ही मृष्टि का कारण कहा गया है किन्तु मृष्टि की अनेकरूप कायात्मक सत्ता ब्रह्म में कोई श्रियास्पृता नहीं लाती। वस्तुतः ब्रह्म अथवा आत्मा के पारमार्थिक रूप में श्रिया का अभाव है। अतः त्रिगुण सत्त भी आचाय शाङ्कर के अनुरूप ही ब्रह्म में मृष्टि का विवक्षित मानते हैं। ब्रह्म अविनाशी है। यदि उसमें श्रिया का आश्रय हो तो वह विनाशी हो जायगा। किन्तु मृष्टि का रचयिता तो ब्रह्म ही है। अतः यहाँ ब्रह्म स्वल्प के लोकोपेक्षा की रक्षा की गई है। एक तो यह कि ब्रह्म ही जगत्कारण है और दूसरे जगत्नायक ब्रह्म का कोई सम्बन्ध नष्ट भी है।

सत्त सत्त के अनुसार जिस प्रकार एक स्वल्प सत्त से अनेक प्रकार के आभूषणों का निर्माण होता है उसी प्रकार ब्रह्म से अनेक रूप पदार्थ जगत का निर्माण होता है। जिस प्रकार स्वल्प सत्त के बनाये हुए फलकार में प्राण अतः और मध्य में स्वल्प रहता है उसी प्रकार जगत-मृष्टि सदा ब्रह्म स्वल्प ही रहती है। किन्तु प्राणी मनुष्य स्वल्प की एकरूपता को विस्मृत

१० बह्म सुनन को जिदि जग का हा त्तय भुनान सा किनहू न शीता।

सत्त रज तम धै कीही भाषा आपण मभ आप द्विपासा।

ते ती आदि अनन्तरूपा सुन पत्तन विस्तार अनूपा।

स्वात्त अनेक कथ्या नहीं जाी श्रिया चरित सा इनमें ना।।

ते ती आदि नितार निताना आत्ति अनानि आन।

बह्म सुनन को कीन्त जग आरै आप भुनान।

जिदि नन्त के नन्तारी मागी जो खन सो दीने दाी।

करके व्यवहार के अनुकूल अतर्का का विविध नाम रूप दे देता है १८ । अतः ब्रह्म भी अनेकविध सृष्टि का स्रष्टा है । स्वयं स्वी कारण म अतर्कारूप वाय अनेक रूपा म रचन हान हैं । तो भा अन्वेषणा के दृष्ट जान पर जिस प्रकार स्वयं मूलन स्वयं रूप म हा प्रतिष्ठित रहता है, उसी प्रकार नाना नाम रूपात्मक कार्यों व अभाव म भा निमित्त कारण ब्रह्म एक रूप रचना है । सन्त रदास न भी कहा है कि ब्रह्म बाजीगर क समान सृष्टि की रचना कर रहा है । किंतु सृष्टि रूप म ब्रह्म द्वारा का गद् कौतुक कीडा क मम को बोझ नहा जानता । अस्तुत यह दाजी अथवा सृष्टि मिय्या है ग्लिन् बाजीगर अर्थात् ब्रह्म सत्य है १९ ।

निश्चयन क सत्ता ने वाय और कारण रूप ब्रह्म की अद्वैत सत्ता को स्वीकार किया है २० । समस्त सत्तक अथवा सत्तार बाजीगर ब्रह्म द्वारा ही स्रष्टित म आया है । बाजीगर ब्रह्म अपन वाय स्वी जगत का स्वयं ही दण्डा है २१ । अस्तुत सत्ता का भी वाय और कारण का अनेक समिप्रत है । यहाँ भी बाजीगर और बाजी क स्वयं द्वारा जगत की विवत रूपता यानी गई है । सत्त गानक साहब और उनक मतानुयायियों ने इस प्रकार स्रष्टि और ब्रह्म क अभेद और विवत स्वरूप का उल्लेख किया है ।

सत्त दादू दयाल के अनुसार निमित्त कारण ब्रह्म स्रष्टि-काय करके अप्रत्यक्ष हो गया है । भाया का आवरण पढ जाने क कारण ब्रह्म स्वरूप का साक्षात्कार नहीं हाना प्रस्तुत मायिक पत्थ ही प्रत्यक्ष हाते रहने हैं । इसी कारण ब्रह्म क अस्तित्व का ज्ञान नहीं हो पाता । भात्मस्वरूप स ही ब्रह्म न स्रष्टि की

१८ अष्टि एक अन्त पुनि सा मध्य उपार नु कस ।

अहै एक पै अन सद्गो बनक अनमन जमे । —रैदास की दाजी । शब्द ५४ ।

१९ ५१ गैर सा रावि रहानानी का अरस न जाग ।

गो मूठ साव बाजीगर, जाना मन पल्लाना ॥ —रैदास की दाजी । गण १०१

२० कस्य वाय्य प्रसु प्कु है

दूय नारी को ।

गाक निम वनिहायै

बनि थवि मदि अलि सो । —सुन्दर गुंका । सुयमना मात्व ।

२१ बाजीगर एक बजाइ ।

सव रावक लनामे आइ ॥

बाजीगर स्वागु सत्ता ।

अपने रग रवे अत्ता ।

—कौतना असा दा वार । रागु स्पेष्टि कपीर जी । सुन्दर गुंका ।

रचना की है। रजोगुण त सत्ति की रचना सतोगुण त वायव्य और तमोगुण से उसका विनाश करता ब्रह्म की त्रिभिध वाय गभी सत्त दाङ्गुल्यान भी मानते हैं कि सत्ति मायावी की माया त समात मिथ्या है^{२१}। अतः ही अगन स्वल्प से ब्रह्म ने इस मायात्मक सत्ति का विस्तार किया है। अगनी माया त ही मायावी ने अगनी को धाङ्गुल्यान कर दिया है। वायव्य त मध्यम अनेक नाम रूपात्मक पदार्थ जगत की सत्ता ने ब्रह्म रूपी मायावी का दिया दिया है किन्तु जब मायावी प्रकाश त भा जाता है तब यह जान शून्य है कि सत्ति मिथ्या है और सत्ति मायावा का कीतुक मात्र है^{२२}।

सत सुन्दरवास के मत त भी सत्ति की रचना करने ब्रह्म सत्त-वागी त समाहित हो जाता है^{२३}। किन्तु समस्त सत्ति वायों त व्याप्त होकर भी ब्रह्म उनसे पृथक् है। तिस प्रकार जल और तरंग त अन्धे है उसी प्रकार ब्रह्म की निमित्त कारण रूपता और उपादान कारण रूपता त अभिन्नता है। आकाश आयु अग्नि जल और पृथ्वी पाच इन भूत त और सत्व रज तम इन तीन गुणा से सत्ति हुई है। किन्तु इन सभी तत्वा का अधिष्ठान ब्रह्म है। जिस प्रकार एक बीज से एक विगान अन्त उत्पन्न होता है उसी प्रकार एक ब्रह्म से अनेकविध सत्ति की रचना हाती है। स त सुन्दरवास के अनुसार भी सत्ति

२२ बाजी चिहर रंग करि रङ्ग अपरधन छोड़।

माया घट पट्टा लिया ताव लरै न मोड़ ॥ माया को अन्त तद्दुःख को नाशे। २।
पैना किया घट घटि आन आप उपाइ।

दिकमत हुनर कारीगरी, तद्दुःख लपी न जाइ।

समर्थार्थ की अन्त। —दाङ्गुल्यान की दानी। ३५।

राजम करि उतपति करै सातक करि प्रतिपाद।

तामम करि परलै करे निगुण कौतिलार। सापीभूत की अन्त।

—दाङ्गुल्यान की बानी। ३७।

२३ भाँ रे बाजीगर न पला एमै भाँ रेई अरेला।

यद्दुःख बाजीगर पल पंगारा सब माहे कौतिलार।

बाजीगर परकामा, यद्दुःख बाजी मूठ तनमा। —सुन्दर अन्ध्यावली। शब्द। ३६।

२४ बाजी कौन रची मरे प्यारे।

आपु गोपि है रहे सुमाई जग मवडी तै न्यारे।

कोई जानि सकै नहि तुमको हुँतार बहुत सुन्दारे।

अगन अनि अगन अगोवर चारो वेर पुकारे। सुन्दर अन्ध्यावली भाग। २। ५८।।

ब्रह्म का विवर्तन ही है^{२५} ।

सात मूलकण्डास का मायता है कि निरवयव ब्रह्म का स्वरूप प्रतीक है । ब्रह्म का अनन्त स्वरूप मन का सीमाप्राप्त नहीं। समाभवता । अनन्त मूलकण्डास न ब्रह्म की वारण प्रदवा वाच्यता व स्वरूप में विस्तार पूर्वक नहीं कहा है^{२६} ।

सात धरनास व मन में भी एक ब्रह्म ही मण्ड है^{२७} ।

सात धरनास व अनुसार ब्रह्म का एतत्त्वं स भूत न म स्थात्मक मण्ड है । समस्त पंचतत्त्वा की रचना का कारण ब्रह्म है । चद्र, सूर्य विष्णु शक्ति सब ब्रह्म का स्वरूप ही उद्गम हैं । सत्त्व रज और तम गुण का उत्पत्ति ब्रह्म ही होता है प्रायः प्रलय काल में उनके स्वरूप में समस्त मण्ड पणाय एक तत्त्व समाहित हो जाते हैं^{२८} । वस्तुतः ब्रह्म रूप रहित है ता भी व्यवहार में उभय अन्तर्गत हैं । इस अवस्था में उनके स्वरूप का कथन कस किया जा सकता है । समस्त पणायों में स्थित ह्रात द्रव्य भी वह उन सब में एक है । इस प्रकार सात धरनास के ब्रह्म सिद्धांत पर भा विवर्त भावना का प्रभाव स्पष्ट है^{२९} ।

सात पलट्ट साहब व अनुसार ब्रह्म तत्त्वं के समान सप्टि द्वारा अनेक कताया का प्रतीक है । वह सप्टि-रचना करके स्वयं ही उभयता दयता है ।

२५ दण्ड एक व गणित ।

वा मन्त्र विचारिये तो वही एकै लोह ।

पंच सबक तीन गुण की वस्तु है सुभा ।

उत्तमौ नाति पर शीघ्र की विनाय । — सुन्दर प्रथावती । भा । २ ।

२६ सात नू निरवयव मन में न धारित । — दूकण्डास की दानी । कवित्त । ८ ।

२७ सात एकै व निरवयव हारा ।

ठाव ठाव न स्वप्ति सनाय । — दाना दास की वा । वरहा ।

२८ पर वस्तु रूप वाना ।

तूी एक अनेक भया व तिम जाना तिम लाने ।

रवि गण विष्णु मण्डल तूी मुहा चतुर विनायी ।

तूी साग पन व पावक तू पागल तू पायी ।

पाना गुण तो हा व निरवयव ही ना व मणाल । — भक्ति मार । १८ ।

२९ ब्रह्म धरना की वस्तु रूप का कोर के व स्वरूप व है ।

स्व में ही सब व मणाल का व मणाल व है ।

वदु वदु मानी माना वाना वदु मणाल में भूति रहे । — भक्ति मणाल ।

इस भावना का तात्पर्य यह है कि ब्रह्म के प्रतिरिक्त अयं दय्य भयना दल्य तत्व नहीं है। यह स्रष्टि वस्तुन ब्रह्म का स्वरूपभूत अद् ही है^{३०} ।

उपयुक्त विवेचन के आधार पर हम यह निश्चिन्ता करते हैं कि सत कबीरदास और सन्त दादूदयास ने ब्रह्म की अभिन्न निमित्ताभासन रूपता का प्रतिपादन किया है। इनके प्रतिपादन में बुम्भकार का दृष्टान्त लिया गया है। सन्त कबीरदास सत रदास सत दादू दयान सत नानक साहब सत मुंदरदास, सत चरनदास और सत पलटू साहब का मतान्त में ब्रह्म के स्वरूप में विद्यत भावना का प्रभाव स्पष्ट है तथा वाय और वारण की अभिदम्पता सभी सत्ता का प्रतिपाद्य विषय रहा है।

अब हम त्रिगुण वाक्य में सगुण ब्रह्म के स्वरूप और अवतार भावना का विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

हम आचार्य शाङ्कर का ब्रह्म सम्बन्धी सिद्धांत प्रस्तुत करते हुए कह चुके हैं कि उन्होंने गीता भाष्य के प्रतिरिक्त अयं भाष्या में ब्रह्म का अवतार लने का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया। इस बात का लक्ष्य यह है कि आचार्य शाङ्कर यद्यपि ब्रह्म के सगुण रूप को प्रसंगिक नहीं करते किंतु यह उनका प्रतिपाद्य नहीं है। इस सम्बन्ध में हम आचार्य शाङ्कर के अनुसार ब्रह्म का स्वरूप प्रकरण में सोहदारण उल्लेख कर चुके हैं। अब हम इसी परिप्रक्ष्य में सन्त वाक्य का विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

सत कबीर दास ने भक्त प्रह्लाद का चरित्र वर्णन करते हुए भवन की रक्षा के लिए समझ से नसिंह का प्रकट होना कहा है^{३१} ।

मुंदर गुटका कीरतनी आसो दी वार में वृष्ण और गोपिया के प्रेम का

३० चारि खानि औ मुवन चतुरान्म लख चौरामी वाया है।

नटवा होर कै बासी लाया आगुधि देर न हारा है ॥

—पलटू साहब की बानी। भाग १३। शब्द १६।

३१ प्रह्लाद पधारे पन्न साल, सग सखा लीये बटुन बाव।

मोहि कहा पत्तवै भान जान मेरो पाती लिखि देती गोपाल ॥

मोहि कहा हरावै बार बार तिनि जल थल गिर का कियो प्रहार ॥

तब कानि सङ्ग कोयो रिसाइ तोहि राखन हारो मोहि बनाइ ॥

रामा में प्रगटयो गिलारि हरनाकम मारयो नख निगारि ॥

महापुरुष देवाधि देव नरसथ प्रगट कियो भगनि भेव ॥

कहै कबीर कोई लहै न पार प्रह्लाद उबारया अनेक वार ॥—कबीर स्रष्टावली। पृ. ३७६।

उल्लेख किया गया है^{३१} ।

सप्त दादू दयाल ने भी श्रीकृष्ण के सगुण स्वप्न की वन्दना की है । उन्होंने कृष्ण के नोकरजक स्वल्प को स्वीकार किया है^{३२} ।

सन्त गरीबदास ने चतुर्भुज विष्णु के स्वल्प का वगन किया है । प्रह्लाद की रक्षा कस का सहार राम के द्वारा रावण कुम्भकरण का सहार भाँति उल्लेख सन्त गरीब दास की अवतार भावना में दृढ़ निरूठा व परिचायक हैं^{३३} ।

सप्त चरनदास ने भक्तवत्सल साधु और ऋषिणा की रक्षा भूमि का भार उत्तारन के लिए भर्षाण पुरुषोत्तम भगवान का निगुण से सगुण होना कहा है । नन् के घर में कौतुक करने वाले कृष्ण की भक्ति व उगाहरण भी सप्त चरनदास के काव्य में मिलते हैं^{३४} ।

३१ रामनाम उवाच महि सूरु नार तादण परादत जडि ।

दुग महि तेरि छली चणवलि वान्द कुमुनजान्द भया ।

पाणानु गोपी सै आरया विनापन मति रगु कोष ।

—सुन्दर गुणक । कीरत जी आमा ती वार

३२ सुषि कलि स्वामी तू अतरनामी तेरा सदा सुखै राम जा ।

धन चरावन बन बजावन, रस लियावन कामिनी ।

बिरह उपावन तपनि कुमावन अगि लगावन भाँसिनी ।

मति विनापन तन बनावन गोपी भावन भूधरा ।

ताद ता न दुखित निवारण सन साधारण राम जी ।

—दादू दयाल जी वाणी । शब्द १४०४ ।

३४ रेत छन एत सुवुट मनाहर वलत सुकमा जरा ।

सग चन्द्र मणि पत्र तिजे नामन दमक हीरा । गरीबनाम वाणी । पृष्ठ ६ ।

निरनामग समान नगि प्रह्लाद पना ।

उत्तर विनामा आनकर त्व यौन दुखै । गरीबनाम की वाणी ।

कम्भकरण म तेर ध का छुआरो । दग ति नाम वी समभावे नारा ।

मभी दुल पत् भेय्या निरगुननिरा । रावन न विचार रे तन गव गुदाला ।

कम कर्म तानूर से धर तन दछारा । —गरीबनाम की वाणी ।

३५ नन् घर कौतुक करन सोने ।

मत्त बदल करार रगाड धरि डाये शौतारा ।

रक्षा कारण साधु कर्पन की भूमि उदारण भाग ।

गव नव भार वलत पछी पर मव तव शौत सछाई ।

मयल पुरुषोत्तम य हो बिगरी सबै बनाई ॥

निगुण का सगुण वपु धारे कष्ट निवारण कात्रे ।

योगेश्वर जेहि ध्यान लगायै नाम निरु अय भात्रे ॥ भक्ति सागर । पृष्ठ वगल ।

सत्त जगतीयन साहस ने भी राधण का गन्धर और विभीषण की रक्षा, गस का सहार और हिरण्यनश्यतु का यथ भगवान् क शारा होता कहा है^{३१} ।

इस प्रकार हम देगा है कि सत्ता ने अन्तार भावना ता निगुण नहीं किया है । किन्तु वह उनकी उपागता का एतमान प्रतिपाद्य नटा है । सत्ता का लक्ष्य तो निगुण ब्रह्म का निवचन करना है । इस सम्बन्ध में हम आगे विस्तारपूर्वक विचार करगे । सत्ता ने अन्तार भावना का आश्रय भक्ति सम्प्रदायी स्थाना में ही लिया है । इस सम्बन्ध में श्री विचार नाम जी का मत है कि परम्पराभुक्ति क साधक सात्विक पूजा तथा अवनारोगमना योग जप तप समय तीर्थ ज्ञान दानादि का प्रयत्न उदाहो कहा परन्तु निखी है किन्तु धर्म ध्वजी पाखण्डिया क द्वारा की हुई इटा की टुण्णायिता का ही खण्डन किया गया है । ये विचार सत्त कवीरदास की अन्तार भावना क सम्बन्ध में प्रकट किए गए हैं । किन्तु इन विचारों का हम अर्थ सत्तो क सम्बन्ध में भी लागू करेंगे । हम श्री विचार दास के विचारों से सहमत हैं^{३२} ।

अब हम सत्त काव्य में निगुण ब्रह्म के स्वरूप का विवेचन करेंगे ।

गोरखनाथ के अनुसार ब्रह्म के स्वरूप में मायिक व्यवहारों का प्रभाव है । ब्रह्म के निगुण स्वरूप में सूर्य का उदय व अस्त नहीं होता है । ब्रह्म समस्त स्थावर और जगम तत्त्वा का आधार है किन्तु ब्रह्म की न उनमें स्थिति है और न ब्रह्म उनसे भिन्न ही है । ब्रह्म न किसी पन्था के अन्दर है और न बाहर । सूर्य और ब्रह्मा उसकी सृज करते रहे किन्तु ब्रह्म का स्वरूप इतना सूक्ष्म है कि वे उसको पा न सके । ब्रह्म के निकट मन ता क्या वायु तक नहीं पहुँच सकती । ब्रह्म वस्तु एक है । उसमें सृष्टि की अनेक रूप पदाय सत्ता की स्थिति है अथवा जो अन्त त एत पन्थाय सत्ता दृष्टिगोचर होती है उसमें एक ब्रह्म की स्थिति है । अनुभव द्वारा अन्त, टि से देखने पर अन्त

३६ गव गुमान की उ जव रावा मारि किये घग्गान ।

विभीषण जव तीन भयो है ताह कियो परधान ।

दीन तें कस मझानल भयऊ तवा गव मन आन ।

बस पहरि कै तिनका मारयो सो रूप मन भान ।

हिरनाक छप तीन भयो जव दी हो सब बरान ।

गगीयन नाम नाम भजु अन्तर चरन कमव धरि ध्यान ।

— गगीयन साहव की राजावनी । भाग । २ शब्द । ६२ ।

३७ कवीर वीरक की भूमिका ।

एक जगत्-काय एक ब्रह्म में हा समाया हुआ दिखाइ देना है^{३८}।

सन्त कबीर दास के मतानुसार 'निगुण राम मानसि चिन्तन द्वारा नहीं प्राप्त हो सकता क्योंकि मन स्वन विकारी है और गुणा क मयोग से मन का स्वरूप बनता है। अन निविकार एव निगुण ब्रह्म का विकारयुक्त मन और दागी प्राप्त नहीं कर सकते। निगुण ब्रह्म नित्य है और जगत् क व्यवहार अनिय है अत अनित्य जगत्कारा से निय ब्रह्म का प्राप्त नहीं किया जा सकता। ध्यान और नियम व्यावहारिक ज्ञान क हा कर है। अन अन्यवहाय ब्रह्म स्वक गरा उपनय नहीं किया जा सकता। सन्त कबीर क अनुसार निगुण ब्रह्म ताव एव जगत् म भेद नहा है। निगुण ब्रह्म ही अद्वैत सत्य है क्योंकि द्विघातमक विकारा का त्थम अभाव है।

निगुण ब्रह्म माया से रचित है। उसका प्रतिन तुसाब्द है क्या कि प्राप्ति किसी प्रकार त्थ या नाम का हा हो सकती है। निगुण ब्रह्म म नाम त्था का अभाव है। अत सत उसके स्वरूप को मन दागी द्वारा उपनय हान योग्य नहीं मानत।

सन्त कबीर दास क अनुसार तिव या गुरु जन साधक भी निगुण ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर सत। इत और ब्रह्मा उमका नहीं जान सकते वह राम ज्ञान त्थ म क स पथक अद्वैत और अनिवचनीय है^{३९}। सत कबीरदास ब्रह्म का चिन्तन के क्षम से भी बाहर मानत है। निगुण ब्रह्म सन्त कबीरदास का साधना का लक्ष्य है। वह सबव्यापि है और स्वय सष्टि-प्राप्तों के त्थ म रता नहीं है। ता भी समस्त पण्य उसकी सत्ता का व्यक्त करत है। माया क व्यवहारा म वह गप्न रहता है एव 'दर द्वारा उसका सन्तानुभूति

३८ उक्त म अत राति न तिन मन्त्रे मकरावर माव न मिल्ल।

ना नि त्तन टाव न मूत मन्त्रे व्यापी शुभन न अम्युक्त। —गणेश मन्त्रे। शब्द ११३।

द्वार न कीत नान न हृत्ति। पतित रत्न ब्रह्म मन्त्रे। शब्द ११४।

मन पतन का गम नाना त्था 'हृत्ता हा'। —गो-गोपी मन्त्रे। २२३।

मक म प्रनय प्रनय मं एके प्रनय ज्ञान।

प्रार एक मा परवा हुआ त्थ अनय पर मं मन्त्रा। —गणेश मन्त्रे। ११४।

३९ किरक सिव सुकर गन ऊठि

रान मन्त्राणि अतहू नाना जूति

अप्रने कान कहे किरक भाव, गये इत म अगणित त्था।

अना गन्त्रि परयो गदिलान् कहे कबीर वै राम निजान।

—कबीर मन्त्रावली। पणवली। ११। ३५।

होती है। ब्रह्म आनन्द स्वरूप है। उससे स्वप्न का कथन नहीं किया जा सकता है। यह निराकार ब्रह्म आत्मा का म समस्त जित्त्वों का आश्रय है। गान्धर्व और विद्या एव वाच्य विशाल द्वारा ब्रह्म का निगुण एव कथन नहीं हो सकता।

सत कबीर का निगुण राम वस्तुतः गान्धर्व का निरुपाधिक ब्रह्म है। इन स्वप्न म वाच्य कारण भूत नहीं है। जान जगत् और प्रकृति सब उसी म भूत निहित हैं। त्रिगुणात्मक आकारो म व्यक्त होकर ब्रह्मा निगुण और गान्धर्व उम ब्रह्म के ही रूप हैं।

सभी सत और कबीरदास निगुण ब्रह्म का ही सत्त्व रज और तम गुणों का अभिष्टान मानते हैं। उनसे अनुसार अव्ययनाय ब्रह्म म ही उपाधि का कथन और आराध होना है। समष्टि और व्यष्टि सामान्य और विशेष दोनों ही उसके स्वरूप को व्यक्त नहीं करते क्योंकि यावत् निवृत्त वाणी का विचारमात्र है। निगुण ब्रह्म भाव और अभाव स रहित है। निगुण

४० अच्युत च्युत ७ माथा सा सब माहि टमाना ।

प्रगट गुण पुनि प्रगट सो कत रहै लुका ।

कबीर परमात्म मनाये अक्षय कथ्यो नहि जाइ ।

— कबीर अध्यावली । पृ० १७ ।

सो कछु विचारहु पखि लो ।

जाके रूप न रेण वरण नही को ।

कहै कबीर मन मनहि ममाना, तव आगम निगम भूत कार जा ।

— कबीर अध्यावली । पृ० ३७ ।

अवगति की गति लखी न जाई ।

कहे कबीर जाके भेद नाहा निज जन पहे हरि की छाडी । कबीर अध्यावली । पृ० ४६ ।

रज गुन ब्रह्म तम गुन सकर सत गुन हरि है सो । — कबीर अध्यावली । पृ० ५७ ।

४१ ब्रह्मा न उपज उपमा न ही पावै भाव अभाव विदूना ।

उत् अस्त जहाँ मति बुधि नाहा सहज राम ल्यौ लाना ।

गुण में निरगुण निरगुण भं गुण है वार छाडि १५ बहिये ।

अजरा अमर कहे सब कोइ अचल न कथ्या जा ।

जाति स्वरूप बरण नहि जात पति घटि रक्षो समा ।

प्य ब्रह्म कहे सब का वाहे आदि भर अत न हो ।

प्य ब्रह्म कहे छडि ज कथिये कहे कबीर हरि सो । १२ ।

बोलना का कहिये दे भाई, बोलत बोलत तन नसा ।

बोलत बोलत बने विकारा बिन बोल्या क्यु हो विवारा । ६७ ।

पयो बायो निबन्धे अप्राय मनसा सह । तसिरोय उपनिषद् । ६ ।

कबीर अध्यावली । १७६ पृ० ।

स्वरूपमव्यवहारा का अभाव है। उसका स्वरूपम उज्य अस्त मूय और चद्र आदि पाँच भौतिक विकार नहीं होते। ब्रह्म की अनिवचनीयता का विषयम सत कबीरदास का मन है कि बाणी या विकार उस निगुण ब्रह्म का व्यक्त नहीं कर सकते। उसी स्वरूपको समझन के लिए वाणी और विचार महापक मात्र है। ब्रह्मक स्वरूपम काद लक्षण नहीं है। यह निगुण एव अनिवचनीय ब्रह्म अवतारी नहीं होता^{५२}। ब्रह्म अनादि है। वह प्रकृति अथवा मया का अस्तित्व है किन्तु उसके गुण और विकारों से वह विवृत नहीं होता। आकार और विकार अनिय किन्तु ब्रह्म नित्य है। ससार की पत्थ, सत्ता का नामरूप परिवर्तनशील हैं। परंतु वह आधार जिसमें ये सब पदाथ और तत्व त्रिशाशील होते हैं कूनस्य ब्रह्म है।

सत कबीरदास का निगुण ब्रह्म का सम्बन्धम कथन है कि ब्रह्म हमारा कहने मात्र स पान का विषय नहीं होता। ब्रह्म जन्म नहीं लेता। अतः वह न भाव रूप है और न अभाव रूप है। मन और बुद्धि के द्वारा ब्रह्मको प्राप्त नहीं हो सकती। उसके निगुण और सगुण रूप भाव-भावहारिक हैं। सगुण ब्रह्म भी निगुण का ही स्वरूप है क्योंकि गुण का निमित्त और उपादान कारण एक ही ब्रह्म है। इसी प्रकार निगुण में सगुण की अस्तित्व है क्योंकि निगुण स्वरूप ही सभी कार्यों और पत्थों का अस्तित्व कारण है। अनेक रूप तत्वों का मूल कारण एक ही अद्वितीय ब्रह्म है। इसी प्रकार सगुणम ही निगुण स्वरूप का अस्तित्व है। निगुण ब्रह्म ही चतुर्थ रूपम जब पत्थों और निमित्त एव उपादानम गतिशील रहता है। ब्रह्म अजर और अमर बना जाता है। ब्रह्म अलम्ब है। साधारण प्राणी, बुद्धि और इन्द्रिया द्वारा उसका लम्ब नहीं कर सकते। उसका कोई रूप नहीं है। कोई लण नहीं है। वह निगुण ब्रह्म ही प्रत्येक प्राणी के हृदयम समाया हुआ है। क्योंकि हृदयमें ही साधन द्वारा उसका पान होता है। ब्रह्म पिण्ड और ब्रह्माण्ड दो स्थानोंम भिन्न भिन्न नहीं हो सकता। अर्थात् जाव और ब्रह्म दोनों पद्यक नहीं हो सकते। ब्रह्मक स्वरूपम पिण्ड और ब्रह्माण्ड का द्वैत वस्तुमान नहीं है। वाणी द्वारा ब्रह्मक स्वरूप का कथन नहीं हो सकता। अतएव क पुत्र राम की कथा दोनों साधनोंम प्रचलित है परंतु निगुण राम का रहस्य अवतार भावनामें प्रविष्ट स्वरूपा

५२ ना जन्म पर अतीति आवा। ना लका का राव सतावा।

द्वैत शून्य न अतीति आवा। ना आ सबै लै गोप्य रितावा।

ना बो ग्यावनि क सुग पिरिया गावरधन ल न कर बरिया।

बानन हाय नदा बनि छलिया, धरना बल न उरिया। ३२२ अक्षर्य ग-ना ॥

से भिन्न है। देखीं त गभ ग वृण क म म निगुण ब्रह्म का नाम नहीं होता। यगाना ने निगुण ब्रह्म को मोल में गहा गिाया। मागाना क माध ब्रह्म ने विहार गहा कि यह श्रीर त गावधन पत्रा का ही उगाया। वाचन क रूप म निगुण ब्रह्म ने छा न। त्रिया श्रीर न धरती तथा वेर का ही उडार किया। ब्रह्म न सूक्ष्म है श्रीर स्थूल। त्रय की न उाति ही होनी है श्रीर न नाम ही। वाणी द्वारा जसा कहा जाता है वस्तुन उमता स्वस्व वसा नहीं है। ब्रह्म जसा है वसा ही है। साधन प्रमून धनुभव द्वारा हा वह जाना जा सकता है। ब्रह्म स्वरूप के कथन श्रीर श्रवण से बेचन सुम मिलता है श्रीर परमाय स्वरूप ब्रह्म क पान म सहायता मिलती है^{४३}। निगुण ब्रह्म प्रवतारी गही हाता।

सत्य रज श्रीर तम गुणा स चवहार का प्रवत्तन होता है। वावहारिक नाम रूपात्मक पदाय ही चित्तन के विषय है निगुण ब्रह्म नहीं। निराकार ब्रह्म उपासना का आश्रय भी नहा हो सकता। ब्रह्म स्वयं सानान का स्वरूप है।

सत्त रदास ब्रह्म को अखिल कह कर सम्बाधित करते हैं। अखिल ब्रह्म सट्टि अति रूपा म विकसित नहा हाता। अपनी पारमाथिर प्रवस्या म वट वणरहित है। गूय चन्द्र रात त्रिन ब्रह्म स्वरूप म घटित नहा होते। कम श्रीर अकम द्वारा वह निगुण ब्रह्म बाधित नहा होता। गीत श्रीर उप्पता अथवा प्राकृतिक त्रिकार उसका स्था तक नहा करत। सत्त रदास ने ब्रह्म को निरचन निराकार निरैरी श्रीर निविकार कहा है। उसके अकथनीय स्वरूप म उसका निगुण श्रीर रागुण कुद्य भी नहा कह सकते। अद्वत 'गोत्रित' माया त्रिकार से रहित है। ब्रह्म भीषाधिक बुद्धि द्वारा जाना नहा जा सकता। वह निगुण ब्रह्म सत्य स्वरूप है एव जागतिक जीव ब्रह्म, जगत ब्रह्म अति भेदा स गूय है। निगुण ब्रह्म का वण अवरण है। वह दवन वृष्णा वरुणो स रहित है। उसके स्वरूप म न कर्मों का ससग है श्रीर

४३ अलस निरचन सत्तै न का। निरभै निराकार है साह।

सुति प्रस्थूल रूप नति रेमा। त्रिष्ट अतिष्टि द्विष्यो नहा पखा।

वरन अवरन कथ्या नरी जाह। सका अनीन पर रक्षो समाह।

अपरपार उपनै तदि दिनमै। तुगति न अनियै कथिये कैम।

तय कथिय तसु दान नहि तम है तैमा सो।

कहन मुनन सुन उपनै प्रम परनाथ दार।। कनीर प्रथावती। रुरैरी।

न अक्षय का ही। यदि मन्त्र का वन में युक्त माना जायगा तो वह विकारा होगा क्योंकि कम इन्द्रिय शक्ति द्वारा होता है और निगुण ब्रह्म इन्द्रियादि द्वारा उत्पन्न नहीं है। वह सप्रभ रहित और निर्विकार है। वह निगुण निगुणकार ब्रह्म वन नहीं करता, परन्तु उसमें अक्षय भी नहीं कहा जा सकता वरु कहीं से मुक्त है एता भी नहीं कह सकते हैं। यद्यपि ब्रह्म ही जब और चतन पदार्थों का अधिष्ठान है और उनमें चतन से ही समस्त प्राणों चतन का अनुभव करते हैं। ब्रह्म की चतन शक्ति ही कम करती है। अतः वह अक्षय भी नहीं है। ब्रह्म योग भाग और निरामय रहित है। किन्तु यह ब्रह्म ही सत स्वप्न और सत्य है। ब्रह्म के पारमार्थिक स्वप्न का वाणी और इन्द्रिया द्वारा जाना नहीं जा सकता है और न ग्रहण ही किया जा सकता है। अतः न हम ब्रह्म का निगुण ही कह सकते हैं और न सगुण ही। वह माया अथवा अविद्या जय विकारा न गुण और नित्य है। उसका जन्म और नाश नहीं होता। अतः वह शाश्वत नित्य है। ब्रह्म निश्चल है अकार रहित है, अद्वितीय और निभय है। सत सत्य न ब्रह्म को अक्षय दृष्टि का अधिष्ठान तब द्वारा ग्रहीत न हो सकने वाला निगुण और अक्षय स्वप्न कहा है^{४४}।

मुत्तर मुत्ता, मुखमनी साहव म निगुण ब्रह्म के लिए 'नति नति' शब्द का प्रवहार किया गया है। निगुण ब्रह्म की वाणी और मन के व्यापार

४४ अक्षय सिद्धे नदि वा कश्चि पत्ति, काद न क मनुमान् ।

अक्षय वन म्प नत् ता के कह ला टा समा ।

चत् मूर नदि रात तिम्र नति अक्षय अकारा न मा ।

कर्म अक्षय नति सुम आनुम नत् का कश्चि द्यु द्या ।

मीन वायु उमन नत् अक्षय कान कुत्ति नदि द्या ।

योग न भोग तिम्र नदि वा क कदा नाम सत सा ।

निरक्षय निराकार निरक्षय निरक्षय निरक्षय ।

कान कुत्तिदा द्या कश्चि गायै इर इर आने दान् ।

गान पूर पूर नति वा क, पवन पूर नदि पत्त ।

गुन निगु न कश्चि नदि वा क कदा तुम वात सगुण ॥ गैरास की वाता । ४ ।

निम्न पक्ष रस उपने न विलम उच्च अस्त दाउ साहा ।

विष्ठा विगत धै नदि कवहू वमत्त वमै मव माहा ।

निस्वत निराकार अत्र अनुपम निरभय गति गच्छिन्ता ।

अक्षय अक्षय अक्षय अक्षय अक्षय अक्षय ॥३॥

सग अक्षय कान धन वीत्त निरक्षय अक्षयगता ।

कह गाय महत्त गुन मत्त निम्न मुक्त निम्न काली । गान वा वाता । पत् ५३।

प्रकट नही कर सकत^{४४} ।

सात दादू दयाव के अनुसार ब्रह्म माया व विचारों ग विद्वान नही रागा
अत यह निमग्न तत्त्व है । ब्रह्म त्रिगुण है और उसमें अधोधिक् द प गता
है । अत यह निरजन है । ब्रह्म सबदा -या या त्या रता है । प्रवृत्ति एव
अविद्यात्मक ससर्गों से वह दूषित नही होता । वह अनादि है अत उमका जन्म
नही हाता । ब्रह्म आकारों से रहित है । जीव व समात्त उमका पुन पुन कम
फल भाग के लिए जन्म व शरीर नहीं धारण करना रना । राम गरीरानि
विकारा से मुक्त हैं अर्थात् नित्य हैं । ब्रह्म म न गीतलता है न उष्णता है ।
अत यह सबदा एक रस है । सासारिक माया मोह से भी वह रहित है । ब्रह्म
के पारमाधिक स्वल्प म प्रत्यक्ष अथवा पचभूता आकाश, वायु अग्नि जल
पथ्वी का अभाव है । पथ्वी सूर्य चन्द्र रात त्ति त्रिगुण ब्रह्म के स्वल्प व
अग्न नही हैं । ब्रह्म म वृत्तिमता और कत त्व बुद्ध भी नही है । वह भौतिक
विकारी तत्त्वा से गूय है^{४५} ।

सात सुन्दर दास व अनुसार ब्रह्म निश्चय अमृत और अनुपम है । वह
गरीर रहित है और उसके नित्य अस्तित्व का उच्छेदन नहीं किया जा

४५ ब्रह्म महि जनु जन महि पारमह ॥ एकहि आधि नग्न भस्म ।

मुन्दर गुणका । मुग्धमनी साहव ।

रूप न दाव न रग विद्धु ।

त्रिगुण त प्रभ भिन ॥

तिमहि बुभाण नानका ।

जिसु हावै सु प्रमन ॥१॥ मुन्दर गुणका । मुग्धमनी साहव ।

यक विहन अरु वरन आति अरु पानि नद्धिन जिन् ॥

रूप रग अरु रस भस कोऊ कदि न सकत विद्ध ।

त्रिभवण मधीप मुर नर अमुर नेत नन बन तण कहन । मुन्दर गुणका । मुग्धमनी साहव ।

४६ निमग्न तत निमल तत निमल तत प्पमा

त्रिगुण तिन निधि निरान गसा दे तैसा ।

उत्पत्ति आकार गहीं जाव नाही वाया ।

काल नाहीं कम नाहीं रहना राम राया ।

मील नाहा धाम नाहीं धूप नाही छाया ।

दाव नाहीं वरण नाहीं मां नाहीं माया ।

धरनी आकारा अगम चन्द्र मुर नाही ।

रजनी निमि त्विस नाहीं पवना नहिं जाहा ।

कृष्यम पत्त कला गहीं सकल रहित साइ ।

दादू निव अयन निगम द्वा नहिं को ॥ दादू दयाव की वाता । शब्द ६५ ।

सकता। नैतिक पदार्थों से उसको मोह नहीं है। इन्द्र-... है न... और
 न सुन्दर है न अनुन्दर। नियुक्त ब्रह्म मन... हर नेत्र भाषि
 जाननिया हृत्त शीघ्र पर भाषि कर्णियों = दृष्ट है। इन्द्र एक या दो
 की सहस्रांशों में सीमित नहीं किया जा सकता। इन्द्र ब्रह्म है न स्तूत।
 वह किञ्चा स्थान विद्यय से सम्बन्धित नहीं है वह... स्वरूप में जीव
 और ब्रह्म मन नहीं है। ब्रह्म प्रकृतित और मन... ५ परे, मनवचनीय
 सत्य है। सत् सुन्दरताय के मन में ब्रह्म विचार और नियम है। उग्र
 ब्रह्म का भाषि प्रकृत कुद भी नहीं है और... उका कन्य मनवचनीय है।

सत् सुन्दरताय ने यद्यपि भवत्तर का निराकरण किया है किन्तु उक्त
 द्वारा प्रतिपादित ब्रह्म के निरुपाधिक स्वरूप... है कि नियुक्त ब्रह्म का
 भवत्तर नहीं होता ५५।

सन्तनुरूपाय दास का भी मत है कि ब्रह्म क... भवत्तर नहीं होते ५६।
 नियुक्त ब्रह्म के स्वरूप का वज्र क... मान्यता ही कर सकता है ५६। यह

५७ निगाह है नियम...।

भवत मनद छाह नहि भू।

मन्त पुण्य मान भाग।

कस के करिये निवारा।

आदि मन कु गार न...।

मध्य करिये सु भवत बहाने। मन्त भावना। भाग १। पर ६६, १००।

मन्त भवान भवान मनन। अरु भवत मनद निधान।

न ह्यन न गी न ह्यन...

न वात न वाय न वज्र भव। न ह्यन न पाद न मी न...।

सुरत प्र ५१। ५१ ७१।

एक वि दाह न एक न ताल उहा वि रक्षा न चक्षी न इक्ष। ६।

गून न मून न गून न मून न गहा की लदा न जही न सता है।

मून का दान न मून न दाल क्से कि यही न कदा न यहा ७।

और कि मदन न जीव न मदन न तां है जिनही ह वस्तु है न तानी है।

गुण प्र ५१। ५१।

५८ इस श्रौत ब्रह्मों व भासे कितने गढ़े। मन्तुताय की वा ११। भा ६।

५९ इन्द्र मन्तुताय निजुन क गुन वाद वद भाषी भाषे।

मन्तुताय की वा ११। भा ६। १९१।

अगम अगोचर हैं एव जगत की पत्नी सत्ता से भिन्न रहता है^५ । ब्रह्म अद्वैत स्वरूप है और उसका समान दूसरा सत्य तत्त्व नहीं है^६ ।

बिहार वाले सत्त दरिया साहब के मतानुसार जैसे पेठ को पकड़ने से डाल पत्ती भी पकड़ में आ जाती है, वैसे ही ब्रह्म स्वरूप के पान से ही तत्त्व ज्ञान पूर्ण होगा । एक ब्रह्म से अनन्त रूप विन्ध्य विवक्षित हुआ है । वह अद्वैत ब्रह्म निगुंण और निर्लेप है । ब्रह्म निर्लेप इसलिए है कि वह अज्ञान ज्ञान उपाधि सत्ता से रहित है । इस सत्ता रूपी यक्ष के आदि अत मध्य डाल और मल उसी के स्वरूप के अतगत है^७ । ब्रह्म का पारमार्थिक स्वरूप निगुंण और गुण दोनों से रहित है । किन्तु उपादान कारण होने के कारण ब्रह्म गुणा से सम्बद्ध है^८ । निमित्त कारण ब्रह्म का वायु रूप सृष्टि में रूपांतर होता है ।

सत्त धरनीवास की स्वीकारावित है कि वे 'निगुंणियाँ हैं । वे निगुंण ब्रह्म के साधक हैं । अत उहाने गणों का आराधन ब्रह्म के स्वरूप में स्वीकार नहीं किया है^९ ।

४० अगम अगोचर सबद्धि में रहता निवार ।

जाको जम नीच वन सतन बार-बार गाश्य । मलूकान्त को दानी । कवित्त ६ ।

४१ तेरोई एक भरोस मलूक को तेरे समान न दूजो जमी है ।

मलूकान्त को बानी । कवित्त १५ ।

४२ पंइ को पकड़ तन टार पाला मिल

हार गहि पकड़ नहि पेरा पारा ।

आणि आ अत सब मध्य है मूल में

मूल में फूल को फेति डारा ।

नाम निगुंण निर्लेप निर्मल बरे

एक में अनन्त सब जगल सारा । बिहार बाल दरिया साहब की बानी ।

४३ सुमिरहु निगुंण अर नाम सब निधि पून सकल नाम ।

निगुंण नाइ से करहु प्रीति, लेहु कायाग काम चीति ।

बिहार बाल दरिया साहब की बानी । वस्त ६ ।

का निरगुंण का सरगुंण कहिय को दाऊ तेभाना ।

बिहार बाल दरिया साहब की बानी । पु कर राम १३ ।

४४ अगुंण सगुंण जग दुइ करि थापहि

अद्वैत ब्रह्म सकल अन्वयाक निरगुंण में लपयाना ।

बिहार वाले दरिया साहब की बानी । शब्द ४१ ।

सगुंण बिन अ निरगुंण रहित है गुंण बिन बड़ा समाना ।

बिहार बाल दरिया साहब की बानी ।

क्योंकि जगत व्यवहार रूप सरोवर का ब्रह्म के पारमाधिक स्वरूप में प्रभाव है। इनके मत में ब्रह्म बिना डाल का फल है क्योंकि जगत के सम्स्त पश्य ब्रह्म में ही अधिष्ठित है। ब्रह्म व्यावहारिक सत्ता का प्राप्ति नहीं है^{२६}।

सत बुल्लासाहव के अनुसार निगुण ब्रह्म ही उनका साध्य है। निगुण ब्रह्म की पूजा करने से उनके हृदय को शांति मिलती है। निगुण ब्रह्म के स्वरूप में मूय, चन्द्र इत्यादि भौतिक तत्त्वा का प्रभाव है। उसकी उपलब्धि के साधन नियम, धर्म और प्रारती नहीं है। ब्रह्म के पारमाधिक स्वरूप से ब्रह्मा, शिव और सनवादि सम्बद्ध नहीं हैं। निगुण ब्रह्म जाति एवं वय से रहित है तथा एक प्रकथनाय सत्य है^१।

सत चरनदास के अनुसार निगुण राम आरचय का प्राथय है। निगुण राम माता पिता से रहित है क्योंकि वह प्रनाति है और उसरी उत्पत्ति नहीं होती। कुटुम्ब घर गोत्र से निगुण राम का कोई सम्बन्ध नहीं है। वह वय रहित है और वे किसी स्त्री का पति नहीं हैं। रूप और चिह्न से निगुण

५६ उड उर रे विहगम गु अकाम।

नद नदि चान् सर निस वामर सग अमरपुर अगम दास।

दवे उरध अगाध निरन्तर हरप सोक नदि नम कै श्रम।

यारीमात्रव की रत्नावली। शब्द १११।

कह यारी उह अधिक पास नदि फल पार्था जगमग परकारा।

जह रूप न रेख न रग हे रे विन रूप सफान में थाप फूला।

फूल बिना नद वाम हे रे निषाग क वाम भवर भूला।

उहा दह बिना कमल हे रे कवन की जाति अनरय तोला।

यारी अलम मलोल नहा जहाँ फूल देखा विन टाल मूला।

यारीमाहव की रत्नावली। भूलना १७।

६० निगुण खाना हर दम जाना अष्ट नाम मस्ताना।

निरगुन रूप बोलिदि जन बुला पथा गगन रकाना। बुल्लामात्रव का शब्द सागर।

पूना निरकार बहु भाती जेवर पुजत सितल भारी छानी।

पान न चन् सर तिन राती। नेम अर धम न दीपक बानी।

पकरे न मद्र सौव साकानी। निरकार एक अधिक सुधानी।

पकरे माह वरन नदि जानी।

बुल्लामाहव का शब्द सागर।

निरगुण नाम निरतर पेरी जहाँ गुरु गदि चरा

विधा वेत्त भेत्त नदि जाना जाना एक अनला।

आवे न पाद मरे नदि नीब सो सतगुरु सत चला।

चो बुद्ध करी कहत नदि आव चारे कदा तो पैला।

बु लामाहव का शब्द सागर। शब्द ५।

राम सबथा रहित है। मुख नेत्र, जिह्वा नासिका त्वचा गरीर और धर्म निगुण राम के स्वरूप में अंग नहीं है। वह अनादि है और अविचलनीय सब के स्वरूप है^१।

सहजोवाइ के मत में ब्रह्म रूप रंग वाग और गरीर में रहित है। वह आदि मध्य और अन्त से रहित है और उसमें लघु एवं दीप आदि आकार भी नहीं है। प्रलय द्वारा ब्रह्म का नाश नहीं होता और उसकी उत्पत्ति भी नहीं होती। वह प्रपञ्च से मुक्त और अनादि है^२।

दयाबाई के अनुसार ब्रह्म सर्व रज और तम गुणा से आश्रित नहीं है। वह उस निगुण ब्रह्म का ही प्रति प्रति वह कर उसकी अनिवचनीयता प्रकाशित करत है^३।

सन्त भीष्मा साहब के अनुसार भी ब्रह्म निगुण है। ब्रह्म विकारों से रहित और अचलनीय है। वह ब्रह्म निर्माणि और रूप रंग से रहित है। उसका स्वरूप में निगुण और सगुण नहीं है। वह नित्य है और सब पदार्थों का अन्तयामा है। वह अपने स्वस्व का माया के आवरण से छिपाये

६१ साको अन्तरे निगुण राम का।

मात पिता कुल पति न धर्म मेष न दुःखिया बान का।
 रूप रेश न लज कडु किरिया लग नला इ वा नाम का।
 सुप्त न लोचन रसनिहिं जना बका न चोला चान का।
 आदि न अन्त न आदि वर्षे नहिं टिगना नहिं बान का।
 दया सुना क्या नहिं तन्मि धामा नहिं राम का। मति मार। राम बजल।

६२ रूप कर्म वाक नाम सहजा रज न दह।

मात रूप वाक नाम जति पाति नहिं रूप।३।
 आदि अन्त साक नाम मध्य नला उन्मि आदि।
 वाक पात रहि सहजिदा लघु नाम भी नहिं।
 पालय म आदि नहिं उत्पत्ति होय न पेर।७।
 ब्रह्म अनादि मर्माणा घने निराने हर।८।
 रूप बान ज्ञा सू रजित पावन्त्र सू दुर।
 गुन अन्त निरगुन अनन्त आदि निरज रज।
 ननि मेति करि वा जहि गायक है तिन रैन।
 निराकार निरगुन निरबन्धी

सहजोवाइ की बानी।

दयाबाई की बानी।

भीष्मा साहब की बानी।

६३ दयाबाई की बानी। कल्प मर्माणा।

रहता है^{१४} । भीष्मासाहव ने सगुण और निगुण ब्रह्म में भेद नहीं माना है । भद्र त ब्रह्म अपने प्रकट स्वरूप का माया द्वारा प्राच्छांति किये हुए है । किन्तु यही पारमार्थिक निगुण ब्रह्म निरुपाधि और अनिबन्धनीय है । वह इन्द्रियादि के ज्ञान का विषय नहीं है^{१५} । ब्रह्म अगरीरी है और मा बुद्धि प्राप्ति स्थूल और सूक्ष्म इन्द्रिया द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता ।

सत पलटूसाहव निगुण स्वरूप में पच्यो आकाश चन्द्र और मूय का अभाव कहते हैं । यह निगुण स्वरूप अचरितारी नहा है । वह आकार और निराकारिता से रहित है । अथ सत्ता के समान सत पलटू साहव ने भी ब्रह्म को प्रादि अत और मन्य एव रूप रग से मुक्त कहा है । ब्रह्म जगत् की अनेकमुखी सत्ता के अंतराल में अपने का छिपाये हुए है । अत जागतिक पदार्थों का तो ज्ञान होता रहता है किन्तु ब्रह्म का ज्ञान नहीं होता । आकारा के मूल में ब्रह्म निराकार होकर स्थित है । इसी हेतु आकारों का ज्ञान तो सहज हो जाता है परन्तु निराकार ब्रह्म का प्रत्यक्ष नहा होता^{१६} ।

सत जगजीवनसाहव ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता में चन्द्र मूय प्रादि तथा सभी भौतिक व्यवहारों का अभाव मानते हैं । वह माया के विकारा से गुद्ध और अविद्यादि से मुक्त है । उसका निगुण स्वरूप इन्द्रिय ज्ञान से परे है ।

६४ जन निरयुज तन सरयुज साई ।

केवन तुम परतापे हो ।

रमिता राम तुम अन्तरनामी ।

सोह अनपा जापे हो ।

अद्वैत मद्र निरतर बासी ।

प्रग रूप निज ढाने हो । भीष्मासाहव की शानी । शब्द ११ ।

६५ दृष्टि पुष्टि कवनी नहि आवत जनम मरन जुग वपुत निरानी ।

अग्रम अगोचर वमत निरतर जाने सीम न पावा पानी ।

निगु न निर्विकार सुत्सागर अपरपार अखन्ति बानी ।

सूर ध धतहि सुस्ता साहव अविगत अकथ कवानी ।

निरकार निरुपाधि निरामय भीष्मा रग न रूप निरानी । भीष्मासाहव की शानी । मेन्बानी ।

६६ जन्म धरनी नाहि अवामा ।

चाँ सूरज नहि नाणी परगामा ।

निराकार न उर्ण अकारा ।

सत्य शब्द नाही बिलारा ।

प्राप्ति अन्न अरु मध्य नहि रग रूप नहि रेख ।

गुप्त बाल गुप्तै रही पलटू सापा दर । पलटूसाहव की शानी । भाग ३ । शब्द ७६ ।

अतः उसका स्वरूप बाणो द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता है^{१०} ।

पिछले पन्ना पर हम सन्न काय में ब्रह्म के निगुण स्वरूप पर विचार कर चुके हैं। अब हम यहाँ पर आचार्य गङ्गुल आर सत्ता के ब्रह्म सम्बन्धी विचारों की तुलना करेंगे। सबसे पहले हमने ब्रह्म और सृष्टि रचना का प्रसंग लिया है। उस प्रसंग में हम कह चुके हैं कि आचार्य गङ्गुल के अनुरूप सत्ता भी ब्रह्म में सृष्टि होना मानते हैं और निमित्त एव उत्पादन कारण रूपा की अभिन्नता मानते हैं। अतः आचार्य गङ्गुल और सत्ता के मतों में अन्तर्भेद है। जिस प्रकार कुम्हार निमित्त और मिट्टी चक्र आदि उपादान कारण हैं, उसी प्रकार ब्रह्म सृष्टि का निमित्त और पंच भूतात्मक तत्व रूप में उपादान कारण भी हैं। इस सम्बन्ध में हमने सत्ता कबीरदास, सत्ता दादूदयाल और सत्ता जगजीवन साहब का उल्लेख मुख्य रूप में किया है। पुनः हमने सत्ता काव्य में ब्रह्म की सृष्टि के सृजक रूप में शक्ति किया है और विवक्त की सम्भावना का उल्लेख किया है। सृष्टि माया का काय है और माया ब्रह्म का विवक्त रूप इस सम्बन्ध में हमने सत्ता कबीरदास सत्ता दादूदयाल, सत्ता रदास सत्ता नानक साहब सत्ता सुन्दरदास सत्ता मजूकदास सत्ता परमजीवस, सत्ता चरनदास, सत्ता पलट्ट साहब के मत उद्धृत किए हैं। इन सत्ता ने सृष्टि को माया का काय माना है और सृष्टि को ब्रह्म का विवक्त रूप।

फिर इस प्रकरण में हमने ब्रह्म के अवतार पक्ष का विवेचन किया है और निश्चित किया है कि ब्रह्म सगुण रूप में लोक और मयादा की रक्षा के लिए एव भक्त की रक्षा और उद्धार के लिए अवतार लेता है। किन्तु सत्ता में अवतार भावना गौण है और भक्ति का अग्र हो कर सत्ता द्वारा स्वीकृत हुई है। इस प्रकार आचार्य गङ्गुल ने भी गाता में भाष्य के उपोद्घात में देवकी के गम से श्रीकृष्ण का अवतार हाना कहा है। किन्तु आचार्य गङ्गुल का लक्ष्य अवतारवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करना नहीं। अतः हमने ब्रह्म के निगुण—निराकार और निर्विकार स्वरूप का बखान किया है। अतः यहाँ सत्ता और गङ्गुल के विचारों का साम्य प्रकट होता है।

हमने सत्ता की ब्रह्म भावना में देखा है कि इन्होंने सगुण और निगुण

१० ऐन तिन तई नहिं भाई सति गन मान ।

चमक भनमन रूप निरमन नगुन निर्वान ।

सदि बुझी नहिं भाई तीन भापै धान ॥

रूपों का अभेद माना है। वही ब्रह्म वा सगुण और निगुण स्वरूपों से पथक माना है। सत्ता के ये सिद्धांत भी गान्धर सिद्धांत के विरोधी नहीं हैं। ब्रह्म का स्वरूप के प्रसंग में हम यह चुके हैं कि आचार्य गान्धर ने वस्तुतः ब्रह्म के दो रूप ब्रह्म विद्या और अविद्या के त्रिपथ विभाग के अनुसार माने हैं। सत्त्व रज और तम गुणों का अधिष्ठाता भी निगुण ब्रह्म है। ब्रह्म ही जगत का रूप भी है। ब्रह्म सगुण और निगुण दोनों रूपों से भिन्न कहा है वहाँ सत्ता का लक्ष्य ब्रह्म के स्वरूप की अनिवचनीयता प्रतिपादित करना ही है।

अब हम कुछ अर्थों पर विचार करेंगे। सत्ता के सम्बन्ध में हम यह शक्य कर सकते हैं कि सत्ता काय में ब्रह्म के सच्चिदानन्द स्वरूप का कथन नहीं हुआ है। किन्तु प्रस्तुत प्रकरण में ही लिए हुए पिछले उद्धरणों में ब्रह्म के इन तीनों स्वरूपों के लक्षण मिलते हैं। ब्रह्म नित्य है अतः वह सत्ता है। सत्ता ने ब्रह्म की नित्यता का प्रतिपादन दृढता के साथ किया है। ब्रह्म सृष्टि का कारण है अतः वह सत्ता है। ब्रह्म स्वरूप में सुख और आनन्द सम्बन्धी स्थल पिछले उद्धरणों में आ चुके हैं।

सत्ता ने सृष्टि के सम्बन्ध में यह प्रायः कहा है कि ब्रह्म ने सृष्टि रचकर अपने को उसके बीच में छिपा लिया है। इस सम्बन्ध में हम उपनिषदों में कथित ब्रह्म की ईक्षण और प्रवेश क्रियाओं को महत्त्व देते हैं। सृष्टि प्रकरण में हम यह चुके हैं कि अद्वितीय सदस्वरूप आत्मा अथवा ब्रह्म ने ईक्षण किया और तदनन्तर वह सृष्टि पदार्थों में प्रवेश कर गया। अतः सत्ता का यह मत भी सृष्टि सिद्धांत के विपरीत नहीं है। सत्ता में भी ब्रह्म को अन्तर्गामी कहा है। अस्तु ब्रह्म अथवा आत्मा वा मायिक पदार्थों में अपने को छिपा लेना उपनिषदा और आचार्य शङ्कर के सिद्धांत के प्रतिबल नहीं है वरन् सगत है।

सत्ता ने कहा है कि ब्रह्म ने अपने ही स्वरूप से सृष्टि की रचना की। यह बात भी सिद्धांत सगत है क्योंकि आचार्य शङ्कर के समान ही सत्ता का लक्ष्य अद्वैत निगुण ब्रह्म है। ब्रह्म के अतिरिक्त जब दूसरा तत्त्व नहीं है तो सृष्टि रचना के लिए सत्ता दूसरे तत्त्व की स्थिति कैसे स्वीकार कर सकते हैं। दूसरी मुरय बात यह है कि आचार्य शङ्कर के समान ही सत्ता यह नहीं मानत कि ब्रह्म ने वस्तुतः कोई सृष्टि की। सृष्टि की रचना वस्तुतः किसी दूसरे तत्त्व से नहीं हुई है वरन् अद्वैत ब्रह्म ही सृष्टि रूप में व्यक्त हो गया है। ब्रह्म के स्वरूप से सृष्टि रचना होना ब्रह्म के अन्त स्वरूप की प्रतिष्ठा का प्रतिपादक सिद्धांत है। अतः यहाँ भी आचार्य शङ्कर और सत्ता में विरोध नहीं है।

सत्ता व अनुसार ब्रह्म न तो पदार्थों का रूप है और न पदार्थ सत्ता म ब्रह्म का कोई सम्बन्ध है। फिर भा ब्रह्म हा उन पदार्थ सत्ता का कारण कहा गया है। सत्ता की यह भावना ब्रह्म तन्मा के अतगन विवक्त सिद्धान का रूप है। गीता व नवें अध्याय म इस प्रकार का बखान भी हुआ है। अन सत्ता का यह मत भी गङ्गुर सिद्धात के अनुद्गल है।

सत्ता ने निगुण ब्रह्म बोधक गणों का जो प्रयोग किया है उनम कुछ तो सगुण नाम हैं—जस गोपाल आदि और कुछ नाम उपनिषत् सम्मत हैं—जसे गुड निगुण इत्यादि। कुछ गण विनोपण्यायक हैं—जसे अलख अरूप अनानि अनत आदि। य गण भी सिद्धात म बाधक नहा है। य विवक्छूनामलि म प्रयुक्त अनेक विगणणा व अनुद्गल है।

सत्ता द्वारा सगुण स्वरूप बाधक नामों का प्रयोग हुआ है। किन्तु ये नाम निगुण ब्रह्म स्वरूप के ही प्रगासक है। श्री विचारदास का बत्रार बीजक भी भूमिका म सत्त बबीरत्तास क सम्बन्ध म निया हुआ यह मत सभी सत्ता के सम्बन्ध म उपयुक्त हो सकता है —

‘राम गारगपाणि यादव राम गोपाल आदिक साम्प्रत्याधिक नाम तथा साहब राउर खसम आदिक नाम उक्त प्रत्यक गुड बतन को बाध कराने के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं।

सभी सत्ता द्वारा प्रयुक्त नामावली के सम्बन्ध म हम इस मत से सहमत है।

निगुण स्वरूप क सम्बन्ध म सत्ता न कहा है कि न वहाँ सूय है न चन्द्र है, न दिन है और न रात। इस भावना का मून हमका स्वतास्वरूप उपनिषत् म मिलता है १०। सत्ता ने ब्रह्म के लिए निरजन शून्य का प्रयोग किया है इसका प्रयोग भी स्वतास्वरूप उपनिषत् म हुआ है ११।

सत्ता न ब्रह्म का नट मयवा बाजीगर कहा है। गङ्गुर न इस सम्बन्ध म

६८ न मत्र सुषो भाति न च त्तरक,

नेना त्तिने भाति कुताऽप्यनग्निः ।

तमेव मानमनुष्मि न मव,

तस्य भासा मत्रमि विभाति । स्वतारवर उपनिषत् । ६। १४।

६९ निषत्त निष्प शान्त निरवय निरवजल ।

अमृतस्य पर संतु स्वधनमिवातनन् । स्वतारवर उपनिषत् । ६। १६।

मायावी का दृष्टांत ब्रह्मगूत्र भाष्य में किया है * । सन्तों ने ब्रह्म के लिए 'पूरा' शब्द का प्रयोग किया है । इसने लिए पूरा शब्द हमसे उचितता में मिलता है ** ।

अब हम सत काव्य में ब्रह्म के गूण स्वरूप का वर्णन करेंगे । प्रस्तुत प्रबंध के विज्ञानात् त शीर गूयादत प्रवरण। म हम बौद्ध मन की महायान शाखा के अतगत योगाचारा शीर माध्यमिक बौद्ध दाना का उत्पन्न कर चुके हैं । उक्त प्रवरणों में हम बौद्ध मतानुसार ब्रह्म त सिद्धांत के स्वरूप का अवलोकन बौद्ध दान के क्षेत्र में कर चुके हैं । * हा प्रवरण। म हम आचाय गङ्कर द्वारा इन सिद्धांतों का महन भी प्रस्तुत कर चुके हैं । * से आगे हम गूय सिद्धांत का विकास अवर्द्ध पात हैं । यद्यपि यदा-कदा हम गूय शब्द का प्रयोग ब्रह्म के लिये होता हुआ देखत हैं । देव्यधवगीय म गूय की सांखी दुर्गा का उल्लेख हुआ है *२ । विष्णु सट्टन नाम म विष्णु का एक नाम गूय भी कहा गया है *३ । इस प्रकार हम गूय शब्द का प्रयोग विष्णु के लिए होत देखत हैं । इस सम्बंध में अधिक प्रकाश नहा डाला जा सकता क्योंकि आस्तिक दशन म गूय स्वरूप ब्रह्म का ग्रहण बहुत ही कम हुआ है । इस सम्बंध म हम केवल निगुण सत्ता के काव्य को ही महत्त्वपूर्ण मान सकत हैं । यहा हम यह निश्चित करने का प्रयत्न करेंगे कि सन्तों द्वारा श्रुत गूय बौद्धानुमोक्षित शून्यवाद का अंग नही है वरन निगुण ब्रह्म शीर समाधि में तुरीयावस्था की अनुभूति का द्योतक है । यहाँ हम यह निश्चय करेंगे कि सन्तों का गूय भावना म ब्रह्म की नित्यता का निराकरण नही होता वरन इससे उसकी अनिवचनीयता ही प्रकाशित होती है । इस सम्बंध म यहाँ हम गूयादत दान की पुनरावृत्ति करना उचित नही समझत क्योंकि गूयादत दान से सन्ता द्वारा प्रतिष्ठित गूय का नाम मात्र का ही सम्बंध है ।

७० लोकेऽपि द्वाद्विपु च मायायात्पि च स्वरूपानुपमनैव विविना हस्यवरात् सत्यो
दश्यते तदैकरिम्नपि ब्रह्मणि स्वरूपानुपमनैव वाऽनेकारा सधिभविष्यतीति ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।१।२८ ।

७१ पूणगिः पूणमन् पूणां पूणमुच्यते ।

पूणस्य पूणमाग्य पूणमेवावशिष्यते ॥ शान्ति पाठ । छाणोग्य उपनिषत् ।

७२ मन्त्राणां मानिना देवी शान्ता हान रूपिणी ।

शानाना चिमयान्ता शून्याना शून्य सा चण्ण । देव्यधवशी । २४ ।

७३ सवणवर्षो हेमागो वरागरचन्नागनी

वीडा विषय शून्यो धृताशगेरचल । श्री विष्णु मन्त्रनाम । ६२ ।

सत्त आस्तिक हैं क्योंकि वे ईश्वर और उसके द्वारा जगत की सृष्टि मानते हैं। जीव को माया के बंधनों में बंधा मानते हैं और भक्ति ज्ञान आदि साधनों के द्वारा मोक्ष होना मानते हैं। ईश्वर पर सत्ता की आस्था दृढ़ है अतः वे नास्तिकों के गूय के मानने वाले नहीं हो सकते। इस सम्बन्ध में प्रस्तुत प्रबंध के सन्तों के अनुसार ब्रह्म, जीव माया, सृष्टि और समस्त साधना पक्ष के प्रकरण प्रमाण हैं।

सत्त कबीर दास के अनुसार पारमार्थिक, निगुण और अतिवचनीय ब्रह्म की अनुभूति गूय मण्डल में होती है। इस निगुण ब्रह्म की अनुभूति समाधि में होती है। सत्त कबीर ने गूय गान से प्रायः समाधि द्वारा निगुण ब्रह्म की अनुभूति उपलब्ध की है। सत्त कबीर ने महज गूय में अथवा स्नेह यत्न किया है ७४। गूय मण्डल में सत्त कबीर ने अनादित नाद का अर्थ ही कहा है ७५। गूय मण्डल में ही उन्हें परम उपाति परमा अथवा ब्रह्म का साक्षात्कार होना कहा है। इससे स्पष्ट है कि सत्त कबीर ने समाधि की अवस्था में ही ब्रह्म की अनुभूति होना माना है ७६। गूय मण्डल में निष्कमता और पान की प्राप्ति होना कबीर ने माना है। अतः इससे भी स्पष्ट है कि सत्त कबीर गूय मण्डल का लक्ष्य समाधि ही है ७७।

सत्त रदास गूय को निर्विकार अविनाशी अथवा नित्य मानते हैं। उस गूय को ही वे सत्य समझते हैं और जीवमुक्ति की अवस्था में गूय की अनुभूति मानते हैं ७८। सत्त कबीर के समान ही सत्त रदास भी गूय मण्डल में अपना गिवांस स्थान बताते हैं ७९। अतः निर्विकल्पक समाधि ही सत्त रदास के अनुसार गूय गान से निदिष्ट की गई है।

सत्त परमदास ने गूय महल में बिना तेल और बत्ती के दीपक जलाना

७४ सद्गुरु सुनि की नेहरी गगन महल सिरमौर। कबीर अथावनी। पन् १८।

७५ सुनि महल में बन्ना बाजे तप्रा मेरा मन नाचे। कबीर अथावनी। पन् ७२।

७६ सुनि महल में सोधिने परम चोनि परकाम। कबीर अथावनी। पन् १२१।

७७ निह बस नगे ज्ञान नन सुनि महल माहि रे।

औधून योगी आना कौश पुणै सजमि नाहि रे।

कबीर अथावनी। पन् ३६।

७८ सत्त अनीत ज्ञानपन बजिन, निर्विकार अविनाशा।

बह रंगम सज्ज सुन्न सन, निवनमुक्त निधि कल्पे।

रदास की बानी। पन् ५३।

७९ सुनि महल में मेरा बाम्बा, नाउे तिर में रही उदासा।

रंगम की बानी। पन् ८।

कहा है ^{८२} । इसी प्रकार वे गुण महत्त्व म प्रकृत वरसने की बात कहते हैं । इससे स्पष्ट है कि इनका भी समाधि को लक्ष्य करो तूय शब्द का प्रयोग हुआ है ^{८१} ।

सन्त दादूदयाल ने भी तूय शब्द से समाधि की अनुभूति ही उपलब्धि की है ^{८३} । सत नानक साहब के अनुसार भी तूय समाधि का ही नाम है ^{८३} । सत सुंदर दास ने भी समाधि की स्थिति में तूय की अनुभूति होना कहा है । अतः इनके अनुसार भी निर्विकल्पक समाधि ही तूय है ^{८४} । सत गरीबदास ने तूय सिंहासन को ही प्रमत्त भासन कहा है । इनके अनुसार तूय शब्द समाधि का ही वाचक है ^{८४} । सतयारी भी तूय में योगि का दान होना मानते हैं । अतः यहाँ भी समाधि का ही लक्ष्य किया गया है ^{८५} । सत गुलालसाहब ने तूय निखर में कमल का फूलना कहा है । इनके अनुसार भी तूय शब्द से समाधि का ही निश्चय होता है ^{८५} । बिहार बाबू सत दरिया साहब तूय में ज्ञान की उल्लिखि होना मानते हैं । इनके अनुसार भी तूय शब्द समाधि का वाचक है ^{८६} । सत भीखामाहब के मत में भी तूय शब्द

८० सुनि मदन में तीपक बारी, सिता तेल बाती ।

धरमनाम की बानी । पृ० १० ।

८१ सुन मदन से अमल बरसै प्रेम अनल होत माध नहार ।

धरमनाम की बानी । पृ० ४ ।

८२ सदा सुनि मन राखिये, इन दुषो क माणि ।

लै समाधि रस पीजिये तर्क काल में नाहि ।

दादूदयालकी बानी । पैको अंग ।

८३ जत्र आपन धारो सुन समाधि । तब बैर विरोध किसु मणि कमानि ।

सुन्दर गुणका ।

८४ सब छटिकाय पुनि धर्य में समाव तर्वा ।

समाधि लगाय करि आस माण्यितु है । सुन्दर प्रथावनी ।

८५ सुन सिद्धामन अमर आसन अनरस दुष्प निबान ह । गरीबनाम की बानी । अक्षवेणी १११

८६ आसि कान नाक मुह मूत्रि प निहार देसु

सुन में जोति या ही परगण गुन हान है । यारीमात्र्य की रत्नावली ।

८७ सुन मिखद सरोत पुलो अक नाहिजाव ।

गुलालसाहब की बानी । शब्द । २ ।

८८ ज्ञान का घोड़ला मुन्न में दौलिया, सुन में सुरति है शब्द सारा ।

बिहार बाबू सत दरिया साहब की बानी । शब्द ३ ।

सोलहवा प्रकरण निर्गुण काव्य में सृष्टि का स्वरूप विवर्त भावना

‘निर्गुण काय में माया अथवा अविद्या’ प्रसंगों में हम विस्तारपूर्वक विचार करते हुए यह चूक है कि आचार्य शङ्कर और सत्तो न संसार का माया जनिन कहा है। इसी प्रसंग में हम यह भी यह चर्चा है कि आचार्य और सत्त दोनों न ही माया में मिथ्यात्व का आरोप किया है। उस सम्बन्ध में हम निर्गुण काय में ब्रह्म का स्वरूप प्रकरण ‘निर्गुण काय में जीव अथवा आत्मा प्रकरण एवं माया प्रकरण में विवर्त भावना का उल्लेख कर चर्चा है। हम यहाँ सृष्टि व सद्म में निर्गुण काय में विवर्त भावना का स्पष्टीकरण करते हुए सन्तों द्वारा प्रतिपादित विवर्त सिद्धान्त का विवेचन करेंगे।

‘विवर्त शब्द का उल्लेख हम सबसे पहले श्वेताम्बर उपनिषद् में पाते हैं। उक्त उपनिषद् में कहा गया है कि जिसके द्वारा सबदा यह सब जगत् व्याप्त है तथा जो पान स्वरूप बाल का भी वर्त्ता निष्पाप गुणवान और सबन है उसी स प्ररित होकर यह पथ्वी, जल अग्नि वायु एवं आकाश रूप कम (जगद्रूप से) विवर्तित होता है’। आचार्य शङ्कर ने इस स्थल पर विवर्त शब्द का भाष्य करते हुए कहा है कि जो ईश्वर प्ररित प्रसिद्ध कम है वह माना म सप के समान जगद्रूप से विवर्तित होता है और वह कम पथ्वी जल तेज वायु और आकाश रूप अर्थात् पथ्वी आदि से युक्त पञ्चभूतात्मक है। आचार्य शङ्कर ने यहाँ विवर्त शब्द और सिद्धान्त की व्याख्या और व्युत्पत्ति का विचार नहीं किया है। माला म सप भ्रम का दृष्टांत अविचारमकता

१ तेनेशान कम विवर्तने ह,

पथ्वीतेनोऽनिर्गुणानि मिन्यम । श्वेतारम्बर उपनिषद् । ६।२।

श्रीर मिथ्यात्व का सूचक है। इस म्यल पर दो तत्व स्पष्ट हैं—अधिष्ठान स्वरूप ब्रह्म श्रीर ब्रह्म क अधित पय्वा, जल अग्नि वायु एव आकाश रूप कम। अधिष्ठान स्वरूप ब्रह्म कत त्व भोक्तत्व स रहित है। ब्रह्म यत् सट्टि करे तो उसम गुण श्रीर विकारा का ममन्वय हागा। निगुण ब्रह्म विकारा श्रीर गुणा स रहित है। अत ब्रह्म में सट्टि का कत त्व कथन करना गड्ढर श्रीर सत्ता के सिद्धांत का विरोधा मत हागा। इस सम्बन्ध म श्वेताश्वर उपनिषत् में ही कहा गया है कि ब्रह्म स्वरूप म शरीर रूप काय श्रीर कारण रूप इन्द्रियां नही हैं। ब्रह्म अद्वितीय है ता भी उसकी परा शक्ति अनेक रूपात्मक है^२। ब्रह्म क ज्ञान श्रीर बल स्वाभाविक हैं^३। इस प्रकार ब्रह्म म अवयवत्व का निषघ होता है। अवयवत्व का निषघ होने से प्रकारान्तर स ब्रह्म के कत त्व की भी अस्वीकृति हा जाती है। किंतु उपयुक्त प्रमाणा स यह निश्चित है कि निरवयव होन पर भी ब्रह्म अपनी स्वाभाविक शक्ति स निया करता है। 'निर्विकार श्रीर निगुण ब्रह्म सट्टि किस प्रकार करता है इसी विषय में विद्वत् भावना की प्रतिष्ठा अद्वैत वचान्त म की गई है। श्वेताश्वर उपनिषत् में कहा गया है कि वेद, यज्ञ अतु अत भूत, भविष्य वतमान तथा वदिक ज्ञान मामावी ईश्वर अशर स उत्पन्न करता है। प्रपच में ईश्वर माया से अय सा हाकर बंधा हुआ है^४। आकाश गड्ढर क अनुमार 'प्रकृति माया है श्रीर उसका अधिष्ठाता सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म उपाधिवग होकर मायावी है^५। इस प्रकार विद्वत् भावना का न्वदन उपयुक्त दाना वाता से यहाँ स्पष्ट किया

२ तन्स्वरूपमित् प्रेरित कम क्रियन् इति। प्रतिद्वयेदेवगारवप्रेरित कर जगत्प्रभवा शिवन् इति यपुनस्तत्रम पश्वत्तजोऽनित्यानि पृथिव्याभूतपञ्चकम। श्वेताश्वर उपनिषत् भाष्य। ६।२।

३ न तस्य काय कारण च निम्न

न तन्मन्दरात्म्यधिवश्च दश्यत।

परास्य शक्तिर्विक्रियैव अ यत,

रसामाविशः शानवनविशः च। श्वेताश्वर उपनिषत्। ६।३।

४ छन्नासि यथा क्रावा अतानि

भूत मय्य दन्व वेण वन्ति।

अस्मा माया सत्तद विश्वमेव,

एतिमद्वैतान्यो नयन् सन्निरद। श्वेताश्वर उपनिषत्। ४।६।

५ प्रकृतमायाव तदधिष्ठाकृति चान्तरूप ब्रह्मगुणदुपाधिविज्ञानादिव।

श्वेताश्वर उपनिषत्। सतन्व भाष्य। ४।१०।

गया है। कारण होते हुए भी वाय की सत्ता से शून्य अन्वय रत्ता है। वाय की स्थिति ब्रह्म में ही है अथवा ब्रह्म ही सम्पूर्ण वाय रूप गण्टि का आश्रय है। माया के स्वरूप का प्रतिष्ठित करने हुए हम माया की शून्य में आश्रयता का विस्तृत उल्लेख कर चुके हैं। अतः हम यहाँ यह निर्दिष्ट करते हैं कि ब्रह्म के अधिष्ठान को माया अथवा गण्टि का वह मिय्या हा क्या न हा अधिष्ठात्मक होकर ब्रह्म में वतमान है। यही विवत भावना का स्वरूप है। उक्त नियम के अनुसार हम विवत गण्टि की 'यावहारिक' व्याख्या 'म प्रसार कर सकते हैं कि 'वत गण्टि म' वि विगणपायक प्रत्यय लगा कर विवत गण्टि 'युत्पन्न' हाता है एव इसका 'यावहारिक' अर्थ हाणा गण्टि माया, अधिष्ठा, अथवा अज्ञान ब्रह्म में विगण रूप से वतमान है अतः ये ब्रह्म के विवत रूप हैं। विगण रूप से वतमान होने का प्रयाजन इस प्रकार स्पष्ट होता है कि माया की ब्रह्म में पारमार्थिक स्थिति नहीं है। माया के पारमार्थिक सत्य न होने के कारण उसकी वास्तविक स्थिति नहीं है। परन्तु यदि माया की स्थिति न होती तो जीव का 'यावहारिक' बन्धन भी न होता। अतः यहाँ माया की अनिवचनीय स्याति की स्वीकृति करते हुए हम यह कहना पड़ेगा कि माया की विगण्टि स्थिति ब्रह्म में है। बन्धन रूप होते हुए भी अद्रुतात्म जान से माया की निवृत्ति होती है किन्तु ब्रह्म में वह फिर भी वतमान रहती है क्योंकि यक्ति की माया का ब्रह्म जान से नाग हो जाने पर भी समष्टि में तो माया अवगण्टि ही रहती है। अतः इस प्रकार माया के विवत रूप की व्यावहारिक 'याख्या' हुई। यहाँ सण्टि को भी माया का स्वरूप मान कर विवत सिद्धांत की 'याख्या' की गई है।

गीता में कहा गया है कि यद्यपि भगवान का कोई कर्तव्य सत्कार में नहीं है और न उसे कोई अप्राप्त वस्तु ही प्राप्त करना है तो भी वह काम करते हैं। सण्टि भगवान का काम ही है एव इस काम का भगवान किसी प्राणा और उद्देश्य एव प्राप्तित के बिना करते हैं। ईश्वर सण्टि आदि कामों को आलस्य रहित होकर करता है। ईश्वर काम का अधिष्ठान है। उसके चतःप से ही प्रेरित होकर प्राणी काम करता है^७। अतः काम का अधिष्ठान भी ईश्वर ही

६ न मे पायास्ति कर्तव्य त्रिषु लक्षण्यु किञ्चन ।

मानवान्मवाप्तय वन एव च कामाणि ॥ गीता १३।२२।

७ यन्ति ह्यय न कर्तेय तानुक्रमयन्तद्रित ।

मम बतमानुबन्धत मनुष्या पाप सवरा ॥ गीता १३।२३।

है। किन्तु यहाँ पुनः कहा जाये कि ब्रह्म मया कि ब्रह्म की पारमार्थिक स्थिति नहीं है तो गीता में प्रतिपादित ब्रह्म चतुर्थ और कम सिद्धान्त में अतन्त्रविरोध होगा। इस सम्बन्ध में कहा जाएगा कि यद्यपि ब्रह्म कम का अधिष्ठान है तो भी कम के विकारा अथवा फल का वह नहीं भागता। गीता में कहा गया है कि जिस क्रियात्मकता का आरोप हम ब्रह्म में करते हैं वस्तुतः वह ब्रह्म की क्रिया सावयव क्रिया नहीं है। अनादि प्रकृति ही ब्रह्म के अधिष्ठित होकर अनेक विधि क्रिया करती है^८। ये कम भगवान् के स्वरूपमय अज्ञ इस लिए कहा होते कि वे लौकिक प्राणी की भाँति कम में आसक्त नहीं होते^९। साधारण प्राणी फल की आशा से कम करता है परन्तु भगवान् निरासक्त एव उपासीन होकर जगत्प्राणियों के कारण है। यहाँ हमने ब्रह्म के कर्तृत्व के दाना पन्ना का अध्ययन किया है। प्रथम यह है कि ब्रह्म चतुर्थ स्वस्व होकर सृष्टि आदि का कारण है और द्वितीय यह कि ब्रह्म निर्विकार निगुण है अतः उसके द्वारा क्रिया अथवा कम का साध्यता का कथन असंगत होगा। यहाँ कम सिद्धांत में यह विरोध देखते हैं कि वही ब्रह्म कर्तृत्व का रूप है एव वही अकर्तृत्व का। दो विरोधी तत्त्वा का एक साथ रहना असाध्य है किन्तु इस सम्बन्ध में ऊपर प्रकृति का ब्रह्म के अधिष्ठित होकर कम करना कहा गया है और ब्रह्म में अकर्तृत्व का कथन इसलिए संगत कहा गया है कि ब्रह्म कम फल से उपासीन है। अतः सृष्टि जैसे कर्मों का अधिष्ठाना होने हुए भी वह भौतिक मुख-दुःख आदि द्वांदा से रहित है।

जगत प्रकृति एव माया का कारण होते हुए भी ब्रह्म जगत और प्रकृति के कर्मों से अस्पृष्ट है। गुणा और विकारा का कारण होने हुए भी ब्रह्म न तो विकारा और गुणा का स्वरूप ही है और न विकारा और गुणा के द्वारा प्रभावित या दूषित ही किया जाता है। गीता में कहा गया है कि अन्वयक्त ब्रह्म में समस्त प्राणी स्थित हैं किन्तु ब्रह्म स्वतः प्राणी रूप जगत में स्थित नहीं है^{१०}। प्राणि रूप जगत में ब्रह्म इसलिए कहा स्थित है कि ब्रह्म विभागी और सदा एव व्यावहारिक अनेक रंगों द्वारा लुगा भी नष्ट जा सकता। यद्यपि

८ प्रकृत्यवचकमोणि क्रियमाणानि सदा । गीता । १३।१६।

९ न उ मां लानि कदापि निकनन्ति धननय ।

उपासीनत्वमीलमयस्त तेषु कमपु ॥ गीता । १६।१६।

१० मया तानि सव जगत्सममूर्तिना ।

गस्थानि सवभूतानि त आद तववर्धिन ॥ गीता । १६।१८।

प्राणिया को परमात्मा ही प्रकट करता है किन्तु प्राणिया में उसकी स्थिति नहीं हो सकती क्योंकि परमात्मा निरुपाधिक सत्य है और प्राणी का जन्म उपाधि से होता है अथवा परमाथत तो ब्रह्म ही अस्त सत्य है और उसमें प्राणी भेद एव वण य यग भेद नहीं उत्पन्न हो सकत^{११} । जिम प्रकार वायु आकाश म स्थित रहती है और आकाश म ही विचरण करती है किन्तु आकाश वायु के द्वारा विवृत नहीं होता उसी प्रकार भायिक सृष्टि ब्रह्म के स्वरूप म प्रतिष्ठित होते हुए भी ब्रह्म को अपने गुणा विकारा और प्रकृतिया स प्रभावित नही करती^{१२} । गुणो और विकारा स रहित होने हुए भी भगवान प्रकृति को अपने अधीन रखकर बार बार सृष्टि की रचना करत हैं^{१३} । फिर भी यह रचना विकार दोष ब्रह्म पर धारायिन नहीं है । समस्त त्रिया प्रकृति के गुणा से होती है । तब यह प्रश्न होगा कि जब प्रकृति ही सृष्टि त्रिया करती है तब ब्रह्म की अधिष्ठानरूपाता के स्वीकार करने की क्या आवश्यकता है ? गीता म कहा गया है कि प्रकृति ब्रह्म की सत्ता से स्वतंत्र नहीं है । अत ईश्वर की अध्वक्षता में प्रकृति जड और चेतनात्मक सृष्टि को उत्पन्न करती है । ईश्वर की आश्रिता प्रकृति जड एव चेतनात्मक जगत के रूप म परिवर्तित भी जाती है^{१४} ।

ब्रह्म वस्तुतः मन अथवा वाणी द्वारा कथित एव अनुभूत नही है क्योंकि मन वाणी एव इन्द्रिया विकार जय हैं । गीता मे इसी हेतु ब्रह्म का स्वरूप जयन करते हुए कहा गया है कि ब्रह्म न सत और न असत तो भी उपाधि के कारण ब्रह्म के स्वरूप म सबत्र हाथ, पर, मुह, कान और नाक कहे गए हैं^{१५} । ब्रह्म म समस्त इन्द्रिया और गुणा का आभास होता है परंतु वस्तुतः

- ११ न च मारयानि भूतानि परय मे योगमैश्वरम ।
भूतभन्न च भूतस्थो ममा मा भूतभावन ॥ गीता । ६।५।
सर्वत पाणिपा सभनोऽद्विशिरोमुपम ।
सर्वत श्रुतिमन्लोके सर्वक्षत्रय ति ठति ॥ गीता । १३।१३।
- १२ यथाकारारिथतो नित्य वायु सश्रगो मज्जान ।
तथा सर्वाणि भूतानि मारयानो युपधारय ॥ गीता । ६।७।
- १३ प्रकृति स्वामवशम्य विसृजामि पुन पुन ।
भूतग्राममिम क रनभवरा प्रकृतैवरात ॥ गीता । ६।८।
- १४ मयाध्यक्षेण प्रकृति स्रयते सचराचरम ।
हेतुनानेन कौनेय जगद्विपरिवर्तने ॥ गीता । ६।१ ।
- १५ अथ यत्त प्रवक्ष्यामि यमा वान्तमस्तुत ।
अनात्मित्वर ब्रह्म नमत्त नामतु त्ते ॥ गीता । १२।१२।

वह इन्द्रिया और गुणा स रहित है । वस्तुतः गुण और इन्द्रिया ब्रह्म म श्रोपाधिक ही हैं । परमायत ब्रह्म निगुण है वह क्रिया और लोक मे भासक्त नहीं हाता । फिर भी ब्रह्म उपाधिवा गुणा का भोक्ता है^{१६} । अन इस प्रकार हम ब्रह्म में उपाधि का विवत मानत हैं ।

अब हम ब्रह्म सूत्रा म तथा शङ्कर क अनुमार विवत भावना का विवेचन करत हैं । ब्रह्मसूत्रा म ब्रह्म को नाम, स्थिति और प्रलय का कारण कहा गया है । यदि ब्रह्म का सावयव माने ता सृष्टि का विरोध हागा क्योंकि उसको उपनिष्ठा म अवयवा स रहित कहा है^{१७} । आचार्य शङ्कर का मत है कि अविद्या कल्पित रूप भेद स वस्तु सावभव नहीं हाती । तिमिर रोग से जिसके नेत्र का प्रकाश नष्ट हो गया है उसका दष्टि म चन्द्रमा क अनक सिखाई दन पर भी वास्तव म चन्द्रमा अनक नहा हात । अविद्या स कल्पित नाम रूप लक्षण, यावृत्त और अव्यावृत्त स्वरूप और तत्त्व व अतत्त्व स अनिवचनीय रूप भेद द्वारा ब्रह्म परिणामाणि सब व्यवहारा का स्थान होता है, परन्तु पारमाथिक रूप से ब्रह्म सर प्रवहारा स अनीन और परिणाम नून्य है । अविद्या कल्पित रूप भेद केवल बाचारम्भण मात्र है अन सट्टि कारण होने हुए भी ब्रह्म का निरवयवत्व बाधित नहा हाता^{१८} । आचार्य शङ्कर न निगुण एव त्रिविकार ब्रह्म में अविद्यारमक सट्टि की त्रिवलरूपना का वणन करत हुए कहा है कि अपने स्वरूप का नाग किए बिना एक ही ब्रह्म म अनेक प्रकार की सट्टि रचना क सम्बन्ध म विवादा करना अनुचित है । एक स्वप्नपुटा आत्मा में बिना स्वरूप का नाग किए हुए ही अनेक प्रकार की सृष्टि श्रुति म कही गई है । स्वप्न म रथ नहीं है छोडे नहा है माग नहीं है किन्तु स्वप्नपुटा रथा का घोडा का और उनक भागा का निर्माण करता है । लोक में भी दवता आनि म और मायावा आनि म स्वरूप का नाग त्रिये बिना ही हापी,

१६ सर्वेन्द्रिगुणामाम सर्वेन्द्रिय विरहितम् ।

अनन्तं सर्वमचेतं निगुणं गुणानामृतं ॥ गीता १२.११५।

१७ कृत्स्नमनन्तं निरवयववर्गात्कोषा वा । ब्रह्मसूत्र ॥ २।१।७६।

१८ नम्रविशतल्लिखितं रूपमनन्तं सावयव दानु मन्वयो । नदि त्रिभितोपहतनयनेनाऽनेक इव चन्त्यात्संस्थानान्नेकं च भवति । अविद्यारहितं च नारा रूप लक्षण रूप भेदेन व्याख्या शक्या मनेन तत्त्वान्द्वयान्मात्मनिवचनात् नम्रं परिणामाणि व्यवहारा रणाय प्रतिपद्यत । पारमार्थिकं च रूपस्य सव्यवहारात्तन्मपरिणामवतिष्ठते । आचारम्भणमात्रं वा चाद्विना कल्पितव्यं ज्ञान रूप मत्स्यति न निरवयवं ब्रह्मण कृष्यति ।

ब्रह्मसूत्र भाष्य । २।१।७७।

प्राणियों को परमात्मा ही प्रकट करता है किन्तु प्राणियों में उसी स्थिति नहीं हो सकती यथाकि परमात्मा निरुपाधिक सत्य है और प्राणी का जन्म उपाधि से होता है अथवा परमाद्यत तो ब्रह्म ही अस्त सत्य है और उसमें प्राणी भेद एव वण व वग भेद नहीं उत्पन्न हो सक्त^{११} । जिस प्रकार वायु आकाश में स्थित रहती है और आकाश में ही विचरण करती है किन्तु आकाश वायु के द्वारा विकृत नहीं होता उसी प्रकार मायिक सृष्टि ब्रह्म के स्वरूप में प्रतिष्ठित होने हुए भी ब्रह्म को अपने गुणा विकारा और प्रकृतिया से प्रभावित नहीं करती^{१२} । गुणों और विकारों से रहित होने हुए भी भगवान् प्रकृति को अपने अधीन रखकर बार बार सृष्टि की रचना करत हैं^{१३} । फिर भी यह रचना विकार दोष ब्रह्म पर आरोपित नहीं है । समस्त क्रिया प्रकृति के गुणों से होती है । तब यह प्रश्न होगा कि जब प्रकृति ही सृष्टि क्रिया करती है तब ब्रह्म की अधिष्ठानरूपाता के स्वीकार करने की क्या आवश्यकता है ? गीता में कहा गया है कि प्रकृति ब्रह्म की सत्ता से स्वतन्त्र नहीं है । अतः ईश्वर की अध्यक्षता में प्रकृति जब और चेतनात्मक सृष्टि को उत्पन्न करती है । ईश्वर की आश्रिता प्रकृति जब एव चेतनात्मक जगत के रूप में परिवर्तित भी जाती है^{१४} ।

ब्रह्म वस्तुतः मात्र अथवा वाणी द्वारा कथित एव अनुभूत नहीं है क्योंकि मन वाणी एव इन्द्रियाँ विकार जय हैं । गीता में इसी हेतु ब्रह्म का स्वरूप बयन करते हुए कहा गया है कि ब्रह्म न सत और न असत तो भी उपाधि के कारण ब्रह्म के स्वरूप में सबत्र हाथ, पर मुह, कान और नाक बहे गए हैं^{१५} । ब्रह्म में समस्त इन्द्रियो और गुणों का आभास होता है परन्तु वस्तुतः

- ११ न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभन्त च भूतग्यो मग्ना भा भूतभावन ॥ गीता ॥१५॥
सर्वत्र पाणिपा सन्नोऽच्छिशरोमुग्धन ।
सर्वत्र श्रुतिमालोके सर्वमात्रय तिष्ठति ॥ गीता ॥१३॥१३॥
- १२ यथाकारारिच्यते तित्य वायु सर्वगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानी युषधास्य ॥ गीता ॥१५॥
- १३ प्रकृति रवामवष्टम्य विभृजामि पुन पुन ।
भूतप्राममिम कुरुनमवरा प्रटनेवसान ॥ गीता ॥१५॥
- १४ मयाध्यक्षेण प्रकृति सृष्टये सचराचरम् ।
हेतुनानेन चैतेय जगद्विपरिवर्तते ॥ गीता ॥ १५॥१०॥
- १५ षेय यत्त प्रवक्ष्यामि यथा वामतमस्मृते ।
भनामिन्मत्पर ब्रह्म नसत्त नामदुष्यते ॥ गीता ॥१५॥१२॥

वह इन्द्रिया और गुणा से रहित है। वस्तुतः गुण और इन्द्रिया ब्रह्म में अधोपाधिक ही हैं। परमाद्यत, ब्रह्म निगुण है वह क्रिया और लोक में प्राप्त नहीं होता। फिर भी ब्रह्म उपाधिबन्ध गुणा का भोक्ता है^{१६}। अतः इस प्रकार हम ब्रह्म में उपाधि का विवक्षित मानते हैं।

अब हम ब्रह्म सूत्रों में तथा गङ्गार के अनुसार विवक्षित भावना का विवेचन करते हैं। ब्रह्मसूत्रों में ब्रह्म का जन्म, स्थिति और प्रलय का कारण कहा गया है। यदि ब्रह्म को साक्ष्य माने तो श्रुति का विरोध होगा क्योंकि उसको उपनिषद् में अवयवों से रहित कहा है^{१७}। आचार्य गङ्गार का मत है कि अविद्या कल्पित रूप भेद से वस्तु साक्ष्य नहीं होती। तिमिर रोग से जिसके नेत्र का प्रकाश नष्ट हो गया है, उसकी दृष्टि में चन्द्रमा के अनेक दिखाई देने पर भी वास्तव में चन्द्रमा अनेक नहीं होते। अविद्या से कल्पित नाम रूप लक्षण, 'याकृत और अव्याकृत स्वरूप और तत्त्व व अनन्त से अनिवचनीय रूप भेद द्वारा ब्रह्म परिणामादि सब व्यवहारा का दयान हाता है परन्तु पारमार्थिक रूप से ब्रह्म सब व्यवहारा से अनीत और परिणाम गूय है। अविद्या कल्पित रूप भेद केवल वाचारम्भण मात्र है अतः सत्त्व कारण होते हुए भी ब्रह्म का निरवयवत्व बाधित नहीं होता^{१८}। आचार्य गङ्गार ने निगुण एवं निर्विकार ब्रह्म में अविद्यात्मक सत्त्व की विवक्षितता का वर्णन करते हुए कहा है कि अपने स्वरूप का नाश किए बिना एक ही ब्रह्म में अनेक प्रकार की सत्त्व रचना के सम्बन्ध में विवाद करना अनुचित है। एक स्वप्नदृष्टा आत्मा में बिना स्वरूप का नाश किए हुए ही अनेक प्रकार की सत्त्व श्रुति में कही गई है। स्वप्न में रथ नहीं है घोड़े नहीं हैं याग नहीं है किन्तु स्वप्नदृष्टा रथ का, घोड़ा का और उनके भागा का निमाण करता है। लोक में भी देवता आदि में और मायावी आदि में स्वप्न का नाश किये बिना ही हाथी,

१६ सर्वेन्द्रियगुणानाम सर्वेन्द्रिय विवर्जितम् ।

असत्तं सवमन्त्रैव निगुण गुणभाक्त्वं च ॥ गीता ११ १४ ॥

१७ श्रुत्याप्रमत्तिनिरवयववरात्मकोपा वा । अद्भ्ययुत् १२११ ।

१८ नष्टविषयत्वमित्यत्र रूपभेदेन साक्ष्यत्वमनु सत्त्वम् । नहि निर्विकारत्वमेतदेतन्नक इव चन्द्रात् । अयमानोऽनक एव भवति । अविद्याकल्पितं च नामरूप लक्षण रूप भेदेन व्याकृतं वाक्यतो मोक्षे तत्त्वान्तरात्मानन्विकलात् । अद्भ्ययुत् परिणामादिस्वरूपवशात् स्वरूप प्रतिपद्यते । पारमार्थिकत्वं च रूपं स्वप्नदृष्टात् । अद्भ्ययुत् स्वप्नदृष्टात् । वाचारम्भणमात्रं वा सत्त्वविषय कल्पितत्वमान रूप अद्भ्ययुत् । अद्भ्ययुत् स्वप्नदृष्टात् ।

घोडे आदि विचित्र सृष्टियाँ देखने में आती हैं। उसी प्रकार अक्षय्य ब्रह्म में भी स्वरूप का नाश किए बिना ही विविध प्रकार की सृष्टि होती है^{१६}। विवेकबुद्धामणि में जगत्सृष्टि के अधिष्ठान ब्रह्म की वायु प्रपञ्च से भ्रमगता का बणन करते हुए कहा गया है कि रज्जु का स्वरूप का मयाय जान हात ही भ्रान्तान जय सप और सप प्रतीति स होने वाले भय कम्प आदि एक साथ निवृत्त होते देखे जाते हैं। इसी प्रकार आत्मज्ञान होने पर भ्रान्त भ्रान्तान जय प्रपञ्च और उससे उत्पन्न होने वाले दुःख की निवृत्ति हो जाती है^{१७}। अतः यह भ्रान्त ही आत्मा में निवृत्त रूप में वर्तमान है। इससे मुक्त होने से प्राणी मुक्त होकर ब्रह्म-स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। जिस प्रकार अग्नि द्वारा लोहे को गला कर उससे कुदाल आदि नाना प्रकार के उपकरण बनते हैं उसी प्रकार आत्मा के सयोग से अज्ञान रूप रस और मद्य इत्यादि अनेक विषयों की बुद्धि द्वारा प्रतीति होती है। यह अज्ञान प्रपञ्च बुद्धि रूपी उपाधि से उत्पन्न हुआ है अतः मिथ्या है। स्वप्न भ्रम और मनोरथ सभी इसी बुद्धि के मिथ्या आकार हैं^{१८}। जिस प्रकार मग-तपला का जन प्रवाह ऊसर भूमि को गीला नहीं कर सकता उसी प्रकार बुद्धि-शेष रूपी उपाधि ब्रह्मस्वरूप आत्मा रूपी अधिष्ठान को विकृत नहीं कर सकती^{१९}। रज्जु में सप के समान यह

१६ आ मनि चैव विचित्रारचि । ब्रह्मसूत्र १।१।१८।

अपि च नैवाऽन विवर्त्तित्व कथमेकिम् । ब्रह्मणि स्वरूपानुपमनैवाऽनेकाकारा सृष्टि रथात्पि यत् आत्मययैकरिमन् स्वप्नसि स्वरूपानुपमनैवानेकाकारा सृष्टि पठयते, च तत्र रथो न रथयोगा न पथानो भवत्यथ रथान रथयोगान पथ सूत्रे । ब्रह्मणरथैक उणमिष १।४।३।१०। इत्यादिना । लोकेऽपि देवात्पि च मादात्यात्पि च स्वरूपानुपमनैव विविधा ह्यरुचरत्पि सृष्ट्यो दृश्यते तथैकरिमनपि ब्रह्मणि स्वरूपानुपमनैवाऽनेकाकारा सृष्टि भविष्यति । ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।१८।

२० अतः तत्र सृष्टि सम्भ्रम-जुलवरूपवितानान् ।

तरमाइस्तु सतव ज्ञानय कथमुक्तय त्रिपदा ॥ विवेकचूडामणि १४६।

२१ अधोऽग्नियोगादि स सम्बन्धय

अज्ञानरूपेण विन भवे धी ।

तत्कायमेतदित्य यतो मया

द ट भ्रमस्वानमनोरथेषु ॥ विवेकचूडामणि १५०।

२२ आरोपिन नाशयदृक् भवे

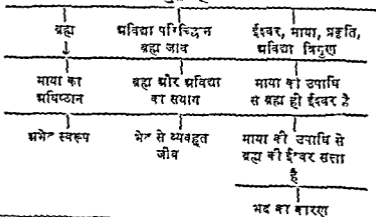
रुक्तापि मूढमनि शेषदृषिने ।

मात्करोयुपर भूमि भाग

भरीचिवावारिमदाप्रवाह । विवेकचूडामणि १४६।

प्रपचारक जगत अ-प्रस्त है। रजु म सप का जान हाना मिश्रा है उसी प्रकार निगुण निविकार ब्रह्म म गुणयुक्त शिवार तथा अविद्याज द ससार की कल्पना करना निमूल है^{२३}। अत हम विद्यत भावना का उपसहार करते हुए यह विशिष्ट करते हैं कि ब्रह्म वस्तुन निगुण और विकार रूत है। किन्तु गुण और विकारा का आश्रय माया या अविद्या उपाधि रूप म अनादि कान स ब्रह्म में वतमान है। यदि कहा जाय कि ये गुण अथवा अविद्या अपनी स्वतंत्र सत्ता से ब्रह्म का अनाभूत किये हैं ता उचित नहा। गुण अथवा अविद्या ब्रह्म का सत्ता व आधान है वनाकि आचार्य गङ्गार के अनुसार ब्रह्म के अतिरिक्त अय सत्ता नहा है। माया की सत्ता का जहाँ तक प्रश्न है उसकी सत्ता का तो आभास मान होगा है। पर तु यह सत्ताभास वास्तव में ब्रह्म का ही है माया का नही। ववल ब्रह्म ही सस्वरूप है अत माया की स्वाधान सत्ता नहा। ब्रह्म व आधान ही उसका सत्ता है। अनकर्मता मोतिक विषमता एव जोव जगत अति का ब्रह्म स न प्रतीत हाना अज्ञान है। परतु यह अज्ञान पारमार्थिक नहा है। जिस प्रकार रजु मे सप का भय होता है और जिसके अनस्वरूप मनुष्य भाग वर कम्पाति स युक्त हाकर मूर्छित हा जाता है। उसी प्रकार ब्रह्म स्वरूप म जगत रूप उपाधि का आश्रय मात्र होना है और उससे अविहारजय दुख वयोग अति उत्पन्न हात हैं। परतु जिस प्रकार रजु का जान हाने पर सप भय स मुक्त होकर मनुष्य स्वस्थ होता है उसी प्रकार आत्म बोध ही जाने म द्रवित प्रपचरूप अज्ञान का तिरोभाव ही जाता है। विद्यत भावना को हम इस क्रम म अद्विष्ट कर सकते हैं —

शुद्ध ब्रह्म



२३ अनन्तत्वमधिष्ठानात्प्राप्तस्य निराश्रितम्।

परिच्छिन्नै रजुमपाने विक्रपो आत्नि जीवन। विवेकचूडामणि १४०७।

इस सत्ता के अनुसार सत्त्व ब्रह्म सत्ता से भिन्न तत्त्व नहीं है। ब्रह्म कभी तो एक नट के समान अपनी भीनाघ्रा और कीर्तना का प्रयोग करता है और कभी अपने ही स्वरूप का विविध रंग में व्यक्त करके सभी जगत् और उतन पदार्थों को मोहित करता है। उसकी ये प्रीक्षण वस्तुतः सत्य नहीं हैं। जिग प्रकार ऐन्द्रजातिक भौक उपकरणों से अभ्युत्पन्न प्रत्यक्ष कराना है और दानको की बुद्धिया को मोहित करना है उगी प्रकार ईश्वर की प्रीण भविद्यात्मक तथ्यों को व्यक्त करके प्रत्येक प्राणी को सम्मोहक और भ्रामक स्थितिया में डाले हुए है। किंतु अत्यधिक बलशाली तो यह है कि कौतुक सट्टा ब्रह्म स्वतः प्रत्यक्ष नहीं होता। यदि वह प्रकट हो जाए तो अविद्याजय अध्याय प्रसूत भ्रामक माया का निराकरण होकर मायाधी का सत्कार हो जाए। साधक अनेक उपायों से इसी माया के स्वामी परब्रह्म की उन्मत्त के निमित्त विविध साधनाओं का प्रथम लेना है। सत्त कबीर दास ने कहा है कि भक्त ब्रह्म ने जगत की नाट्यशाला सजाई है। वही नाटक रचना करता है और स्वयं ही उसका दृष्टा है। सत्त रत्नास जगत सत्त्व को मायात्मक और ब्रह्म को एकमात्र सत्य मानते हैं। सत्त दादू दयान ब्रह्म को माया पट में छिपा हुआ देख रहे हैं। वस्तुतः अद्वैत ब्रह्म ही सत्य है दोष सब मिथ्या है। सन्त सुन्दर ने भी ब्रह्म सत्य और सत्त्व रचना अज्ञान मूलक स्वीकार की है। सत्त चरनदास ने ईश्वर लीला को मन और बुद्धि से अगोचर माना है। वही स्वयं इदता और विश्वरूप में व्यक्त हो गया है। उसका भेद या रहस्य जान सकना कठिन है। सत्त पत्रद ने भी ब्रह्म के अद्वैत रूप को जगद्रूप में व्यक्त होना स्वीकार करके ब्रह्म की सत्यता स्वीकार की है। ये सभी सत्त इस सम्बन्ध में एकमत हैं। ब्रह्म वस्तुतः जगत्कारण है परन्तु जगत काय उसकी अध्वक्षता में होते हुए भी इन्द्रजाल कौतुक से अधिक कुछ नहीं है। ब्रह्म ही माया कायों का अधिष्ठान है परन्तु काय का रूप स्वतः ब्रह्म नहीं है। इस भावना को स्पष्ट करने के लिए हम सप्तोप में सत्त कबीरदास^{२४} सत्त रदास^{२५} सत्त नानक साहब^{२६} सत्त दादूदयाल^{२७} सत्त सुन्दर

२४ जिन नटवे नगरी सागी, जो खले सोनीमै बाजी। कबीर भन्दाबली रमैथी।

२५ बाजी मूठ साब बाजीगर जाना मन पतियाना। रत्नास की बानी। शब्द ११।

२६ बाजीगर टक बजाय सब रत्नक तमासे आनी। सुन्दर दुटका।

२७ बाजी बिहर रचार करि रदा अपरधन हो।

माया पट पत्ता निया ताँरे लखै। कोइ ॥ दादू दयान की बानी। माया की अग ॥८२॥

बाजीगर परकाशा, यह बाजी मूठ तमासा। दादू दयान की बानी। शब्द ३६।

गण^{२८}, सन्त चरनगण ६ ६ और सन्त पण्डितों की दानियों से स्पष्ट करते हैं।

अब हम सन्त वाक्य में निगुण गण अर्थात् ब्रह्म में जगत् के निष्ठान्त का अध्ययन करेंगे। सन्त कबीरदास ने राजु और सन का अन्तर्भाव मग मरीचिका दस कर जगत् के मिथ्यात्व और इत्य का अर्थ अज्ञान का परिचय दिया है^{२९}। सन्त गण के अनुसार अज्ञान राजु में अन्त का अर्थ अज्ञान भ्रम है अथवा भ्रमण और अज्ञानों के अन्तर्भाव और अज्ञान का अर्थ अज्ञान है^{३०}। सन्त दासदास के अनुसार ब्रह्म के अन्तर्भाव में अज्ञान का अर्थ अज्ञान भ्रम है। इन्होंने इस अर्थ में भास्कराचार्य का अन्तर्भाव मग मरीचिका का अन्तर्भाव और अज्ञान का अर्थ अज्ञान दिया है। सन्त अज्ञान के अनुसार ब्रह्म स्वप्न में जगत् की कल्पना भ्रम है^{३१}। सन्त अज्ञान के अनुसार जगत् मष्टि भिन्ना है यह राजु में अन्त अज्ञान का अर्थ अज्ञान है

२८ वाजी बीन रवी मेर पार।

एव उत्पन्न और गूट होने वाली है^{३४} । मारवाड वाले सत दरियासाहब के अनुसार ससार स्वप्नवत् है और इस ससार के स्वप्न वा पाना इस जगत्स्वप्न स्वप्न में भिन्न है^{३५} । सत घरनीगस ने जगत् को रज्जु में सप भ्रम और मगतपणा का रूप माना है^{३६} । सत घरनीगस के अनुसार भी जगत् मृग तपणा है^{३७} । सत घरनीगस व अनुसार गत स्वप्न वत् है । इस जगत् को इहाने माया का वाच्य कहा है और माया का प्राण घातन व समान वत् साध्य माना है^{३८} । सत भीला साहब व अनुसार गत द्वैत रूप है । किन्तु जब रज्जु में सप भ्रम गूट हो जाता है तब रज्जु भ्रवगिष्ट रहता है । इसी प्रकार जगत् और जीव एव ब्रह्म के द्वैत सम्बन्ध नष्ट हो जाते हैं, तब माया वृत्त अज्ञान नाश हो जाता है और गत एव ब्रह्म भेद नहीं रह जाता^{३९} । इहाने जगत् का स्वप्न माना है^{४०} । सत जगज्जीवनसाहब व अनुसार केवल भद्र त ब्रह्म ही नित्य ज्योतिस्वरूप है और माया भ्रम का रूप है^{४१} । सत पनदूसाहब के अनुसार ससार मगतपणा वा जगत्, स्वप्न और सीप में चादी

३४ उपनै बिनमै सो एव बाणी वत् पुगननि मं वही ।

माना बिधि व खल त्पिनै गनेग मानी वही ।

रज्जु भुजग मगतपणा सा यह माग दिर रि रही ।

सुन्दर गथावली । भाग २ । पृ ४ ।

३५ उपनै वरते अरु विनसा, सुधिने अन्तर सप्त तरगावै ।

त्याग ब्रह्म सुपना यत्पारा चो जाग सो सबम न्यास ।

मारवाट सत त्रिदा साहब की बानी ।

३६ जानव नेवरि सरप अ धारे, निरवित्र होत मो दीरक धारे ।

मगतपणा जल धोखे धारै धरि रह पाडे पदितारै ॥ घरनीगस की बानी ।

३७ तत्र मग तपणा सच्छि मुलानी भूत रहा तग मूढ । गरीवगम की बानी ।

३८ यह तग जैसे सुपन द सुखु बान परभाव ।

यह माया तग टारनी हरदि लेनि है प्रान ॥ भक्ति सागर । शब्द १४ ।

३९ भीला एक दुःख का भयङ्क सप सनाय रज्जु मह गवज्ज ।

भीला साहब की बानी ।

४० भीला यह स्वाव की गहर तग जानिये ।

जगि कर दगु सप्त मूठे जाने ॥ भीला साहब की बानी ।

४१ देखन अन्ना दूसरी नाग एकै जोलि तुम्हारी ।

बहु भ्रमार्थ देत माया रूढ बहु करत नितकारी ।

के समान भावक है^{४२} ।

इस प्रकार हम दखते हैं कि सत्त का र म जगत की ब्रह्म म विवन्नरूपता सर्वाङ्गपूर्ण है । ब्रह्म का निगुणता, माया का ब्रह्म प्रायित होना ब्रह्म द्वारा सृष्टि की रचना होना, परन्तु सृष्टि म पारमार्थिक सत्य न होना समार का ब्रह्म म मिथ्या आरोप होना, उपाधि क कारण ब्रह्म म माया का आभास होना एव उपाधि क नाश हो जाने पर जीव और जगत का ब्रह्मस्वरूप म प्रतिष्ठित हो जाना विवन्न भावना के मुद्र अङ्ग हैं । यतो न अद्वैत ब्रह्म की प्रतिष्ठा करते हुए द्वैत का निषेध किया है और इस विषय म विवन्न भावना का प्रथम लिया है ।

प्रतिविम्ब भावना

अब हम सत्त का र म सृष्टि और जीव म सा गित प्रतिविम्ब भावना का विवन्न करेंगे । प्रस्तुत प्रकरण म ही सृष्टि के विवन्न स्वरूप का अध्ययन करते हुए हम कह चुके हैं कि माया जय उपाधि क ब्रह्म स्वरूप म अस्पष्ट होन के कारण द्वैत रूप जगत की प्रतीति होती है । महा हम पहल उपाधि की मिथ्यात्वता प्रतिपात्त करते हुए ब्रह्म की निगुणता का सक्षिप्त कथन करते हुए जीव अथवा जगत की अनेक रूपता म यत्न हुए प्रतिविम्ब का मिथ्यात्व निश्चित करेंगे ।

ब्रह्म सूत्रा म कहा गया है कि जीव वस्तुत ब्रह्म है परन्तु उपाधि के कारण जिस प्रकार एक ही सूर्य अनेक जलाशयो म प्रतिविम्बित होता है उसी प्रकार अद्वितीय ब्रह्म अनेक उपाधिया म साक्षित होकर अनेकरूप होता है^{४३} । ब्रह्म त्रिदु उक्तिपद म कहा गया है कि एक ही भूता मा प्रत्यक् प्राणी म उसी प्रकार स्थित है जिस प्रकार जल म प्रतिविम्बित चन्द्रमा एक एव बहु रूपों म दिखाई पटना है^{४४} । चन्द्रमा का प्रतिविम्ब प्रस्तुत चन्द्रमा नहीं है ।

४२ मंगल निरसि के प्णा मुक्त म्ति,
मरी अन्वा २२१ ह ।

यह ममार ैन का मुपना

रुपा अमग पी ११ ह ॥

पलटू साहय की बानी मय । ३। पद ७० ।

४२ आ एव तापना सत्यमन्वित । ब्रह्मसूत्र (३) २।२८।

४४ एक एव हि भूता मा भूते भूत व्यवस्थित ।

एवथा बहुधा अथ रूपेणै च लच द्रवत् । ब्रह्म सिद्धि उपनिषद् । १ ।

चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को चन्द्रमा समझना मिथ्यात्व का प्राथम्य सा है। उपाधि माया का रूप है और माया की पारमाथिक स्थिति गहा है। आचार्य शाङ्कर माया की मिथ्यारूपता का प्रमाण म उद्धृत करते हैं कि "नार" मीने यह माया रची है। तुम मुझे राध भूत गुणः से युक्त देखो हो। परन्तु इसके मेरा रूप समझना उचित नह। ५५।

ब्रह्म सूत्र म इस माथिक उपाधि को ब्रह्म का प्राभास मात्र कहा है ५५। आचार्य शाङ्कर के अनुसार प्राभास प्रविद्याजनित है अत प्राभास पर प्राथित सत्ता भी प्रविद्या जनित है ५६। जन क हितने से चन्द्रमा हिलता प्रतीत होता है परन्तु वस्तुत आकाश स्थित चन्द्रमा गहा हिलता। एसी प्रकार उपाधि से ब्रह्म विवन् सा होता प्रतीत होता है किन्तु परमाथत होता नहीं ५७।

विवेकचूडामणि म कहा गया है कि जिस प्रकार जनरु उपाधि क चचन होने पर मूढबुद्धि पुरप औपाधिन प्रतिबिम्ब की चचलता का आरोप ब्रह्म म करते हैं जिस प्रकार जल के हितने से मूय नहीं हिलता वस ही उपाधि के विवृत होने से आत्मा विवृत नहीं होता। आत्मा वस्तुत निष्क्रिय है परन्तु चित्त की चचलता का आरोप "मैं करता हूँ मोक्ता हूँ इस भांति "यवहृत होता है। जैसे घट के धर्मों से आकाश का कोई सम्बन्ध नहीं होता उसी प्रकार शरीर जल लोटे म हो चाहे या स्थल म आत्मा म मलिनता नहीं आती ५८।

५५ माया क्षेपा मया सध्या यमा परयति नार"।

सबभूत गुणैस्तु क्त नैव मां क्षातुमदनि ॥ ब्रह्मसूत्र भाष्य ॥३॥२१७॥

५६ आभासस्य साधिकाहृतत्वात् एत श्रयस्य समारस्याविद्या कृत्वालोपपरिचि।

ब्रह्मसूत्र भाष्य ॥२॥३५॥

५७ बद्धिप्रसभारुवमन्तभावाद्भयमानापरयावेवा। ब्रह्मसूत्र ॥३॥२१७॥

५८ चलगन नि स्य प्रतिबिम्ब जनरुद्धी वसने चलहासे रमनि चलचचने चचति जलमेने भिषते इयेव चलधर्मांजुयाधि भवति न तु परमाथत स्यस्य तथा वगरित। एव परमाथतो ऽविवृतमेव रूपमपि स" ब्रह्म दहायु पा यन्तभावात् भजत श्वोपाधि धर्मान नद्धि हाहातीन।

ब्रह्मसूत्र भाष्य ॥३॥२१२॥

५९ चलत्युपाधौ प्रतिबिम्बनोय

मौपाधिक मुण्थियो नयन्ति।

रविविम्बभूत रविविनिनिजिय,

कर्तारिम मोभतारिम हनो_रिम हेनि। ५०६। विवेकचूडामणि।

जले वापि स्थने वापि लुठवेप ज्वात्मक।

नाइ विनिप्ये तद्धर्मेधर्मेनमो यथा। ५१। विवेकचूडामणि।

ब्रह्म के स्वरूप में जगत रूप का आरोपण करना 'यावहारिक अथवा अविद्यात्मक विषय है। जगत और माया की ब्रह्म में पारमार्थिक सत्ता नहीं है। अतः इस प्रकार प्रतिबिम्ब भावना भी विवत भावना का रूपांतर माय है। विवत भावना और प्रतिबिम्ब भावना में तात्त्विक भेद नहीं है तो भी दोनों में सामान्य सद्धान्तिक भेद है। विवत भावना से सम्बन्धित रज्जु-मय स्वप्न साप में चाँदी का भ्रम मरीचिका में जल आदि दृष्टान्त हम विवत भावना के प्रसंग में दे चुके हैं।

प्रतिबिम्ब भावना का स्वरूप हमको अनेक सत्ता की वाग्निषा में मिलता है। प्रतिबिम्ब भावना के प्रतिपादन में सत्ता ने जल और प्रतिबिम्ब का हा दृष्टान्त लिया है अतः इस प्रसंग का हम सन्त काय में जगत का प्रतिबिम्ब भावना नाम से अभिहित करते हैं।

गारुडशाय के अनुसार आत्मा के स्वरूप पर विचार करने पर प्रतीत होता है कि जल जल में चन्द्र विम्ब पड़ता है परन्तु वह प्रतिबिम्ब वस्तुतः चन्द्रमा नहीं होता। उसी प्रकार आत्मा निगुण और निर्विकार है और जगत् सच्चि अथवा 'यावहारिक जीव की सच्चि का आरोप उसमें नहीं किया जा सकता। सच्चि वस्तुतः आत्मा में अद्यस्त नहीं है किन्तु उपाधि के कारण व्यवहार में जगत को आत्मा के प्रतिबिम्ब रूप में देखा जाता है^{५०}। सन्त कबीरदास के अनुसार दपण में देखने से आकृति का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है परन्तु दपण का प्रतिबिम्ब आकृति के आश्रित है। दपण के टूट जाने पर एक ही आकृति रह जाती है। वयं हा गड्ढत आत्मा माया में प्रतिबिम्बित होकर दो रूपों में दिखाई पड़ता है। किन्तु आत्म ज्ञान से माया त्रय दूत का नाश उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार दपण का प्रतिबिम्ब आकृति देखने पर तिरोहित हो जाता है^{५१}। जिस प्रकार बीज के अंतराल में वक्ष और वक्ष में छाया दिखाई देती है उसी प्रकार परमात्मा में जीव और जीव में माया का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। टीक इसी प्रकार ब्रह्म में ही जीव प्रतिष्ठित है और ब्रह्म में ही माया की स्थिति है। माया के द्वारा ही मिथ्या सच्चि की रचना होती है। अतः जगत् जीव और ब्रह्म वस्तुतः एक रूप ही है। ब्रह्म शोषाधिष्ठित विचार

५० वस्तु गारुडशाय आत्मा विचारत ज्यु जग दीउँ चल्ता । गोग्यशानी ।

५१ कायु कट्टु बहन की जाहाँ दूनर और जना ।

ज्यु तरपन प्रतिविधि ३ दणिय आप देवा सू सीर ।

संभो मिथ्या एक कौं पकै मगप्रलय अब होइ । कबीर प्रथावली ।

से सलिलपट्ट होकर जगत घोर जीव का अद्भुत रूप में विभाजित होता है^{५२} । सत रसास के मत में ब्रह्म जगत्कारण है । त्रिगु अद्भुत योग धारण गंध, घोर वायु के समान माया व विचारों में विभक्त रहता है । समुद्र में चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब के समान योग धारण रहता है^{५३} ।

सत दार्ढ्यवान् मानते हैं कि जिस प्रकार जल में आकाश व्याप्त है और आकाश में जल व्याप्त है फिर भी आकाश जल की आकांक्षा उत्पन्न करता है प्रभावित नहीं होता उसी प्रकार जीव में भावित्व का भाव है । त्रिगु जीव में स्वयं ब्रह्म है और अविद्यात्मक विचार अज्ञान के स्वप्न नहीं हैं । अथवा जिस प्रकार दण्ड में अथवा प्रतिबिम्ब दिखाता है अथवा जल में अपनी छाया दिखाई देती है उसी प्रकार आत्म स्वप्न ब्रह्म उपाधि का जीवत्व और ससार रूप में प्रतिबिम्बित होना है^{५४} । सत गुदरसास व अनुगार सत्व रज और तम गुणों की चञ्चल बतिया में आत्मा स्थिर है । जिस प्रकार जल की हिलोरा में प्रतिबिम्ब हिलता दिखाई देता है वैसे ही स्थिर आत्मा त्रिगुणात्मक उपाधि के कारण गुण के विचारों से प्रभावित प्रतीत होना है किन्तु वस्तुतः असङ्ग आत्मा प्रभावित नहीं होना । जिस प्रकार दण्ड में प्रतिबिम्ब लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार क्रिया और विचारों से आत्मा प्रभा

५२ सन्धो सन्धुर अलस लघाना आन प्राप दशासा ।
बीज मध्ये ज्यो बद्धा त्रम स्या मये दशासा ॥
परमात्म में आत्म दरने आत्म मये जाना ।
आत्म में परमात्म त्रम परमात्म में भासा ।
आत्म म परदात्म दरने त्रम बधीसासा । कीर आकाशी ।

५३ सत् कतु करत न ददा कतु करत ।
गुण विधि रहत ददुत मभि नैस ।
त्रपन गगम अति अलप अम ।
गंध ततधि प्रतिबिम्ब दगि तन । रैनाम की बानी । शब्द ७८ ।

५४ दादु गन में गगन गगन में तन हे ।
पुनि वै गगन निराम ।
मद्ग जीव हर्षि विधि रहे एसा भेद विचार ।
त्रू दरपन मुप देखिये पानी में प्रतिबिम्ब ।
एसे आत्म राम हे दादु गन ही सग ।

दादु व्याप की बानी । विचार की अग ।

माया व आकार ब्रह्म व परमाथ स्वरूप म मिथ्या आभासमात्र है ।

उपशुभन विवचन म हमन ब्रह्म की प्रतिबिम्ब शक्त का निराय किया है । सत्ता की इस प्रतिबिम्ब भावना का आधार माया शक्त का अविच्छेद्य उपाधि है । उपाधि व स्वरूप का निराय हम विचन भावना और प्रतिबिम्ब भावना तथा दोनों के सम्बन्ध और स्वरूप का बचन प्रस्तुत प्रकरण के गत पृष्ठा पर कर चुके हैं । इन भावनाओं व पाषण्ड्या का पाता हमका उपनिषत् गीता ब्रह्म सूत्र और शाङ्कर के सिद्धांत म पचना है । इन भावनाओं का मूल्यांकन करते हुए हम देखते हैं कि उपनिषत् गीता ब्रह्मसूत्र तथा शाङ्कराचार्य के सिद्धांत म कही भी अपम्य नहीं है ।

प्रणय भावना

अब हम सत्ता व अनुसार सत् सिद्धांत व तीसर पत्र का विवचन करेगे । प्रस्तुत पत्र म हम आकार स जगत की उत्पत्ति का बचन करेगे ।

कठोपनिषत् म कहा है कि 'आम ही यह पत् है जिसके लिए मुमुक्षु जन ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं' ५६ । प्रथम उपनिषत् म कहा गया है कि आकार ही ब्रह्म है और विज्ञान इसके आश्रय द्वारा अर या परब्रह्म म स किसी को प्राप्त करता है ५ । तत्तिरीय उपनिषत् म कहा है कि ओम् ही ब्रह्म है ओम् ही सम्पूर्ण है ५७ । छांदोग्य उपनिषत् म कहा गया है कि जिस प्रकार नसा स सम्पूर्ण पत् व्याप्त रहत है उसी प्रकार आकार म समस्त वाक् व्याप्त है ओकार ही यह सब कुट्ट है ५८ । मुण्डकोपनिषत् व अनुसार

५८ माया सकल पनाह दे ना रग बहु भाति ।

वह लग य आकार ही चचन मिथ्या भ्रान्ति ।

नैम सुपना रैन का मुग त्पय व माह ।

भामै इ पर है नही ज्या तरवर की दाह । भक्ति साार । भक्ति पत्र म बचन ।

५९ अचिच्छन्तो ब्रह्मचर्य उरति

सत्ते पत् समर्थेय म न्दियाम यतद् । कठ उपनिषत् । १।१५।

६० एतद् सयकाम पर चाप व मल्ल यकार । तत्र द्विभवेतेनैवायननेनैकतरमन्वेति ।

प्रथम उपनिषत् । १।२।

६१ आग्निनि ब्रह्म । ओमिति सवा । तत्तिरीय उपनिषत् । १।२।१।

६२ यथा शत्रुना सवाणि पश्यानि सत्पश्या येवनीकारेण सर्वा कामतरणकारणवदु सवम् ।

छान्दोग्य उपनिषत् । १।२३।

'यह आत्मा ओ३म ही है इस प्रकार ध्यान करना चाहिए' १३ । प्रणव अथवा ओ३म धनुष है आत्मा बाण है और ब्रह्म लक्ष्य है । ब्रह्म का सावधानी से बंधन करके आत्मा एवी बाण व साथ तमय हा जाना चाहिए १४ । गीता म कहा गया है कि 'ओ३म यह एक अक्षर रूप ब्रह्म है' १५ । इस प्रकार उपनिषद् और गीता म "आम् श" द्वारा ब्रह्म का परिचय दिया गया है । अब हम माण्डूक्य उपनिषद् मे प्रतिष्ठित प्रणव अथवा ओ३म् के स्वरूप का विचार विस्तारपूर्वक करेंगे । माण्डूक्य उपनिषद् म ओकार को जगत रचना के सिद्धान्त के रूप म ग्रहण किया गया है । इस प्रकार का लक्ष्य सतो के अनुसार आकार से जगत की सट्टि का विवेचन करना है ।

माण्डूक्य उपनिषद् व अनुसार ओकार ही सब कुछ है । भूत, भविष्य और वतमान सब ओकार ही है । त्रिकाल से अतीत वस्तु भी ओकार है १६ । ओकार के दो पक्ष यहाँ स्पष्ट हैं—भूत भविष्यत और वतमान स्वरूप ओकार और त्रिकालातीत ओकार । ओकार ही स्वरूप है ओकार ही ब्रह्म है १७ । ब्रह्म ही ओकार है, अतः भूत भविष्य और वतमान काल ब्रह्म मे अधिष्ठित है और त्रिकालातीत मन वाणी से अतीत निगुण एव निर्विकार आत्मा का स्वरूप भी ओकार अथवा ब्रह्म रूप है ।

अब हम पहले ओकार के त्रिकाल रूप का वणन करेंगे । माण्डूक्य उपनिषद् म आत्मा चार परा वाला कहा गया है १८ । आत्मा का प्रथम चरण व वानर है । आत्मा का यह प्रथम चरण बदवानर बाह्य विषया का प्रकाशित करता है । अतः इस वहि प्रन कहा गया है । बदवानर स्थूल विषया का भाक्ता है । माण्डूक्य उपनिषद् में इसक उन्नीस मुख बहे गये है । यह बदवानर सत्त अज्ञा वाला है और जागरित इसका स्थान है १९ । आचार्य गङ्गुल के अनुसार

६३ ओमित्यव प्यायथ आ मान । मुण्डक उपनिषद् । २।१।३।

६४ प्रणवो धनुः शरः आत्मा ब्रह्म तन्तद्वयमुच्यते ।

अप्रमत्तं वेदमथ शरवत्तयो भवेत् । मुण्डक उपनिषद् । २।१।४।

६५ ओमित्यन्तरमिन्द्रा । गीता । ८।१३।

६६ ओमित्यन्तरमित्सुव तयोपव्याख्यात भूत भवद्विव्यक्तिः सक्मकार एव । यन्वाच्यत्रिकालातीत तन्प्योकार एव । माण्डूक्य उपनिषद् ।

६७ सर्वोत्तर म प्रायजा मा । मुण्डक उपनिषद् । २।

६८ साऽयमा मा चतुष्मान । मुण्डक उपनिषद् । २।

६९ जागरितस्थाना बहिःपञ्च सत्ताय एकोनविंशन्मिन्द्रा स्थूलसुक्ष्मवानर प्रथम धाम ।

मुण्डक उपनिषद् । ३।

अपने से भिन्न विषया में जितनी बुद्धि अथवा प्राण होता है उग वहि प्रा कहत है । इन वशवार आत्मा की बुद्धि वाच्य भौतिक विषया में अविद्या के कारण सम्बद्ध ही प्रतीत होती है । दस ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ पाँच प्राण वायु मन बुद्धि चित और अहंकार ये सब भिन्नानर ज्ञानी वशवार के मुग हैं । छांदोग्य उपनिषद् के अनुसार अश्वानर का आत्मा छत्रक सिर, आकाश देह मूय नेत्र वायु प्राण मन मूत्रस्यान और पथ्वी चरण वहे गए हैं । ऋद्धर के अनुसार आहवनीय अग्नि वशवार का मुग है । मन इस प्रकार अविद्या के कारण वशवार में सात अन्तः की प्रतीति होती है ^१ । जागरित अवस्था वशवार का स्थान है ^२ । सद्धर के अनुसार अनेक नरा अघात योनिया का नयन अथवा बहन करने के कारण आत्मा वशवार कहलाता है । विश्वरूप नर होने के कारण भी आत्मा वशवार कहलाता है ^३ । वशवार स्थूल विषयो का भोग करना है अत इसको स्थूलभुज कहा गया है ^४ ।

आत्मा का दूसरा पाद माण्डूक्य उपनिषद् में स्वप्न कहा गया है । दूसरे पाद में आत्मा को तेजस कहते हैं । तेजस अत प्रज है ^५ । ऋद्धर के अनुसार मन इन्द्रियाँ की अपेक्षा अधिक अत मुखी है । स्वप्नावस्था में मन वासना के अनुरूप रहता है । आत्मा अपने प्रकाश स्वरूप का अनुभव करता है अत उसे तेजस कहा जाता है ^६ । ऋद्धर के अनुसार मन के स्फुरण होने से जाग्रतकाल में बुद्धि वाच्य विषया में स्थित होकर मन में विषय के अनुरूप सत्कार उत्पन्न

- ७ वहि प्रश्न स्वा तत्रैतरेके त्रिये प्रसा यत्र स वहिप्रसाव इवियव प्रसा विवाह्याव भानत । मुण्टक उपनिषद् भाष्य । ३।
 बुद्धी द्रव्यसि कर्मेन्द्रियासि त्र दश वायवर्य प्राणायाम्य पंच मना बुद्धिहकारिचिन्मिति मुगानीव मुस्ता । मुण्टक उपनिषद् भाष्य । ३।
- ७१ तस्य हवा अतरया मनी वशवारस्य मूधव मुनेतारचतुर्विस्वरूप प्राण पथग्दमहमा सन् । बहुलो वस्तिरेव रथि पवि-येव पान्नी । छांन्नेस्य उपनिषद् । ५। १२। २।
 आहवनीयोऽग्निरस्य मुस वेनोम्ह । माण्डूक्य उपनिषद् भाष्य । ३ ।
- ७२ जागरित स्थानमस्येति जागरितश्वान । माण्डूक्य उपनिषद् भाष्य । ३।
- ७३ विश्वेषा नारायणाननकथा तदनाद्रीश्वानर । यदा विश्वरचनां नरश्चरति विश्वानर ।
 माण्डूक्य उपनिषद् भाष्य । ३ ।
- ७४ शास्त्रीन्धूलान्विषयाभुक्त इति स्थूलभुज । माण्डूक्य उपनिषद् भाष्य । ३।
- ७५ स्वप्नस्थानोऽन्तः प्रश्न प्रविचिन्मुक्तो ज्ञानो द्वितीय पाद ।
 माण्डूक्य उपनिषद् । ४।
- ७६ इन्द्रियापचयान्ते रथ वा मनपरमाण्वनास्था च स्व ने प्रसा यम्यत्यन्तः प्रश्न । विषयशून्याया प्रज्ञया वचन प्रकाशस्वरूपाया विषयिचन भवतीति तैत्तम ।
 माण्डूक्य उपनिषद् । ४।

करती है। जागरित अवस्था में सक्रिय किय हुए सस्कारों से युक्त मन, प्रविद्या, कामना और क्रम के कारण स्वप्नावस्था में बिना बाह्य उपकरणों के ही जागरित के समान भासित होने लगता है^{१०}। तजस वासना से उत्पन्न बुद्धि का ही भोग करता है। बुद्धि सूक्ष्म है अतः तजस का भोग भी सूक्ष्म कहा गया है^{११}। माण्डूक्योपनिषद् के अनुसार आत्मा का तीसरा पाद प्राण है। प्राण का स्थान सुषुप्ति है। सुषुप्ति में आत्मा एक होकर, ज्ञानस्वरूप होकर, ध्यान-मगता है। प्राण चेतना मुख वाता है। प्राण अवस्था में आत्मा स्वप्न नहीं देखता और न किसी पन्थ की इच्छा करता है^{१२}। यह प्राण आत्मा सबका ईश्वर कहा गया है। यह ईश्वर रूप में प्राण आत्मा सबन और अन्तर्गामी है। प्राण आत्मा समस्त जीवों के जन्म और नाश का स्थान और कारण है^{१३}।

आकार में अ उ और म ये तीन मात्राएँ हैं। माण्डूक्य उपनिषद् के अनुसार आकार की ये तीन मात्राएँ ही आत्मा के तीन पाद हैं जिनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं^{१४}। इस प्रकार आकार की अ मात्रा ब्रह्मानन्द है और इसका स्थान जागरित है^{१५}। आकार की 'उ' मात्रा का स्थान स्वप्न है और तजस आत्मा का स्वरूप है^{१६}। प्राण आत्मा की मात्रा 'म' और स्थान सुषुप्ति है^{१७}।

माण्डूक्योपनिषद् में कहा गया है कि आत्मा अन्तःप्रान नहीं है, न वहिःप्रान है और न उभयप्रान है। आत्मा न प्रानान है, न प्रान है और न अप्रान है। आत्मा अस्पृष्ट, अव्यवहाय, अग्रह्य, लक्षण रहित अचित्य अकथनीय

१० आत्मप्रधानैक माधना बहिर्विद्यवावमाममाना मन स्वरूपनाना मनी तथाभूत सस्कार मनरूपान्त आत्म मानानपदानविद्याधर्मि प्रेयनाय आग्रद्वयमासते।

माण्डूक्य उपनिषद् भाष्य । ४ ।

११ ब्रह्मा वामनानाया प्रथा मा-इति प्रविक्मिका माय । माण्डूक्य उपनिषद् भाष्य । ४ ।

१२ यत्र मुक्तो न कचन काम कामदत्ते न कचन स्वप्न पश्यति तस्युपजम । सुषुप्तिस्थान प्रकीर्तन प्रदानन प्रदाननया ध्यानन् मुक्त्यनेतुन प्राक्स्थनीय पात् ।

माण्डूक्य उपनिषद् । ५ ।

१३ एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषान्तदान्यय दोगि मयस्य प्रमवात्ता नि भूतानाम् ।

माण्डूक्य उपनिषद् । ६ ।

१४ पात् माया मात्रारच पात् । माण्डूक्य उपनिषद् । ८ ।

१५ जागृतिगणाना ब्रह्मान्तोक्तम् । माण्डूक्य उपनिषद् । ४ ।

१६ स्वप्नस्थानस्थैश्च उक्तानि त्रिणीया मात्रा । माण्डूक्य उपनिषद् । १ ।

१७ सुषुप्तिस्थान प्राची महाशक्तनीया मात्रा । माण्डूक्य उपनिषद् । ११ ।

एकात्मरूप तत्त्व, प्रपञ्च से रहित शांत कल्याणस्वरूप और अज्ञान रूप है^{८५} । साङ्ख्य के अनुसार 'अज्ञान प्रज्ञ नहीं है' ऐसा कहकर तजस का, बहिर्प्रण नहीं है, ऐसा कह कर जाग्रत और स्वप्न के बोध की अवस्था का प्रतिपक्ष विभागा गया है । आत्मा प्रज्ञान धरा नहीं है इसग गुणधृति का विषय प्रण नहीं है इससे विषया के शांतत्व का और अज्ञान नहीं है इसग आत्मा की अचेतनता स्वीकार की गयी है^{८६} । आत्मा का यह चतुर्थ पात्र तुरीय अवस्था है^{८७} । आचार्य साङ्ख्य के अनुसार जिस प्रकार रज्जु सप के विकल्प रूप का अधिष्ठान है, उसी प्रकार परमाय सत्य होने पर भी आत्मा प्राण इत्यादि विकल्पो का आश्रय है । आत्मा पारमार्थिक सत्य है किन्तु व्यवहार में उसमें अनेक नाम रूप और गुणों का आरोप होता है । यह व्यावहारिक अनेकात्मक नाम रूपता केवल वाणी का विलास मात्र है । वाणी विकारा से आत्मा विकृत नहीं होता । इस वाणी विकार के प्रसार को धारण करने वाला प्रोकार ही है । साङ्ख्य के अनुसार 'आकार आत्मा का प्रतिपादन करता है' अतः वह स्वयं ही आत्मस्वरूप है । आकार के विचार रूप शब्दों द्वारा प्रतिपाद्य आत्मा विकल्प रूप प्राण इत्यादि अपने प्रतिपादक शब्दों से भिन्न नहीं है^{८८} ।

इस प्रकार आकार ही अवस्था भेद से जगत रूप में व्यवहार प्रतिपादन करता है । आकार की मात्राएँ अविद्यात्मक सृष्टि की तीन स्थितियाँ पर प्रकाश डालती हैं । किन्तु पारमार्थिक आत्मा अविद्यात्मक व्यवहारों से अतीत है । आत्मा स्वतः विकार रहित है परन्तु विकारों का अधिष्ठान है । माण्डूक्य

८५ नान् प्रह न वहिप्रह नाभयन प्रह न प्रज्ञान धन न प्रह नाप्रहम् । अद्वैतमव्यव
हान्मद्यायमनक्षयमिन्द्रियमशपणैरयमेकात्मप्रत्ययप्रसार प्रपञ्चोयम शान्ति शिवमद्वैत
चतुः स आत्मा । माण्डूक्य उपनिषद् ७।

८६ नान् प्रहमिति सैत्समप्रतिषेध । न वहिप्रहमिति विश्व प्रतिषेध । नोभयन प्रहमिति
नाम स्वप्नसारन्तगन्तावरथाप्रतिषेध । नप्रज्ञानयनमिति सुषुप्तावस्थाप्रतिषेध । ७ प्रहमिति
युगमन्वय विषयप्रज्ञानव प्रतिषेध । नाप्रहमित्य चतुर्थप्रतिषेध ।

माण्डूक्य उपनिषद् भाष्य ७।

८७ चतुर्थ तुरीय भाष्य । माण्डूक्य उपनिषद् भाष्य ७।

८८ रज्ज्वादिबि सषादि विकल्पस्यास्यैन्द्रिय आ मा परमाय सत्प्रणादि विज्ञपरत्यास्येति यथा
तथा भवति वाद्येण प्राणायामविकल्पविषय आकार एव । स चात्मरूपमव
तन्निवायस्त्वान् आकार विचार शब्दादिभ्यश्च स च प्राणायामावन्त गोर्वाणा
भ्यतिरयस्य नास्ति । माण्डूक्य उपनिषद् । सन्द २ भाष्य ।

उपनिषद् के उपर्युक्त सिद्धान्त के समानान्तर अब हम सत्ता के सृष्टि सिद्धान्त की समझा करेंगे।

गोप्यनाथ के अनुसार आकार ही उनका मूल मंत्र है। आकार ही समस्त जगत में सृष्टि हो रहा है। अविगत स आकार की उत्पत्ति हुई। आकार स आकाश की सृष्टि हुई। आकाश स वायु, वायु से तत्र तत्र से जल, जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। जल के रूप स ब्रह्मा का बण और तेज स विज्व की माया उत्पन्न हुई है। वायु का रूप ईश्वर का गरीर है। आकाश का रूप नाभ का छाया का रूप है। अविगत की सृष्टि नाभ का रूप है। यहाँ अविगत नाभ स अविचचनाया परा प्रकृति कही गई है^{२६}। सत्त बरीरणास के अनुसार आकार सृष्टि का आदि मूल है। आकार स जगत की सृष्टि हाती है और अविद्या के विचारा म जगत की उत्पत्ति हाता है^{२७}। तानक पथ के अनुसार आकार सत्य स्वप्न है। यह आकार सृष्टि कता पुण्य है^{२८}। सन्त दादूनाथ के अनुसार आकार स अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न होत और नष्ट होत है किन्तु आभा ही सार सत्य है। अतः उसकी भक्ति और भाव में स्थिर रहना चाहिए। सृष्टि कलय के पूर्व कवन गुण और आकार रहित आत्मा था। आत्मा के निगुण और निराकार स्वत्ता स आकार की उत्पत्ति हुई। पुन आकार स आकाश, वायु, तत्र जल और पृथ्वी य पाच तत्व उत्पन्न हुए। इन पाच भूत स गरीर की रचना हुई है। गरीर भूत स हृम-भुम आदि इत जनिष्ठ अहंकार की उत्पत्ति हुई। निरजन अथवा त्रिस निगुण स्वप्न म प्रकृति के सत्त्व रज और तम गुण मरिणष्ट नहीं होत—निराकार है। किन्तु आकार माया के अनेक आकारों और विचारा का रूप है। आकार ही माया

२६ अंश वाच्य मंत्र इनाग।

क कार कल्पान सचन मया। गोप्यनाथी।

क। अविगत उत्पत्ति। क। क उत्पत्ति आकार। आकार उत्पत्ति बाद। वा उत्पत्ति तत्र। तत्र उत्पत्ति त्रय। त्रय उत्पत्ति मरी।

जल का रूप ब्रह्मा का बण उत्पन्न विज्व की माया।

पवनरूप श्वर की काया आकाश रूप नाभ की छाया।

नाभर अविगत उवाया। गोप्यनाथ। सृष्टि परसन।

१० क कार आदि है मूला, राधा परवा परै मूला। ककार अभावा। रनेया।

क हरे जग ऊपरै विकारे का बाद।

अनरु बल बशाद कर रहा मनन मह द्वार। ककार अभावा। पं १२१।

११ श्री अनेकानु करण पुनः पुनः निरंतर अकार मरिण अत्र सन पुन प्रकृति।

सत्त्व रजस। श्रुती सक्ति।

के अनेक रंग और रंग मध्यकत हुआ है। आकार सत्त्व का आदि सत्त्व रूप है। वाली और उपाधि रूप म यह सारोराभिमानो तत्व है। आकार स माया का विस्तार हुआ है। यह पारमार्थिक सरण नहीं है^{६२}।

सात गुणरदास के अनुसार पहले आकार की उत्पत्ति हुई। इस आकार स तत्व, रज और तम ये गुण उत्पन्न हुए तथा आकाश वायु जल, अग्नि और पृथ्वी इन पंचभूतों की रचना हुई। तीन गुणा और पंचभूतों से जगत् सत्त्व का 'महल बनाया गया है। आकार सत्त्व का आदि कारण है। समस्त ब्रह्माण्ड इसमें ही स्थित है। आकार के अधिष्ठान म प्राणी जगत् को अधिष्ठात्मक भ्रम म डालने वाली माया सात दोषों और नव सण्डों अर्थात् सबन्ध व्यापक है^{६३}। सात चरनगत के अनुसार ब्रह्म के अहंकार स आकार उत्पन्न हुआ और आकार से ब्रह्मा, विष्णु और शिव बन गये। देवताओं की उत्पत्ति हुई। परन्तु पारमार्थिक आत्मा इन सबसे भिन्न है^{६४}। सात भीष्मा साहय के अनुसार भी सत्त्व का आदि कारण आकार है^{६५}। सात पारो

- ६२ आकार ये उपनै विनम बहुत विचार ।
भाव भगति लै धिर रदै दादू आत्मगार ।
पहली कीया आप ये उतपति ओंकार ।
आकार य उपनै पय तत्त आकार ॥
पच तत्त ये घट भया बहु विधि सब विस्तार ।
गदू घट ये ऊपनै मं तै वरण विचार ।
एक सब्ब सब बुद्ध किया ऐमा समग्र साद ।
आगे पीछे ती कर न बन दीणा होश ॥
निरनन निराकार है आकार आकार ।
दादू सब रंग रूप सब सब विधि सब विस्तार ॥
आदि सब्ब ओंकार है, वोनै सब घट मादि ।
गदू माया विस्तरी परम तत्त बहु नादि । गदूयान की बानी । सब्ब को अ ग ।
- ६३ उतपति रे सा तै कीया प्रथमदि ओंकार ।
नियनै तीयों गुन भये पांछे पच पगारा ।
नितका रे यह औजू ह सी तै महल बनाया । गुल्लर अधाक्की । पत् ४ ।
ऊ कार की आदि देहा और सकल ब्रह्माण्ड ।
बलत माया मोहिनी साल गीप नौ रत्न । सुदर अधाक्की । पत् ६ ।
- ६४ अन्तव ऊ भयो जिनते तीनों देव ।
जिनके परे तु आत्मा अगम अगोचर भेव । भक्ति सागर ।
- ६५ आदि सत्त्व ओंकार बहुत ह अदुत्तर रहत सब दीना । भीष्मा साहय की बानी ।

माह्य भी आकार को ससार का आश्रित मानते हैं^{६६} ।

उक्त विवरण से प्रकट है कि सत्ता ने आकार को सृष्टि कारण आदि माना है । उहने आकार म स प्रकृति के सत्व रज और तम गुण और आकाश वायु अग्नि जल और पथी की उत्पत्ति कही है और आकार को माया अथवा अविद्या का रूप माना है । जगत व आकारा, रूपा और रगा की विषम रचना का कारण भी आकार है । गरीर रचना के मूल म भी आकार है । जब हम माण्डूक्य उपनिषद् के अनुसार इस षडु प्रकरण पर विचार करत हैं तो देखते हैं सत्ता ने जिस प्रकार ओकार को माया और प्रवहार का रूप दिया है वह जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति के विभाजना में नहीं आता । परंतु यह निश्चय है कि जिस प्रकार विभिन्न अवस्थाया म एक ही आत्मा व्यवहृत होता है अथवा जनत्र की सृष्टि स्थिति और प्रलय रूप में एक ही अधिष्ठान रूप आत्मा की स्थिति रहता है उसी प्रकार सत्ता के अनसार आकार ही जागतिक प्रवहार का कारण अथवा अधिष्ठान है । अकार, उकार और मकार वस्तुत आत्मा के व्यावहारिक स्वरूप की ही प्रतिष्ठा करने हैं । इस प्रकार सत्ता के अनुसार आकार माया का रूप माना जाएगा । अत माण्डूक्योपनिषद् और सत्ता के सृष्टि सम्बन्धी मून सिद्धान्तो म कोई अन्तर नहीं है । अन्तर केवल इतना ही है कि सत्ता ने आकार को माया का रूप अथवा कारण कहा है और माया के व्यावहारिक रूप को प्रधानता दी है किन्तु माण्डूक्योपनिषद् म आकार को जगत का कारण और विनाश रूप कहा गया है । माया व व्यावहारिक रूप का विवरण हमको माण्डूक्योपनिषद् म नहीं मिलता । आत्मा की तीन अवस्थाया का उल्लेख सत्ता ने भी किया है । पचभूता और तीन गुणा अथवा प्रकृति का उल्लेख यद्यपि माण्डूक्य उपनिषद् म नहीं मिलता परंतु विश्व और तजस आत्मा के उनीस मुखों व अन्तगत, शङ्कर की व्याख्या के अनुसार इनका अन्तर्भाव हो जाना है । तीना मात्राया और पाण से अतीन तुरीय आत्मा व गुण और आकार रहित स्वरूप के पारमार्थिक सत्य रूप को जिस प्रकार माण्डूक्योपनिषद् म न्य किया गया है उसी प्रकार सत्ता ने भी अविद्यात्मक ओकार से आत्मा को भिन्न मानकर उसकी पारमार्थिक सत्ता की प्रतिष्ठा की है ।

६६ यागी आश्रित ओकार गसा व ससार

अधर गसा व सत्ता न्ति पायो है । यागी माण्डूक्य की सनवनी ।

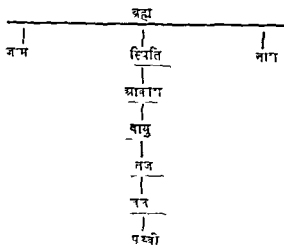
सत्तो द्वारा भोकार से सृष्टि का विकास स्वीकार करना सत्त वाच्य और यत्कि साहित्य के लिए महत्त्व की बात है। सत्ता द्वारा आकार की स्वीकृति इस बात का प्रमाण है कि सत्त यण और आश्रम यम के अधिकारी न होते हुए भी अदिश ज्ञान के विरोधी नहीं हैं। आकार की स्वीकृति इस बात की सूचना देती है कि सत्त अपने सिद्धांत में बौद्ध दृष्टि में प्रचलित शून्य को स्थान देते हुए भी शून्य को ही लक्ष्य करते हैं। सत्ता ने भोकार को महत्त्व देकर यह भी प्रमाणित कर दिया कि उपनिषद् सम्मत सिद्धांतों और सत्ता के सिद्धांत में कोई मौखिक विषमता नहीं है।

अस्तु माण्डूक्योपनिषद् की सामग्री का प्रामाणिक अर्थ समझने के लिये शाङ्कर माध्यम रूप हैं। माण्डूक्योपनिषद् में प्रतिष्ठित सिद्धांतों को हम शाङ्कर के भाष्य से ही समझते हैं। अतः शाङ्कर का भाष्य हमारे लिए अध्ययन का आवश्यक साधन है। सत्तो के सिद्धांतों से जब हम माण्डूक्य उपनिषद् सम्मत भोकार सिद्धांत की समझ बढ़ाते हैं तो शाङ्कर द्वारा प्रतिपादित माया अथवा अविद्या सिद्धांत की छाया उस पर पड़नी अनिवार्य हो जाती है। सत्तो ने शाङ्कर अनुमानित माया के विवर्त सिद्धांत को स्वीकार करके यह प्रमाणित किया है कि सत्त या य और शाङ्कर अतः वेदांत में आधारभूत भेद नहीं है अतः आकार की मायारूपता का जब हम विचार करते हैं तो शाङ्कर और सत्त एक ही आधार पर स्थित दिखाई देते हैं। यद्यपि माण्डूक्योपनिषद् में भोकार की अविद्यात्मकता का स्पष्ट उल्लेख नहीं है किन्तु शाङ्कर ने भाष्य में अविद्या सिद्धांत की स्वीकृति देते हुए सत्तो के अनुसार प्रतिष्ठित भोकार की मायारूपता का माग स्पष्ट कर दिया। यद्यपि माण्डूक्योपनिषद् में पंचभूतों और त्रिगुणात्मक प्रकृति का उल्लेख नहीं हुआ है परन्तु निगुण वाच्य में माया का स्वरूप प्रकरण में हम शाङ्कर के मतानुसार प्रकृति को माया और पंचभूतों को मायिक कह चुके हैं। अतः सत्त यत्कि भोकार को माया और विकारों का स्वरूप मानते हैं तो शाङ्कर मत से उसका विरोध नहीं कहा जा सकता।

शाङ्कर और सत्तो की दृष्टि से आकार का दूसरा विचारणीय पक्ष है आत्मा की माया से असंगतता का। आत्मा का तुरीय रूप आत्मा को गुणरहित आकार और व्यवहाररहित निश्चित करता है। शाङ्कर ने आत्मा के पारमार्थिक स्वरूप में आत्मा को वही प्रकार निरुपाधिक माना है। इसी सिद्धांत के अनुसार सत्ता ने भी आत्मा के पारमार्थिक रूप को आकार द्वारा प्रसारित माया के आकारी और व्यवहारों से अतीत माना है।

गङ्कर ने स्वतंत्र रूप से वहाँ भी सृष्टि क्रम का विवेचन नहीं किया। जसा कि हम सृष्टि क सम्बन्ध मे विवत भावना का विवचन करते हुए गङ्कर और सन्तों में सृष्टि के विवत सिद्धांतों में मतवय कह चुके हैं हम यहाँ कह सकते हैं कि दोनों का प्रधान लक्ष्य सृष्टि की अविद्यारमकता का बयन करना है। किन्तु उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रा म सृष्टि का क्रम वर्णित है और गङ्कर ने उनका भाष्य मनोयोग से किया है तथा सृष्टि की व्यावहारिक सत्ता स्वीकृत की है। इसी प्रकार सत्ता क अनुसार भी हमको सृष्टि का क्रम प्राप्त होता है। इस सम्बन्ध म गङ्कर और सन्तों की तुलना करना अनावश्यक है क्योंकि दोनों के सिद्धांतों म ही सृष्टि क्रम की व्यावहारिक अथवा गौण स्थिति है। फिर उपनिषदा ब्रह्मसूत्रा और सन्त काया म सृष्टि क्रम की समता या विषमता क दृष्टिकोण से सत्ता क अनुसार सृष्टि क्रम अस्तुत करना अनुपयोगी न होगा।

ब्रह्मसूत्रा म ब्रह्म जन्म, स्थिति और प्रलय का कारण कहा गया है। ब्रह्मसूत्रों में सबसे पहले आकाश की उत्पत्ति कही गई है। आकाश से वायु वायु से तज तज से जल और तल से पृथ्वी की उत्पत्ति [ब्रह्मसूत्रा म कही गई है। इस क्रम को हम इस प्रकार व्यवस्थित कर सकते हैं



इस क्रम क अनुसार हम ब्रह्मसूत्रा का उतरया इस प्रकार करेंग —

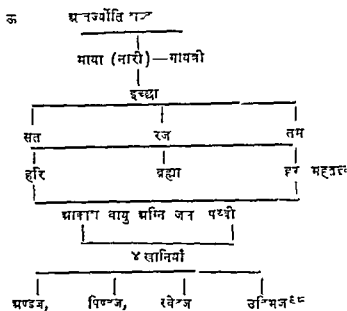
<u>अपातो ब्रह्म जिगाता</u>	ब्रह्मसूत्र ।१।१।१।
जन्माद्यस्य यत	ब्रह्मसूत्र ।१।१।२।
↓	
न विद्यन्श्रुते	ब्रह्मसूत्र ।२।३।१।
अदित तु	ब्रह्मसूत्र ।२।३।२।
↓	
एतेनमातरिद्वा व्याख्यान	ब्रह्मसूत्र ।२।३।५।
↓	
तेजो_तस्तया ह्याहि	ब्रह्मसूत्र ।२।३।१०।
↓	
आप	ब्रह्मसूत्र ।२।३।११।
↓	
परिधिविकाररूपान्तरैर्मय	ब्रह्मसूत्र ।२।३।१२।

साधारणतः हम कह सकते हैं कि उपर्युक्त ब्रह्मसूत्रों में स्थापित त्रय सत्ता में ज्यो-का-स्यो नहीं मिलता ।

गोरक्षनाथ व भनुसार अविगत स ऊ की उत्पत्ति हुई । ऊ से आकाश, आकाश से वायु वायु से तेज तेज से जन और जन से पृथ्वी की उत्पत्ति कही गई है । गोरक्षनाथ व भनुसार नाम को छाया वायु ईश्वर की वाया व तेज विष्णु की भाषा जल ब्रह्मा का वण पृथ्वी देवी का रग कहा गया है । पञ्च तत्त्वों का त्रय तो ब्रह्मसूत्रों में मिलता है परन्तु आकार तथा अविगत का त्रय ब्रह्मसूत्रों में निश्चित नहीं किया गया । हम गोरक्षनाथ व भनुसार सुष्टि त्रय को इस प्रकार त्रय में व्यवस्थित कर सकते हैं —

अविगत	नाद
↓	
ऊ	
↓	
आकाश	नाद की छाया
↓	
वायु	ईश्वर की वाया
↓	
तेज	विष्णु की भाषा
↓	
जल	ब्रह्मा का वण
↓	
पृथ्वी	देवी का रग

सत कवीरदास के अनुसार हम सृष्टि क्रम को इस प्रकार प्रस्तुत कर रहे हैं —



सत कवीर के अनुसार अक्षर सृष्टि का आदि मूल १८ है। इससे माया, नारी अथवा गायत्री का जन्म हुआ। गायत्री की इच्छा से त्रिगुण और त्रिवेद उत्पन्न हुए। इनसे पाँचभूत और जीवा की चार सानियाँ उत्पन्न हुईं।

सन्त दूह्याय क अनुसार आत्मा से आहार भी उत्पत्ति हुई। अक्षर

६८ अन्वर्षोति रदं एक नारी

हरि ब्रह्मा तां त्रिपुरात ।

हरि हर ब्रह्मा सन्तो नाऊ । कवीर वाजक । रत्नी ।

इच्छा रूप गारि अथवा

सायु नाम पायत्री पती ।

तेहि नारी क पुन निन भाऊ

ब्रह्मा विष्णु भदेसुर नाऊ । कवीर बीनक । रत्नी । २।

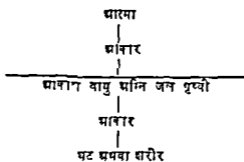
सत रज तम ये कश्ची माया ।

चारि गनि विलार उभाया ।

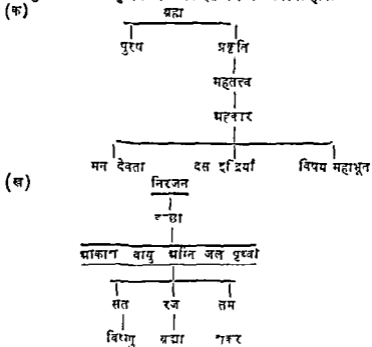
पच तत्त से कीह बधान । कवीर अन्वर्षोती । रत्नी ।

क कार आदि दे मूज । कवीर अन्वर्षोती । रत्नी ।

से पञ्चभूत और आकार की उत्पत्ति हुई। पुन इनसे षट् भगवा शरीर की रचना हुई —



सत मुन्दरदास के अनुसार मण्डि की इस क्रम में व्यवस्था होगी —
(क)



स्वेज अणज जरायुज उभिज यानियाँ^{६६}

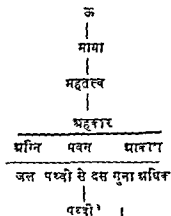
सत धरन्दास के अनुसार पहले धरती और धरती से दस गुना जन उत्पन्न हुआ। अग्नि पवन और आकाश तत्वों की रचना महकार और अकार

६६ मदा से पुरुष अरु प्रकृति प्रकट भई,

प्रकृति से महत्त्व महकार है।

महकार है वे तीनि गुन सव रस तम,

की रचना महत्त्व से हुई। महत्त्व माया से और माया आकार से उत्पन्न हुई। इनके अनुसार सृष्टि त्रय इस प्रकार है —



इन सभी क्रमों में आकार को सृष्टि का मूल व प्रधान कारण माना गया है। अतः हम यही निश्चित करत हैं कि सत्ता न मुख्यतः आकार को ही सृष्टि का मूल कारण माना है। ब्रह्मसूत्रों में स्थापित त्रय का अनुसरण सत्ता ने नहीं किया। उपयुक्त त्रया में अत्रि चार स्थानियाँ हैं जो विचरण्य मिलता है, वह ऐतरेय उपनिषद् के आधार पर है^१ ।

तन्मूर्तेः स महाभूत त्रिय प्रथमः ।

रन्मूर्तेः ते ह्यग्निः पवनः आकाशः ।

सर्वं ह्यत्र मन आत्मा च । विचार है ।

प्रथमं त्रिं त्रयं प्राचीं मनं मे बहु प्राची ।

पाँच सब तुम हीनो तो सब सृष्टि अपनी ।

व्योम वायु पाक किं त्रय भूमि निर्गमः ।

वायु सार्विक अन्तर्गत विविधानः ।

ऐतरेय अत्रि त्रयुक्त अन्तर्गत उपनिषद् । मुक्त प्रथमः । भा. १ ।

१० पद अर्थात् सब दिग् में जाति

तात् त्रयुक्तो जगत्त्रय में जाति ।

बहुते अग्नि अत्र पवन आर आकाश है

बहुत मान तु सब सग पदम है ।

महत्त्व तीस्रा भाग तु त्रि में जाति

अप्यम भाग रूप सकल पदिकाति । अत्रि आर ।

१०१ अत्रि अत्रि वास्तविक अत्रि अत्रि अत्रि अत्रि ।

सत्ता नेयन् । ऐतरेय उपनिषद् । ३।१।३ ।

सत्रहवा प्रकरण

निगुण काव्य मे माया का स्वरूप

माण्डूक्य शरिका भाष्य मे आचार्य शङ्कर १ अविद्यमान वस्तु को ही माया कहा है १ ।

साधु शान्तिनाथजी की माया शब्द की माया के अनुसार माया शब्द सत् (ब्रह्म) से विलक्षण विश्व का मूल उपादान समझा जाता है । समूह सत् की दृष्टि से जो उपमा उपादान कारण है और जो विश्व के अविष्टान सच्चिन् स्वरूप ब्रह्म की दृष्टि से उसमें स्वरूप विद्यमान नहीं है परन्तु अभी के अज्ञान है, उसी सत् या असत् से अनिर्वचनीय पदार्थ को माया कहते हैं । यद्यपि माया रूप से काइ भी पदार्थ किसी के अनुभवगोचर नहीं होता किन्तु जो सब लोको मे प्रसिद्ध अज्ञान है उसी का नाम माया है । अविष्टान मे विचार न उत्पन्न करके उसमे अज्ञान प्रसार की विचित्र सृष्टि करने मे समर्थ होने के कारण अद्भुत सामर्थ्य की दृष्टि से अज्ञान की परिभाषा माया है २ ।

माया १ = 'मा + या' दो पदा को मिलाकर बनता है । इनमे 'मा' पद 'यावहारिक' पन्थ सत्ता का निषेध करता है और 'या' पद यावहारिक पन्थ सम्बन्ध निश्चित करता है । 'मा' का अर्थ है नही और 'या' का अर्थ है 'जो अर्थात् जिस वस्तु की स्थिति न हो किन्तु उपलब्धि होती हो वह माया पदबोधक है ।

वस्तु की जिस रूप मे उपलब्धि होती है वह वस्तुतः वसी नहीं है—जसे अक्षरकार मे रस्ती मे सप का भ्रम होना । वस्तुतः रज्जु का अस्तित्व तो है किन्तु अक्षरकार के कारण रज्जुता की उपलब्धि न होकर सप की स्वाभाविक बुद्धि उत्पन्न होती है । रज्जु मे सप का अस्तित्व नहीं है तो भी सप की

१ सब व माया न विद्यते मायेत्यविद्यमानस्यारयेत्यभिप्राय ।

माण्डूक्यकारिका भाष्य । अलात शान्ति प्रकरण ।

२ मायावात् ब्रजयती । साधु शान्तिनाथ । कल्याण । वेणुत अक्ष ।

प्रतीति होती है। इसी प्रकार यद्यपि सप का अस्तित्व वस्तुतः नहीं है तो भी सप का भान कराने वाली रज्जु अस्तित्व में है। इस प्रकार सप की प्रातिभासिक सत्ता का अविष्ट न रज्जु त्रिशूल में भी बाधित नहीं होता। इसी दृष्टान्त के आधार पर माया के अस्तित्व की कल्पना हम ब्रह्म में कर लेते हैं। इसके यह सिद्धान्त निदिशान होता है कि वस्तुतः अस्तित्व ब्रह्म का ही है किन्तु अविद्यावश मनुष्य ब्रह्म के अविष्टान में माया का आरोप कर लेता है। माया के अस्तित्व के सम्बन्ध में एक पत्र यह भाषा करता है कि माया सबका अभाव और भाव से विनश्यत् रूप है। गङ्गा माया को न भाव मानते हैं और न अभाव, वरन् माया की अकथनीय सत्ता का प्रतिपादन करना ही उनका लक्ष्य है।

श्वेताश्वतथ उपनिषद् में परमात्मा को 'जालवान् अयान् जानवाला' कहा गया है^३। आचार्य गङ्गा न माया को जाल कहा है^४। गीता भाष्य में आचार्य गङ्गा का कथन है कि ब्रूट नाम माया का है जिसके वचना, छन्द, कुटिलता आदि पश्यात् हैं^५। अतिप्रभाकर में माया को दुष्ट का सम्पादन करने वाली कहा गया है। माया में काय की विलक्षण क्षमता है। माया के द्वारा असम्भव काय भी सम्भव होते हैं। अतः इसको दुष्ट का सम्पादन करने वाली कहा जाता है^६। माया के स्वरूप में छन्दता, वचना कुटिलता, मिथ्यात्व एवं असम्भव को भी सम्भव करने वाली आदि के लक्षण आरोपित किए जाते हैं। अतिप्रभाकर में ही माया को अज्ञान कहा गया है। इस अज्ञान के दो रूप हैं—आवरण और विभेष। ब्रह्म स्वरूप के ज्ञान में अज्ञान के दो दोष ही का बाधक हैं। विद्या से माया का नाश होता है अतः 'वृत्ति प्रभाकर' में माया को ही अविद्या कहा गया है। आकाश वायु अग्नि जल, एवं पृथ्वी इन पंचभूतों द्वारा उत्पन्न कार्यों का उत्पादन रूप होने के कारण इसको प्रकृति कहा गया है। माया ही ब्रह्म की शक्ति कही जाती है। जिस प्रकार शक्ति का आश्रय कोई शक्तिमान पुरुष होता है उसी प्रकार माया-शक्ति का आश्रय ब्रह्म है। शक्ति शक्तिमान के आधीन होती है और माया-शक्ति भी ब्रह्म के आधीन है, अतः अतिप्रभाकर में माया को शक्ति नाम से अभिहित

३ य एको जा-वानान् इशानानि । श्वेताश्वतथ उपनिषद् । २।१।

४ य एह परमा मा से जालवान् जानवां दुरम् ५।१।

श्वेताश्वतथ उपनिषद् भाष्य । २।१।

५ ब्रूटो माया वचना चिद्रता कुटिलता इति पश्यात् । गी। भाष्य । १५।१६।

६ अतिप्रभाकर ।

किया है। श्वनाश्वतर उपनिषद् भाष्य में साङ्ख्य ने माया को योनि, कारण अथावृत्त भाकाग, परमयोम प्रकृति शक्ति तम अविद्या छाया, अज्ञान अज्ञत और अज्ञत साङ्ख्य द्वारा अभिहित किया है।

विवेकभूषामणि के अनुसार माया सत्व, रज और तम गुणा से युक्त है। यह अनादि अविद्या स्वरूप है और परमात्मा की शक्ति है। माया ही जगत का उत्पन्न करती है। माया का अनुमान माया जनित कारणों को देख कर होता है जिस प्रकार किसी कुमारी के पुत्र जन्म की क्या सुनकर लोक में यह अनुमान किया जाता है कि प्रभु कुमारी का किसी पुरुष से संयोग अज्ञान हुआ है इसी प्रकार जगत् रूप काय को देखकर यह अनुमान किया जाता है कि जगत्काय मायावृत्त काय ही है क्योंकि ब्रह्म ता वस्तुतः सृष्टि नहीं करता है। ब्रह्म ता वत त्व भोक्तृत्व भावा से गूँथ है। उसमें सृष्टि का आरोप नहीं हो सकता है। अतः विवेकभूषामणि में माया को माया-कारणों से होने वाला अनुमान द्वारा विद्विष्ट होने वाली कहा गया है^७।

विचारचन्द्रोदय में कहा गया है कि अनादि गुड ब्रह्म में अनादि प्रकृति कल्पित है। इस अनादि कल्पित प्रकृति का ब्रह्म के साथ सम्बन्ध है परन्तु वह सम्बन्ध वास्तविक नहीं बरन मिथ्या है। प्रकृति व सम्बन्ध का ब्रह्म के साथ तात्पर्य है। कल्पित भेद के सहित ब्रह्म से इस प्रकृति का अभेद है। विचारचन्द्रोदय के अनुसार माया अविद्या और तम प्रधान प्रकृति तीन प्रकार से विभक्त हो जाती है। गुड ब्रह्म में प्रकृति का गुड सत्वगुण रूप माया कहलाता है एवं मलिन सत्वगुण युक्त प्रकृति का रूप अविद्या कहलाता है। तमोगुण की प्रधानता से तम प्रधान प्रकृति का विभाग किया जाता है। इस विवरण को हम इस प्रकार समझ सकते हैं —

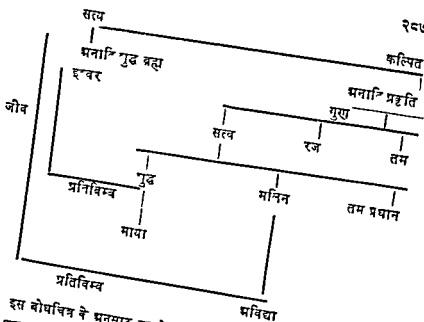
७ कारणमन्व्यङ्गनाकारा परम योन माया प्रकृति शक्तिस्तमोऽविद्या छायाज्ञानमननमदभ्य निन्दशान्ति शम्भेरभिरुप्यमान। श्वनाश्वतर उपनिषद् भाष्य।

८ अन्वयनाम्नी परमशरावित

रनायवता निगुणतिका परा।

कायानुमेयासु विधव माया

यथा नगरमशनि प्रसूयते ॥११०॥ विवेकभूषामणि।



इस बोधचित्र के अनुसार हम देखते हैं कि कवन ब्रह्म एकमात्र गुड सत्य है। परन्तु प्रत्यक्षता हम ब्रह्म को नहीं देखते। प्रत्यक्षत तो हम ससार क मायिक रूप को ही देखते हैं। नित्य ब्रह्म क स्थान पर अनित्य जगत को हम देखते हैं। सुख के स्थान पर दुःख और अमृत क स्थान पर मृत्यु देखते हैं। एक ब्रह्म क स्थान पर हम अनेक पन्थ देखते हैं। अतः अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्म के समानान्तर माया ज्ञान के समानान्तर अविद्या एव एक के समानान्तर अनेक रूपों की प्रतिष्ठा करके कवल अद्वैत नित्य गुड एव सत्य स्वरूप ब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है। इस विवरण में ब्रह्म और माया दोनों को अनादि कहा गया है। किन्तु ब्रह्म को अद्वितीय सत्य कहकर माया को मिथ्या कहा गया है। अतः प्रश्न है कि सत्य स्वरूप ब्रह्म का ससग दोषयुक्त माया स किस प्रकार हो गया है। ऊपर बोधचित्र में इस सम्बन्ध में कहा गया है कि ब्रह्म और माया दोनों ही अनादि हैं। दोनों क सयाग हान स जगत के व्यवहारों का सूत्रपात हाता है। किन्तु ब्रह्म वस्तुतः माया के गुणों से दूषित नहीं होता। दोष का आदेग करना भी व्यावहारिक और औपाधिक है। उपनिषदा गीता ब्रह्मसूत्रों एव आचार्य सङ्कर के सिद्धान्ता में माया के स्वरूप को हम इन रूपों में देखेंगे —

- १ ब्रह्म मायापति है।
- २ माया ब्रह्म की शक्ति है।

- ३ अनात्म अध्यास एव उपाधि द्वारा माया व्यक्त होती है ।
- ४ माया अनादि है किंतु ब्रह्म ज्ञान से इसका बाध होता है ।
- ५ माया न भाव रूप है और न अभाव रूप । माया भी अनियवनीय सत्ता है ।
- ६ समस्त इन्द्रियगाचर विषय जगत व्यवहार के प्रति अभिमुख वह्निमुखी नितियाँ अनिरय अनारम एव जड पदार्थ माया के रूप है ।

उपनिषदाः म बह्दारण्यक उपनिषद् प्रथम उपनिषद् और श्वेता श्वतर उपनिषद् म माया पद का प्रयोग मिलता है । बह्दारण्यक उपनिषद् म प्रयुक्त माया पद सष्टि की अनेकरूपता का वाचक है । इसमें कहा गया है कि इन्द्र माया से अनन्त रूप धारण करता है ६ । प्रथम उपनिषद् म कहा गया है कि जिनमें कुटिलता अनन्त और माया नहीं है उह ब्रह्मत्व प्राप्त होता है १ । यहाँ माया का सम्बन्ध साधक की नित्यता से है । इस स्थल पर भाष्य करते हुए आचार्य शाङ्कर ने माया को गहन्य जीवन की कुटिलता एव व्यावहारिक असत्य रूप से सम्बन्धित माना है । उन्होंने मिथ्याचार को भी माया कहा है १ १ ।

प्रकृति त्रिगुणात्मक है । इसी आधार पर श्वेताश्वतर भाष्य म आचार्य शाङ्कर ने शक्ति को ब्रह्मा विष्णु और शिव इन तीन रूपों में पथक पथक माना है ।

आचार्य शाङ्कर के अनुसार ये त्रिदेव अनिर्वच ब्रह्म में उपलब्ध नहीं होते । ये परब्रह्म के सष्टि, स्थिति और प्रलय-काय करते हैं । अतः अवस्था भेद के कारण इनमें शक्ति भेद का व्यवहार किया जाता है । वस्तुतः इनमें तात्त्विक भेद नहीं है १ २ । उपाधि अविद्या का अंग है और अविद्या स्वाभाविक और

६ "न्द्रो माया म पुरुरूप ष्यते । इन्द्रारण्यक उपनिषद् । २।५।१६।

- १ तेषामसौ विरजो मद्भलोको न येषु अनन्त न माया च्छति । प्रथम उपनिषद् । १।१६।
- ११ तथा माया गढरधानामिब न येषु विद्यते । माया नाम बहिरत्यभाभान प्रकाशनाद्यध्व काय करोति सा माया मिथ्याचार रूपा । प्रथम उपनिषद् भाष्य । १।१५ ।
- १२ शक्तयो यस्य देवस्य ब्रह्मविष्णु शिवात्मिका ।
ब्रह्मविष्णुशिवा ब्रह्मप्रधाना ब्रह्मराक्षस्य ॥ श्वेताश्वतर उपनिषद् भाष्य ।
स्वयुष्मै सत्वरत्नमोभि । सत्वेन विष्णु रजसा ब्रह्मात्मसा गहरवर स वायुपाधि मन्व धात्वरूपेण निरुपाधिकषु र्णानन्ता दिनायब्रह्मात्मनैवातुपलभ्य म्ना ।
परस्यैव ब्रह्मण सष्ट्यात्त्रिकाय कुवन्नाऽवरत्वाभेत्माश्रित्य शक्तिभेत्प्रवृत्तौ न पुनस्तव भेत्माश्रित्य । तथा चोक्तम्—सगरिथायन्तकरणी ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका म ।

स सत्ता या त भगवानेक एव तजान्म । श्वेताश्वतर उपनिषद् ।

प्रथममीश्वरामना मायिरूपेणावतिष्ठते मद्भ । स पुनर्गु तिरूपेण त्रिधा भवतिष्ठते ।

श्वेताश्वतर उपनिषद् ।

धनादि है^{१३} । अतः ब्रह्म की यह श्रोगाधिक गुडरूपता स्वाभाविक और धनादि है क्योंकि अघवास के सन्तम म अविद्या नसगिक और धनादि कहा गई है । इस प्रकार ब्रह्म की निष्ठाधिकता सुरात्रि रहती है और अविद्या सिद्धात की म्यारना हाती है । वस्तुन अद्वैत ब्रह्म जगत और जीव दानों का स्वरूप है परन्तु जीव और जगत ब्रह्म स्वरूप क आच्छादित हैं । यह आच्छादन ही ब्रह्म की शक्ति है । विवेकचूडामणि म यह शक्ति आवरण और विभेप दो नामों स कहा म^{१४} । इस प्रकार किसी शक्ति म सधन मधों क द्वारा मूय देव क आच्छादित हान पर प्रति भवकर और ठाना भाँधा सबका तिल्ल कर दती है उसा प्रकार बुद्धि क निरन्तर समागुण स आच्छात होन पर मूय पुरूप को विभेप शक्ति नाना प्रकार क श्रुता स सतप्त करती है । य दानों शक्तिर्मा हा जीव की बधन-वारण हैं । इनक वारण प्राणी दह का आत्मा मान कर पुनरुत्पन्न को प्राप्त हाता है^{१५} । इस प्रकार शक्ति का स्वरूप आवरणमय है । यह आवरण श्री इन्द्रिया को बहिर्मुखी बना दता है ।

श्वतावतर उपनिषत् म प्रकृति का माया कहा है । श्वतावतर उपनिषत् में ही माया का सम्बन्ध त्रिगुणारम्भ मृष्टि के साथ माना गया है^{१६} । गाना म माया का ज्ञान हरन का साधन कहा है । माया द्वारा हर लिय गये विवेक बाना का टुप्पम करन वाला, मूय नराधम और आसुर भावा से मुक्त हाना कहा है । गाना म ही कहा गया है कि माया सत्त्व रज और तम गुणा स मुक्त हान हान भा दवा है^{१७} । माया के लिए दवी शक्त का प्रयाग इसलिए किया गया है कि माया हा इश्वर का शक्ति है । यह माया अपार है

१३ पद्यों की निवृत्त शक्ति को शकर ने स्वभाव कहा है ।

स्वभावो नान पदशना प्रति नियता शक्ति अस्मदी-रूपनिव ।

श्वतावतर उपनिषद् भाष्य ।

१४ कथं निगमिनाः शक्तिं सत्प्रभवम्,

व्यपति निमग्नमागुणमा यैतान् ।

अद्वितयमना नशम मूर्च्छा

अथयति बहुदुःखैस्त्रैव विद्वेषति ॥ विवेकचूडामणि ॥

पदार्थमेव शक्तिं भाष्य कथं पुन सत्प्रभवम् ।

पदार्था विमलान् इह म बान्ताम अम-यन् । विवेकचूडामणि । १४६ ।

१५ माया तु प्रकृति शिवात्तयेन तु महेश्वरकन । श्वतावतर उपनिषत् । ४।१० ।

मात्मिकवत् विस्वमन्त् । श्वतावतर उपनिषत् । ४।६ ।

१६ न मा दुःखिना मूय मयत्त मयत्त ।

मायवाह दाना आसुर मायनाधिका ॥ गान् । ७।१५ ।

बिन्दु भगवान् क भक्त इस माया से पार हो जाते हैं^{१७}। गीता में ईश्वर को हृदय देग में स्थित रहने वाला कहा है और माया द्वारा मात्र म चक्षे दृष्ट मनुष्य के समान प्राणी का घुमाया जाना कहा है^{१८}। इस प्रकार गीता में हम देखते हैं कि माया पत्र स आचार-यवहार की प्ररणा और प्राणी को बन्धनरूपता यवन की गई है। ब्रह्मसूत्रों में माया पत्र का एक बार प्रयोग हुआ है। ब्रह्मसूत्रों में ही स्वप्न की सृष्टि को माया मात्र कह कर स्वप्न पत्रार्थों की निराधारिता कही गयी है^{१९}। यहा माया पत्र स्वप्न का समा नार्थी है। जिस प्रकार स्वप्न में देखे हुए पदार्थ मित्या हाते है उसी प्रकार मायिक पत्रार्थ भी मि या होते हैं। तत्वबोध में माया का ब्रह्म की आधिता माना है। तत्वबोध के अनुसार माया सत्त्व रज और तम गुणा का रूप है^{२०}।

माया पत्र दूषित भाव का द्योतक है। माया यवहार के अनाचारा को प्ररणा दती है। माया ही आत्मा क बन्धन का कारण है। माया उपाधि रूप में होने क कारण जीव का आत्मस्वरूप बोध स वचित रखती है। सृष्टि की रचना का कारण भी माया है। अद्रुत स्वरूप ब्रह्म को अनक रूपा में भासित कराने वाली माया ही है। माया के भ्रम में पड कर ही जीव आत्म स्वरूप स विमुख हो जाता है। इसके कारण ही नित्य ब्रह्म स्वरूप स युत होकर आत्मा इन्द्रियजय विषया में लिप्त हो कर अपने वास्तविक पार मायिक स्वरूप को विस्मन कर देता है।

स्वतावतर उपनिषद में कहा गया है कि ऋषिया ने ध्यान योग के द्वारा काल से लेकर आत्मा पय त कारणों के अधिष्ठान ब्रह्म की शक्ति का साक्षा त्कार कर लिया^{२१}। इसी उपनिषत् में निर्विषेय एक वण ब्रह्म का अनेक

१७ दैवी क्षेपागुणमयी मम माण दुःखया ।

मामेव क प्रपद्यते मायामता तरन्ति ते ॥ गीता । ७।१४ ।

१८ इश्वर सभूताना हृद शब्जुन निष्ठति ।

आमरन्मभूतानि यत्रारूपानि माशया ॥ गीता । १८।६१ ।

१९ मायानात्र तु का रासनानभियस्तत्स्वरूपवान् । ब्रह्मसूत्र । ३।२।३ ।

२० ब्रह्माश्रया स चरत्सुतमोगुणामिका माया अस्ति । तत्वबोध २६ ।

२१ ते ध्यानयोगानुगता अपरयन ।

देवा मशर्वित स्वगुणैर्निगूणान् ।

य कारणानि निखिलानि तानि

कला मयुक्तान्यधिनिष्ठयेक । स्वतावतर उपनिषद् । १।३ ।

रूप होना कहा गया है। ब्रह्म अपनी शक्ति के योग से बिना प्रयोजन के नाना विध सृष्टि करता है। अन्त में विस्वरूप सृष्टि ब्रह्म में ही लीन हो जाती है^{२२}। ब्रह्म की शक्ति अनन्त विध है। ब्रह्म को ज्ञान, बल और त्रिशास्त्र स्वाभाविक है।

ब्रह्म का काइ काय नहीं है और न काय करने के लिए ब्रह्म सञ्चितरित्त अय सायन या शक्ति है^{२३}। गीता में माया के लिए शक्ति का प्रयोग नहीं हुआ है। उसमें ही कहा गया है कि प्रकृति का वश में करके ईश्वर सृष्टि की रचना पुन पुन करता है^{२४}। इसी प्रकार ईश्वर की अघ्यगता में प्रकृति जट और चतन पदार्थों की रचना करती है। ब्रह्मसूत्रा में भा अय्याञ्जन माया शक्ति को ब्रह्म के आधीन कहा गया है^{२५}। आचार्य गङ्गुल के अनुसार जगत की प्रागल्भ्या परमेश्वर के आधान है। शक्ति को ब्रह्म के आधीन न मानने से परमेश्वर सृष्टि नहीं हो सकता क्योंकि शक्ति रहित होने से सृष्टि में ब्रह्म का प्रकृति नहीं हो सकती^{२६}।

इस प्रकार माया की शक्तिपता के सम्बन्ध में ये बातें निश्चित होती हैं —

- १ माया-शक्ति ब्रह्म के अधीन है।
- २ माया शक्ति ही सृष्टि काय रूप में प्रत्यक्ष होती है।
- ३ ब्रह्मा विष्णु और शिव रज सत और तम गुणों के रूप हैं। और ये ही सृष्टि करते हैं। किन्तु ब्रह्म की ये तीनों शक्तियाँ ब्रह्म के पदक अस्तित्व नहीं रखती।

२२ य एकादृशो बहुधा शक्तिशाली,

द्रव्याननशक्तिशाली दधाति ।

विचैतान्द विरवन्मानी म दव ,

म ना मुदया शुभया सतुनम्नु ॥ श्वलाश्वतर उपनिषद् । १॥

२३ न नश्य काय करण न विनत

न तममर सम्भविजन श्वयत ।

पगन्व शास्त्र विवचन श्वयत,

श्वाना वेक श्वानवजाश्वया च ॥ श्वलाश्वतर उपनिषद् । ६॥

२४ प्रकृति श्वलाश्वयम् विमजान पुन पुन ।

भूषणमिदं कृष्णनवव प्रकृतवशात् । गीता । ६॥

२५ मया दद्वेष्य प्रकृति सूयत सचराचरम् ।

हृत्तुलनेन कान्तय जगद्विरित उ ॥ गीता । ९॥

२६ माया तु प्राणि विग शक्तिन तु मदश्वरम ।

सम्भारवमूतीशु श्वान मशनि जगन । श्वलाश्वतर उपनिषद् । ४॥

४ आवरण और विवेक दो प्रकार की शक्तियाँ विवेक चूडामणि म
मानी गई है। य शक्तिया जीव को ब्रह्म स्वरूप से पथक करती हैं।

श्वता वतर उपनिषद म कहा गया है कि प्रकृति को माया और महेश्वर
को मायावी जानना चाहिये। गीता म आठ प्रकार की प्रकृति कही गई है।
भूमि जल अग्नि, वायु और आकाश ये पंच भूत इस प्रकृति क ही अंग हैं।
इनके अनिरिक्त मन बुद्धि और अहंकार एव पंचभूत मिलकर अष्टधा प्रकृति
कहलाते हैं^२। इसको अपरा प्रकृति भी कहते हैं। अपरा प्रकृति ही ससार
बन्धन का कारण है। प्रकृति का दूसरा भेद परा प्रकृति है। परा प्रकृति ससार
को धारण करती है। आचार्य शाङ्कर ने अपरा को निष्कृष्ट और परा को गुह्य
प्रकृति कहा है^{२८}। सृष्टि के प्रथम काल मे प्राणी प्रकृति म समाहित हो
जाते हैं और पुन प्रकृति ही दूसरे रूप म सृष्टि की रचना करती है। ईश्वर
की अक्षयता म ही प्रकृति जड और चतन सृष्टि उत्पन्न करती है। इस प्रकार
हम देखते हैं कि प्रकृति शक्ति और माया सभी तत्त्व एकमात्र अद्वितीय
ईश्वर क अधीन हैं। इनम स्वरूपगत भेद नहीं है केवल काय की विनिष्कृता
के आधार पर इनम नाम मात्र का भेद है^{२९}।

अब हम पुन प्रकृति के स्वरूप का वर्णन करत हैं। प्रकृति गीता के
अनुसार घनादि है। विकारा और गुणा की उत्पत्ति प्रकृति से ही होती
है^३। आत्मा शरीर मन बुद्धि अहंकार और इंद्रियो के संयोग से ही सुख
और दुःख का भोग करता है। गीता के अनुसार इस प्रकार प्रकृति ही निरुपा
धिक निर्विकार आत्मा को बन्धन मे सुख और दुःखो का अनुभव कराती है^{३१}।

२७ भूमिरापोऽनरो वायु स मनो बुद्धिरेव च।

अहंकार इव म भिन्ना प्रकृतिरष्टधा। गीता। ७।४।

२८ अपरव्यमितस्त्व वा प्रकृति विद्धि म परान।

नीचभूता महाबाहो यदेत धारतं जगत्। गीता। ७।५।

अपरा निष्कृष्टा अशुद्धा अनकारो ससारबन्धनामिका इत्यन्। विगुह्याप्रकृति मम
आत्मभूता विद्धि मे परा प्रकृति नीचभूता क्षेत्रज्ञस्यैवा प्राणधारणनिमित्तभूता हे
महाबाहो यथा प्रकृत्या एत धारतं जगत् अन्त प्राकृत्या। गीता भा ७। ७।५।

२९ सत्त्वभूतानि वा तत्र प्रकृतिधातु मा मदात्।

क प्रथम पुनर्यानि कर्पाणी विमयाग्नयन। गीता। ६।७।

३ प्रकृति पुण्य तत्र विनियतनी उभाशय।

विना तत्र गुणारंभ विद्धि प्रकृ ममान। गीता। १। १९।

२१ तासांशान्ता ये ह्यनु प्रकृतिरुच्यते।

पुण्य सुखदुःखाना भावेषु एतु क्व च। गीता। १।३।

पुरुष नाम वाला जीव अथवा आत्मा इस प्रकृति में ही स्थित रह कर प्रकृति के गुणों से उत्पन्न भोगों को भोगता है। भोगों का परिणामस्वरूप जीव को सद और असद योनियाँ धारण करनी पड़ती हैं^{३२}। ब्रह्म स्वरूप जीव वस्तुतः कतल्व भोक्तृत्व से रहित है किन्तु प्रकृति ही जीव के माध्यम से काम करती है^{३३}। शरीर इन्द्रियाँ प्रकृति के परिणाम हैं। आचार्य शङ्कर का कथन है कि प्रकृति द्वारा ही मन, वाणी और शरीर से होने वाले सारे काम सम्पादित किये जाते हैं^{३४}। सत्व, रज और तम गुणों की प्रकृति द्वारा रचना होती है। यही जीव को बंधन में डालती है^{३५}।

सत्व रज और तम प्रकृति के तीन गुण हैं। विवेक चूड़ामणि ने सत्वगुण को जल के समान गुद्ध कहा गया है। परन्तु सत्वगुण में रज और तम का संयोग होने पर जीव के संसार बंधन का कारण होता है। इस सत्वगुण में ही आत्मा प्रतिबिम्बित होता है। जिस प्रकार सूय प्रकाशित होकर पदार्थों को प्रकाशित करता है उसी प्रकार आत्मा सत्वगुण में प्रतिबिम्बित होकर समस्त जड़ पदार्थों को प्रकाशित करता है^{३६}।

विवेक चूड़ामणि ने सत्वगुण गुद्ध और मिश्र दो प्रकार का कहा गया है। गुद्ध सत्वगुण में प्रसन्नता आत्मानुभव परम प्राप्ति तत्त्व आत्यंतिक आनन्द की प्राप्ति और परमात्मा में स्थिति होती है। इस गुद्ध सत्वगुण से मुमुक्षु निरतानन्द रस प्राप्त करता है^{३७}। मिश्र सत्वगुण में अप्रमानित्व इत्यादि यम

३२ पुरुष प्रकृतयो द्विभुवन प्रकृतिगन्तुमान्।

कारण गुणमगोऽयं समन्वयिन्मम। गीता। १। १२।

३३ प्रकृत्यैव त्वकामणि क्रियमाणानि महाश।

य पश्यन्ति तथा मानसकलासु परयन्ति। गीता। १। १०६।

३४ तथा प्रकृत्या एव त्व—कामेन कायाम्यागं निगमयन्ति। गीता भाष्य। १। १०६।

३५ सर्व रजसो निगुणा प्रकृतिः स भवा।

निबन्धनि मन्ताया त्वेन दिनमव्ययम्। गीता। १४। १।

३६ सर्व विगुद्धात्तदन्तर्भावताया मिलित्वा मन्ताय क पत्त।

यात्मिकिव प्रतिबिम्बित मन प्रकाशयत्कश्चात्तत्तन्। विवेकचूड़ामणि। १२६।

३७ विगुद्धावरागुणा प्रसन्ना

रसामाभूति परमा प्रसन्नान्।

मनि प्रकृत्य परमा मनि ता

यथा मन्ताय समन्वयि। विवेक चूड़ामणि। १२६।

नियमादिधृढा भक्ति मुमुक्षुता दवी सम्पत्ति मे निष्ठा तथा असत का त्याग होता है^{३८}। रजोगुण माया की विक्षेप शक्ति जिसका उल्लेख इसी प्रकारण म ब्रह्म की शक्तिरूपता के प्रसंग में पीछे हो चुका है—से युक्त होता है। रजोगुण में क्रिया का भाव होता है अर्थात् विक्षेप शक्ति के कारण रजोगुण की प्रेरणा से ही प्राणी क्रियायें करता है। प्रकृति रजोगुण की इस विक्षेप शक्ति से अनादि काल से क्रिया को प्रेरित करके राग और दुःखो तथा मन के विकारा को उत्पन्न करती आ रही है^{३९}। काम क्रोध लोभ दम्भ, असूया अर्थात् गुणो म भी दोष दान करना अभिमान, ईर्ष्या और मत्सर ये रजोगुण के घम है। रजोगुण के कारण जीव वर्मों में प्रवृत्त होता है और इस प्रकार रजोगुण ही कम को प्रेरित करके जीव को बन्धन में डालता है^{४०}।

तमोगुण के कारण वस्तु कुछ की कुछ दिखाई देती है। यही तमोगुण की आवरण शक्ति है। यह तमोगुण ही ससार का मूल कारण है और जीव के बन्धन का कारण है। रजोगुण की मूत्रभूत विक्षेप शक्ति के प्रसार का कारण भी यही तमोगुण है। तमोगुण की आवरण शक्ति बड़ी प्रबल है^{४१}। तमोगुण से प्रसन्न पुरुष चाहे कितना ही बुद्धिमान चतुर एवं शास्त्रो के अध्ययन में निपुण हो तो भी उसमें विवेक नहीं होता। तमोगुण से युक्त पुरुष भ्रम से आच्छादित किये हुए पदार्थों को ही सत्य समझता है एवं असत्य पदार्थों के

३८ मिनरय मत्वय भवति धमा

रवमानिताया नियमा यमाया ।

श्रद्धा च भक्तिश्च मुमुक्षुता च

श्री च सम्पत्तिरमिति । १२ । विवेकचूडामणि ।

३९ विक्षेपशक्ती रजम क्रियामिका

यत् प्रवृत्ति प्रमत्ता पुराणी ।

रागाद्योऽस्या प्रभवन्ति निय

दुःखाया ये मनसो विकारा । ११३ । विवेकचूडामणि ।

४० काम क्रोधा लोभदम्भाद्यभ्या

हकारण्यमिमाराणास्तु घोरा ।

धर्मो एते रात्रा पुण्यवृत्ति

वरमाया तदत्रो बन्धनम् । ११४ । विवेकचूडामणि ।

४१ एषावन्तिनाम तमोगुणवद

शक्तिवया वरववभासत यथा ।

मेषा निदानं पुण्यं च समने

विक्षेपशक्ते प्रसरत्य हेतु । ११५ । विवेकचूडामणि ।

गुणा का हा आश्रय लेना है^{४२} । तमागुण की आवरण शक्ति के कारण मनुष्य को ऐसा ज्ञान होना है कि ब्रह्म नहीं है । इसको अभावना भी कहते हैं । मैं शरीर हूँ ऐसा ज्ञान भी तमागुण के कारण होता है । इसको विपरीत भावना कहते हैं । ब्रह्म की स्थिति को असम्भव समझना असभावना कहलाती है । यह असभावना भी तमागुण के कारण होती है । ब्रह्म के अस्तित्व के सम्बन्ध में यह सन्देह करना कि 'ब्रह्म है अथवा नहीं' है यह विप्रतिपत्ति भावना कहलाता है । य सभी तमागुण से उत्पन्न हुई भावनाएँ हैं और इनके कारण चित्त स्थिर नहीं रहता । ये भावनाएँ तमागुण की शक्तियाँ हैं । विशेष शक्ति भी मनुष्य की भावना को दब नहीं देने देती^{४३} । अनान, आलस्य जड़ता निद्रा, प्रमाद और मूर्खता ये तमागुण के बाध हैं । इनसे युक्त मनुष्य कुछ भी नहीं समझता । तमागुणी मनुष्य स्तम्भ के समान जड़ कहा गया है^{४४} ।

उपयुक्त विवेचन के आधार पर हम वर्णित मतानुसार प्रकृति का स्वरूप इस प्रकार निश्चित करत हैं —

- १ प्रकृति परमेश्वर के अधीन रहकर सृष्टि करती है ।
- २ प्रकृति ही पंचभूतों के रूप में यत्न हाकर जीव और ममार के बन्धन का कारण है ।
- ३ प्रकृति विकारों का उत्पन्न करती है और इससे प्राणी अपने स्वरूप को भूलकर ससार के भ्रम में पड़ जाता है ।
- ४ प्रकृति अपने तीनों गुणों के द्वारा ससार के विषम व्यवहार का कारण है । मन बुद्धि महत्कार और इन्द्रियाँ प्रकृति के ही रूप हैं ।

४२ महावशिषि परित्यागि चतुरोऽत्यल्पमूर्खान् ।
 व्याधीनमममा न वेत्ति ब्रूया सम्बोधितोऽपि गुरुतम ।
 आत्पाराधि मवसाधु कलदगनभक्ते त्पुनान ।
 इत्यामी प्रवशा दुःखतमम शक्तिमहावाचि । ११६ । विवेकचूडामणि ।

४३ अभावना वा विपरीतभावना
 म्भावना विप्रतिपत्तिरग्न ।
 ममगुण न निनु चिभ्रुः
 विषे परानि छपदयजस्रम । ११७ । विवेकचूडामणि ।

४४ महावशिषि परित्यागि चतुरोऽत्यल्पमूर्खान् ।
 व्याधीनमममा न वेत्ति ब्रूया सम्बोधितोऽपि गुरुतम ।
 आत्पाराधि मवसाधु कलदगनभक्ते त्पुनान ।
 इत्यामी प्रवशा दुःखतमम शक्तिमहावाचि । ११६ । विवेकचूडामणि ।

ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है कि जो अविद्या की उपासना करते हैं घोर अधकार में प्रवेश करते हैं, किंतु जो विद्या में ही रत हैं वे और भी अधिक गहन अधकार में प्रवेश करते हैं^{४५}। वहीं यह भी कहा गया है कि जो विद्या और अविद्या को एक साथ जानता है वह अविद्या से मृत्यु को पार करके विद्या से अमरत्व प्राप्त करता है^{४६}। आचार्य शाङ्कर के अनुसार यहाँ अविद्या 'म' से दबता ज्ञान अथवा अनेक देवों की उपासना करके अभीष्ट फल की सिद्धि करना लक्षित है^{४७}। आचार्य शाङ्कर ने कामना और क्रम को अज्ञानात्मिका अविद्या कहा है^{४८}। यहाँ हम अविद्या के दस स्वरूप को वैदिक क्रम का रूप मानते हुए उसे 'यावद्वैदिक रूप' दे सकते हैं। क्रम चाहे लौकिक हो या वैदिक दोनों के मूल में कामना वर्तमान रहती है। कामना से इन्द्रियों और प्रकृति के गणों का सम्बन्ध रहता है। अतः क्रम अविद्यात्मक है और जीव के बंधन का कारण है।

अज्ञान का व्यावहारिक रूप गीता में कहा गया है। कभी पूरी न हो सकने वाला इच्छा पाक्षण्ड, मान और मद अगुदाचरण, मिथ्या आग्रह य सभी अज्ञान के लक्षण हैं। चिन्ता कामोपभोग की इच्छा एवं विषयो में रत रहना भी अज्ञान है^{४९}। सक्ते प्रकार की आगाप्रा से बधा होना काम क्रोध का आनय लेना भोग्य वस्तुओं का दूसरे के अधिकार से अपहरण करना अनेक पापपूर्ण युक्तियों से धन का संग्रह करना अज्ञानियों के स्वभाव के अंग होते हैं। आज मुझे यह द्रव्य मिला है मन को सतुष्ट करने वाला अमुक पत्न्य मुझे मिलेगा अमुक वस्तु मेरे पास है भविष्य में इतना धन मेरे पास होगा, और उम्र धन से मैं श्याति प्राप्त करूँगा आदि भावनाएँ तमोगुण से

४५ अथनम प्रविराति यऽविद्यामुपासते ।

ततो भूय इव ते तमो यजिष्याव रता । ईशावास्योपनिषद् । ६ ।

४६ विद्या चाविद्या च परं द्वैतोभयं सद्यः ।

अविषया मृत्युर्ती वा विषयानतममृत्युर्नै । ईशावास्योपनिषद् । ११ ।

४७ अविषया कर्मणा अग्निहोतृणां मृत्युः स्वामाविकं क्रमं ज्ञानं च ।

ईशावास्योपनिषद् भाष्य । ११ ।

४८ प्रकृतिं कारणमविद्यां कामं क्रमं भीतभूता । ईशावास्योपनिषद् । १२ ।

काममाश्रित्य दुःखं दुःखं नानागर्भा विना ।

माहात्म्यं ह्येवैतन्माहात्म्यं तेषु चिन्ता । गीता । १६।१० ।

४९ आशापारागैव ददा काः क्रोधपरायणाः ।

ईशये ज्ञानभोगाद्यमन्यायेनाधर्मचयान् । गीता । १६।१५ ।

उत्पन्न अज्ञान की स्वरूपभूता है। 'यह मेरा गनु है इसको तो मैं मार चुका, अब निवल गनुआ को भी मैं माहूँगा। 'मैं ईश्वर हूँ, मैं यागी हूँ मैं सिद्ध हूँ, मैं बलवान और सुखी हूँ इस प्रकार के विचार भी अज्ञानवाणी ही उत्पन्न होते हैं। मैं धनी हूँ म कुलीन हूँ मेरे समान मरे कुन म और दूसरा नहीं है मैं धन बरूँगा मैं अति प्रसन्न हाऊँगा प्राणि के विकल्प भी अज्ञानवाणी उत्पन्न होते हैं^१। प्राणी का विषय या ज्ञान अज्ञान से ढका रहता है और प्राणी निरन्तर अज्ञान म ही मोहित होता रहता है^२। मत्वगुण स ज्ञान, रजोगुण से लोभ और तमोगुण स प्रमाद मोह और अज्ञान उत्पन्न होता है^३।

मन ही जगत् के व्यवहारो म रत होता है। मन के द्वारा ही माया का भाग होता है। मन से ही पन्था सत्ता म अहकार उत्पन्न होता है और मनुष्य को भोगा के प्रति सहज प्रवृत्ति हो जाती है।

गीता के अनुसार मन विषया का अनुकरण करता है और इन्द्रियो को विषय म लगाता है। इस प्रकार मन विवेक बुद्धि को जल में वायु के धक्के खाती हुई नाव के समान विषया में भटका देता है^४।

गीता में इन्द्रियाँ मन और बुद्धि काम के रहने व स्थान कह गये हैं। काम इन आश्रयभूत इन्द्रिय और मन व द्वारा ज्ञान को आच्छादित कर लेता है और जीवात्मा को नाना प्रकार से माहित करता है^५। जीवात्मा श्रोत्र चक्षु त्वचा रमना और नासिका एव मन को आश्रय बना कर विषया का

५० इत्ययं मया लक्ष्मिः प्राक्तन्य मनोरथम् ।

इत्यस्मीन्मपि म भविष्यति पुनरनन् ॥ गीता । १६।१३ ।

अगौ मया ह्य शत्रुदनिष्ये चाग्नापि ।

ईश्वरोऽहमह भोगी सिद्धोऽह बलवान्मुदी । गीता । १६।१४ ।

आशोऽमितनात्मि कोऽयोऽग्नि सशो मया ।

यस्ये ष्यामि मोक्ष्य इयदानविमोक्षिता ॥ गीता । १६।१५ ।

५१ नात्ते कस्यचिपां न चैव मुञ्च विमु ।

अथानेनान्न ह्यतेन मुञ्चन्ति जनव । गीता । ५।१५ ।

५२ मत्वा मनायने ह्यनं रतमो लोभ एव च ।

प्रमान्मोक्षै तमसो भवनोऽज्ञानमेव च ॥ गीता । १४।१७ ।

५३ इन्द्रियाणां चि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।

तस्य हरति प्रदा वायुर्नावभिगम्बन्ति ॥ गीता । २।६७ ।

५४ इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।

एतेर्विभेदयदेव ज्ञानमाकृत्य देहानन ॥ गीता । २।४० ।

उपभोग करता है^{५५} । विवेकचूडामणि के अनुसार मन के प्रतिरिक्त अविद्या और ब्रह्म नहीं है । मन ही जीव को ससार बंधन में ालने वाली अविद्या है । मन के नष्ट होने पर समस्त जागतिक व्यवहारा की प्रतीति नष्ट होने लगती है^{५६} । जिस प्रकार वायु मधो का घेर लेता है और पुन घिरे हुए मधो को उडा ले जाता है, उसी प्रकार मन जीव के ससार-बंधन का कारण है और मोक्ष ता भी है^{५७} । विवेकचूडामणि म मन को भयकर व्याघ्र बटा गया है । यह मन हपी यात्र विषय स्त्री वन म विचरण करता है अत मुमुक्षुभा का विषयादि म रमण न करना चाहिये^{५८} । मन अनेक प्रकार के विषया गरीर वण आश्रम जातिभेद गुण त्रिया एव भोगो को उत्पन्न करता है । निविकार आत्मा का यह मन ही मोहित करता है । आत्मा म देह गुण इन्द्रियो एव प्राणो का आरोप ंस मन के ही कारण होता है । मन के द्वारा ही म र्मे मेरा आत्मा सम्बन्ध और व्यवहारो का आरोप होता है । मन के द्वारा मनुष्य म अघ्यास बुद्धि होती है । जीव के तिए सासारिक बंधन मन द्वारा ही बिछाये जाते हैं । यह मन ही त्रिगुणात्मक प्रकृति का रूप है । मन से ही जन्म मरण बंधन उत्पन्न किये जाते हैं^{५९} । मन ही अविद्या का रूप है जिस प्रकार वायु के द्वारा मध मण्डन घुमाया जाता है उसी प्रकार समस्त ससार मन के द्वारा भ्रम म घुमाया जा रहा है^{६०} ।

५५ तेषु च स्पर्शनं च स्पर्शनं प्राणमेव च ।

अधिष्ठाय मनस्ताव दिव्यानुपमेवने । तान्ता । १५।६ ।

५६ न ह्यतदविद्या मन्मोऽतिरिक्ता

मनो ह्यविद्या भवत्येते ।

तन्मिन्दिनभे सकल विनाट

विनामिनेऽस्मिन्सकल विनाभने । १७१ । विवेकचूडामणि ।

५७ वायुता नीयते मेघ पुनस्तत्र नीयते ।

मन्ता कस्यने धो मात्सरनेवैव कस्यते । १७४ । विवेकचूडामणि ।

५८ मनो नाम ाडाव्याभो विन्दारव्यभूत्सु ।

धरत्यत्र न गन्धतु मापत्रो ये मुमुक्षव । १७८ । विवेकचूडामणि ।

५९ मन प्रमने विषयान्तराया रण्णामना सून्नतया न भावु ।

शरीरवर्णात्राजानिमेतात् गुणतिया तुफला न नियम ॥ १७९ । विवेकचूडामणि ।

अथमविदुषममु विमोक्षेदेतिप्रमाणगुणनिकष ।

अहममनि अमवदनव मा स्वहृदयु फतापमुक्ति । १८० । विवेकचूडामणि ।

६० मन प्रादुर्नो विना पण्डित्यास्तवार्शिन ।

येनव भ्राम्या विर वायुनेवाभ्रमण्डलन ॥ विवेकचूडामणि । १८२ ।

श्वेताश्वतर उपनिषद् भाष्य में श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार आचार्य गङ्गुल न मन का स्वरूप वर्णन किया है। उनका मत है कि अद्वैत तत्व में, मेरा तू, तेरा, आदि बुद्धि म रहित निर्विकार और अनिवचनीय है। द्रव मनोवृत्तिरूप है। परमाथत तो अद्वैत ही है। अत घमाघम रूप निमित्त के कारण उत्पन्न हुई मन की वक्तिया का निरोध करना चाहिये। इन वक्तियों का निरोध हो जान स द्रव की सिद्धि नहा होगी। यह जा कुछ चराचर जगत है सब मन का दाय है। मन का नाग होने पर अमनीभाव होता है और इससे अद्वैत भाव की प्राप्ति होती है^{११}। अत इस प्रकार हम मन की अविद्या रूपता का परिचय प्राप्त करते हैं। हम अविद्या अज्ञान और मन का विवेचन करने के पूर्व कह चुके हैं कि निगुण सत्ता ने मन की अविद्यात्मकता का कथन किया है। अत उस दृष्टि से मन के स्वरूप का विवेचन यहाँ आवश्यक है।

अब हम माया की अनिवचनीयता का विस्तारण करते हैं। विवेक चूडामणि म कहा गया है कि माया न सन है और न असत एव न उभयात्मक है अथवा न ससद् रूप ही है। यह माया न अहं स भिन्न है और न अभिन्न ही। माया न उभयात्मक है अथवा न भिन्नाभिन्न है। माया को न तो हम अग रहित कह सकते हैं और न अग रहित ही एव न उभयात्मक अर्थात् सागानग ही। परन्तु यह माया अति अद्भुत एव अनिवचनीया है। अनिवचनीया पद का प्रयोग यह सूचित करता है कि माया का स्वरूप वाणी द्वारा नहीं कहा जा सकता^{१२}। माया का नाग अद्वैतात्म ज्ञान से होता है। सत्त्व रज और तम माया के ये तीन गुण कह गये हैं। जिस प्रकार रजु का ज्ञान

६१ मनस्वमिति प्रज्ञाविरुक्तमविकल्पत ।

अविकल्पमनास्त्वेषमद्वैतमनुभूयते ॥

मनोवृत्तिमत्र द्वैतज्ञान परमाथन ।

मनसो वक्तयन्तरमाहमोमनिमित्तता ।

निरोधव्याप्तनिराधे द्वैत नैवोपपद्यत ॥

मनोऽयमिं सव यदिकिचित्सचराचरम् ।

मनसा ज्ञाननीमात्रेऽद्वैतभाव तान्नुयात् ॥ श्वेताश्वतर उपनिषद् । सन्ध्या भाष्य ।

६२ सान्नायमन्नाप्युभयात्मिका गो,

भिन्नायभिन्नाप्युभयात्मिका नो ।

सागोप्यन्नाप्युभयात्मिका नो,

महादशुक्ति चनीदरुषा ॥ ११२ ॥ विवेक चूडामणि ।

होने पर सप भय से मनुष्य मुक्त हो जाता है उसी प्रकार आत्मज्ञान से माया का नाश होता है^{१२} ।

माया को हम सद स्वरूप इसलिए नहीं कह सकते कि माया यदि सत्स्वरूप होती तो उसका नाश न होता परंतु ब्रह्म ज्ञान से माया का नाश होता है अतः माया सत्स्वरूप नहीं है । माया को हम असत् इसलिए नहीं कह सकते कि असत् पदार्थ की उपलब्धि नहीं होती किंतु माया का अनुभव हमको होता है । यह जीवात्मा के स्पर्श व धन का कारण है । अतः माया असत् नहीं हो सकती । उभयात्मक इसलिए नहीं कह सकते कि दो विरोधी भाव अग्नि और जल के समान एक साथ नष्ट रह सकते । इसी प्रकार हम माया को ब्रह्म से भिन्न नहीं कह सकते क्योंकि ब्रह्म के अनिरिक्त अर्थ सत्य नहीं है । किंतु हम माया को ब्रह्म से अभिन्न भी नहीं कह सकते क्योंकि ब्रह्म ही माया का अधिष्ठान है । ब्रह्म ही मायापति है । इसी प्रकार माया की सागता और अनगता भी सिद्ध नहीं होती और न माया का उभयात्मक रूप ही सिद्ध होता है । माया अविद्या, प्रकृति अज्ञान और शक्ति के विवचन को इस प्रकार चिन्तित कर सकते हैं —

निगुण ब्रह्म
परमाथ सत्य
निगुण
निराकार
निर्विकार
गुड
बुद्ध
नित्य
मुक्त

सगुण ब्रह्म जीव
ध्यावहारिक सत्य
सगुण
साकार
सविकार
अगुड
अज्ञ
अनित्य
बद्ध

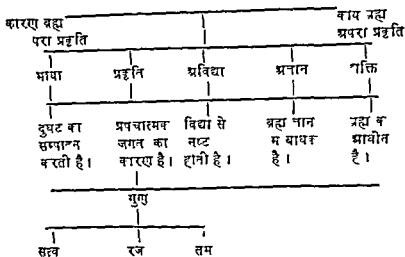
पिछले सप्तम में निश्चित किये गए माया के स्वरूप और जीव के सावहारिक रूप को हम इस प्रकार अद्भूत कर सकते हैं —

६३ शुद्धादयश्चक्षुर्विद्युत्तारया

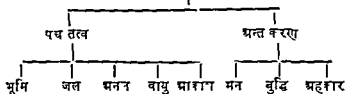
मयभ्रमो रज्जुविवेक इति यथा ।

रज्जुमय सवमिति प्रसिद्धा

शुद्धादीनां प्रथि स्वभावे । ११२। विवेक चूडामणि ।

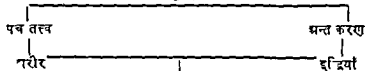


अष्टषा प्रकृति



मन बोधचिन्म म हम प्रकृति क तीन गुण और अष्टषा प्रकृति के पाँच तत्त्वा और तीन अन्त करण का चित्रण कर चुके हैं। अब हम बद्ध जीव और व्यावहारिक जगत का आकलन करेंगे —

बद्ध जीव



विषय विकार

समार-बन्धन कारण

जीव और ससार की व्यावहारिक सत्ता

- १ रजु म सर्प का भ्रम ।
- २ सीपी म चाँदी का भ्रम ।

जीव और ससार की प्राणिभासिक सत्ता

जब तक राजु म सप का भ्रम अथवा सीपी म चीनी का भ्रम होता रहता है, तब तक उक्त प्रातिभासिक सत्ता की स्थिति है। किन्तु यह भ्रान्त अथवा भ्रम भ्रान्ति है और अनिश्चनीय है। इनका नाश होने से जीव को ब्रह्म स्वरूप म स्थिति हाती है।

अब हम निगुण सत्त का य म विच्छेद पच्छा पर किये गये विवचन के आधार पर माया सम्बन्धी अक्षयन प्रस्तन करेंगे। यहाँ हम माया की शक्ति रूपता, ब्रह्म का माया पर स्वामित्व, माया की त्रिगुणात्मकता और त्रिभैव रूपता और सत्त काव्य म माया का व्यावहारिक रूप का विवचन करेंगे।

सिद्ध गोरक्षनाथ के अनुसार माया शक्ति पुरुष अथवा ब्रह्म की नारी है ब्रह्म का निगुण स्वरूप म आकार एवं विकारा का अभाव है। अत दृश्य जगत का स्वरूप ब्रह्म म प्रतिष्ठित नहा है। य दृश्य माया जय है। किन्तु इन दृश्या की स्थिति ब्रह्म का स्वरूपभूत अज्ञ ही है। माया बिना स्तम्भ क मडप की रचना करती है। ब्रह्म के पारमार्थिक रूप म पञ्चभूतों का अभाव है। अत उसम बादल और वायु नही है। किन्तु ब्रह्म ही माया का पति है। ब्रह्मा, विष्णु महर्ष को जन्म देनेवाली यही माया है। पहल ता माया इन तीना देवताओं का जन्म देती है और पुन इनकी स्त्री रूप म इनक घरा म निवास करती ह। किन्तु ब्रह्म माया की उपाधि धारण करके तीनों गुणा की उत्पत्ति करता है। परब्रह्म तीना गुणा म से सत्त स विष्णु रज से ब्रह्मा और तम से शङ्कर की रचना करता है। जब तक ब्रह्म से इन तीनों गुणा की रचना होती है, तब तक माया इन त्रिभैव की जाया अथात् माता रहती है। परन्तु इनकी रचना हो जाने क उपरांत ये गुण स्वरूप देवता परस्पर व्यवहार करने लगते हैं। तब माया इन तीना देवताओं का वग म होती है। इस विवरण म माया ब्रह्म की नारी कही गई है। अत माया शक्ति रूप म ब्रह्म के आधीन है यह बात स्पष्ट होती है। सिद्ध गोरक्षनाथ के अनुसार माया के स्वरूप म हमको ये बात मिनती है। ब्रह्म माया का अधिष्ठाता नहा है वरन माया ही ब्रह्म की शक्ति है। अत अज्ञ त सिद्धांत सम्मत माया और गोरक्षनाथ के अनुसार कथित माया की शक्तिरूपता मे अंतर नहा है^{१५}।

१५ 'नष्टे न शक्तेः शक्तिरिति चिन्ता पञ्चा पुण्य के नारा जी।

बाह्य नष्टा तदुभया बाह्य नारा शक्ति रूप म रचना।

शक्ति रूप उपावन हाती थी

बाह्य नही ही नही निश्चय नही के माना बाह्य नही नही।

सन्त कबीरदास के अनुसार माया का शक्ति रूप म प्रतिष्ठित है। माया की यह शक्ति जगत्कारण रूप म ब्रह्म के स्वरूप म स्थित है। सन्त कबीरदास ने इस कारण रूप शक्ति को ही अतर्क्योति कहा है। इस माया शक्ति क ब्रह्मा विष्णु आर त्रिपुरारि अर्थात् त्रिव म तीन रूप हैं। यह माया शक्ति ही अनन्य सृष्टि का अनादि कारण है। यह माया शक्ति है तो वस्तुतः एकरूप ही परन्तु उपाधि भेद म व्यवहार म अनेक रूप हो गई है। यह माया शक्ति अनन्त रूप है आर इसका बयन वाणी द्वारा नहीं हो सकता। ब्रह्म की शक्ति वस्तुतः ब्रह्म म ही कारण रूप म अविच्छिन्न है। यह कारण ब्रह्म का परा शक्ति है। कारण ही काय रूप में परिणत होकर अनेक रूप जगत की सृष्टि करता है। जीव वस्तुतः ब्रह्म का ही स्वरूप है किन्तु माया शक्ति से जगत क बंधना म पड़ता है। ब्रह्म का माया शक्ति ब्रह्म की सृष्टि की इच्छा का रूप है। सन्त कबीरदास ने इस इच्छा शक्ति को गायत्री कहा है। उन्निष्ठा म यह इच्छा ही स्वयं रूप से अभिहित की गई है। ब्रह्म की माया-शक्ति से ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर तीन पुन उत्पन्न हुए। ब्रह्मा ने माया स प्रश्न किया कि तुम किसका स्त्री और माता हो। माया ने कहा कि 'मैं और तुम दोनों भिन्न नहीं है। मैं ही तुम्हारी स्त्री हूँ और तुम मेरे पुरुष हो। इससे प्रबल है कि माया स त्रिगुणात्मक देवताओं की उत्पत्ति होकर ये देवता ही माया पर अनुपासित स्थापित करते हैं। माया ब्रह्म की शक्ति तो है ही त्रिदेवा की भी शक्ति है क्योंकि त्रिदेव ही माया का प्रवहार करते हैं। अतः सन्त कबीरदास ने पिता स्वरूप ब्रह्म और पुत्र रूप ब्रह्म की एक ही नारी कही है। यह माया ब्रह्मा शक्ति की माता भी है क्योंकि इनका उत्पत्ति गुणा से होती है। < .

पौर ने पाया माया पावने निहा हूँ दो त्रि टापन जागे ती ।

ब्रह्मात्मिक नै आदि महेश्वर य तीव्र नै प्राया ।।

इन निद्रु बानी में पर परनी ब्रह्म कर मानी माया ती । गारररानो ।

६५ अन्तर जाने सव एक जाण । कर ब्रह्मा लाने त्रिपुरारी ।

ते निरिय भा निग अन्ता । तरु न जाने आदि आ अन्ता ॥ बाजक।

तेव रूप एक अन्तरबासा । अन्तरतानि बौन्द परमासा ।

ब्रह्मा रूप नारि अवतरी । तामु नाम गारना धरी ॥ कीचक ।

तेदि नारी के पुत तिन भयऊ । ब्रह्मा विस्तु महदुर नाऊ ।

सिर ब्रह्मा पूदल महनारी । को तोर पुण्य ककरि तुम नारा ।

तुम हम हम तुम अदर न कोइ । तुम स पुण्य इनधि तोरि जोइ ।

बाप पूत की एकै नारी एकै माया विदाय ॥ कीचक ।

सत्त कबीरदास के अनुसार जा जाता जाता है यही माया है । जाता जाता बाद उत्पत्ति और विनाश के सूचक है । अत उत्पत्ति और विनाश के चक्रम धूमने वाले पञ्च मायिक है । समस्त दृश्य जगत प्रतिफल उत्पन्न और नष्ट होता है अत ये सभी माया के रूप हैं । सभी वस्तुएं अनित्य हैं एव माया के गमन ही पोषित और नष्ट होनी है । कम माया का रूप है^{११} । सत्त कबीरदास के अनुसार माया राम के आधीन है । यह माया ही सासारिक दुःखा में जीव को डालकर आत्म नान से विमुक्त कर देती है^{१२} । सत्त रदास के अनुसार राम की माया विचित्र है । यह माया मनुष्य के ज्ञान और बुद्धि को नष्ट कर देती है ।

सत्त नानक साहब के सिद्धांत के अनुसार माया ब्रह्म की रचना है और ब्रह्म के आधीन है । यह माया अनेक रंग से युक्त है अर्थात् अनेक रसात्मक है^{१३} ।

सत्त दाहृणाल के अनुसार सत्त ब्रह्म के आधीन है । ब्रह्म ही उत्पत्ति प्रलय और सत्त का पानन करता है । यह सत्त माया का ही रूप है जिसका अधिष्ठान ब्रह्म है^{१४} ।

सत्त सुंदरदास के अनुसार ब्रह्म ही मायात्मक प्रपंच की रचना का कारण है किंतु इस प्रपंच व्यवहार को माया के स्तर मंगा जाता है^{१५} ।

सत्त मनुक्यास के मन में माया बाजीगर की फाई हुई बाजी है । ब्रह्म बाजीगर है और मायात्मक सत्त उसका वीर है । माया भ्रम में समस्त प्राणी भ्रमित हो रहे है^{१६} ।

६६ सन्तो आवे जाय सो माया ।

हे प्रतिपाल काल नहि बाके ना कहु गया न प्राया ।

ज्ञान हीन करना सब भ्रम माये जग भ्रमाया ।

दस अवतार इसरी माया करता है जिन पूजा

कहहि कबीर सुनो हो सन्ता उपजि सौ सा दृता । कबीर बीजक । पं ८ ।

६७ राम तारि माना दुद बनावै । बीजक । पं १३ ।

६८ हे भो हीमी जा न नामी रचना तिनिरया ।

रगी रगी भावी करि करि जिननी मान्या तिनिरया । सुन्दर जका । रहरासि ।

६९ मिरना द्वार धै सब हा ।

उत्पत्ति परलै करै आरै दूसर नामा कोय ।

दादू दयाल की बानी । राय १४१ ।

७० करहु आप मिर देहु भार न कम्पे रीति तुम्हारी ।

माया मोह लगाइ मवन को माने नर अ नारी ॥ सुन्दर प्रभावना ।

७१ बाजीगरै पदारी बाजी । भूत भुताना सब बाजी । मनुक्यास की बानी ।

सन्त चरन्दास ने ब्रह्म और माया का भ्रम नहीं माना है^{७२} ।

सत् जगन्नीवन साहब ने 'साइ की माया' का विलक्षण कहा है । उनके अनुसार ब्रह्म अपनी माया में अधिष्ठान एवं भ्रतवामी होकर समामा हुआ है^{७३} ।

विद्यन पद्या पर हमने निगुण सत् का प्रथम माया के शक्ति रूप का विवेचन किया है और इस सम्बन्ध में प्रमाण दिया है कि सत् माया शक्ति को ब्रह्म व आधीन मानते हैं । अब हम माया के गुणों का विवेचन करना करत हुए प्रकृति के स्वरूप का विवेचन करेंगे । इस सम्बन्ध में हमका हम प्रकारण व प्रारम्भिक पद्या पर लिये गये प्रकृति और माया के स्वरूप का ध्यान में रखना आवश्यक है ।

सत् कबीरदास के अनुसार माया सत्त्व, रज और तम गुणों का वक्ष है । ब्रह्म और वन तो मानो इस प्रकृति की वन की शाखायें ही हैं । इस प्रकृति रूपी वक्ष के नीचे स्वप्न में भागीतल छाया नहीं मिलती । इसमें अज्ञान की फल फलत है । म पत्र पीक है अज्ञात गुणों से प्ररित हुए विषयों व मुख अनित्य एवं धस्यायी हैं । इन विषय भोगों से शरीर में वने उन्नत होते हैं^{७४} ।

सन्त रदास के अनुसार अविद्या हरिस्मरण करने देने में बाधक है । यह शरीर प्रकृतित्रय पवभूता में रचा गया है । अविद्या के माह-याग से नित्य मुक्त आत्मा ववा हुआ है । प्रकृति के तीनों गुणों के वचन में पडकर जन्म लेना पडता है । निगुणात्मक माया भ्रम है, जिसमें जीवार्त्मा अपने स्वरूप को

७२ आप आप में खन रचाओ । -यां पाता बुगुनित है आया ।

प्यो मद्र परी है काया । आपदि पुरन आप ही माया ॥

चरन्दास कृत मतिनागर ।

७३ साइ अत्र तु-हारी माया ।

सब परबाउ निरतर खेनड वानी तहाँ समामा ।

जाशवन साहब की बनी । भाग २ ।

७४ माया तरबर विविध का सत्ता दुष सतार ।

सोतलता सुधिन नडां पुजे पानी तनि तार ॥

भूल गया है एव पाप-पुण्य आदि का विचार भी नहीं करता*४।

सत दाहूत्याज के अनुसार माया विचारों से युक्त है। त्रिगुण द्वारा माया अनेक भावपत्र नाम रूपों में व्यक्त होकर सद्यत्त मनुष्य और देवताओं को मोहित करती है। ब्रह्म ने पहले माया को उत्पन्न कर लिया और फिर उसके विकारों से उत्पन्न एव अनिष्ट रह कर उससे पथक हो गया। तीनों गुणों से उत्पन्न ब्रह्मा विष्णु एव महेश ने अनेक प्रकार के भौतिक आनन्द और वधन तयार कर दिये। ब्रह्मा विष्णु और महेश की स्त्री उनकी जतनी माया ही है। माया ने सभी जीवों को खा लिया है। माया अनेक नाम रूपा को धारण कर नटिनी के रूप में मनुष्य मुनिया और देवताओं को मोहित करती है। यहाँ तक कि ब्रह्मा विष्णु और महेश तब उसके स्वरूप पर मुग्ध हो गये हैं। गरीर में ही पचीस प्रवृत्तियाँ—पचकर्मोद्भवा पच-ज्ञानोद्भवा, पचप्राण पचन-मात्रायाँ चार अन्त करण और एक जीवात्मा रहता है। इसी गरीर में तीन गुण गरीर और इन्द्रिया पर अभिमान करने वाला मन राजा के रूप में रहता है। ब्रह्म रजोगुण से ब्रह्मा को उत्पन्न करके सृष्टि की रचना करता है। वह सत्त्वगुण से विष्णु को उत्पन्न करके सृष्टि का पालन एव तमोगुण से महेश को उत्पन्न करके सृष्टि का नाश कर देता है। सत दाहूत्याज के अनुसार ये गुण त्रिगुण ब्रह्म के द्वारा ही उत्पन्न किये गये हैं। इन गुणों को उत्पन्न करके ब्रह्म गुणों के विकारों से दूषित अथवा विकारी नहीं होता*५।

- ७१ माना अविद्या ज्ञान की— ताने मै तार नाम न ली* ।
 मग मन म ग प ग कु रर एक नाम विद्याम ।
 पत्र व्यापि अज्ञा विद्या तन कीन नारी आन ।
 त्रिगुण ज्ञान अज्ञान अज्ञान पाप पुन न सोन ।
 मानुगा औताइ दुखलभ तदू मकर पाप । रैनाम की बानी ।
- ७२ माया मली गुण म धरि धरि उत्पन्न नाव ।
 दाहू मादे मान का सुर नर मन्दी टाव ॥ साङ्ख्यान का बानी ।
 दाहू पन्ना आप उता का यारा पन् निवाण ।
 मन्ना बिरन मन्म मिलि बाध्या सकल बधाण ।। दाहूत्याज की बानी ।
 दाहू पाथ नीव मव तिति रूपनाम काइ ।
 माया व रूपा नाना नाउ सुर नर मुन का म द ॥ साङ्ख्यान का बानी ।
 मन्ना बिरन मन्ना व बा तू वपुग का द ।
 माइ निरतनार १ किय आप अमेर ॥ साङ्ख्यान की बानी ।

सत गुणरदास क मत में माया रहित ब्रह्म में ही सच्चि का सकल्य
अथवा ईक्षण होता है। पंचतत्वों और तीन गुणा स सच्चि की रचना
परब्रह्म ने की है। सत्त्व गुण से विष्णु रजोगुण स ब्रह्मा और तमोगुण से
गङ्कर की उत्पत्ति हुई है। विष्णु सच्चि का पालन ब्रह्म प्रजनन और गङ्कर
उसका संहार करते हैं। य सभी गुण और देवता माया द्वारा उत्पन्न हुए ह।
माया ही ब्रह्म म सच्चि के सकलरूप म स्थित रहती है और ईक्षण क
उपरात माया की अनेकरूपता का व्याकरण होता है*७।

सत चरनदास न त्रिदेवा स जगत का प्रसार कहा है। सत चरनदास न
भी माया की गविन और गुणरूपता का स्वीकार किया है*८।

सत मनुकदास का कथन है कि ससार म पंचभूत और पचीस प्रकृतियाँ
सदा उनको धर रहती हैं। यदि सत मनुकदास खट होत हतो ये पंचभूतात्मक
कुत्त और पचीस प्रकृतिरूप कुत्तियाँ उनकी पिंडलियाँ पकड लेती हैं। यदि व
बठने हैं तो य श्राव्यं गुररनी है। इनके मन्नानुमार जीव पंचभूता और पचीस
प्रकृतिया द्वारा सत्य बधन और भय म रखा जाना है ६।

विहार वाले सत दरियासाहब इन पंचभूता और पचीस प्रकृतिया का
नाग करना आवश्यक मानत हैं क्योंकि इनक रहते हुए आत्मबोध नहा हो

माग क अमर्थानि रह मन राग देवान ।
पचास प्रभोरनि तीन गुण आया गव गुमान । गङ्कराग की बानी ।
दादू राम करि उतपति करै सान्य करि प्रतिपात ।
तामन करि परने कहे निगु ण कातिगार ॥ गङ्कराग की बानी ।

७७ प्रथम निरनन धारुही मन म यहु आनी ।
पच त व गुन तीन ते सब मलि उपानी ।
ब्यान बापु पावक क्रिय नन भूनि मिबानी ।
रानत सात्विक तामना तीना निविगानी ॥१४॥
रज गुन ते ब्रह्मा क्रिये रानत अभिगानी ।
साविक विष्णु उपारना प्रति पावक प्रानी ॥१५॥
तन गुण ठ राकर भये सगारक तानी ।
रेमी बधि मव पय चहा यह रचना टानी ।

सुन्दर आभावनी । गुन उपपत्ति का नामानी ।
भक्ति सागर । रागद बधन ।

७८ अन्तुन आरली भौशता । विदव होय गगत पमारा ।
७९ कुकटा पाव पवान कुकरिया सग रह माहि परै ।
ठां बोऊं ती पिंडुती पकरै बैठे आलि गुररै ॥ मनुकदास का बानी ।

सकता^८ ।

सत गरीबदास का मत है कि तीन गुणा के स्वरूप का जानना चाहिये । पञ्च भौतिक शरीर और इन्द्रिया का दमन करना चाहिये । पचीस प्रकृतियां म अनेक विकारा के समूह रहते हैं अतः इनसे उत्पन्न विकारा का नाश करने ही साधक आत्मज्ञान का अधिकारी होना है^९ ।

सत जगजीवन साह्य के अनुसार भी पचनत्व और पचीस प्रकृतियां व वश म मन रहता है और मन अनेक विषया म बुद्धि को भ्रमित करता है । अतः इनको वग म रख कर ही साधक का मगन हो सकता है^{१०} ।

सत कबीर माया को त्रिगुणात्मक और दयिक, दहिक एव भौतिक तापा का कारण मानते हैं । रदास त्रिगुणात्मक माया का अविद्या नाम स अभिहित करते हैं । आचार्य शाङ्कर ने प्रकृति के रूपों का गीता और श्वताश्वतर उपनिषद भाष्य म विवेचन किया है । विद्यने पष्ठा पर सत कबीरदास की रमनिया स त्रिगुणात्मक माया का विकास उद्धृत किया गया है । उसी प्रकार सत दादूदयाल की साखिया म भी माया का यह रूप वतमान है । सत दादूदयाल ने माया को गुणमयी कहा है । इस शब्द का प्रयोग गीता मे हुआ है । त्रिवेद सिद्धांत और प्रकृति एव माया की एकरूपता सत दादूदयाल व सत कबीरदास के का या म उपलब्ध है । ये मत वशात सिद्धांत के अनुकूल हैं । इस प्रकरण के पिछन पष्ठा पर हमने सत काय म मायाके शक्ति रूप प्रकृतिरूप और ब्रह्म के सष्टिकर्ता स्वरूप का विवेचन किया है । इन पष्ठा पर अब हम सत काय म माया के वाचहारिक रूप का अध्ययन करेंगे । माया की वाचहारिकता का निरूपण करते हुए हम इन बातों का विवेक ध्यान रखेंगे —

१ माया से उत्पन्न पत्थाय और वाय अनित्य हैं ।

८० पाच को भंदि कै पचीम को दलमलो ।

दबो के देखि पिउ मय्य सारा ॥

बिहार बाल श्रिया साहन का बानी ।

८१ तीन चीह पाच मार पकरो मठधारी ।

पुत्र तो पचीम संग सन है अपारी ॥

गराणाम का बानी ।

८२ पांच बनि कनि बैठ रड कर मानु कबहु न भातु ।

श्रा अर पचीम रामे सग मर दिन भातु ।

गणेशदा माय की गणेशदा ।

- २ माया जीव के आत्मबोध के माग में दूषण है ।
- ३ सासारिक सम्बन्ध मायाजनित है ।
- ४ धन ऐश्वर्य इत्यादि माया के रूप हैं ।
- ५ अहंकार अभिमान कामना और भोग लिप्सा भायिक विकार हैं ।
- ६ माया भ्रमक है और मिथ्या है ।
- ७ माया का प्रभाव देवताओं और जानियों तक पर पड़ता है और उनको माया भ्रष्ट कर देती है ।
- ८ जीव का लक्ष्य माया का भोग नहीं है किन्तु माया जीव को भोग के प्रति आकर्षित होने में विवश करती है ।
- ९ माया से उत्पन्न ससार स्वप्न के समान निराधार है ।
- १० इस माया का पान के द्वारा नाश करना चाहिये ।
- ११ माया सर्पिली, व्याघ्रिली गहन कपट छनता और भ्रांति रूप है ।
- १२ माया ही जाव के बधन का कारण है ।
- १३ माया अनेक नामरूपात्मक पदार्थों में व्यक्त हुई है ।
- १४ बन्धुन जगत गद्ग, एव जीव ब्रह्म में अन्तर्गते परन्तु माया के द्वारा अन्त-व्यवहार उत्पन्न होता है ।
- १५ माया अनिवार्य है ।

उपयुक्त विवरण के अनुसार हम सत्त काव्य में माया के स्वरूप का अध्ययन इस प्रकार की भूमिका में लिये गए विवेचन के आधार पर करेंगे । सत्त-काव्य में माया का निरूपण करने समय हमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उपनिषत्ता गीता ब्रह्मसूत्रा एव गङ्गा भाष्या में माया सम्बन्धी गौणिक सिद्धांतों का प्रतिपादन ही विशेष हुआ है । परन्तु मन्ता में प्रथम साधन मार्गों के अनुबल या प्रतिबल अविद्या अथवा माया के स्वरूप का अनुभव किया है । सन्ता ने प्रायः माया का प्रथम साधन माग में वाधक ही पाया है । सत्त-काव्य में स्वीकृत माया के स्वरूप में सत्ता के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है । इस सम्बन्ध में हम प्रसन्न बन गयेत करते चनेगे । यद्यपि मूलतः अन्तः सिद्धान्तानुसारिण माया और सन्त काव्य में विवक्षित माया में विशेष अन्तर नहीं है किन्तु सन्ता की साधनानुभूति की गम्भीरता में उत्पन्न व्यक्तित्व का माया के स्वरूप पर प्रभाव सबत्र प्रघान है । इन बातों को ध्यान में रख कर सत्त-काव्य में माया के स्वरूप का अध्ययन करना सरल होगा ।

सिद्ध गोरक्षनाथ का कथन है कि मायाएषी सविणी निमन आत्म स्वरूप में प्रविष्ट हो गई है और पृथ्वी आकाश और पाताल तीनों लोकों को ढस लिया है। माया की पठार विष्णु ब्रह्म से लेकर समस्त लोकों में हो गई है। यद्यपि माया स्वतः श्रवणा है क्योंकि ब्रह्म के आधीन है तो भी उसमें अदम्य क्षमता है। माया ने ब्रह्मा विष्णु और महादेव को भी छल लिया है। इस माया की श्रवणा गति दसों दिशाओं में है। अतः उसका नाश करने ही आत्मबोध हो सकता है।^{८३}

सत्त कबीरदास के अनुसार मोह और अहंकार माया के रूप हैं। मनुष्य भौतिक वस्तुओं और सम्बन्धों में मोह और अभिमान करता है। परन्तु मायिक अन्वित है और मनुष्य का मोह और अहंकार मिथ्या ठहरता है। पञ्चभूतात्मक तत्त्व विनाशशील हैं केवल राम ही नित्य और सत्य है^{८४}। धन एवं जागतिक व्यवहार सभी माया के मिथ्यारूप हैं^{८५}। माया के रूप हैं—स्त्री धन पुत्र विद्या राज्य पृथ्वी का अधिकार, अष्टसिद्धियाँ एवं नवनिधियाँ। माया ने देवता, मनुष्य एवं समस्त भूमण्डल के राजाओं को अपने वश में कर लिया है। जिस जिसने भी माया का साथ किया, उसने सभी के साथ विश्वासघात किया है। माया न कभी किसी का साथ नहीं लिया है। सत्त कबीरदास का अनुसार भठी माया का त्याग कर राम की शरण में जाना आवश्यक

८३ मारा मारा सपनी निरमल नर पैठी ।

त्रिभुवन टमनी गोरक्षनाथ गीठी ।

मारी सपनी जगई ल्यै भौरा ।

जिनि मारी सपनी ताको कडा करै पौरा ।

सपनी कहै मै अवला बलिया ।

ब्रह्मा विष्णु महादेव छलिया ।

मानी सपनी ऋषी सिद्धि धारै ।

गोरक्षनाथ गारदी पवन बेधि भाव ॥ गोरख की बानी ।

८४ माया मोह पद मै बीया सुगंध वहै यहु भेरी रे ।

निबम धारि मन मन रने यत् नाही किम बेरी रे ।

धरती पवन अकाम जाइया चत् चारगा मुरा रे ।

इम नाही तुम नाही रे भाई रहे गम भरपूरा रे । कबीर प्रथावनी ।

८५ धन धन्या व्यवहार सब माया सिद्धिवा ।

पायो नीर हलूर धनु हरि नाव विना अषवा । कबीर प्रथावनी ।

है^{५९}। माया से मोह करने का परिणाम सत कबीरदास के अनुसार कभी हितकर नहीं होता। वह विषय ज्ञान का अपहरण कर लेता है। वस्तुतः ससार स्वप्न के समान मिथ्या है परन्तु जीव ब्रह्म का स्वरूप ज्ञान के कारण नित्य है। माया ने ही नित्य ब्रह्म स्वरूप जीव में बंधन उत्पन्न करके उसको अपने पारमार्थिक ब्रह्म-स्वरूप से अलग कर लिया है^{६०}। यह माया ब्रह्म का रूप है। इमने मनुष्य के मन में डरा डाला है। पञ्चभूत इस माया के पुत्र हैं। ये प्रपञ्चात्मक भौतिक तत्त्व जीव को जन्म मरण रूपी नाच मचाते रहते हैं^{६१}। पञ्चतत्त्व अर्थात् तीन गुणों को मिलाकर शरीर की सृष्टि हुई है। पाप और पुण्य के सकारण से शरीर जन्मा और मरता है। उत्पन्न होना और नष्ट होना, माया का धम और स्वभाव है^{६२}।

सत कबीरदास के अनुसार माया का त्याग अति कठिन है। जीव माया में पुन-पुन निपट होता है। आदर, सम्मान भौतिक रस, धन जप तप भोग जन थल आकाश माता पिता स्त्री पुत्र सभी तो माया के रूप हैं, इस

६६ कनक लेहु मनिदासै कामनि लेहु मन हगनी ।
 पुत्र लेहु विद्या अविहारी, राज लेहु सब धरनी ।
 अठि सिधि लेहु तुह हरे क बना नै निरि ह तुम आर्ग ।
 सुर नर मकर भवन क भूपति तेऊ लै न माँ ।
 तै पावय/ मँ सगरे कासै जाव सवारया ।
 गिन गिन मग कियो है तरो को बगसि न माग्या ।
 राम कबीर राम के सरन दाँी भूठी माँ । कबीर अ भावनी ।

६७ माया मोहि माहि हित कीदा
 लार भेरो ग्यार ध्यान हरे लीदा ।
 मगार मा सुनि न्या जीवन सुनि मगन ।
 साँ माहि न्या दाँ मरम निधान) कबीर अ भावनी ।

६८ इक गेनि मग मन में दसैर जित उठि मरे नित्य को नै ।
 या गगन - गगिका पोत्र र निज नि गदि नयावै नाव र ।
 कबीर अ भावनी । पं ८ ।

६९ पाँसत मानि पुण्य तुनि करि मागिया ।
 भगट निज हान नग बर बाया ।
 पार पुत्र बीव अ कर ज्ञान ग ।
 उषति विनय गरी मग गस । कबीर अ भावनी । पं १६६ ।

माया को मार कर व्यवहार करने से व्यवहार के विकारा में मनुष्य लिप्त नहीं होता^{६१} ।

सत कबीरदास के मतानुसार माया धनान का स्वरूप है । जिस प्रकार रात के घड़े में रातु म सप का भ्रम हो जाता है और मनुष्य सप भय से भयभीत हो जाता है । इसी प्रकार माया का भ्रम मनुष्य को अभिभूत किये हुए है । सम्पूर्ण ससार बिना सप के ही डसा हुआ है । माया की वास्तविक स्थिति न होते हुए भी माया के व्यवहारों से प्राणी दुखी हो रहा है । वस्तुतः यह माया भ्रम का रूप है । जिस प्रकार जेठ मास में हरिण व्यासा होकर दशा शिगाभों में दौड़ता है और उसको जल नहीं मिलता उसी प्रकार जीव आत्मा के पीछे दुखी हो रहा है । माया से सुख की प्राप्ति करना कर्तव्य का हेतु है^{६२} ।

सत रदास के अनुसार ससार त्रिगुणात्मक प्रकृति का रूप है । बिना हरि की सत्य स्वरूप नौका को पकड़ हुए इस माया से पार होना असंभव है । सारा ससार माया के मिथ्यात्व से आच्छादित कर लिया गया है । माया के दुखों से मनुष्य दुखी होता है^{६३} । रात में पड़ी हुई रस्सी में सप का भ्रम होने से मनुष्य भयभीत होता है परन्तु प्रकाश होने पर रातु का सर्पण नष्ट हो जाता है और मनुष्य निश्चित हो जाता है । इसी प्रकार माया के नष्ट

६१ माया तजू नजी नहिं पार फिरि फिरि माया मोहि लपगार ॥

माया आर माया मान माया नहिं हां मग्न गियान ।

गंश रस माया कर जान माया कारनि तजै परान ।

माया तप तप माया जोग माया बाधे मरही लोग ।

माया जत थल माया आसि माया व्याधि रही चरू पासि ॥

माया माता माया पिता अति माया भरतरी सुना ।

माया मारि करै व्यवहार कहै कबीर भरे राम अघार ।

कबीर ग्रन्थावली । पृ० ६४ ।

६२ सू रजनी रच देरत अ धिमारी मे भुगम दिन उतियारी ।

तारे अगिनत गुनकि अपारा तव कडू नहीं होत अघारा ।

भूट देखि नीव अधिक कराही विना भुगम टनी दुनिर्भी ।

भूटै भूटै तपनि रही कारा नेठ मागु जैसे कुरम पियामा ।

इक त्रिपावन तह तिसि फिरि आवै भूट लाग्य नीर न पावै ।

इक त्रिपावन अस पार जराई मठी आन सागि मरि जाइ ॥

कबीर ग्रन्थावली । रत्नेरी ।

६३ त्रिविधि संगार कीन विधि निर ने दद नाव न गइ रे ।

नाव द्वापि क हू मे कर्म ती दुनौ दु ख सहैरे ॥ रंगत की बानी ।

होने पर आत्मभाव स्वतः प्रकाशित होता है। माया द्वारा व्यक्त की गई अनेक रूपता माया भ्रम के नष्ट होने पर नष्ट हो जाती है। तब जिस प्रकार सुवर्ण और अलंकार में भेद नहीं होता है वैसे ही ब्रह्म, जीव और जगत के व्यावहारिक भेद नष्ट हो जाते हैं^{६३}। सासारिक भोग, स्त्री पुत्र सभी तो माया के रूप हैं। मृत्यु होने पर प्राणी को ससार से अवेले ही परतोक जाना पड़ता है। समस्त मायिक व्यापार सारहीन है^{६४}।

सन्त धरमार्थ के अनुसार माया योगिनी का रूप धारण किये है और हाथों में धनुष-बाण लिये खड़ी है। बाण भर म माया निर्यतापूर्वक विवेक का नष्ट कर देती है^{६५}।

सन्त नाटक के सिद्धान्त के अनुसार मायात्रय पदार्थ अनित्य है। जिस प्रकार बम की छाया नष्ट हो जाती है उसी प्रकार माया द्वारा प्रभूत सुख नष्ट हो जाते हैं। मायात्मक जगत में सभी विनाशयोगी हैं^{६६}। अज्ञानी माया और अभिमान के बंध में होते हैं, और बिना हरिभजन मृत्यु-द्वारा कबलित

६३ मूठी माया का बहकाव तो तिन तान दह र। रैगम की बानी।

रतु सुवर्ण रानी पर आत्मा भ्रम बहुत भ्रम बनावा।

समुक्ति परी माहि बनक प्रकृत अथ बहुत बन न आवा।

रैगम की बानी। पं ५०।

६४ माया के भ्रम बड़ा भूल्यो जादु न कर मारि।

देखि धा रानी बान उरो स्या सुत नहि मारि।

यदु माया सब थोपनी रे भगनि तिम प्रकितार। रैगम की बानी। पं ७१।

६५ धनुष बान लिये ठाण योगिन कर माया हो।

दिनहि में करत विगार तनिक नहि दाया हो।

धरमार्थ की बानी। ४६। पं १३।

६६ अनिक मानि मारण क हन

सगवर होवन जानु अनेत।

बिगल की द्धारया मित्र रजुपावै।

ओठु बिनमै उठु मनि पटुपावै।

जो गोन सो जायवाग।

तपति रफो लव अथ अन्धारा।

बगड, मित्र जो लावै नैह ॥ सुगननी साखि सु दर गुल्का।

ता केंठ हाथि न आवै वेद।

मानी बहुत खेई मम माया के अथ।

बहु नानक चितु हरि भजन परत तापि नम पय ॥ सुन्दर गुल्का।

होते हैं। * । लक्ष्मण मनुष्य ही मायात्मक वस्तुओं के लिए दीखते हैं और इस प्रकार उनका जीवन गुणा की गीत में मन्त्र ही जाता है। ६८ । मन में माया हम प्रकार विद्यमान है जिस प्रकार लोहार के ऊपर का तिन। जिस प्रकार दीवार का बिज दीवार में नहीं उगड़ना उसी प्रकार मन से माया के पाचार गरमता के नहीं विद्यमान।

गण दादूदास के अनुसार माया त्रिगुण प्रकार धात्री है उसी प्रकार नष्ट भी हो जाती है। माया के कुछ मार नहीं ग्रहण किया जा सकता ६९ । माया पाचार और लक्ष्मण का पापय मनी है। माया सपिणी का रूप है और समस्त जीवों का मा मनी है। किसी जीव को पहन और किसी को पीछे माया प्रभाव प्रभावित करती है। माया के रूप में उठार हो पाना बड़ा कठिन है। जिस मनुष्य के हृदय में वसमान नहीं होता माया बड़ा धरने स्वरूप का विस्तार करती है। ब्रह्मज्ञान होने ही मायावृत्त भ्रम नष्ट हो जाता है। माया रूप ही राम और कृष्ण का कर पठ गई है। ब्रह्म विष्णु महेश्वर धारि देवता भी माया-पारा उराल हान हैं। माया धन और स्त्री का रूप है। माया के प्रभाव से त्रिदेव भी नहीं बच सकते । सत्तार प्रज्ञान में

- ६७ मन्त्र का नाम धारणी मूल्य लाभ प्रदान।
काम लक्ष्मण त्रिगुण मन्त्र विद्या सुखिरान। सुन्दर सुखा।
- ६८ मनु माया में रहित रहिसो त्रिमत तर्कित मीत।
ताक मूनि त्रि त्रि द्वापि नारिण मीत ॥ सुन्दर सुखा।
- ६९ दादू के लक्ष्मण का लक्ष्मण विचारी।
विष्णो वि धी न माई मार। दादूदास की दात्री। माया की आ ६८।
- ७० दादू रूप राम सुय कामर त लक्ष्मण लक्ष्मण।
दिव धारि पति । दादूदास दादू।
दादूदास की दात्री। पं। २७।
- मायलि एक मर और का धात्री पीड़ पा।
- दादू कठि उपहार करि कोर जन उबरि पं ॥ दादूदास की दात्री।
- दादू नेहि पर ब्रह्म त प्रणै लक्ष्मण माया मगत मार।
- दादू धात्री गोवि तव तव माया तम वि ।।
- दादूदास की दात्री। पृष्ठ १७७।
- माया पैठी राम हैं, काम ही मोहनरा ।
- ब्रह्म विरन मतेम ली, जोनी धारि तार ।
- दादूदास की दात्री ।

माहित हो रहा है। राजु में आभासित होने वाले मिथ्या सपने से ससार को छा लिया है। माया मगमरीचिका व समान है। मन आगा-पाग में बधकर मनुष्य को ससार व भ्रामक व्यवहार में लीन कर देता है। ससार के आकर्षण और सुख स्वप्न व समान मिथ्या हैं। मायावृत्त अज्ञान से मुक्त होने पर आत्मज्ञान होता है^१ १। माया काशी नागिन है जिसने समस्त ससार को छा लिया है^२ २। प्रातःकाल उठते ही जगत-व्यवहार प्रारम्भ हो जाता है। मायावृत्त अज्ञान मनुष्य को विबक चतुष्पा में रहित कर देता है^३ ३।

सन्त मनुज्यास का वचन है कि माया उनमें लिप्त नहीं हो सकती क्योंकि उनका साहचर्य उनके साथ है। हरिभक्तों में माया को हार माननी पड़ती है^४ ४।

माया मांषि मय इमे, कन्ध कानली होर ।

भक्षा विरम भटन ता गदु वने न को ।

दास्यपाल का वचन ।

- १०१ निगु अंधियारी वदु न सूधै, मयै मरष लिपावा ।
 तेमै अंध जगन नहां जानै तब तबरी पावा । १ ।
 मय तब दधि नहां मन धारै, तिन तिन मृगी थावा ।
 तू तू तार तहां तब नाना, निहारे मरै पिवावा । २ ।
 मन विनास बहुत बिधि कांसा, तौ सुपने सुप पावै ।
 जगत भूत तहां कुठ नहां किरि धीरे पदिना । ३ ।
 तब लख सूत मय लग देषै, तगत भर्मे तिनाना ।
 गदु अ नि तहां कुठ जानै, है सा मांषि मदाना । ४ ।

दास्यपाल की वानी ।

- १०२ माया काशी नागिनी तिन टरिया सब सन्ध हो । दास्यपाल की वानी ।
 १०३ उठ विद्वान वेद का भन्था मास लय किया जा भन्था ।
 ता मन छीन कुट्टवे लाग दिष गही आत तौ वनास ।

दास्यपाल का वचन । सार । ४।

- १०४ हमसे जनि लागे तू माया ।
 धारे स निर बहुत होपनी मुनि पैहै रघुनाथ ॥ १ ॥
 अपने में है मारेव हनरा अन्हू चनु विदानी ।
 कष्ट जन व बस परि पैना भरत मद्रुगी पात ॥ २ ॥
 तर हूँ विना लाग कर जन का ठारु हाथ की पानी ।
 जन ते तेरो जो न लहिदे रद्वपाल अद्विनी ।
 कहे मद्रुहा चुप कर ठगनी अ गत रातु दुसार ॥ मद्रुपाल की वानी ।

सत सु दरदास के अनुसार माया उत्पन्न और नष्ट होती है। माया नाना प्रकार के भ्रामक कौतुक करती है। राजु म सप के समान मरु म मरीचिका के समान यह माया सबन फल रही है^१ ५।

मारवाड वाले सन्त दरिया साहब के मतानुसार अनादि ब्रह्म में माया अधिष्ठित है^१ १। सभी लोग माया माया कहते हैं परंतु माया के स्वरूप का ज्ञान किसी को भी नहीं है। उनके अनुसार आत्मा के अतिरिक्त सभी माया है^१ ३। समस्त दृश्य-जगत स्वप्न के समान है। ये मायात्मक दृश्य ही उत्पन्न होते, व्यवहार करते और घट म नष्ट होते हैं। वस्तु का त्याग और गृहण सभी मायात्मक है और स्वप्न के समान है। जिसको माया के भ्रामक स्वरूप का ज्ञान है और आत्मबोध है वह मायात्मक व्यवहारों से भिन्न है^१ ८।

बिहार वाले सन्त दरियासाहब के अनुसार ब्रह्म ही त्रिगुण में निष्क हो कर जगत रूप में व्यक्त हुआ है। यह त्रिगुणात्मक माया ही उत्पन्न होती है मरती है एवं आवागमन के चक्र में पड़ती है। ब्रह्म त ब्रह्म तो सत् एकरस और एकरूप रहता है^१ ६।

१ ५ उपरै विगत सो सब राजा वेर पुननि में वही ।
नाना विधि क खेल त्रिगुणै बागीर सांघी दुही ।
रन मुनय मग या परी य माया विरति रही ।

सुन्दर अभावली ।

१ ६ आति अनानी मेरा माह इल मुष्ट है अगम अगोचर ।
रह रव माया - ही इ ही ॥ त्रिगुणै राहव माया त ले सो शानी ।

१०७ माया माया सब कहै 'गे' है नानी कोय ।

जन दरिया निज नाम बिना सबो माया ज्ञाय । सत दरिद साहब माया त शाल की १ १

१०८ उपरै विनमै अरु निमार्थ ।
सुपने अन्तर सब तरनावे । १६ ।
त्याग अदृश्य सुपना - यौहार ।
जो जगा सो सब से यारा ।

बिहार वाले सन्त दरिया साहब की शानी । १६ सुपने का अर्थ ।

१०९ ब्रह्मैत ब्रह्म सबल घट व्यापक त्रिगुण में लपगना ।
आवे तव उपनि फिर विनमै जरि भरि कहां समाना ।

बिहार वाले सन्त दरिया साहब की शानी ।

सन्त धर्मशास्त्र के मत में दीवक का प्रवास होने पर रज्जु में भ्रमिष्ठ होने वाला सन्त भ्रम नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार भ्रमनान होने पर माया जय इतरण भ्रमन नष्ट हो जाता है। मग जिस प्रकार मरीचिकामा में जल का प्रभास पाकर दौड़ता है और सन्त में निराग होता है उसी प्रकार मनुष्य माया में सुख की नावशा धारोचित करता है किन्तु सन्त में उसका निराग ही होना पड़ता है^{११} ।

सन्त गरीब दास के अनुसार भा माया मगनपणा है, और सन्त माया में भ्रमिष्ठ हो रहा है^{११} । गरीबदास गुरु में मन और माया वनमान है। ब्रह्म इनके बीच में ही निवास करता है किन्तु य उसका प्राप्ति में बाधक होते हैं। प्राणी के साथ पञ्चभूत सबका रहत हैं। माया न तीना लोका का सा लिमा है वह सबत्र व्याप्त हो गइ है। माया और मोह का विषया विस्तार निगुण ब्रह्म के भ्रमिष्ठान में हुआ है^{१२} ।

सन्त बुन्ना साहब त्रिगुणात्मक विस्तार की माया मानत हैं। इनके अनुसार माया स्वप्न के समान है और माया बाइन का रूप धारण करके प्राण हर रही है^{१३} ।

११० धानत वैदरि सरप अ धार निरुचिव होत मो शरक दा ।

मगनप्या वन धाउ धावे यकि परे पाइ पद्धिदार्द ॥

धर्मशास्त्र की बात। बोलीला ।

१११ जल मग त्रिगुना सृष्टि भुजानी भूल रहा जग मूढ ।

जान अमन पर निचै निपचै बीत पर बू गूढ ॥ गरीबदास की बात ।

११२ मन माया मौनूर द काग ग मर्दा ।

बीच पुरवन वसत है सा पावन नामी ॥

गरीबदास की बात। दिनी का अ ग । पद ७१।

धौन मात जो आदि द जाफ संग शाल ।

तोन लोक कुँ खा गर सुत्र स न्नि धानै ॥ ७२ ॥

रहवत कोदि अनन्य द वासा ग माने ।

मन्या माया विभते निगु न तन माइ। गरीबदास की बात । पद ८५ ।

११३ रज्जुन तन्नुन मन्नुन मन्नुन हारम वन मन शोऊ ।

गणनमदल में हरि रस चार दस बूँके बिरला कोऊ ।

बुन्ना साहब का । शब्द सार ।। शब्द ८।

यह जग वैस सुख है सुन्दरु बयल रमान ।

यह माया वन धारने हरदि लनि है प्राण ॥

बुन्ना साहब का शब्द सार । शब्द १४ ।

सत चरनदास के अनुसार छत्र का माया बहो है। माया स्वभावत् मिथ्या है। मायात्मक पदार्थों का जग और विनाश होता है। जो भी वाणी द्वारा कहा जाता है और जो भी काया त गुण जाता है और जो दृश्य घांसा से देखे जात ह वे सभी माया ह। समस्त जड आचारों में एत चतन आत्मा की स्थिति है। आचारों और विकार के रूप में बदल माया का प्रत्यक्ष होता है ब्रह्म का नहीं^{११४}।

सत चरनदास के अनुसार जग मानो ब्रह्म का रूप है और जन को लहर माया के अनेकाल्मन रूप ह। परन्तु लहर भी जन का ही रूप है किन्तु अनानवग जल को प्रवहार भेद से लहर कटा जाता है। यह ध्ववहार भेद ही माया का रूप है। माया की ब्रह्मरूप में एकता प्रतिष्ठित करते हुए सन्त चरनदास का कथन है कि भूत स्वरूप निराकार ब्रह्म सत चित और आनन्द रूप में प्रतिष्ठित है। ब्रह्म के तीनों स्वरूप माना पुरुष के रूप में माया को प्रकाशित कर रह है। सत चित और आनन्द रूप भी ब्रह्म के सगुण रूप को प्रकाशित करते हैं और यह सगुणरूपता ही माया का स्वरूप है। स्त्री और घन न सभी को छल लिया है। देवता राक्षस यन और गंधव इद्र एव सभी माया द्वारा ठग लिए गए ह। माया ठगिनी है। जिसने किसी का नहीं छोड़ा। किन्तु सत चरनदास के सद्गुरु श्री गुरुदेव माया के छत्र से मुक्त हैं। उहोने माया पर विजय प्राप्त कर ली है^{११५}।

११४ अपने सो माया सभी विगिनि नेक में जाय।

छत्र माया सो कहत है सपनी सकल विदाय।

ब्रह्मज्ञानमागर वचन। भक्ति सागर।

जो मुझ सती बोलिये अर सनिपत है कान

जो आरिनि सौ दखिये सबी माया जान।

एकै सब तन रमि रखो चतन तइ के माछि।

माया ज्ञान है सभी ब्रह्म लखन है नाछि। भक्ति सागर।

११५ जन समान तो ब्रह्म है माया लहर समान।

लहर सबे वह नार है लहर कहे अज्ञान ॥ भक्ति सागर।

अद्वै निराकार जानो सगुणानन्द।

माना पुरुष को रूपधरि भास परकामी है। भक्ति सागर।

छल सब करु के निनि रूप ॥

सुर अमर अरु यज्ञ मनव इन्द्र आदि भूप।

माया ठगिनी ठगे सबही वच गुरु गुरुच ॥ भक्ति सागर।

सत दयावादी के अनुसार जन्म और मरण के बग म पन्न वाले तन्त्र मायात्रय हैं । किन्तु ब्रह्म मन और वाणी द्वारा नहा व्यक्त किया जा सकता । ब्रह्म अनुपम सत्य है^{१११} । सत सहजावादी के अनुसार माया के मिथ्या पाण स बधा हुआ जान कठिनता से मुक्त हाथा है^{११२} ।

सत भाषा साहज के अनुसार सत्य तो कवल एक है और इत मायात्मक है । आत्मज्ञान होने पर इतभावना उसी प्रकार नष्ट हो जाती है, जिस प्रकार रजु का जान हा जान पर सय प्रम रजु म समावर नष्ट हो जाता है । माया काम क्रोध, लाभ और विषया के अनक रों म फती हुई है । माया भ्रम है, और पचभूता एक पचीस प्रकृतिमा द्वारा अस्तित्व म आती है । माया स्वप्न के समान मिथ्या है । मन जब गान्धि के प्रम म अनुभवत हा जाता है, तब माया के भ्रामक रूप से मनुष्य मुक्त हो जाता है^{११८} ।

सत जगजीवन साहज के अनुसार ब्रह्म सत त स्वरूप है किन्तु वही ब्रह्म मनुष्य का माया म भटका दता है । उस माया का रूप है और भ्रम स ही जाय बचन म पड़ता है । माया बडी बचवती है । माया न ही पृथ्वी, पवन

११६ भवन जान इन नहीं दू मव माय रूप ।

मन बानी तू म् आन पना तव अनूप ॥ २५ ॥ ददाकोर ।

११७ माय मोह पवन ली मूय । मन्त्रो गो फावने मूय ।

नडे समी लग उति मूय । पना दर में कैव दूते ॥ - ॥ सत्प्रकार ।

११८ नाग एक इत का भवत । मर सनाय रजु में गयत ॥

भाता साहज की बाला ।

सात्व मा बाल दूना जान क्रोध लोम लूने ।

बानि कै बँबाग मा । विष मन्त्र फाव ह ।

भाता सात्व की बानी । प ११ ।

दू नाग परपच फातु में नाग मोह पर मुलाय ।

पान पचम सतु तव आचार गवदि मनन डक दया ।

भाता सात्व की बानी ।

महन परपच में मव पचम दूमा मन्त्र नर चारिव मन मगन भात ।

भाता सह गवाह की लहर जग बानि वागे कर दव मव मूय जात ।

भाता सात्व की बानी ।

मन लाग गवदि म्मा दूना मकन अन पचम ।

दूने सतु अन पचम भात न ड कादुका करत ॥

दर नया परपच गहि नई रदु डरत । भाता साहज की बानी ।

सत चरनदास के अनुसार छन का माया बहो है। माया स्वयंभू मिथ्या है। मायात्मक पदार्थों का नाम और विनाश होता है। जो भी याणी द्वारा कहा जाता है और जो भी बना स मुक्त जाता है और जो दृश्य चीजा से देखे जाते हैं वे सभी माया है। समस्त जड़ आकारों में एक चेतना आत्मा की स्थिति है। आकारों और प्रकार के रूप में बसल माया का प्रत्यक्ष होता है, ब्रह्म का नहीं^{११४}।

सत चरनदास के अनुसार जल मानो ब्रह्म का रूप है और जल की लहर माया के अनेकानेक रूप हैं। वस्तुतः लहर भी जल का ही रूप है किंतु अनानक जल का पवहार भ्रम से लहर कटा जाता है। यह व्यवहार भेद ही माया का रूप है। माया की ब्रह्मरूप में एकता प्रतिष्ठित करते हुए सत चरनदास का कथन है कि अतः स्वरूप निराकार ब्रह्म सत चित और ध्यानद रूप में प्रतिष्ठित है। ब्रह्म के तीनों स्वरूप माना पुष्प के रूप में माया को प्रकाशित कर रहे हैं। सत चित और ध्यानद रूप भी ब्रह्म के सगुण रूप को प्रकाशित करते हैं और यह सगुणरूपता ही माया का स्वरूप है। स्त्री और धन ने सभी को छल दिया है। दकता राक्षस मन और गंधव इंद्र एव सभी माया द्वारा ठग लिए गए हैं। माया ठगिनी है। जिसने क्रिस्ता का नहीं छोड़ा। किंतु सत चरनदास के सद्गुरु श्री गुरुदेव माया के छन से मुक्त हैं। उन्होंने माया पर विजय प्राप्त कर ली है^{११५}।

११४ लपन सो माया सभी बिगमि नेक न जाय।

छा माया सो कहन है सपनी मकन विदाय।

मदनमोगर बलन। भक्ति सागर।

जो मुक्त सभी बोलिये अह सतियत है कान,

जो आदिन सँ देखिये सब ही माया जान।

एकै सत तन रमि रखो चंतन तन के माहि।

माया नशान है सभी मझ लगन है नाहि। भक्ति सागर।

११५ तन समान तो मझ है माया लहर समान।

लहर सवे बह नार ह लहर कहे अज्ञान ॥ भक्ति सागर।

भद्र निराकार तीनों सचिदानन्द।

मानो पुरख को रूपधरि माया परकामी है। भक्ति सागर।

दल मन कनक के भिति रूप ॥

सुर अमर अरु यक्ष गंधव इंद्र आदिक भूप।

माया ठगिनी ठगे सबही कच गुरु गुरुत्व। भक्ति सागर।

न मनुष्य को चाँदी का भ्रम हाता

वहारीक स्वरूप का वणन कर चुक
करेंगे ।

परण ही मनुष्य जीवन मरण के
विकारा स रहित होने स मनुष्य
गरीर धारण करने का आदि
वारिक भोगा म रमण करता है ।
सस्कार नष्ट हो जात हैं और
सार प्राणी को कम का भोग
रूप म अवतरित करत हैं ।
स प्राप्त ज्ञान क द्वारा हाता

मन्मथर ॥ १ ॥

लन सोल ॥ २ ॥

न मल ॥ ३ ॥

न दाल ॥ ४ ॥

गद साहब की बानी । भाग ३ ।

की बानी ।

और सृष्ट का निर्माण किया है। माया अर्थात् प्रकृति और जसी है तसी है। उसका स्वरूप अनिवचनीय है^{११६}।

संत पलट्ट साहब ने अनुसार माया ठगिनी है। देवताओं के घर में माया अप्सरा रूप में और योगी के घर में गिण्या के रूप में बतमान है। देवता मनुष्य और मुनिया को भी माया ने खा लिया है। माया अलमस्त और अनेली है^{१२}।

संत पलट्ट के अनुसार माया न समस्त ससार के साथ छल किया है। देवताओं, मनुष्यों और जानियों को ससार सागर की बीच धारा में डबा लिया। माया का स्वरूप भावपूर्ण है किंतु है वस्तुतः वाले नाग का रूप ही। इस माया की नागिन से बाग्य हुआ मनुष्य क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकता है। यह माया मृत्यु का प्रत्यक्ष रूप है। पंचतत्व माया के द्वारा ही रच गये हैं। जोड़ न हम माया के बंधन में पड़ कर अपना पारमार्थिक स्वरूप विस्मृत कर लिया है। माया भगतपणा है जिसमें कभी प्यास नहीं बुझती। माया में ससार इस प्रकार फसा है जैसे सूखे में नौकाओं अथवा जलयानों का बेड़ा फस जाता है। ससार स्वप्न के समान है और भ्रम रूप में

११६ देखत अहा दूसरा ना । एक जाति तु हारो ।

वेतु भरमाय देत माया मह वेतु करत हितकारी ।

जगजीवन साहब की शिष्यावली । भाग १ । शब्द ३० ।

को तैं अहसि कहा त आरनि वाहे भम मुचान ।

सुध सभार विचार करि क वृष्णु पादिनी ज्ञान ।

लाकग एहुकोट माया कठिन माया बान ।

सग सबक बचे को जाहि हस्यो सबका ध्यान ॥

जगजीवन साहब की बानी । भाग १ ।

महा अपरबल अहे माया अत काहु न जान ॥ १ ॥

पवन औ जल कियो धरनी कियो गन ससि भान ।

जहाँ सनि है तहाँ तसि ह तहाँ तसि धर ध्यान ॥ ३ ॥

जगजीवन साहब की बानी । शब्द १३ ।

१२ माया ठगिनी जग बौरह

देवता के घर में अप्सरा जागा के घर धरी ।

सुर नर मुनिसब को खासि है है अलमस्त अफली ।

पलट्ट साहब की बानी । भाग १ । शब्द १३५ ।

इस प्रकार भासित होता है, उस माया में मनुष्य का चर्गी का भ्रम होता है १२१ ।

यहाँ हम सत-कान्य में माया के व्याख्यात्मक रूप का बखान कर चुके हैं । अतः उस मन की मायात्मकता का अन्त करोगे ।

सिद्ध गोरखनाथ व अनुसार मन के कारण ही मनुष्य जीवन मरण के बंधन में पड़ता है, और मन के मायात्मक विचारों से रहित हान से मनुष्य संसार बंधन से मुक्त हो जाता है । जो कि गोरखनाथ करने का प्रतिपादित मन है और मन ही पाद-रूप में साक्षात्क भागा में रहने करता है । मन के गुण हान पर प्राणा के भौतिक कम-संस्कार नष्ट हो जाते हैं और यह मुक्त हो जाता है । इस मन में भर हुए संस्कार प्राणी का कम का भाग प्राप्त कराने के लिए हा देवता और दानवा के रूप में अवतरित करते हैं । गोरखनाथ का कथन है कि मन का निग्रह गुण प्राप्त पान के द्वारा होता है १२२ ।

१२१ माया टगिनी गगा समार, गुं नर सुनि वाग उम्भार ॥ १ ॥

मया बोचै मोडो दान गाठ म हान ध्यान लद मय ॥ २ ॥

माया दे यह काली नाग (चर्गी का) कटे पाना मरै न मरै ॥ ॥

पलकाल माया यं कान भाति बच म हव न गन ॥ ४ ॥

पद १ माया का बानी । मय १ ।

पानी पवन अगिनि म चोरा धरता और अरुणा ।

पाँच तनु का मदन उठाया तर्जिया तुन दान्ना ।

को तुम बदन कहाँ है आया दारुवार उगगा ।

अनी दान भुजै के कारण फिरि फिरि गना गया ।

हनी बात धन नहि तुमको निरु काग का आया ।

मग नन निरखि के तपा सुभ नहि,

सुगु अन्का धरा ॥ ३ ॥

यह समार रैन का सुपना ।

रूपा म लीगी नग है ॥ ४ ॥

पद २ माया का बानी ।

१२२ मन मारै मन मरै मन लारे मन त्रि ।

मन नै अरिधर द्वार निनुवा मरै ।

मन धरि मन अन् मन मन्थार ।

मनहीं पै सूटै बाक बिने विचार ॥

निनि मन माम देव दार्य । सा मन मार नहि गुं गान बाग ।

पद १ माया का बानी । का १ । मय ७० ।

गोरखनाथ १ ।

संत कबीरदास के मतानुसार मन व मायाजय विकारा से मुक्त हान पर अदृष्ट अथवा इन्द्रिय एव बुद्धि न अगोचर ब्रह्म व स्वरूप का बाध सहज ही हो जाता है। मन का अहंकार ही पुनर्जन्म का कारण है। हृदय के भीतर दपण लगा हुआ है परंतु यह दपण मायिक विकारा से धुंधला हो गया है। जिस प्रकार धुंधल होने पर मुग्धावृत्ति स्पष्ट नहीं होती, उसी प्रकार मन के विषयान्तिका द्वारा अगुद्ध हो जान पर जीव और ब्रह्म का ऐक्य प्रत्यक्ष नहीं होता वरन् नाना प्रकार के भौतिक द्रव्य सम्बन्ध मन में प्रविष्ट होते रहते हैं। मन के विकारहित होने पर द्रव्यजय अज्ञान नष्ट हो जाता है एव ब्रह्म तथा जीव के मध्य अविद्यावृत्त व्यवधान नष्ट हो जाता है। मन का निरोध होने पर ब्रह्म का ज्ञान उन्मि होता है और आत्मा में आनन्द प्रस्फुटित होता है। वस्तुतः मन स्वतः ब्रह्म का रूप है किन्तु माया द्वारा विवृत होने पर मन ब्रह्म स्वरूप से वंचित हो जाता है। मन के गुद्ध होने से सासारिक द्रव्य विकार तिरोहित हो जाता है और मन ही ब्रह्मरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है^{१२३}।

माया जीव का प्रलोभन निम्नाता है और अंत में उसका अपकार करती है। माया जीव में मिथ्या के प्रति निष्ठा उत्पन्न करती है और सत्य पर आत्मिक आवरण टांघती है। उसमें विविधता अनेकता, अपवात् रूपता अनेक वेग नाम रूप और रस उपलब्ध होते हैं। विषमता होने का कारण माया में एकरूपता नियामकता नहीं है। माया अभिचारिणी है। वह डाइन होकर सबभक्षण करती है तथा पुत्रादि भी खा लेती है पिता से अनचित सम्बन्ध स्थापित करवाती है। व्यवहार में वह स्वतंत्र है और उस पर कोई अकुण्ठ नहीं है परंतु सत्ता से वह भयभीत रहती है। वह स्त्री रूप में कामिनी और पदाथ रूप में कनक है। माया स्त्री पुत्रादि व्यवहारा में भी प्रवृत्ता का

१२३ इस मन का विमर्ग करा पीठा करा अतीठ।

न निर राधा आरणा ता पर निरिच अगाठ ॥

दिल्या भावर आरमा गुण देखणा न जाइ।

मुख तौ लीपर देखिय च मन का ठमिधा जाइ ॥

सैमना मन माणिर नाणा करि करि पीन।

तव मुख पावै मुखरी अन्न भक्त सीसि।

भरा मन मनिर राम हूँ भरा मन रामहि आइ।

अव मन रामहि हूँ रखा साम नवावा वाइ। कबीर ग्रन्थावली

रूप है। अविद्या माया व सम्बन्ध में आत्मा दुग्धी है। सब वही द्वन्द्व का कारण और स्वप्न में सत्य की प्रतीति मह में जल का प्रतीति सीप में चूँचा की प्रतीति, रज्जु में सप की प्रतीति के समान है। मन का निमाण भी माया व द्वारा होता है। माया-द्वारा मन अनन्तमुग्धी होकर विषया में भासक होता है। सन्त कबीर दास के काव्य में माया व सम्बन्ध में उरयुक्त भावना प्रधान है। इसी प्रकार का भाव धारा और माया के लिए दृष्ट सनामा का प्रयोग गोरवनाय व काव्य में भी मिलता है।

सिद्ध गोरवनाय सापाधि मन का बधन का कारण और विषय विकार से मुक्त मन का मोक्ष का साधन मानते हैं। विषय विकार से मुक्त होकर मन साधारण मनुष्य से लेकर देवताओं तक के बधन का कारण है। वही मन गुरु से प्राप्त ज्ञान व द्वाशा स्वस्वभावस्थान का साधक होता है।

सन्त कबीरदास के अनुसार मन का निग्रह करने से ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। इसके अनुसार मन वस्तुतः ध्यासा रूप है। पञ्चभौतिक शरीर और इन्द्रिया में आत्म स्वरूप की प्रतीति होने का कारण आत्मा की उपनिष नहीं होती। इन्द्रिया व द्वारा विषया में मन प्रसारित होता है, और ब्रह्मज्ञान होने में बाधा उपस्थित करता है। परन्तु उपाधि से मुक्त होकर वही मन ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

सन्त रसास भी इस अच्युत मन का विकार से मुक्त होना मानते हैं। यह माया विषय रूप है और राम-नाम से साधक का बधित कर देती है। सन्त रदास ने मायाजय विकार से मुक्त रहने के लिए प्रायः मनोबोध का आश्रय लिया है। सन्त नानक के काव्य में भी इस प्रकार के मनाबाध का प्रधानता है। सन्त दादूदास, सन्त मुन्दास, सन्त मूनदास, सन्त बरदास, सन्त भासा साहब, सन्त जाशोबन साहब और सन्त पल्लू साहब ने मन की मोक्षकता स्वीकृत की है। इन्द्रिय विषय जगत् के विविध भावपूर्ण स्था-गुणों में भासति, ये सब मन से ही प्रेरणा पाकर विलास भागते हैं।

सन्त रदास के अनुसार मन माया व विषया में रमकर हरि के स्वरूप को भूल जाता है। भौतिक सम्बन्ध अनित्य हैं और प्राणी को मृत्यु हो जान पर ये सम्बन्ध टूट जाते हैं। माया वस्तुतः निःसार है। सन्त रसास का कथन है कि यदि मन विषया में अनुरक्त हो तो उसका हरि-नाम का आश्रय लेकर माया से विमुक्त कर लेना चाहिये, किन्तु यदि हमारा मन गूढ है तो विषयावृत्ति

का रूपण नहा लग सकता । जीव ता स्वत नित्य गुद्ध और मुक्त स्वभाव ब्रह्म ही है । उसम यावहारिक बंधना का लभाव गहा हा समता है । अत मन को ही गुद्ध करने का प्रयत्न साधक को करना चाहिय । मन क गुद्ध होने पर मुक्ति के लिए उपाय करने की आवश्यकता नटा पडती क्याकि मायाजय विकारो से रहित मन स्वत ब्रह्मस्वरूप ही हो जाता है^{१२४} ।

सत नानक साहब क अनुसार माया और माह त्याग कर सासारिक आकषणा से विमुक्त होने पर साधक के हृदय म ही ब्रह्म का निवास हाता है^{१२५} ।

स त दादूदयाल के अनुसार मनुष्य इन्द्रिया और मन को तप्त करने का प्रयत्न करता रहता है किन्तु जिस कारण स ससार म मनुष्य को बंधनरूपा योनि धारण करनी पन्ती है उस कारण का उद्देन करने के लिए अज्ञानी मनुष्य कुछ उपाय नही करता । जब तक मन विषयो म निप्त रहता है तत्र तक ब्रह्मज्ञान नही होता । मन म जब तक सकल्प विकल्पा अथवा द्व नजय विकारा का प्रादुर्भाव हाता रहता है तब तक वह अगुद्ध रहता है किन्तु अविद्यात्मक विकारा के नष्ट होने पर मन गुद्ध हा जाता है । मन क अविद्यात्मक विकारा म लिपटे रहने पर अविद्या का अतिकार जीव पर रहता है पर त विषयासक्ति त्यागकर आत्मस्वरूप म अनुरक्त होने पर मन ही ब्रह्मस्वरूप म समाहित हो जाता है^{१२६} ।

१२४ कहु नन माया नाउ स तारि ।

माया न रम कता भूया जाहुगे कर भारे ।

दरिध धा र्ना कौन तरो सगा सुन नदि तारि ।

तारि अनग सउ दरि करिह दहिग तन जारि ।

यह माया सब धाधरी र भगने तिन प्रनिवार । रैराम का बानी ।

मन लीन विषयास लप ती हरि नाम स तारि ।

चो हम विमल हृदय तिन अंतर ताय कान पर धरिहा ।

रैराम की बानी । पं ३२ ।

१२५ तिहि गा था मग्या तनी समउ भया उगाम ।

कह नानक सुनरे मना तिहि घनि मझ निबाम । सु र गुका । मग्या । ६ ।

१२६ इनी खारथ सब जिदा मन मांग सो दाइ ।

जा बाण्य नग निरनिया सा ता कहु न कीइ ।

दादूदयाल की बानी ।

साधन म प्रवृत्त करना पन्ना । राम की कृपा र्णा वागु के भगार समार क
भामक वात्सा की उगारर दिन भिन कर सकते हैं^{१२८} ।

सत चरन्यास के अनुसार मन का हरिस्मरण म लगा देना चाहिए,
क्याकि रिक्त मन भौतिक बधना म पडा रहता है और परिणाम यह होता है
कि पुन पुन गरीर धारण करव मनुष्य दुखी होता है पुन पुन मत्यु होती
है और काम शोधादि गरीर को किन्न करते हैं । यदि मन के रोग और
दुख नष्ट नहीं हाते ता मनुष्य हिंसा म डूबा रहता है । पुष्प का स्त्री
पुत्रादि सम्बन्धा से बराग्य नहीं होता । विना बराग्य हरि स प्रम भी नहीं हो
सकता है^{१२९} ।

सत भीला साहब के अनुसार माया के कारण ससार क अनित्य स्वरूप
को पहचानने म विलम्ब होता है । सात्त्विक बुद्धि का नाग हो जाता है और
मनुष्य कुटिल कर्मो म भटकते रहते है परंतु समझने की बात कुल इतनी है
कि मन और माया का नाग जब तक नहीं होगा तब तक आत्मस्वरूप का
ज्ञान नहीं हो सकता है । मन को धिक्कार है क्याकि मन ही प्रपंच म प्राप्त

१२८ कां नीति सकै नही, यह मन नस देव ।
सां जाते नीत है, अब में पायो मेव ॥
मन जीते विन जो करै—साधन सकल कलेम ।
निनका धान अमान है नाहि गुम् उपमेम ।
यं मन अकन अनीत जीनिदा त्मन करो पांचो नारी ।

गरीव्याम की बानी ।

यह जग वन्रा धुंधका का मिडिर पीना टरिये ।
जो मन धाये रामह दामा तन करिये ।

गरीव्याम की बानी ।

१२९ अब तू समिरण कर मन मेरे ।
अगल पिदले अब क कीय पाप कटै सब तेरे ।
यम क दण्ड दहन पावक की चौतारी दुग मेरे ।
जम मरे न सुयोनि आने या जग करै न वेरो ।
काम बोध म पाप जराये हरि विन और न माने ।

भक्तिसागर । राम ।

मन क रोग शोक नहि न्योय हिमा दूरे अकसरे ।
पत्नी नागी सुनरू मो कियो है नेक न हरि क प्रेम अरे ।

भक्तिसागर । राम ।

होकर अज्ञान का आश्रय लेता है। पाप-पुण्य, ऊँच-नीच, पचनत्व पच्योम प्रकृतिया सभा भ्रामक हैं और मयु का भय सिर पर मवार रहता है^{१३} ।

मन जगज्जीवन साहब के अनुसार मन अज्ञान का ही प्रथम लकर धनक कम और विषया म भङ्गना फिरना रहता है। किन्तु ईश्वर के स्वरूप म लग कर मन के विकार गान हा जान हैं^{१४} ।

सत पलटू साहब के मतानुसार मन हायी लोमडी कौवा और मिह का रूप है। मन का हायी बल्लनिए कहा गया है कि विषया के मत स अधा होकर वह किसी के वग म नहीं रहता। मन लोमडी बल्लनिए है कि अविद्यात्मक विषया की चारी बडी चतुरता म करता है। मन कौब के समान जाना अर्थानि तमोगुण से पूरा रहता है और भयामभय, गुद्ध अगुद्ध सभी प्रकार के व्यवहारा म दीप्ता किरता है। मन मिह के समान है क्याकि अहंकार का उदय होने पर मन को विवेक बुद्धि का जान नहीं रहता, हित की बात नहा सुनता और गुरु के उपदेश की अवहलना करता है^{१५} ।

मन की अविद्यात्मकता का वर्णन हम कर चुके हैं और यहाँ हमन यह निदिचन किया है कि मन हा माया के भागा का माध्यम है। सता के अनुसार मन के दो पण हैं —

१ माया म अनुकड होकर मन के द्वारा ही जीव और ब्रह्म का भेद उत्पन्न किया जाता है।

१० मेरो मन ह कउन गनि मरी, मेरी मनम बूझ डोन बेरा।

मनुसार आय गनि गमा लागी धाय। करम कुजिल करै गनि गं तरी।

भोला जनों म सीने मन नाया दूरि कौने।

भोला साहब की बानी।

पाप और पुनन नर भुवन हाणलना ऊँच नाच मव दह धगी।

पौर मर तोलि धकीय के दल परो राम को नाम म्दने विमारी।

महा बालम दुख बर शक परे लखि मरि नमन में ग्राम मारा।

मा ताँ विकार विकार है नादि एग विना हनिमन नीवन भिगगी।

भोला साहब की बानी।

११ मेरो मन अब नुन तें लागा।

साजन रहऊ अचत सुदि नदि गुरु मय मन तें लागा।

मन कर्म कम म्ना बाँ मँह मरनन किगे भ्रमगा।

जगजीवन साहब की साक्षात्कामी। भाग ०।

१२ मन हस्ते मन लोतही, मन काय मन मर।

पलटू नाम म्ना बदे मा के रने फेर। पलटू साहब की बानी। भाग १।

२ माया अथवा अविद्या से मुक्त होकर मा ही ब्रह्मस्वरूप में अवस्थित होता है ।

उपयुक्त श्रम के अनुसार सत्ता और आचाय शाङ्कर के मत में भेद नहीं है । आचाय शाङ्कर ने त्रिगुणात्मक या त्रिवैचारिक माया का वर्णन केवल श्वेताश्वतर भाष्य में ही किया है । त्रिगुण्य के अनुसार उद्दिष्ट ब्रह्म की शक्ति रूपता का प्रतिपादन किया है । आचाय शाङ्कर ने ब्रह्मसूत्रों में भाष्य में ब्रह्म की शक्ति और इसके स्वरूप का कथन (शक्तिविषयतात् २।३। ८) ब्रह्मसूत्र के भाष्य में किया है । वेदान्त सूत्रों में ब्रह्म की शक्तिरूपता की प्रतिष्ठा की गई है । जन्माद्यस्ययत ब्रह्मसूत्र २।१।१ सज्जम, स्थिति और प्रलय सत्त्व की तीन स्थितियाँ का कथन किया गया है । ब्रह्म की सत्त्व के विष्णु पालक और शाङ्कर प्रलयकता बड़े गये हैं । सत्त्व के इन रूपों का कारण ब्रह्म कहा गया है^{१३३}। परन्तु कारण और कार्य की पृथक् सत्तायें न होने के कारण शक्ति और शक्तिमान का अन्वय शाङ्कर के अनुसार तत्त्वहीनत्वादयवत सूत्र से पीछे अनेक सद्भावों द्वारा सिद्ध किया जा चुका है । इस प्रकार माया अथवा शक्ति के विकारों से ब्रह्म के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आता । प्रश्न यह होता है कि ब्रह्म की सत्त्व मायात्मक है अतः इसके सत्त्व से ब्रह्म को भी विकारी होना चाहिए क्योंकि माया विकारा की जननी है परन्तु ब्रह्म अविकारी है ब्रह्म की कम के फलों में आसक्ति न होने से उससे कम सत्त्वगित नहीं होते^{१३४}। फल न होने से उसके द्वारा आगामी कर्मों की भी सम्भावना नहीं है । अतः माया का अधिष्ठान होते हुए भी ब्रह्म भी उसके विकारा से युक्त नहीं होता, जैसे मेघों से आकाश विकृत नहीं होना । जैसे आकाश में अनेक रूपों, रंगों और आकारों वाले मेघ आते हैं परन्तु स्थिर आकाश में अस्थिर बादलों का वस्तुतः वास्तविक अस्तित्व नहीं है । इसी आधार पर 'आत्मा अथवा जीव का स्वरूप प्रकरण में कहा गया है कि निरुपाधिक जीव ब्रह्म ही है । जीव का परिच्छिन्नत्व आकाश में बादलों के समान प्रत्यायी है^{१३५} ।

१३३ सत्त्वस्थितिविचारानां शक्तिभूतसत्त्वानि ।

गुणाश्रये गुणमये तादात्म्ये ततोऽस्तु ते ॥

दुर्गा सत्तराती । अध्याय ११ ।

१३४ न मा कर्मापि निष्पत्ति न मे कम एते रपडा ॥

गीता । ४ । १४ ।

१३५ न मे देहेन मन्वषो मानेव विनात्म ।

अनं कुतो मे तद्वर्गा ताम्ब्वानमुपुण्य ॥ ५०१ ॥

विवेक चूनागणित् ।

सब काय म माया का मिद्धान्त यद्यपि निम्न अवस्था अनुभव गति रूप की छाया म ही विकसित हुआ है परन्तु फिर भा आचार गङ्गुर के मन म सत्ता क मन म कृष्ट विच्छिन्ना है । सत्ता ने यद्यपि माया के कारण हा सृष्टि और ससार का अस्तित्व कहा है ता भी आचार गङ्गुर की अपाठानु माया का रूप सत्ता का वागि म अत्रिक भावहासिक एवं त्रि प्रतिनिधि की उन धनधुनिया स पूष है जा वराग्य का प्ररणा देती हैं । मन्ता के अनुभार माया एक एमा प्रभावगानी तन्त्र है जिसक ममम म काद भी सुरगित न्ना र्ह सवता । पीदे इसी प्ररणा म निम्न माया क तीत रूप क्त् ता है । मन्ता न भी त्नका मया क भव में ही स्वीकार किया है । किन्तु सत्ता क काय म फिर भी एक विच्छिन्ना है । सत्त वन तादात्रा की अत्यन्त सामर्थ्याली मानन हुए अनुभव करत हैं कि माया न इन दवनाद्या का भी प्रसित कर लिया है । जिस प्रकार मनुष्य को नारी अनक व्यन्तारा में आसक्त करती है उसा प्रकार विष्णु क साथ माया तन्मा रूप म और त्रि क साथ पावनी रूप म छनता का विन्तार कर रहा है । माया का दूसरा रूप है वास अवस्था धन । धन म सभी जागतिक व्यन्तार धनत है । मनुष्य धन स हा अनक आकपरा और आसक्तिया म पत्ता है । जगत क मान मम्माल पुत्र भित्ति एवं अनक साजन सम्पत्ताए तादरूप तीर की अत्यन्त स्वल्प तात म भिन कर दत हैं । माया का तीसरा रूप है पचभूतात्मक धरार और त्सार । प्राणा त्सार की स्थायी ममम कर उमम ही आत्मबुद्धि आगति कर लग ह और त्मक सत्ताय त्ृ गार म समय न्त् करक जायम-शक्ति का व्यन्त करजा धना जाता है । धनानी प्राणा त्द म च्चयबुद्धि और धनाम म आत्मबुद्धि करता है । परन्तु इसका परिणाम निराणापूरु जाता है क्योंकि मयु इनक भूत म्धायी और धम्यायी त्था का निरुध्न करक नित्य और अनित्य पदायी का धान कर दता है । माया अनिव है और ब्रह्म नित्य । मन्ता का वाग्या म बहु भावना स्पष्ट है कि ब्रह्मावस्था म द्वितीय गिधित हा जाता है और मत्तु का मय निकट भा जाता है । उम समय इन् सब विषया का असारता प्ररणा हानी है । आचार गङ्गुर न जायन क इस पलायन-मम का यद्यपि इस प्रकार विन्तारपूर्वक समयन न्हा किया है परन्तु उनक निराणित्य त्रिध म द्वितीयों और उनक विषय परिन्तार म इसक भावहासित त्याग का समयन धनय लिया है ।

निराणित्य विषय के आधार पर सत्ता क समय पत्त्य सत्ता क

त्विधात्मक रूप है। जो पत्न्य जाता है वह जाता भी है। जो उत्पन्न होता है वही मरता है। अन्न मग्न वाता अनित्य है। जो अनित्य है उसकी स्थिति वस्तुतः नहीं है। किंतु मोक्ष और ज्ञान नित्य हैं। ससार का नाश करना ही मोक्ष का लक्ष्य है। इतने रूप जगत का विघ्नन करने आनन्द म प्रतिष्ठित माया का निरोभाव होना ही साधना का साध्य है। इसके लिए आसक्ति अनुपादेय है। विषया से विरक्त होना ज्ञान का साधन है। कम और सस्वार जगत और शरीर की उत्पत्ति के कारण हैं। ये जगत और शरीर पृथ्वी जल अग्नि वायु और आकाश इन पाँच तत्त्वा से बने हैं। इसी कारण ये प्रपञ्च माया कहलाते हैं। यह प्रपञ्च माया है। विवेक शूडामणि म कहा गया है कि परमतत्त्व के जान लेने पर सत्स्वरूप निर्विकल्प परब्रह्म में विश्व का कहीं पता भी नहीं चलता। त्रिकाल म भी रज्जु म सप नहीं होता और मगतपणा म जल की बूद भी नहीं हानी^{१३६}।

सत्ता ने इस पञ्चभूतात्मकता को इसी हेतु नाश करने का आग्रह किया है। यावत् रचना प्रपञ्चात्मक है। शरीर की रक्षा और शृंगार के हेतु नाना प्रकार के व्यवहार अनुप्य करते हैं। किंतु शरीर नाशवान है। सत्ता इसीलिए शरीरासक्ति के विरोधी है।

सत्ता के अनुसार अविद्या के प्रतिनिधास्वरूप नित्यानित्य विवेक और वराग्य को अधिक प्ररणा मिलती है। पीछे दिये हुए उद्धरणों से यह स्पष्ट है। शाङ्कर ने इन दोनों साधना को साधन सम्पत्ति के क्षेत्र म स्वीकृत किया है। निगुण सत्ता ने औपाधिकता मन बुद्धि चित और अज्ञान का निरूपण भी आचार्य शाङ्कर के सिद्धांत के अनुकूल किया है। आचार्य शाङ्कर के अनुसार अविद्याजय विकार आत्मा के शुद्ध रूप के आच्छादक हैं। उनके अनुसार भी उपाधि ब्रह्मस्वरूप जीव को व्यवहार म डालती है और जीव को आत्म स्वरूप के ज्ञान से पर्यव करती है। इसके अतिरिक्त सत्ता के अनुसार माया म आचार्य शाङ्कर की तुलना म बुद्ध विज्ञेय विषमताएँ भी हैं। वे या तो माया को ईश्वर के आधीन मानने हैं अथवा ब्रह्म की विवरूपता के साथ उसका समाधान करते हैं। दिवस्त भावना से सम्बन्धित माया ही

१३६ न हस्ति विश्व परतत्त्वबोधाय

सत्तात्मनि मद्भागि निर्विकल्पे।

ज्ञानधये नाप्यशरीरिणा गुण,

१ ह्यनुविदुम गतपिपासाय ॥ ४०५ ॥ विवेक उपासणि।

निर्विकारिता और निरसाधिकता एवं कत त्व और मोक्त त्व से रहित ब्रह्म स्वरूप की प्रतिष्ठा करती है। सत्ता के अनुसार भी माया ब्रह्म से अनिरिक्त और स्वतंत्र सत्ता नहीं रखती। प्रायः माया सत्ता के अनुसार रूपण है। सविणी, व्याजणी, डाइन एवं इसी प्रकार के अय सम्बोधन सत्ता के काय में मिलते हैं। आचार्य गङ्गुल न माया का इस प्रकार भक्तना का भाव नहीं लिखाया। माया को आचार्य गङ्गुल न उसका अकथनीयता का भाव देकर परा प्रकृति के अतगन उसका ब्रह्मरूप ही मान लिया है। सन्त-काय में माया की विलक्षणता अनेकत्वना और यावहारिकता के प्रति सत्ता का अधिक ध्यान है।

सत्ता के अनुसार विषय, इन्द्रियाँ और मन माया के प्रमुख तत्त्व हैं सत्ता की असारता को माया के रूप में सत्ता ने ग्रहण किया है। अविद्या पर का प्रयोग सत्ता न कम किया है। जगत की गनकरूपता, मनुष्य के बड़े बड़े मनोरथ, द्रव्य, शरीर और विनाल प्रासादा के बभय सभी सत्ता के अनुसार माया के रूप हैं। आचार्य गङ्गुल ने इस प्रकार के यावहारिक स्तर पर माया का विवेचन अपने भाष्य में नहीं किया है। मनुष्य की बुद्धि इन अविद्यात्मक यावहारा में अध्वस्त है। अनित्य पदार्थों में उत्तकी क्षणिकता का ज्ञान मनुष्य को नहीं होता। अतः वह इनके यावहारा में भ्रमवश तिरप्त हो जाता है। वस्तुतः सन्त माया के सिद्धांत की अधिक चर्चा नहीं करते। वे माया और उपाधि का जो साधारण रूप तिन प्रतिदिन मानव जीवन में व्यवहृत होता देखते हैं उसका ही कथन करते हैं। सत्ता के अनुसार माया में विलक्षण गति है, क्योंकि वह बलपूर्वक मनुष्य को परमाय माग से अलग कर देती है।

इस प्रकार में माया और मन की अविद्यात्मकता कही जा चुकी है। सत्ता के मत में मन ही मायिक पदार्थों में अध्वस्त होता है। यह अध्यास बुद्धि मूय आकाश में नीलिमा का आभास कराता है। वस्तुतः इस नीलिमा को आकाश उत्पन्न नहीं करता। इस नीलिमा को देखने वाला पुरुष भी नीलिमा उत्पन्न नहीं करता। किंतु फिर भी इसकी उपलब्धि होती है। ठीक इसी प्रकार माया को न तो पुरुष उत्पन्न करता है और न ब्रह्म ही, किंतु फिर भी माया आकाश में नीलिमा के समान सत्ता के रूप में वर्तमान है। आचार्य गङ्गुल न बौद्धा के मूय और विज्ञानवादिया के मत का खण्डन करते हुए सत्ता के असत् रूप अथवा मूय रूप को स्वीकार किया है। आचार्य गङ्गुल ने कहा है कि अध्यास के पुत्र की उत्पत्ति नहीं हो सकती। विज्ञान में भी

परमोन्मत्त के साग नष्ट करने का सन्ताने ब्रह्मणि पुनः और शृङ्ग भ्रमा स्वभावी है। ब्रह्मगुणा म कहा गया है कि अभाव की उत्पत्ति यहाँ नहीं सञ्चिती^{१३७}। छात्तोम्य उनिपत्त के भाष्य म आचार्य शङ्कर ने कहा है कि गच्छित्वत्प न पूर्व जगत् कारण अस्तित्व रूप या अनस्तित्व ही नही। अमन् म सत् की उत्पत्ति नही हो सकती। उन्मी प्रकार अभाव से भाव की उत्पत्ति नही हो सकती^{१३८}। समस्त पदार्थों का सत्भाव ब्रह्म ही है। उन्मी स अनेक रूपा की उत्पत्ति ब्रह्मगुणा म बही गई है। सत् की कही माया अथवा जगत् की अभाव रूप म भा ग्रहण करने प्रतीत होने हैं। परन्तु बौद्धा व गू य और विज्ञान व विरोध म सत्ता का ब्रह्म इम बात का प्रमाण है कि सत् जगत् सत्ता का अभाव नही मानते। इसी प्रकार आचार्य शङ्कर और उनिपत्त ब्रह्म के सत्स्वरूप की पोषक हैं। अथ माया के स्वरूप म सत्ता को जो अभावरूपता प्रतीत होती है उसका कारण है अनित्य पदाय सत्ता। सत्ता माया को इसीलिए अभाव रूप म देखते हैं कि जागतिक पदार्थ सत्ता वस्तुतः स्थायी नही है। जिस वस्तु का अस्तित्व है उसका बाध त्रिजाल म भी नही होता है। जिसकी स्थिति नही है वह त्रिजाल म भी स्थित नही होता। अतः मायाजय पदाय स्थिर नही है। इन्द्रिया स भोगे जाने वाले मुख क्षण स्थायी हैं। धनराशि से मनुष्य मनुष्य को नही जीत सकता। जिस अज्ञान की कटना से मनुष्य स्त्री का साहचर्य चाहता है वह भी दण्ड कान व प्रवाह से विच्छिन्न हो जाता है। यहाँ तक कि जिस शरीर मग और बुद्धि से मनस्य इन्द्रिया के विषया म आसक्त होता है व स्वयं भी निवृत्त होकर भोग भोगने म समथ नही रह पाते।

जो वस्तु वस्तुतः है वही फिर भी नित्य मुक्त आत्मा के बाध का कारण है वही माया है। यही उत्पन्न होती है और यही मरती है। यही सत्ता म आती है और यहाँ स जाती है। सत्ता माया के इस अस्थायी और अमग्नकारक स्वभाव स परिचित है इसलिए सत्ता ने माया को दूषण रूप म अङ्कित किया है।

सत्ता ब्रह्म कारण म ही काय की स्थिति मानते हैं। सत्ता का प म वर्णित समर्याई व अज्ञ से यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्म व सामर्थ्य को सत्ता ने माया कही नही कहा। इस अवस्था म माया जीव के लिए केवल एक भ्रम उत्पन्न करने का साधन ही ता है। जीव को ब्रह्मत्व स और अनेक

१३७ तन्मात्र उपलब्ध । अन्वय । २।२। ८ ।

१३८ तदिति पुनश्चो व सागुनकत्वमात्र । अन्वय भाष्य । २।२।२८ ।

अठारहवा प्रकरण

१ आत्मा अथवा जीव का स्वरूप

सत नाथ में ब्रह्म का स्वरूप अपन विवचन का
ए म अन हम सत नाथ में जीव अथवा आत्मा का
विषय बनायगे ।

जुमार आत्मा अथवा जीव का स्वरूप प्रकरण म
दशम का लक्ष्य आत्मा या ब्रह्म का एकमात्र सत्य
बताना है । किन्तु प्रत्येक ससार की उपलब्धि
है एव ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान जान का नहीं हाता ।
तानाथ गङ्गुर व अनुसार आत्मा अथवा जीव का
ग और अनआत्मा का प्रसंग उठाया है । आचाम गङ्गुर
मा के विवक का उल्लेख ब्रह्मसूत्र भाष्य की भूमिका
सम्बन्ध आत्मा अथवा जीव सदन म

।

मन

प



विवक छूडामणि म कहा गया
समस्त विकार हैं । सुखादि
त पयत विव म सभी
त माया के सम्पूर्ण काय
मस्वरूप व सम्बन्ध म
का आधार है एव
का साधो है और

सत्ता न माया की टगिनी घाति नामा से सम्बाधित किया है। यही भी शाङ्कर से सद्धातिक विरोध नहीं है। माया की परिभाषा में गीता भाष्य से उद्धरण देते हुए आचार्य शाङ्कर ने स्वयं माया का कपटरूप कहा है। यह माया ही द्वैत है। इससे उत्पन्न द्वैत से ही जीव और जगत ब्रह्म सत्ता से पथक प्रतीत होते हैं।

उपयुक्त विवेचन के आधार पर हम निरिक्त करत हैं कि सत्ता और शाङ्कर की अविद्या अथवा माया सम्बन्धी भावना में सद्धातिक भेद नहीं है। सत्ता के सम्बन्ध में यह अवश्य कहा जा सकता है कि इन्होंने शाङ्कर के अविद्या सिद्धांत का लोक-व्यवहार के अधिक निकट उतार लिया है। सत्ता के लिए अविद्या केवल शास्त्र चर्चा का विषय नहीं रह गई है। इन्होंने उस दैनिक जीवन में सर्वसाधारण के लिए अनुभवगम्य और सुलभ बना लिया है। सत्ता ने समाज के लिए आचार की प्रतिष्ठा की और आचार्य शाङ्कर के अविद्या सिद्धांत का व्यवहार योग्य रूप रेखा प्रदान की। अतः हम कहेंगे कि उपनिषद् गीता, ब्रह्मसूत्रा और आचार्य शाङ्कर के दान में अशुण्य रहता हुआ भद्रैत वेदांत का प्रभाव सत्ता के काय में भी चलता रहा।



अठारहवा प्रकरण

निर्गुण काव्य में आत्मा अथवा जीव का स्वरूप

पिछले प्रकरण में हमने सन्त काय में ब्रह्म का स्वरूप अपने विवेचन का विषय रखा है। इस प्रकरण में अब हम सन्त काय में मात्र श्रयवा आत्मा का स्वरूप अपने विवेचन का विषय बनायेंगे।

आचार्य गङ्कर व अनुसार आत्मा अथवा जीव का स्वरूप प्रकरण में हम कह चुके हैं कि ब्रह्म त दान का लक्ष्य आत्मा या ब्रह्म की एकमात्र सत्य और अनेकत्वता प्रतिपात्ति करना है। किन्तु प्रत्यक्षन सत्ता की उपलब्धि प्राणी का सहज ही हावी है एव ब्रह्म व स्वरूप का ज्ञान जीव का नहीं हाता। इसी आधार पर हमने आचार्य गङ्कर के अनुसार आत्मा अथवा जीव का स्वरूप प्रकरण में आत्मा और अनात्मा का प्रसंग उठाया है। आचार्य गङ्कर ने आत्मा और अनात्मा के विवेक का उल्लेख ब्रह्मसूत्र भाष्य की भूमिका चतुस्सूत्री में किया है। इस सम्बन्ध में हम आत्मा अथवा जीव सत्ता में विचार भी कर चुके हैं। अतः अतिरिक्त विवेक शूडामणि में कहा गया है कि देह इन्द्रियाँ प्राण मन और महकार ये समस्त विकार हैं। मुक्तादि सम्पूर्ण विषय आकाशादि पञ्चभूत और अव्यक्त पयत विव में सभी अनात्मा हैं। माया और महत्त्व स लेकर देह पयत माया व सम्पूर्ण काय मगनण्या व समान असन और अनात्म हैं। आत्मस्वरूप व सम्बन्ध में विवेक शूडामणि में कहा गया है कि आत्मा अह प्रत्यय का आधार है एव नित्य है। आत्मा जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाया का साथी है और

दृष्टिप्रमाणानाम्-इमान्य

सर्वे विकारा विषया सुगत्य ।

स्वानादि भूतान्यानि च विश्व

मन्वन्तपान्तिनामा ॥ १०४ ॥

माया मायाशय मय मन्वन्ति दृष्टपान्तिनाम ।

असुप्तिमनाः क्व च विद्वि तन्नातिनाः ॥ १०५ ॥ विवेक चू। न ३।

अ नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय एव आत्ममययोगा ये अतीत है^२ । आत्मा जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थायां म अहं भाव से स्थित रहता है । मैं जाता हूँ मैंने स्वप्न में हाथी दगा अथवा आज मैं अति सुग की निद्रा सोया इस प्रकार तीनों अवस्थाओं में आत्मा प्रत्यक्ष अवस्था का ज्ञान रखता है । आत्मा इन अवस्थाओं में अहंभाव में स्थित रहता है^३ । विवेक चूनामणि व अनुसार आत्मा समस्त जड एव चतन पदार्थों का द्रष्टा है किन्तु आत्मा का द्रष्टा कोई नहीं है । आत्मा बुद्धि मन चित्त और अहंकार इन चार अंतःकरणों का प्रकाशित करता है किन्तु ये आत्मा को प्रकाशित नहीं करते । ये अंतःकरण आत्मा को इसलिए प्रकाशित नहीं करते कि ये अनिद्यात्मक हैं किन्तु आत्मा चतन हैं । आत्मा अधिष्ठान है और अंतःकरण आत्मा में अधिष्ठित है । इन ये अंतःकरण आत्मा को प्रकाशित नहीं करते^४ । आत्मा के द्वारा समस्त विश्व प्राप्त है । आत्मा को अयं तत्त्व प्राप्त नहीं कर सकते । आत्मा व आभास से समस्त जगत भासित होता है^५ । आत्मा के सांनिध्य से दृष्ट इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि प्रेरित होकर अपने विषयों का व्यवहार करते हैं^६ । आत्मा मन अहंकार रूप विचार दृष्ट इन्द्रिय और प्राण की क्रियाओं का नाता है । जिस प्रकार तपाकर ताल किए हुए ताँह व पित्र की अग्नि ताँह व विकारा को प्राप्त नहीं होती उसी प्रकार आत्मा इन्द्रिय और शरीर आदि का

२ अग्निः कश्चित् स्वयं नियमप्रयत्नम्बन ।

अवस्थानयनाद्वा संपन्नशक्तिश्चण ॥ विवेक चूनामणि ॥ २७ ॥

पञ्चकोग विवेक का वर्णन मिद्धा-पत्र ५ आत्मा अथवा तीव्र प्रकरण में हो चुका है ।

तानां अवस्थाओं का वर्णन भागी प्रकरण में हुआ है ।

४ या विनाशति मयं तं प्रायस्स्वप्नसुषुप्तिषु ।

बुद्धित्वात्तम भावमन्वित्ययम् ॥ १२ ॥ विवेक चूनामणि ।

३ यं पश्यति स्वयं मयं यं न पश्यति कश्चन ।

परं न पश्यति पश्यति न तु यं चतपययन् ॥ ११ ॥ विवेक चूनामणि

५ येन विश्वमिन्द्रियैस्त यं तं प्रायस्स्वप्नसुषुप्तिषु ।

आभासुपात्तं मयं यं भावमन्वित्ययम् ॥ १३ ॥ विवेक चूनामणि ।

६ ययं मं तपि मात्रेण दर्शयन्नापि न ।

विषयसु खलायसु व तं प्रेरितं स्वयं ॥ १४ ॥ विवेक चूनामणि ।

अनुवतन करता है किन्तु इनके विकारा से विकृत नहीं होता^a। आत्मा जन्म मृत्यु वृद्धि क्षीणता आदि से विकृत नहीं होता। आत्मा नित्य है एवं गरीर के लान हो जान पर, घट के फूटने पर घटाकाग के समान लीन नहीं होता^b।

आत्मा अनादि है अतः उसका उत्पत्ति नहीं होती। तत्परायण पंचवाग्य विवक और अवस्था त्रय का वर्णन है। किन्तु 'एक सत्त्व' म यहा इनका उल्लेख करना आवश्यक नहीं है क्योंकि सत्त्व-रूप म इनका महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है। सत्त्व काय और आचाय गणर के सिद्धान्त म उनका स्वतंत्र स्थान भी नहीं है बरन उचिततया त नाप्या म भी इनका प्राप्तगिन वर्णन हा हुआ है।

'आत्मा अथवा जीव सत्त्वों म हमन वहा ह कि आत्मा का कतत्व भाकतत्व पारमायिक नहा है बरन् श्रीनागिन है। वस्तुतः जीव और ब्रह्म म अमेद है एवं उसके कतत्व भाकतत्व अविद्यात्मक एवं उपाधिभूत हैं। विवक ब्रूडामणि म कहा गया है कि आत्मा स्वयंप्रकाश एवं विज्ञान स्वल्प है। आत्मा हृदय के अन्दर प्राणा म स्फुरेल हा रहा ह। आत्मा कूस्य एवं निर्विकार है किन्तु उपाधि के कारण कत्ता और भावना है^c। आत्मा मिथ्या बुद्धि से परिच्छिन्न हाकर अज्ञान का अज्ञान न निन दखना है। जिस प्रकार लोह के पिण्ड म याप्त होकर अग्नि लोह के पिण्ड का आकार की हा जाती है उसी प्रकार उपाधिबग आत्मा निर्विकार हात हुए भा विकारी हाता हुआ सा प्रतीत हाता है^d। जिस प्रकार मिट्टा के घट का मिट्टा न प्रत्येक समभन

^a आत्मानन्द-निर्विकारिणा
दन्त्रियमाणात्त्रिवापान ।
अथा-निवृत्तानुत्तमात्ता

न चक्षुः ता विरति किये ॥ १२५ ॥

विवक चूडामणि ।

^b न तावते ता त्रिपद न वरत न ध्याय ता विनापि त्रिय ।
निरीरान्धे वस्तुस्तु फल न तावते क-इवान् गणर ॥ १२६ ॥

विवक चूडामणि ।

^c या-निज्ञानम- प्राणु दु-गणर १-१-१ ।
-दरथ मन्ना मा क-आभा ता श्व-दुग १-१-१ ॥ १२७ ॥

विवक चूडामणि ।

^d उपाधिनन्-प्रकाशपराता
धु-पाधि-गानुमाति ल- १ ।

अथाविशता-विद्यारत्नद्वि
ल-व-रूपो-पि पर स्वभाव ॥ १२८ ॥

की बुद्धि सहज ही उत्पन्न होती है उसी प्रकार भविष्यात्मा आत्मा का आत्मा स भय समझने की बुद्धि उत्पन्न हो जाती है^{११} ।

विद्वान् ब्रह्मसिद्धि म कहा गया है कि तत्सार स्त्री गत का बीज भाग है देहात्म बुद्धि अक्षुर है राग पत हैं कम जन है गारारतना है प्राण गाय्याए हैं इन्द्रियां उपात्ताए हैं एव विषय पुष्प है । अनेक प्रकार क बर्मा से उत्पन्न हुआ दुःख फल है । जीव स्त्री पत्नी इन कमरूपी फला का भावना है । यही अनात्म बधन कहा गया है । यह स्वाभाविक है । यह अनात्मि एव अनत है । यह जीव के ज म मरण याधि और ब्रह्मावस्था के दुःख का प्रवाह उत्पन्न करता है^{१२} ।

अब हम आगामी पृष्ठा पर सत का य म आत्मा अथवा जीव क स्वरूप का विचार इ ही सक्षिप्त विचारा के आधार पर करेंगे । इस सबध म सत काय म अध्ययन करने और देखने कि सत भी जीव और ब्रह्म की एकता को स्वीकार करत हैं । सत आत्मा की उपाधिरूपता को स्वीकार करने उपाधि का बधन का कारण मानत है । सत इस बात का भी विचार करत हैं कि जीव अपने बधन का कारण स्वय उत्पन्न करता है ।

सत का य मे हम मुख्यत नीचे दिये विवरण के अनुसार आत्मा अथवा जाव क सबध म सामग्री उपनय करेंगे । इस सम्बध म हम यथास्थान प्रमाण भी प्रस्तुत करेंगे —

१ आत्मा गरीर क धर्मों से रहित है ।

२ आत्मा और ब्रह्म म अभेद है ।

३ परमायत आत्मा अश्रिय और निर्विकारी है ।

११ स्वयं परिच्छिन्नमुपत्यनुद्ध स्तान्नाभ्यन्तरेण पर मया मन ।

मत्वात्मक मनपि वीक्षण स्वयं स्वतः प्रथम येन मनो धर्मानिव ॥१६२॥

विवेक चूडामणि ।

१२ बीजममभिभूतिजगत्प तु तगा दहा मरीरपुरो ।

राग पन्तवमनु कन तु श्चु २६ ना मय शानिका ।

अद्यागोत्थियमइतिरत्र विषया पुष्पाणि ७ ररणा ।

गाना कम ममुत्तमव बहुविध भाक्तान चात्र रगा ॥ १५७ ॥ विवेक चूडामणि ।

अज्ञान मूलोत्थमना मत्तथा

नर्मिकाऽनात्त्रिनन्त करित ।

जमान्यव्याधिजगत्पि ७

प्रवात्पान चावदुत्थ ॥ १५८ ॥ विवेक चूडामणि ।

- ४ सर्वज्ञ में आत्मा ही विभु है। आत्मा हा समस्त पदार्थों का अधिष्ठान है।
- ५ परमात्मन आत्मा क नवन और माण नहा हान। आत्मा नित्य मुक्त है।
- ६ स्वकर्मका जीव जन्म तथा दुःखा सुखी होता और मृत्यु का प्राप्त होता है।
- ७ व्यावहारिक जाव औपाधिक जगत् में धामक होकर अपन स्वरूप का भूत गया है। वस्तुतः यह उसका स्वरूप नहीं है।
- ८ उपाधि से मुक्त होकर साधक अध्यास का बाध करता है और स्वयं ब्रह्म-स्वरूप में एकाकार होता है।

गोरवनाथ आत्मा का अलट और अविश्रित तत्त्व मानते हैं। आत्मा का आकाश दिशा नहीं सकता अग्नि सुना नहीं सकती, वायु उठा नहा सकता जल डुबा नहा सकता और पृथ्वी का भार उसे भंग नहीं कर सकता। आत्मा निरवयव है अतः भौतिक तत्त्व उसका प्रभावित नहा करने। सत गोरवनाथ क द्वारा आत्मा का प्रस्तुत रूप गीता क मत से तुलनीय है। गीता में कहा गया है कि आत्मा का गत्य का नही सकत अग्नि जला नही सकती जल उभा नहा सकता और पवन सुना नहा सकता। जल वायु इत्यादि पचभूत आत्मा क आश्रित हैं आत्मा इनका आश्रित नहा है। आत्मा ही प्रपच का अधिष्ठान है^{१३}। इस प्रसंग की तुलना हम गीता क सिद्धान्त से कर सकते हैं। गीता में कहा गया है कि समस्त भूत अथवा प्राणा आत्मा में स्थित हैं आत्मा भूता अथवा प्राणियों में स्थित नहीं है।

आचार्य गड्ढर का आत्मा के निरवयवत्व क पक्ष में कथन है कि सावयव वस्तु को ही मिगा कर उसके अथा का पृथक्-पृथक् कर दन की सामर्थ्य जल में है। परन्तु निरवयव आत्मा में ऐसा सम्भावना नहा है^{१४}। निरवयव आत्मा क क्षेत्र में उद्यम अस्त रात दिन का काइ भाव नहा है। वह न भ्रूम है और न स्थूल। पदार्थों क अस्तित्व में आत्मा का भाव न हान पर भी पदार्थों की

१३ गान न गन्त न मन्यते पवने न पश्यते ।
महा भाग न भान्त उद्यम न दूतन कदापि को पश्यात् । गान्तवानी ।
ननु द्विजानि गन्तव्ये ननु ननु पश्येत् ।
न ननु कल्पयन्तयो न सन्ति गान्त । गान् । २। २३ ।

१४ अथा हि सावयववस्तु न सावयववस्तु अविश्रितव्यपापान् समान्थ तन्म
निरवयव आत्मानि समन्ततः । गान् कथ्ये । ३ ।

सत्ता उसमें भिन्न नहीं है^{१४}। गोरक्षनाथ व अनुभार आत्मा प्राकृत के समान है जिसमें वायु गतिशील रहता है परंतु आकाश उसमें लिप्त नहीं होता। इसी प्रकार शरीर इस आत्मा में ही अधिष्ठित^{१५} परंतु आत्मा शरीर के धर्मों से अद्वैत रहता है^{१६}। गोरक्षनाथ व अनुभार आत्मा की गुणगंध में ही समस्त जगत् में वसुक्त है। समस्त में वाग्नि त्रिपया का आधार यही आत्मा है। उसमें माधुय आग्नि स्वात् है अतः जगत् भूतान्तरक जगत् में भी माधुय आग्नि अनेक रूप उपलब्ध है। ब्रह्मसूत्र में आत्मा अथवा ब्रह्म का ही पृथ्वी और अंतरिक्ष का अधिष्ठान कहा गया है^{१७}। गोरक्षनाथ तथा अथ सत्ता न इसी अनुभूति व आधार पर आत्मा का ही जगत् और ब्रह्म मन्त्र धीवर और मत्स्य रूप में देखा है। आत्मा में भौतिक वपम्ब है परंतु पारमार्थिक नहीं। दो विरोधी भाव एक ही आत्मा व दो रूप हैं। गोरक्षनाथ के मतानुसार प्राण्य प्राण्य और प्राण्य भाव एक तप नाशक और ज्ञाता भाव एक आत्मा व स्वरूप हैं। आत्मा ही धीवर है आत्मा ही जगत् और आत्मा ही उस जगत् में फलने वाला मत्स्य है। स्वयं ही सिंह रूप में स्वयं को गो रूप में आहार

१५ उच्यते अस्तं रात्रिं न त्तिनः सर्वे मन्त्रान्तर भासन्तं भिन्नं ।
सां निरचनं जगत् न मूलं मन्त्रं प्राणी न सुपमं तं अनुभूतं ।

गोरक्षनाथी ।

मया तन्मिदं सर्वं पश्यन्नुत्तमूर्तिना ।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न जगत् नैव रक्षन् । गीता । १।४ ।

न तं पश्यन्ति भूतानि परमं भेद्योगै ररन् ।

भूतभोजनं न भूतश्या ममा मा भूतभाजनं । गीता । १।५ ।

यथाकाशात्पद्मता नियं वायुं सर्वान्ता ग्द्वान् ।

तथा सवाग्नि भूः शि म धानं युष्मदारथ ॥ गीता । १।६ ।

१६ धृति धृति गोरक्ष वा । केशरी । वा निपरी या इत्युत्तरात् ।

धृति धृति गोरक्ष व केशरी । वा निपरी या इत्युत्तरात् ।

गोरक्षनाथी ।

धृति गोरक्ष धृति गोरक्ष । वा धृति वा । केशरी ।

६८ धृति गोरक्ष धृति गोरक्ष मान । शायं परच सुत्तुति गीता ।

गोरक्षनाथी ।

१७ शरीर का तप जगत् रक्षमिभावत । गीता । १।३।१ ।

हृत्तु चार्थिना विद्धि म जगत्पु नारथ । गीता । १।३।२ ।

१७ वाम मन्त्री मन्त्र वाग्म्या वत्त मन्त्रा माता ।

मान वत्त । मन्त्रु मान रूप वाग्म्या गीता । गोरक्षनाथी ।

वृत्तान्त जगत् रक्षमिभावत । गोरक्ष । १।३।३ ।

करने वाला यही आत्मा है^{१८} । आत्मज्ञान हो जान पर हम गौर तुम भक्त नहीं रहते । समस्त भक्त अत आत्मा के स्वरूप में शक्तभूत होते हैं एवं भौतिक विषयता सम व का प्राप्ति होती है^{१९} । गीता के अनुसार अद्वैतात्म बोध से सर्वात्मभाव निष्पन्न होता है ।^{२०} । गोरखनाथ ने 'यावहारिक जीवव्यवसाय नगण्य कथन किया है । सर्वात्म भाव ही अद्वैतात्मक भाव है । अद्वैतात्म भाव ही अद्वैत ब्रह्मानुभूति का प्रकाश है ।

सत कबीरदास आत्मा में ही विषयी और विषय भाषा की अद्वैतरूपता मानते हैं । इस आत्मा में अनात्म अध्वस्त है अत आत्मा का आत्मा स ही जान होता है । परंतु अनात्म जगत स्वाप्न द्रष्टा के समान व्यावहारिक सत्य है । इस प्रकार आत्मा ही आत्मा का व घन कारण है और आत्मा ही उसके मोक्ष का स्वरूप है । अत जाता और नय विषय और विषयी में अभेद सत कबीरदास ने स्वीकार किया है^{२१} । जीव औपाधिक सत्ता में प्रवृत्त करने

१८ कामा भूमि अरुं रा, विषय न ताय को ।

आत्मा अथ भूमि रथा मा राम मा ।

आपण हा कद मद्र कर श्यण्य हा ताल ।

आपण हा धीवर आपण हा जाल । १ ।

आपण ही रथ वार आपण हा गा ।

आपण ही माराला आपण हा पा । २ ।

आपण हा टांगी पत्तिका आपण हा वध

आपण ही मृत्तक आपण ही कथ । ३ ।

न्दावे का तोरथ न पृथिव को देव

भगव गोरखनाथ प्रथम अभेद । ४ । गोरखानो ।

१९ निरतन निरतना अष्ट तुम्हे नाग । गोरखानी । पृ १३१ ।

सुमन्त्रम प्रत्ययो ररदा तम प्रकाशवद्विद्वन्वभाषया "नरेनरसावानु पपत्ते । मद्राम्बु माप्य । ११११ ।

२० यस्तु सवाग्नि भूतान्या मथवानुपस्यति ।

सकभूतेषु आमानन्ता न विनगुस्तत । इगावा शोपनिदत् । ६ ।

२१ आप आप ध जानिये है पर नाही मा ।

कबीर गुणिते कर धा जू ताल हाय न होइ । कबीर प्र पावनी । रमैरी ।

समभि विरारि जाव त्व मया यतु समार गुान करि ल ।

भ कुषि कदू धान निहारि, आप आप हा किया विरारि ।

आपण में न रह्यो ममा नै दुः कथा नहि था ।

कबीर प्र पावनी ।

का अभ्यस्त हो गया है। अतः आत्मा अनात्म व्यवहारों में पड़ कर गुणी और दुःखी होता है।

आत्मा की औपाधिकता के सम्बन्ध में हम प्रस्तुत प्रकरण के प्रारम्भ में विवेक धूडामणि से उद्धरण दे चुके हैं और कह चुके हैं कि औपाधिकता ही मुख दुःख का कारण है। वस्तुतः आत्मा तो विगुण एवं निर्विकार सत्य है।

सत कबीरदास के अनुसार कथन आत्मा ही सत स्वल्प अथवा अतित्त वाला है। आत्मा के अतिरिक्त अन्य तत्त्व नहीं है। ससार एवं जीवत्व पर विचार करने पर ये स्वप्न के रूपमात्र रह जाते हैं। आत्मज्ञान होने पर ममत्त भेद व्यवहार नष्ट होते हैं एवं केवल आत्मा अवशिष्ट रह जाता है। जिसको आत्मज्ञान हो जाता है उसका त्रिंशदिक और दूर भेद नष्ट हो जाना है, क्योंकि आत्मा स्वयं सिद्ध है और उसकी अनुभूति हो जाने पर उसका ज्ञान का अन्य साधन की अपेक्षा नहीं रहती। सत कबीरदास की इस विचार पद्धति की तुलना हम ईशावास्य उपनिषद् से कर सकते हैं। ईशावास्य उपनिषद् के अनुसार आत्मा को दूरी और निकटता प्राप्ति व्यवहारों से अतीत कहा गया है^{१२}।

सत कबीरदास के अनुसार आत्मा जीव रूप में उपाधिकरण अविद्यात्मक प्रपञ्च में उलभ होता है और आत्मा की वास्तविकता पराप्त हो जाती है। सत कबीर का कथन है कि आत्मा एक है। यही आत्मा मात्र है। यही आत्मा मात्र का ज्ञाता है। यही आत्मा पूजन है और यही पूजक। यही अज्ञात आत्मा गायन वादन का रूप है एवं यही गायक एवं वादक का रूप है। आत्मा आत्मसाधन से आत्मा को ही प्राप्त करता है। शरीर इन्द्रिय एवं मन इत्यादि सभी मिथ्या है। केवल आत्मा ही सत्य है और आत्मा शरीर इत्यादि समस्त विकारों से रहित है।

परमात्म में उसको न निकट ही कहा जा सकता है और न दूर ही। परन्तु सबका प्रत्यगात्मा होने से आत्मा ही समस्त ज्ञान धाराओं का प्राप्य प्रापक और प्राप्ता है। वस्तुतः यही पारमार्थिक आत्मा ब्रह्मरूप में सर्वसापक है। जिस प्रकार अनेक पात्रों में एक ही जल अथवा घट और भट के भेद से आकाश

१२ तन्नेति तन्नैति तद्दूर तन्निज ।

तन्निजस्य सवस्य तन्मवस्यास्य वा यत् । ईशावास्योपनिषद् १५।

भट्टे भूतं रक्ष या उरमाह मावा जन्म जग लरया न ज्ञात् ।

कथा न ज्ञात् नियमै अरु दूरा सक्क अनीन रक्ष या घट पूरी ।

जन्मि रक्ष या सक्क घट पूरी भाव जिना अभिन्नन्ति दूरी ।

कबीर प्र भावती । रमणी ।

म भ्रम होता है उसी प्रकार गुरु शिष्य भ्रम भी यावहारिक हैं। शरीर और आकार भेद-बुद्धि-अप्य हैं परन्तु आत्मा में ये भेद नहीं होते। अत आत्मा के अनिश्चित समस्त जगत या तो आत्मस्वरूप है, अथवा उससे पथक जगत की सत्ता नहीं है^{२३}। यही अद्वितीय आत्मा एक और जगत के उपादान और निमित्त कारणों में एक है और दूसरी ओर मन-वाणी का अविषय होकर ब्रह्म की पूर्णता में प्रतिष्ठित है। आत्मा अनादि और जन्म-मरण से रहित है। वह अज्ञान से अतीत और विजातीय पदार्थों एवं कार्यों द्वारा नहीं जाना जा सकता। प्रकृति अथवा माया के समस्त आत्मा विकारात् हाता है। परन्तु यह विकार यावहारिक कथन मात्र है।

मन कवारात्स के अनुसार आत्मा समस्त काय जगत में स्थित है एवं मपूर्ण काय जगत का अविच्छिन्न आत्मा ही है। आत्मा ही अनेक नाम रूपा में विभक्त हो गया है तो भी यह पथक आत्मा के पारमादिक ऐक्य को स्पष्ट नहीं करता। शरीर ही वास्तविक ब्रह्म एवं युवावस्थाया का आश्रय होता है, किन्तु आत्मा इन अवस्थाओं से प्रभावित नहीं होता। यद्यपि त्रिगुणात्मक प्रकृति आत्मा शरीर का आवरण ढाल देती है किन्तु प्राकृतिक गणा से मुक्त होकर जीव ब्रह्म-रूप ही रहता है। मुक्त होकर जीव ब्रह्म रूप होकर प्रपञ्च का द्रव्य होता है, किन्तु प्रपञ्च ब्रह्म का नहीं अथवा^{२४}।

- २० नाम विरक इक उता आपै गुरू आप ही चना।
 आप मत्र आप मनेग, आपे पून आप पुता।
 आपै गावे आप बचावे, आपता आप ही पाव।
 आपै धूप दीप आपता, आपता आप लगान जान।
 कहे कबीर विचारि करि मूला लो पी चाम।
 जो या रही रहिन है सा इ रमिता राम ॥ कबीर ग्रन्थावली। रमैगी।

- २४ न मयनि में औरनि में हूँ सप।
 मेरी विनयि विनयि विनयार हा वा कही कबीर को कही राम रा हो।
 या हम बार वृत्त गा। इन ना इन विनका हो।
 पट्ट न पाऊ अपन नही आऊ सुनि रहूँ हरिया हो।
 बोझ हमरे एक पदेवरा लाक वाग कृपा हो।
 जलह तनि बुनि पान न पावन पाँ सुना दम था हो।
 निगुण रहिन पल रनि हम राखन लप हारा नाऊ राग राइ हो।
 पग में दगा पग न दैग माँडि, हा कबीर वपु पा हो ॥

कबीर ग्रन्थावली।

है । इस प्रयोग की तबना हम छात्राग्यापनिषत् न कर सकते हैं । छात्राग्यापनिषत् म अत्राग वत् अन्त एव अन्तवाद्य स्या म सर्वव्यापी कहा गया है २१ ।

मात्मा म आत्मा का निविकारिता कहा गई है फिर भी वह अविद्याजय विकारों का अधिष्ठान है और जब व कम और मन्कार २ पा म प्रभावित नहीं होता । आत्मा तो स्वयं मुक्त स्वभाव है । अत वास्तविक वचन उसको नहीं हान । दूसरे अनेक सा और आकारा म यक्त नकर भा वह एकरूप रहता है । उमक परमाय स्वरूप म स्वयं और नरत् म तथा तारण-तरण म भी नहा है । इन प्रकार वहीर व वाच्य म भी सवात्मभाव वतमान है ।

सत वकारास के अनुसार जीव व ससार वचन म तारक न ता राम है और न तरत वाला जीव । परमायन राम का तारक और जीव का तरक भेद नहा है । बन्धुन बकुण्ठ और माय भी नहा है । आत्मा ता स्वयं मुक्त स्वरूप ही है किन्तु अविद्यावण आत्मा का ससारो हाना पता है । अविद्या म मुक्त होने पर जीव प्रज्ञास्वरूप हाना है अत बकुण्ठ की समस्या निरयक है । तत्र तत्र आत्मतान नहीं गता तारक और तरक भाव इत रूप म यतमान गने ३२० ।

आत्मतान हा जाने पर आत्मा और परमात्मा एकरूप होत हैं । यवहार में यह में यह तू यह तरा आत्मा यवहार हान है किन्तु बन्धुन वे भ

२१ कौन मरे कान जनने आ मग्य नरक जाने गति पा ।

इचत इच्छित थ उपपत्ता एक दिग्य जित्ता ।

विदुते त्वा विधि सत्त्व सत्त्वाना गव गदा नै ज्ञाना ॥

ता में कुम्भ कुम्भ न त ह कात्ति नान्तर पापी ।

पुत्र कुम्भ त तत्त्व सत्त्वाना यदु नन कथा गितानी ॥

आत्माना अन्त गाना नय तात्त्व मत् ।

कते कदा कर्म विद्य ताते इमी मत्र उपात् ॥ कीर इभावली ।

२० या वै म बहिःशुभ्राग्याद्या ॥ १० ७ ॥ छात्राग्य उपनिषत् ।

या वै मात्मानं पुण्य आशय ॥ १० १० ॥ छात्राग्य उपनिषत् ।

छात्राग्य उपनिषत् ॥ १० १० ॥ छात्राग्य उपनिषत् ।

२१ तस माह त्वि कथा वै वैही ।

ता वैकुण्ठ वहा मू केमा करे पात्र मदि वैहा ।

त मर त्रि ता तात हा ता मत्ति मुक्ति कथाया ॥

एव त्व रति रत् वा मत्रने मे म काले मरमात्र ।

तत्त्व विद्या वै त्वा कन्दित्वा त्वा त्वा न तात् ॥ कवी इभावली ।

व्यवहार असत्य है। आत्मभाव होने पर इन व्यवहारों का निरोध प्राप्त जाता है। गीता में आत्मा का प्रथम और अन्तमा बना गया है परन्तु मन्ता न उमका परिणाम कही नहीं माना है। यद्यपि यह भावात्मन म रत्ति है तो मभी एक मिट्टी के पिण्ड से अनेक पात्र क र्णाम म्त्री पुण्य रूप म एक वर के अनेक फल के र्णाम म्त्री और हि दू मुसलमान जैसे विषम जाति भन्ना के रूपाम म्भी तथा इन सबके मूल म यही आत्मा व्यक्त हुआ है। विश्व रूप जीव र्णाम् और ब्रह्म र्णाम यही अद्वितीय आत्मा देगा मुना और अनुभव किया जाता है^{२६}। गान्धर्व और अनुभव द्वारा इसी सत्य की याख्या की जाती है। आत्मा ही समस्त पदार्थों का ज्ञाता और अनुभवकर्ता है। मैं हूँ ऐसा ज्ञान सभी को होता है। मैं नहीं हूँ ऐसा ज्ञान किसी को नहीं होता। अतः सगस्त जगत् आत्मा क अस्तित्व म प्रमाण है। पुण्य निरवास के समान आत्मा के स्वरूप से सष्टि रचना ब्रह्मगूत्रो मे कही गयी है। इस आत्मा के अतिरिक्त दूसरा सत्य नहीं है। ज्ञान नव और नाता मे एकत्व का प्रतिपादन हम गोरगनाथ और सत बबीर के द्वारा प्रतिपादित जीव की पारमाधिकता के साथ कर चुके है। बह्मरूप्यकोपनिषद् म इसीलिए मैं ब्रह्म हूँ और मैं यत्न हूँ कहा गया है^{२७}। सत बबीरदास के वाक्य म ये प्रसंग उपनिषद् सम्मत हैं और गान्धर्व के मत स सबधा पोषित हैं।

६ एक राम देखा सबदिन मैं कहे बबीर मन माना। बबीर अथावली।

अब का डरा डर डरडि समाना

नव धै मोर तोर पढ़ियाना।

नव लग मोर तोर करि लोहा म म चनमि चनमि दुख दी दा।

कहि कवार मं मेरी रोल् तवदि राम ऊपर नहि कोन् ॥ बबीर अथावली।

कह या चाहू कहु कया ना ना जल नीव है जल ननी विगरा।

सकल आत्मा कथन ने धन बल का सन गीति भस

रीनिधन रीनिधन ता चीडिने से निनि रोडियन धू का करन।

आधा पर सब एक समान तन दम पाया पन् निरवाण।

बबीर अथावली।

३ अह भद्र अह यम। बह्मरूप्यक उपनिषद्। ५।१७।

अन् भद्रारिम। बह्मरूप्यक उपनिषद्। १।४।१।

रीवावेन वाव किलन् श्रियते न रीशो श्रियते। छात्वाग्य उपनिषद्। ६।१।१३।

आऊ गा न जाऊ गा गरू गा न जिऊ गा।

आप कनेरा आरै धारी आरै पुरपा आरै नारी

आप मन्गल आरै नावू आरै मुननमान आरै दिनु ॥ बबीर अथावली।

सन्त कबीरदास क अनुसार आत्मा न जम लता ह और न मरता हा है । अनेक नामरूपात्मक काय जगत म आत्मा का स्वरूप ही विकसित हुआ है । आत्मा सब काय जगत रूप है और कायरूप जगत का आत्मा हा अधिष्ठान है । आत्मा अद्वितीय मत्व है । उसके अनिरिक्त और दूसरा तत्व नही है । तीन लोक का रचना आत्मा की अघसता म माया क द्वारा हुई है । आवागमन आत्मा की लीला मात्र है । परमायत आवागमन भी नही हात । आत्मा हा जाव रूप म व्यवहार करता है और आत्मा ही ब्रह्मस्वरूप म प्रतिष्ठित हा जाता है । आत्मा की स्वरूपता की तुलना हम स्वनामवतर उपनिषद के अणु स कर मकत है । इसम कहा गया है कि ब्रह्मस्वरूप आत्मा ही स्त्री पुरुष कुमार या कुमारी है । ब्रह्मस्वरूप आत्मा ही बद्ध हाकर दण्ड के महारे चलता है । यह आत्मा हा प्रपञ्च रूप म एक स अनेक रूप हाता है^{३१} । आत्मा की विश्वरूपता ब्रह्मरूपता एव सवदाता के सम्बन्ध म कहा गया है कि यह समस्त ससार ब्रह्म ही है । छान्दोग्योपनिषद् म कहा गया है कि यह सब आत्मा ही है । बह्दारण्यक उपनिषद् म कहा गया है कि आत्मा अजर अमर धीर अमृत है । बह्दारण्यकोपनिषद् म ही कहा गया है कि आत्मा ही समस्त कार्यों का अतयामी द्रष्टा है । वही पर और भी कहा गया है कि समस्त भेद नष्ट हाकर आत्मस्वरूप ही हा जाता है^{३२} । सन्त कबीरदास क आत्मा सम्बन्धी विचारा म हम इन सभी कथनों की पुष्टि हात दखत हैं ।

वद कबार माहि मज्ज हय मानी, हम थ और तूमरा माना ।

वदै कबार हम नाहा के मानी ना इन नीबल न भुवन मानी ॥

कबीर ग्रन्थावली ।

तीन लोक म हमारा यारा आवागमन सब खेच हमारा ।

गण्डर्वमन कनियत हम मेरा, हमनी अतीत रूप नया रया ।

हमही आन कबीर कडावा हमही अपना आप लगवावा ।

कबार म थावनी ।

३१ स्त्री स्व पुमानमि स्व कुमार लन वा कुमारी ।

स्व नीयों त्पहन वरमि स्व जानो भवमि विश्वनोमुय । स्वैनागवा उपनिषद् । ६।१० ।

३२ अग्निवेत्स । मुण्डक उपनिषद् । २।२।११ ।

आ मवेत् सवम । छान्दोग्य उपनिषद् । ७।२५।१० ।

अचरात्परात्पनोऽनप । बह्दारण्यक उपनिषद् । ४।४।१०५ ।

य आमा सश्रीन्तर । बह्दारण्यक उपनिषद् । ३।४।११ ।

यप अय्य सवमा मेवाभूत् । बह्दारण्यक उपनिषद् । १०।४।१४ ।

सन्त रक्षास ने जीव का नयी और अज्ञान मनुष्य मन्त्रुलिन किया है। इस प्रकार का सा विधान मण्डल उपनिषद् व अनुसूक्त है। जिस प्रकार नयी समुद्र म मिनकर मनुष्य ही हो जाती है वही ही जीव ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके ब्रह्मज्ञान हाता है। यह अधिष्ठाता ही प्राणी ही मन वाणी द्वारा व्यवहार का यत्न करता है। व्यवहार मन्त्रुली आराधना हाती है परन्तु परमाथ म वह इच्छिया का अविषय है^{३३}। उपाधि के लक्षण होने पर विषय विषयी म लीन न जात हैं। सन्त रक्षास का कथन है कि उम समय गान्धर्वहार अर्थात् विषय स्वरूप औपाधिक आत्मा अने गुण स्वरूप म प्रतिष्ठित हा जाता है। छात्राग्य उपनिषद् का आचार्य गान्धर्व के अन्त सम्प्रदाय म स्वीकृत महा वाक्य तत्त्वमसि इस प्रसंग का पावन है। उपनिषद् व समान सन्त रक्षास क वाच्य म भी हरि का सा ही कथा है। जीव कम करता है परन्तु उसके फल का अधिकारी वह तब तक नहीं हाता जब तक सा ही आत्मा के फल का नियन्त्रण नहीं करता। यदि यह साक्षी आत्मा न हाता ता कोई जीव कम करता और फल कोई दूसरा ही पाता। कुछ कम करता और उमका फल कुछ और ही हाता। अन्त ब्रह्मसूत्रा म ब्रह्म का हा फल देने वाला कहा गया है^{३४}। अन्त आत्मा के ज्ञान का भी माक्षी यही है। यन् साक्षी 'वावहारिक' कर्मों का रक्षा है। परमाथ म त्रिधा नहीं है अन्त परमाथ म यही आत्मा ब्रह्मरूप है। सब ब्रह्म है छात्राग्य के इस वाच्य के आधार पर समस्त पदार्थ आत्म रूप है। वहाँ आत्मरूपता म मेर तरे जने भेदों की विषमता नहीं है^{३५}। सन्त

३३ गान्धर्व मा अथ का कहि गान्धर्व ।

गान्धर्वहार को निकट बनाऊ ।

जब मन मिया आम तन्त्रिता की तब को गान्धर्वद्वारा ।

जब लग्न नया न समुद्र सनाथ तब लग्न वन् हवारा ॥

जन्त मन्त्रियो राम सागर म तब यन् मिया पुकारा ॥ रक्षास की बानी ।

३४ पत्नमन उपपन्ने । ब्रह्मसूत्र । ३।२।३ ।

मव मं हरि इ हरि मं मव इ हरि अपनो जित्वा जाल ।

मास्ती नदो और को दूमर गान्धर्वद्वारा समाना । २ ।

मन धिर हार तो कार न मुझे ज्ञान ज्ञानद्वारा ॥ रक्षास की बानी ।

३५ मव धर अन्तर रमन्ति निरन्तर म दग्धन नहि जान्ता ।

गुन सब तार मार मव प्राणुन ज्ञान उपहार न माना ।

म तै मारि गारि अमनन्ति स्त्री कम कृति निरन्तरा । रक्षास की बानी ।

गतिभन्ता प्रभु साक्षी निवान शरण सुन्त ।

प्रभव प्रलय र ता निधान बीजान्धर्वयन् । गीता । ६।१८ ।

गया है। उपाधिवग जीव न तमस्त पदार्थों में तमय बुद्धिमाँ उत्पन्न कर ला हैं। प्रत्येक जीव के कम पथक-पथक हैं, अतः तब हा आत्मा परमात्मागार फन भागने के लिए अनेक शरीरों को धारण करता है। परन्तु किसी को दु गी और किसी को सुखी नहीं बनाता बरन जाव स्वयम वग गुण और तुरत वा अनुभव करता है। जग अनेक पात्रों में तग पुण का पानी रग निया जाए ता पात्र के आकार में जन का आकार तपु दीघ गान और चौडोर हा सवता है परतु इससे जन की एकपता में कोई अंतर नहा आता। ठाक इसी आधार पर जीव में सत्कारा की विषमता है परतु यह विषमता पत्रहार जय और कात्पत है। आत्मा व स्वरूप में देह वण और जाति का अयास है। ऐसा होने पर भी वस्तु की वास्तविकता में अंतर नहा आता। शरीर कम करता है अतः वही उसका दु स्ता और सुखा का अनुभव करता ह। आत्मा कम नहीं करता, प्रवृत्ति करती है। अतः प्रवृत्ति ही उसकी भागती है। सत दादुन्यायन ने इस सिद्धांत के अनुसार ही जीव और ब्रह्म का व्यावहारिक अंतर स्वीकार किया है जो वस्तुतः आचार्य शाङ्कर का भी अभीष्ट है। मनुष्य समभता है कि शरीर ही उसका रूप है परतु एक शरीर में तो अनेक अङ्ग होते हैं फिर भी प्रत्येक अङ्ग आत्मा नहा होता। इसी प्रकार शरीर अनेक अंगों का समूह है जो वस्तुतः आत्मा नहा होता। आत्मा देहातीत स प है। यही देहातीत सत्य ब्रह्म का स्वरूप है* ।

तान् म ही भरी तानि म म ही भरा अग ।

म ही भरा जीव म आप कह परमग ॥ तान्दुन्यायन का बानी । १३ ।

मवन पाणिपात्त म तोद्विशिरो मुराम ।

मवन त्र विमन्त्या मवमागय तिष्ठति ॥ श्वेतारवतर उपनिषत् ॥ २।१६ ।

अपाणिपात्तो जवनो धनीता परवत्यमद स टयायकण ।

म वनि वेच त त तग्यास्ति वेत्ता तानादुरमयपुरूप मन्त तन ।

श्वेतारवतर उपनिषद् ३।१६ ।

४४ तान्दुन्यायन की वीर ह रग अग समान ।

तान् तानां दपिय ताना नाहा ज्ञान ॥ २

कमी न कम तान है व । रचित मा अग ।

तान् तान् आत्मा तान भागा मन ॥ तान्दुन्यायन का बानी । २५ ।

वाया उदय उपर्य काया हानी मानि ।

तान् पाका मिलि र तव मद्रा द् नादि । तान्दुन्यायन की बानी । २ ।

अपता अपता करि तिया मवन माहे वानि ।

तान् एके वृष ताना ना वा श्वेतारवती ॥ १२८ ।

सत मनुकदास की बानी म आत्मस्वरूप के निरूपण का कोई विशेष विवरण नहीं मिलता । उनके अनुसार अद्रत आत्मा ही समस्त जागतिक पदार्थों म प्रकृत हो गया है । सत मनुकदास की यह अनुभूति सवात्म भाव के अनुबल है । जिस प्रकार एक ही जल अनेक पात्रा क आकार म भिन्न भिन्न रूपाकार वाला प्रतीत होता है अथवा एक ही सुवण स अनेक आभूषण बन जाते हैं उसी प्रकार सत मनुकदास ने आत्मा के अन्तगत अनन्त पदार्थ मयी सृष्टि का दान किया है । सत मनुकदास की वाणी म काय क रण का अन्वय भी स्पष्टत निरूपित है । आत्मा की माया का प्रसार तीना लोक म हुआ है । माया इस आत्मा क ही आश्रित है । अथवा वही उसका स्थान नहीं है । क्योंकि इसको ही जगत का अधिष्ठान कहा गया है । अनेक नामों वाला पवन रात त्रिन वक्ष और कीट-पतंग आदि आत्मा के ही रूप हैं । गंगा दुर्गा आदि देवियां तीय व्रत वराह्य पांडित्य कृपणता त्याग आदि सभी भाव आत्मा के ही रूप हैं । देव दैत्य और दस्यु तरु उमी के आकार हैं । हाथी महावत, घोडा अश्वारोही सबक स्वामी आदि नियत नियतक विषमताए आत्मा म ही सम होती हैं । मूय, चंद्र कृष्ण दारय और राम सब उसी की विभूतियां हैं । रावण कस पुरर नारी, आत्म भाव की अद्वितीय सत्ता म प्रतिष्ठित हैं । म विरोध वस्तुन आवश्यक हैं पारमार्थिक न् । ईशा

नाम पाना क बहु नाव धरि नाना विधि की जति ।

बोलेणहारा कौन है कहीथा कहां समानि ।

जब पूरण मद्य विचारिव नव सकल आ मा एक ।

काया क गुण दगिये तो नाना वरण अनेक ॥

नाम सब त्रिमा सा सारिषा मवे त्रिमा सुव वत ।

सवे त्रिसा अकण्डु मुचै, मवे त्रिमा कर नैन ॥

मवे त्रिमा पय सील है सबै त्रिसा मन चल ।

मवे त्रिमा सम्पुन रहे मवे त्रिसा अग पन ॥

बिन अकण्डु मव कुद मणै, बिन नैनदु मव न्यै ।

बिन रमना सुव सः कुद बानै, यहु नाम अविग्न पप ॥ नामपाल की बानी ।

४५ सबदिन के हम सबे हमारे, ती जनु मोति लगे पियार ।

तीनां लार हमारी माया, अत कन्दु स का नहि लाग ।

अक्षिप पवन हमारी ज्ञान, हमना त्रिन आ हमहा रात ।

हमना मरवा का रना, हमडां दुगा हमडां गत ।

हमना मुन्ना हमडां कावा, तारय बरन हमारा बावा ।

हमहा पण्डित हम बेगए, हमडां मूम हय र १५५५ ।

वास्योपनिषत् म उपनिषत् समस्त जह तत्तन भग्न का ईश्वर का रूप ब्रह्म गया है अतः मनुक्त्वांस की इस भावना म घण्ट त सिद्धांत का कोई विरोध नहीं है ५१ ।

स त सु दरदास क अनुसार जीव धरतुन श्रद्ध है, परन्तु वह स्वय ही मास लोभी मछली क समान अधवा ब्रह्म के समान सत्ता के अध्यास रूप मिथ्या भ्रम म अपने स्वरूप का भूत गया है ५२ । जिस प्रकार एक ही वन म

हमना देव आ हमदा गना भाये जाको समा माना ।
 हमना चोर हम महा बटमार, हम ऊ न त्ति करै पुकार ।
 हमहि मन्वावत हमनी हाथा हमना पा पुन क मारी ।
 हमहि अरु हमदा अमवार हमहि गान हमही मरणा ।
 हमदा सूरन हम चला हमदा भय टुण्ण क नना ।
 हमदा अमरथ हमदा गम हमर मोध हमारे काम ।
 हमनी रावन हमना कम हमदा मारा अण्ण वम ।
 हमहि तियावै हमदा मारै हमदा वारै हमना तारै ।
 नना तना सब तति हमारी हमना पुग्ग हमना ह नारा ।
 एमी विधि को नव लाँ सो अविगत म रहत करारै ।
 म बुम अर सुमिर नाव सब जग देखै एक भाव । मनुक्त्वांस का वाना ।

५६ "शावारयमि" सय यकिन्य जग या जगत् । "शावाभ्योपनिषत्" ।

५७ अजर अमर अविगत अविनाश अत

कहत सकल जन श्रुति अन्गाह ते ।

निगुन निमत अति शुद्ध अनबोध नित

। नाउ कहत और अधनि क थाँ ते ।

यायक अरुण एक रस परिपूरन ३

अर सकत रमि रह्यो अद्य ताँ ते ।

मत्त सता जगति याहा ते अर भा हात

आपुना का आपु भूति गया मु ली काह त ।

तस मान माम को जगलि जात लाभ लाँ

लोह को कक नहा जातत उमाँ ते ।

तम कति गागरि म मूटा वा ध राय सठ

छाँडे नहा दन सु तो रवाँ हा ध वाँ ते ।

जैम बक नार पर चुच मारि लरकन

मु अर कहत दुम दीसि याहा गए त ।

दू को मयग पा शिद्रिन क वनि परया

आपुना का भूति गया सुम गाँ ते । मु अर भावना । भाग २ ।

अनेक प्रकार और जाति क बदा होत हैं तो भी वन की एकात्मक स्थिति म भंग नहीं हाता, जल का कुएँ तालाव, बापी आदि स्थाना म देन कर स्थान-गत भंग हावे म जल म भंग नहीं होता। एसी प्रकार, अनेक रूपात्मक मण्डि म एक रूप जल की स्थिति है। फिर भी, धारमा का य आकार बाधित नहीं करत^{४८}। उपाधियुक्त बुद्धि इन विभिन्न स्थाना म नाम रूपा का आरोपित कर गती है। अत्र व्यवहार म इनका एसा ही उपयोग होता है। सन्त मुन्दर दास क काव्य में अनुभूति की सममता का अभाव होन क कारण इहें कवीर जस साठा का काटि में नहीं रख सकत। स न कवीरसास नानक और गद्दू दयान की वाखिया म तत्त्व क अनुसधान क निग भाव और बुद्धि दाता हा की सहामता भी गई है परन्तु सन्त मुन्दरसास की रचनाआ म प्राय गास्त्रीय बौद्धिकता प्रधान ह। इनक अद्वैत सिद्धान्त का गार्हूर भाष्या और उनके अथ प्रया म प्रतिपादिन सिद्धान्ता स उतना अधिक मल नरी साता जितना उत्तर कानीन अद्वैत बान्त क प्रया स मिलता है। फिर भा आत्मा जीव ब्रह्म प्रकृति आर माया क सिद्धान्तों म गार्हूर मत्र म मूलत भंग नहा है। मुन्दरसास का विषय प्रतिपादन सनी अथ साता स निनान्त भिन्न है। उनकी गली तक आर सद्बान्तिक गुणता स युक्त है। इनकी रचनाआ म गास्त्रायता अधिक किन्तु काय क मरसता का अभाव है।

सन्त धरनासास की बानी म एस प्रसन्न म बाई उल्लसनीय विवरण नहा मिलता। मारवाड वाल दरिया साहब क मत म भी जन्म-बाधन म पक्षने क कारण पंच भूनात्मक गारार म जीव उत्पन्न हाता है। परन्तु मुक्त गाने पर जीव पुन ब्रह्मत्व म अवस्थित होता है^{४९}। जाव की जाति ब्रह्म है

- ४८ जी वन एक अनेक मय द्रु म नान अन्तनि जगिदु म्बरा।
 बाध लया माय नान सुव इ लय एक मी दया निडा।
 धारक एक प्रकार बहू विधे तार विराक म्मयन हु बारा।
 मुन्दर सन्न विद्याम अवलिग मलिग म्म का बुद्धि सु गारा।
 माइ माइ कइ नौ लग तव लग दूना कइविय।
 मुन्दर एक न दाइ तनी कहु ज्यो का लोइ इ रहिय।

मुन्दर अभावना। भाग = 1

- ४९ जीव जाल न बाहुडा धर पच तत का मत।
 दरिया निव धर साइया, धारा म्मन काल।
 बाजे इमारा म्मन है, मान निग इ राम।
 गिरद इमारा मुन्न है अनन्त कर विगम।

दरिया माय माया। गान का बाना।

किंतु जन्म और मरण की व्यवस्था में पढ़ने के कारण ईश्वर उमरा नियता है। निरुपाधिक ब्रह्म उसका अंतिम लक्ष्य और स्वरूप है।

बिहार बाल सत दरिया साहब के मतानुसार भा जीव और ब्रह्म में भिन्नता नहीं है। एक ही आत्मा अनेक रूपों में प्रकट हो गया है। साधन की अनुभूति के साथ आत्मा की अनुभूति होती है। उसकी स्वरूपता का लक्षण इनके काव्य में उल्लेख करते हैं। एक जन बिंदु में समाए हुए सिंधु के दृष्टान्त से जीव की ब्रह्मरूपता साक्षात् माननी है। यह उसकी अंतर्भावना का निश्चय कराता है। अनेक प्राकृतिक उपादानों में आत्मरूपता का कथन अद्वैत ब्रह्मात्मानुभूति का परिचायक है। बिहार बाल सत दरिया साहब और मारवाड वाले सत दरिया साहब की वाणिया में अद्वैत सिद्धांत का पूणत पुष्ट प्रमाण उपलब्ध है। अंतर्ज्ञान की उत्कृष्टता इन साक्षात् साधना रूप में स्वीकार की है। अंतर्ज्ञान द्वारा प्रतिपादित अद्वैत सिद्धांत सत्य सत्तों की वाणियों में कोई विरोध नहीं है। जीव और ब्रह्म की एकता जीव में अधीपतता और आत्मा की भौतिक त्रियात्मकता का कथन सत गरीबदास सत यारी साहब, सत गुलान साहब सत चरनदास सत भीखा साहब

५. आपना ध्यान तुम आप करना नहा
 आपने आप में आप देगा।
 आपका गगन में मान आपका
 आपकी निरकुटा भवर पर्या।
 आपका लंब नि लंब है आपका
 आपका मुन र म र दया।
 आपका घना घनमेर है आपका
 आपका बुद्ध वि धु लया।
 आपका दया उमकि रह आपका
 आपका मोिया माप पर्या।
 आपका उर है मर है आपका
 आपका तारगन अनन लग्या।
 आपका मना मनियार है आपका
 आपका दूध मिर आप पर्या।
 कइ दरिया जिव मर आप निगा
 परम र प्रेम मन शान रगा। तारया साहब बिहार बाल का बाना।

और सत पलटू सात्व की बानिया म भी उल्लेख है^{५१} । सत गरीबदास याग साधनापधान सन्त हैं । अत विष्णु ब्रह्मण्ड का सिद्धांत इनकी बानी म प्रमुख है । बह्मरथक उपनिषत् म कहा गया है कि जहाँ जिसके लिये सब आत्मा हा हा गया है वहाँ कौन किसका दखे और कौन किसको जाने । इस उद्धरण के समानांतर सत्ता की उक्त भावना मतुनित का जा सकती है^{५२} ।

सत यारी साहब का मत है कि जिस प्रकार एक स्वरूप से अनेक आभूषण बनते हैं किन्तु आभूषण रूप म सुगुणत्व विकृत नहा हाता । डपी प्रकार आत्मा के अनेक नाम हा हो जाने पर भी आत्मा का स्वरूप विकृत नहा होता^{५३} ।

सत चरनगस के काय म सिद्धांत और अनुभूति का समवय उपलब्ध हाता है । जीव और ब्रह्म की एकता की प्रतिष्ठा उनक काय म है । देहाध्यास और इन्द्रिया का उत्पात बाध करने का उपदेश उनकी बानी म प्राय मिलता है । उनके अनुसार द्वैतजय पदाय सत्ता भ्रममात्र है । साधक स्वयं च्छ्ट ही है । अत वह किसे सिर भुक्ताता है ? गीता के नवें अध्याय के अनुमार आत्मा का हा समस्त काय जगत का अधिष्ठान सन्त चरनगस न माना है । निगुण और मगुण ब्रह्म की एकरूपता यद्यपि भाचाय गड्डर के सिद्धांत का प्रमुख अङ्ग नही है तो भी उपनिषत् और गाना व भाषार पर उक्त मत की अनुकूलता सतो म चरिताय होती है । आत्मा की मवरूपता उसकी बुद्धिगम्यता

५१ जेव हा नडा ता मेव किसका करूँ,

किमे पूजू का नहि दूजा ।

गया नहा तो खान किसका करूँ,

विदुता ता किस दू लोका । पत्त ह । गरावज्यम का खाना ।

५२ अथ वा अथय मरमाभैवाभूस्तवन क विजानायात् ।

पश्चात् । बह्मरथक उपनिषत् ।

गहन व गने से कही मोने भा जानु ह

सोनो वाच गहनो आर गनो वाय मान हे ।

गान भा मोनो शहर भा सोन दामै,

माना तो भजन अन्त गनो की मान ह ।

गान को तो जानि लानै गहना दरगज कान,

साग एक माना ताम ऊच कवन नाच ह । १६ ।

याग साहब का रनावनी ।

५३ एकै रूप मकल मह अहह । वास पाथ म भगन रहह ।

मुन्ता मानव का शब्द मातर ।

श्रीर मानववरीयता का उन्वेग सत् चरणाग की माना म पुन पुन हुआ है। उनसे अनुवार ध्याता श्रीर ध्येय म अन्तर नहीं है। आषाप शाङ्कर क सिद्धांत के समानांतर प्रत्यगात्मा से समस्त पदार्थों का ग्रहण श्रीर त्याग होना इनकी वाणी म स्पष्ट है। अहं व सम्बन्ध स ही जगत् की स्थिति ग्रहण श्रीर त्याग होता है। जैसे मैं अमुक वस्तु बना हूँ इसम वस्तु का अस्तित्व मैं के सम्बन्ध से है। परन्तु सम्बन्ध श्रीर सम्बन्धी दोनों भिन्न भी नहीं हैं। इस कोटि की प्रकृत भावना सत् कबीर सत् दादू सत् नानक सत् गुप्तर श्रीर सत् चरननास की वानिया म उपलब्ध है^{५४}।

सत् भीसा साहब के मिथ्यातानुसार जीव श्रीर ब्रह्म मे भ्रम नहीं है^{५५}।

५४ देह मरे तू अमर है, पारब्रह्म है साथ ।
अज्ञानी भक्तन फिरै लख भो ज्ञानी होय ॥
दह नहीं तू मक्ष है, अविनाशा त्रिगुण ।
नित न्यारे तू दत्त सां देह कम सत जान ॥ भक्तिसागर । मद्राज्ञान सागर ।
इत्या दुकर दूर आप तू मक्ष है जाये ।
औरे दुनिया कौन तागु को सीम नगरे । भक्ति सागर ।
है कोई जाने भेन हमारा ।
सब सब में सब के माहीं मैं मयापक म यारा ।
हम अज्ञेन, हम योगत तिसुनि हम सूक्ष्म हम भारा ।
हमही निगुण हमहीं सगुण हमहा दस अवतारा ।
हमही एक बहुत हो खलै हमहीं सबल पनारा ।
हमहीं ज्ञान ध्यान पुनि हमहीं हमहीं धारण दारा ।
हमहा आत्ति अन्न पुनि हमहीं रूप अपारा ।
महाराज हम बारबार है हमहीं हैं उतियारा ।
हमही गुरु शुक्रैव विराज हमति तरै हम तारा ।
चरणनाम ध हमहा बोलै समभै समभै दारा भक्तिसागर ।

५५ मन मयो ब्रह्म जीव नहिं दोमर
अविगत अवध कहानिया । भीसा साहब की वानी ।
एके सोन बहुत बिनि गढ़ना ममुभै दैस नसाव ।
ताकी सरन साचि है जानदि अन्तर अमर जन सोई ।
उत्त वित्त वरतन माी को, अन्तन मरे न कोई । भीसा साहब की वानी ।
या एक पूरन अगम अगोत्र तिन साहब विहार ।
भोसा बोचन एक समान में है जग सकल हमार । भीसा साहब की वानी ।
आनमाराम मरि बूर परगट रखो,
सुनि गण अंधि तिन नाम वाची ।

जिस प्रकार मिट्टी व पान और मिट्टी दो नहीं हैं अथवा आभूषण और सोना धर्म तत्त्व नहीं है अथवा समुद्र और उसकी एक वृद्ध म तात्त्विक भन्त नहीं है उसी प्रकार जाव और ब्रह्म परमात्मन बिन भिन नहीं हैं। पत्थर और पानी पाना का मन नहीं है। सकृत् कयाकि एक द्रव है और दूसरा अद्रव। परन्तु जल म नमक धुननगील है और उसका जन स समन्वय हो सकता है। इसी प्रकार जाव यदि लक्ष से विज्ञानाय भन्त वाता होता तो वह मान्य व भनतर प्रक्षय क माय एकरम नहीं हो सकता था, परन्तु वृद्ध और जन म अभन्त होने स सोना का एकत्वना म कोई अवधान नहीं आता। सत भीला साहचर न एषा तथ्य का वेदात-मम्मत निष्पण ब्रह्म और जीव का एकता क प्रसन्न म किया है^{१६}। अनक उपनिषदा म इमा काटि की अनकता का प्रतिपद्य और एक्य की प्रतिष्ठा का गइ है^{१७}।

मन्त पलट साहच की वाली म ब्रह्म और जाव की एकता का वणन अथन निष्ठापूर्वक किया गया है^{१८}। पल और बीज म जल और सहर म छाया और पुरुष म अर और स्थानी म सुवण और अनकार म मिट्टी और घडे में जिस प्रकार तात्त्विक अन्तर नहीं है उसी प्रकार जीव ही एकमात्र चरम माय है। उसस बडा और कुछ नहीं है। आत्मा के चन्त्य म सभी पन्थ अनुप्राणित होकर क्रिया करत हैं। जड सत्ता की स्थिति वस्तुन नहीं है कयाकि उसम स्वतन्त्र गति नहीं है। गरीर मयोग से युक्त होकर जीव व्यवहार म आत्मक होता है। परन्तु गरीर जन् धर्मी है और उसम अविच्छिन्न जीव

भासा भा पणि गयो जीव मोद मद्ग म,

मोव अर शक्ति का निदल सन्धी। मोसा म्पव की वाली।

मोसा गरीर आभार अद्वैत इ,

ममुन्त अर गुण काड आर नाग। भासा म्पव की वाली।

१६ जनों लनि मकन हो तुमहा। भोग यह बीव इन इनहा।

दुटे जत वैव मै भरा। लहा गदुन न कोर चेरा।

कवन मां आयु आये हो। दुख मो जय जार हो।

उमे हन् एव ही तुमहा। हमे तुम्हे भन्त कम कमा।

मोसा नरो सरम व ताड। नीन्हा निन आपना म्प।

नीसा सादव की वाली।

१७ नन्त नानात्ति निन्त। वर उपनयन्। २।१।११।

अथमाना मद्ग। बहदरएक उपनिषत्। २।१।१६।

न तु तद् द्विगमनि। बह्मराम्यक उपनिषत्। ४।३।२३।

एकवक्त्रिपन्। ध्यान्योग उपनिषत्। ६।२।१।

१८ मो मड म्पुनानोति य इड नानव परगति। कन् उपनिषत्। २।१।१०।

चतुर्थ धारमा का स्वरूप है^{५८} । ब्रह्ममूत्रा म जड धीर तत्त्व तत्त्वा की सीमासा की गई है । जीव धीराधिः सीमासा म मुक्त होकर उसी प्रकार ब्रह्मस्वरूप हो जाता है जम सागर म जल का एक बूद गिर कर एकाकार होता है^{५९} । इन्होंने धर्मशास्त्रों के कारण ब्रह्म म भिन्न जगत का स्वरूप माना है ।

५८ नीच नीच मोक्ष ब्रह्म एक है

अथि अथानी चमा ।

जिव म चार ब्रह्म तव होता,
जिव विनु ब्रह्म न होत ।

पल म वान नीच म पत इ,
अवरन दृजा को ।

नीर म लहर लहर में पानी
कमे कै अलगावै ।

छाया म पुष्प पुरुष म छाया
दुइ कहवा स पावै ।

अदर म मनी मनी में अदर
दुइ कहवा से कहिये ।

॥ गठना कनक कनक में गन्ना
ममनि चुपा कर रणिये ।

जिव म ब्रह्म ब्रह्म म जिव है
घान समाधि म मूमे ।

मणि म घना घना म माटी

पलट्टाम मों बुझै छ पलट्ट साइव की बानी । भाग ३ ।

सका नाथि करी काँ की डम म कोऊ बड़ पात्री हो ।

पलट्टाम कवन है दुना डमर्हा इ सब माहीं हो ।

अवना चवै और कजु भेरा आन के हाथ बिकानी ।

लोन की त्री परी जल भीरर गलि कै होइ मू पानी ।

पलट्ट हलर आयु हिरानी कडि विधि करै मग्धार । पलट्ट साइव की बानी ।

५९ नीच ब्रह्म अन्तर नहि कोय

एकै रूप सब घर घर होय ।

जग विवन मू न्यारा मान ।

परम अद्वैत रूप निवान छ पलट्ट साइव की बानी । भाग ३ ।

घट मठाथि म रम रखो रमना राम जु होय ।

ज्ञान अथि मू दखिय है अकामवन सोय । दयाश की बानी ।

नीच रूप न राग भयै या ब्रह्मरूप है पावे । सहजो बान की बानी ।

सत सत्जोवाई और सत दयावादी के कायम भी इसी प्रकार के अभिमत प्रकट करन वाला उदाहरण मिलत हैं। उनके अनुसार घट और मठ म स्थित आकाश मूलत अभिन्न है। भेद केवल बाहरी आकार का है। जिस प्रकार घट और मठ के आकार मे भेद लन पर इनम स्थित आकाश एव रूप ही है उसी प्रकार अविद्याजय श्रीग्राधिक भ्रम की निवृत्ति हो जाने पर जीव और ब्रह्म म कोई व्यवधान नहीं है।

जीवात्मा सिद्धांत के सदभ म सता का कृतिया म आचाय गङ्कर जसी सिद्धांतबद्धता नहीं मिलती। उपनिषद् की छाया म भी मतो द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत का मूल्यांकन करना चाहिए। इन प्रक्रिया म आचाय गङ्कर और सत एव ही ज्ञान स्रोत स प्ररणा पाते निखाई देते हैं। उपयुक्त विवचन के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि सत-नायक म अद्वैत सिद्धांत की ग्राशीयता कम किन्तु साधनाजय अनुभूति की प्रधानता है। आचाय गङ्कर और सतो के अनुसार जीवात्मा पारमार्थिक सत्य है और जीवन मरण से मुक्त है। वह मन वाणी का विषय नहीं है। उसम विकार और परिवर्तन प्रसक्त नहीं होते। य समस्त लक्षण बावहारिक जीव म घटित नहीं होते।

जीव स्वरूप निरूपण के प्रसङ्ग म कहा जा चुका है कि —

१ जीव अपने काम करने मे स्वतंत्र है किन्तु उसका फल भोगने के लिए भोगायतन शरीर की आवश्यकता है। समस्त सुखों और दुखों को भोगन अथवा सुख एव दुख का अनुभव करने के लिए इन्द्रिया मन और बुद्धि की आवश्यकता है। सुख की प्राप्ति म काम करने और उसके फल को भोगने के लिए प्राणी जन्म लेता है।

२ उपाधिवृत्त प्रभाव से जीव अपने स्वरूप को विवृत और विस्मृत कर लेता है।

३ जीव का अज्ञान स्वभाविक और अनादि है। शरीर इन्द्रिया म और आत्म बुद्धि का उत्पन्न होना और अनात्म पदार्थों अस्मत् युष्मत् भेद मभूत विषयनाए उदरान होना जीव को ब्रह्मत्व म अभिन्न करती हैं। इसम पारमार्थिक आत्मा व्यवहारी हो जाता है।

४ उपाधिवृत्त समस्त घटनाओं का कारण अविद्या है। जिस प्रकार आकाश म नीलमा का भाव न रहन पर भी अविद्यावान अथवा ज्ञान का दमने पर नीलमा प्रत्यक्ष होती है उसी प्रकार अविद्या म भ्रामकता रहने के

वारण ब्रह्मस्वरूप जीव अथवा स्वप्न का भाव भूत जाता है और अतिशयतम व्यवहार को ही सत्य मानता है।

इस प्रकार—

- (१) जीव अपने वचन को सत्य उलान करता है।
- (२) उसका अध्याधिक अथवा अस्वाभाविक अथवा व्यावहारिक है।
- (३) उस अज्ञान के बाध होने पर वह पुनः ब्रह्मस्वरूप में स्थित होता है।
- (४) इस अज्ञान के उद्धार होने के पूर्व तक जीव व्यावहारिक है। साधु और वच के व्यवहार जीव के लिए व्यवहार मान करणीय है।

व्यावहारिकता में अर्धस्व जीव गुण-गुण का भागी है। परन्तु इसमें मुक्त हान पर—

- (१) जीव ब्रह्म ही होता है।
- (२) आत्मा वस्तुतः व्यवहार दाय सत्संगित नही होता। कम और त्रिगुणात्मक प्रकृतियाँ व्यवहार में निवास करती हैं। तन्तु आत्मा परमात्म किसी प्रकार विकार मुक्त नही होता। शरीर और अद्रिया के स्वभाव और धम आत्मा को नही छूने।

(३) आत्मा ही शरीर और अद्रिया का अधिष्ठान है। गीता में उसको साक्षी उपदृष्टा अनुमता और भोक्ता कहा गया है। यद्यपि आत्मा में गुणा माया अथवा उपाधि का आरोप आकाश में तल मजिनता के समान अधिष्ठात्मक है तो भी समस्त पदार्थों का वह प्रत्यगात्मा होने के कारण जगत् कारण और वाय में अनुस्यूत है।

(४) इस प्रकार जीव की आसक्ति अह प्रत्यय के साथ पदार्थों में होती है। पदार्थों को अह बुद्धि से ही जीव ग्रहण करता है। उसका यह अह प्रत्यगात्मा अनेकात्मक विषय में विकीर्ण होता है परन्तु परमार्थो-मुख होने पर एवात्मक सत्य स्वरूप ब्रह्म का स्वरूप होता है। अद्वितीय होने के कारण द्विधात्मक भाव और जागतिक विकार उसको स्पष्ट नहीं कर सकते। तब वह अव्ययीय होता है और मन वाणी का विषय नहीं होता।

जीव के व्यावहारिक स्वरूप का उल्लेख सभी सत्ता ने नहीं किया है। मन का प्रेम भाव और साधना की प्रधानता है। वह परमात्म को ही विनोदित नश्य करते हैं। इतम गोरक्षनाथ विहार जाने सत् दरिया साहब और मारवाड जाने सत् दरिया साहब सत् धरनी-सत् सत् गरीब दाम, सत् यागी साहब सत् बुल्ला साहब, सत् गुनाल साहब और सत् पनडू

साहज मुर्य है। सत नवीरगास मत गहूपात्र, सत मुन्ददास सत मरुगास और सत जगजावन साहब क मिदान्तों म जीव की व्यावहारिकता के स्वरूप का विशय दिवरण मिलता है। सत नानक साहब, सत दयावाई मन सहजोवार् और सत रंदास की कृतिया म भी इसका यकचित रूप वतमान है।

सत्ता क मन म जीव की व्यावहारिकता का भाव इस प्रकार वतमान है

(१) नलिनी क मूरु क समान एव मकट क समान किसी भ्रमपुण म्यिति म मयवा बचन म जाव न स्वय का डाल लिया है।

(२) जीव को पूण जनावनी की आवश्यकता है क्याकि वह जगत व्यवहार भ्रम म पडा हुआ है।

(३) लोक अथवा समाज की कृतिया म अस्त मनुय जावन की वास्तविकता का अस्वीकार करव भात लिया म भटक रहा है। उपमुक्त और आत्मकयाणकारक लोक व्यवहार से ऊपर उठकर उसकी कृष्टि परमाय पर नहा जाता।

(४) आमक जगत और मिय्या व्यवहार म निष्ठा हाने क कारण मनुष्य अजल आध्यात्मिक लभ्य को मूल गया है। दलिक जगत को वह चिरन्तन मान वठा है। गरीर को हा वह अन्तिम मय समक रहा है। भौतिक द्रव्य और पश्यों के द्वारा कृतिया का पोपण कर रहा है।

जाव मध्यमी विचारा में सत्ता के काव्य म इस प्रकार की मौलिकता भी —

(१) सत्ता न लोक-व्यवहार म अत्रत जीव का जिनता अधिक स्वरूप मकिन किया है आचार्य गहूर ने उनता कहा नहीं किया। आचार्य गहूर क अर्थों म व्यावहारिक जीव क स्वरूप का वणन सिद्धान्त क प्रतिपादन क प्रमग म ही भाया है। सत लोफमुपारक हैं जब कि गहूर परमाय की रणा म लोक सत्ता को अस्वाकार करत हैं। सत्ता न गोर और जीव का मयाय व्यावहारिक चित्रण किया है।

(२) सत्ता न परमात्मा की मधुर भाव संवक-स्वामी भाव अथवा विना-भुव भाव म आराधना की है। उपासना क इस वेग के साथ ही जीव म यह प्रज्ञामि की अदृश ज्ञानमूर्तक अनुभूति भी मल कान्य म प्रतिबिम्बित हुई है। इस प्रकार मापक जीव और साध्य अज्ञ के बीच भक्ति क विम

उपयोगी क्षत्र इन साता ने प्रस्तुत किया है । ज्ञान और योग साधनाओं के साथ ही जीव की प्रथम साधना या महत्त्व भी इनोंने स्वीकार किया है ।

(३) साधना या भक्ति के बिना जीव की स्थिति निश्चय है ।

(४) जीव माया में घातित है और साधना से मुक्त होना है ।

(५) पिंड ब्रह्माण्ड सिद्धांत योगशास्त्र सम्मत मत है । आचार्य शाङ्कर ने इस प्रकार की योजना वस्तुतः व्यवहार में स्वीकार नहीं की परन्तु मता ने इसको विशेष निष्ठापूर्वक स्वीकृति दी है ।

इस प्रकार की भूमिका में हम कह चुके हैं कि जीव के बंधन का कारण अविद्यात्मक कम है । गीता में कम को त्रिगुण का काय कहा गया है । अतः श्वतर उपनिषद् में प्रकृति का माया कहा गया है^६ । अतः कम का माया काय होना सगत है । कम को अद्वैत सिद्धांत के अनुसार बंधन का कारण कहा गया है । कम अपने फल रूप में अस्थायी है । मनुष्य फल के लोभ से कम करता है । क्रिया या विकार प्रकृति का स्वभाव है । इससे सिद्ध है कि जीव कम विवर्ण होकर जन्म ग्रहण करता है^७ । सत कबीर ने भी इम तथ्य को स्वीकार किया है ।

जिस प्रकार आकाश पर दृष्टि डालने पर वह सर्व नीलिमायुक्त दिखाई देता है परन्तु वस्तुतः आकाश में नीलिमा वतमान नहीं है उसी प्रकार जीवत्व पर जब जब दृष्टि पड़ती है जीव विकारी प्रतीत होता है परन्तु स्वरूपतः जीव विकारी नहीं है । जिस प्रकार आकाश की ओर से दृष्टि फिराने पर नीलिमा का आभास नहीं होता जबकि आकाश सर्वत्र व्याप्त है । ठीक इसी दृष्टांत के समान जीव में ब्रह्म भाव का जान होने पर और इसके प्रतिरिक्त अथवा दृष्टि का विरोध करने पर जीव का सर्वव्यापी ब्रह्म स्वरूप प्रकाशित होता है^{८, ९} ।

६ भाषा तु प्रकृति विज्ञान । श्वेताश्वर उपनिषद् । ४।१ ।

७ कमला व यने तन्नुबिधया च सिमुयते ।

तग्माकम न कुर्वन्ति यतथ पार्लशिन ॥

श्वेताश्वर उपनिषद् । शंकरवृत्त सम्बन्ध भाष्य में उद्धृत ।

तद्यत्तु कर्मजिनो लोक क्षीयन् एवमवामुन पुण्यजिनो लोक क्षीयते ।

द्धान्तोऽथ उपनिषद् ॥ २॥ १।६ ।

८ कर्म काटि की ओड़ रच्यो रे नेह गय की छाम रे ।

आपनि आय बधाइया द्व लाचन मरदि पियाम र ॥ कबीर प्रथावली ।

राम न रगनु मदन बहा भूते परन अंधरे वृवा ।

बहै कबीर सा आप बधाया ज्यु नलिनी का मुवा ॥ कबीर प्रथावली ।

प्रश्न होता है कि ब्रह्म ता मवन है अत वह जानबूझ कर अपन को कम प्रयत्न माया मे क्या फसाता है ? दूसरी बात यह है कि जब ब्रह्म अद्वितीय है और वही जीव है तब वह किस तत्व म अपन को क्या दता है ? इन प्रश्नों क उत्तर इस प्रकार हो सकते हैं —

(१) जाय पारमार्थिक सत्य है अत वह व धन म नही पढता । इसनिय उसक लिए मुक्ति का भी प्रश्न नही उठता ।

(२) साधना जगन म अथवा विद्या के स्वरूप का ग्रहण करन क लिय ब्रह्म को वाणी विकार द्वारा गुड बुद्ध और मुक्त स्वरूप म लक्षित करते हैं । वस्तुन गुडना, बुद्धता और मुक्तता भी उसम आरोपिन नही किय जा सकते, क्योंकि उपनिषत् म कहा गया है कि 'वहाँ से मन सहित वाणी वापस लौट जाती है । अस्तु विद्या के द्वारा ग्रहण के लिये ब्रह्म म उक्त स्वरूपो का आरोप होना है ।

(३) ब्रह्म क अनिर्दिष्ट रूपरा सन चिन और आनन्मय सत्य नही है । सष्टि में इन तीना लक्षणों का प्रत्यय होता है । जीव मे इनका उपलक्षण है । मन ब्रह्म ही व्यवहार म परिणत हो गया है ।

(४) जिस प्रकार एक ही चन्द्रमा जल की अनन्त तहारा पर अनन्त रूप हाता है उसी प्रकार ब्रह्म व्यवहार की विविधता म आत्मा विविध होता प्रतीत होता है यद्यपि एक चन्द्रमा के समान ब्रह्म भी बहुरूप नहा होना ।

(५) उपयुक्त प्रसंग म ही जिस प्रकार वस्तुतः चन्द्रमा एक हा होता है ता भी अनन्त चन्द्र जल म प्रतिबिम्बित प्रतीत होते हैं । किन्तु प्रतिबिम्ब आभास मात्र है और चन्द्र सत्य है । इसी प्रकार जीव की अनन्तता आभास मात्र है और अद्वितीय ब्रह्म ही परम सत्य है ।

(६) जिस प्रकार अंधकार म पडो हुई रस्ती का देखकर मनुष्य मग्न भय स भयभीन हो जाना है और यहाँ तक कि उसकी प्रतिक्रिया में

पंच तत्त ल काया की । तत्त कडा ल की । ।

करमा के बनि नीत्र कहा ह जीव करम किनि कीहा । कबीर प्रन्याव । ।

गगनप्या म्निजि एमी, अत्र मोडि कइ न मुदाइ ।

अनक जनन करि दरिय करम पानि नहि पाइ । कबीर प्रन्याव । ।

स व रपणम इति गुणा प्रहृति सुभवा ।

नि अन्ति महाबाहो दह दहिनम ययम । गीता । १८। ।

नहि कदि उच्यमणि पातु निष्ठयकाट्टर ।

कान्त दरश कान्त प्रहृतिपुण्य ॥ गी । ११ । ।

कम्प स्वर भग्न आदि विचार हाते हैं और बिना भागा पीछा देगे गिर कर हाथ पर तोड़ लेता है उसी प्रकार जीव अज्ञानवश अपने का अत्यन्त शुभ समझ कर अनित्य व्यवहार में लगता होता है। परन्तु रस्सी में रस्सी का जान हा जाने पर सब ज्ञान का बाध होता है इसी प्रकार जीव में ब्रह्म ज का जान होने पर जीव की अविद्यात्रय व्यावहारिकता नष्ट हो जाती है और साधना द्वारा जीव ब्रह्मत्व में अवस्थित होता है।

(७) ब्रह्म का जगत् का निमित्त और उपादान कारण कहा गया है, एवं वाय और वारण का अन्वेषण कहा गया है। अन्न काय रूप में व्यक्त हो जान पर भी ब्रह्म की एकता में अन्तर नहीं आता। जीव के शरीर प्राप्त हो जाने पर जीव और ब्रह्मत्व में परमाद्यत भेद नहीं होता। पहले एक ही था या पहले एक आत्मा ही था इस प्रकार तत्त्व की एकता उपनिषद् में कही गई है। उसने ईक्षण किया उसने बहून होने की कामना की, इस प्रकार उपनिषद् में एक ही चतुर्थ सत्ता का समस्त नाम रूपों में प्रवण कहा गया है। य ईक्षण और प्रवेण अर्थात् एक अद्वैत सत्ता से अनेक नाम रूपात्मन जगत् के अस्तित्व में आने की सूचना देती है।

अब हम जीव के व्यावहारिक स्वरूप का विचार करते हैं। उपाधि मा बुद्धि चित्त और अहंकार से युक्त ब्रह्म को जीव कहते हैं। वस्तुतः मनुष्य की सूक्ष्म दृष्टिया के रूप में य वर्तमान रहते हैं। इनके द्वारा जीव इंद्रियोन्मग्न हो जाता है। विषय और इंद्रिया के व्यवहार का संचालन होता है। पीछे कहा जा चुका है कि इंद्रियां विषयो मुख हैं और इंद्रियां ब्रह्मस्वरूप के ज्ञान में सहायक नहीं हैं। अतः परिणाम यह होता है कि जीव अज्ञानजगत् की शून्यता का अनुभव नहीं करता और वह बाह्य भौतिक विचारों के प्रति आसक्त हो जाता है। इससे वह अपने स्वरूप से हट कर अज्ञान में अज्ञानबुद्धि का अन्वेषण कर लेता है। जड़ की चतन समझने लगता है। उसने समझ द्विधात्मकता उत्पन्न हो जाती है। केवल लोक प्रथवा लोक और परलोक जीवन और मरण काय और कारण में और तू जसे अनक खड़ा में विकीर्ण भाव और अभाव उनके समझ लेने हैं। नसर्गिक अविद्या को ही वह सार तत्त्व मान लेता है। दुर्गा संपत्ती में अविद्या शक्ति पाजिया को भी माहित करने वाला कही गई है^{१३}। उपाधि से युक्त अविद्यात्मक है। एक ही सुवर्ण सण

६३ आननामि तन्मि दवी भगवता हि सा।

ब्रह्मसंहिता भाष्य महाभाष्य प्रवचन ॥ दुर्गा संपत्ती। प्रथम अध्याय।

स बन अलकारा म मनुष्य की तदाकार अलकार वृद्धि रहती है सुवर्ण-वृद्धि गीण हो जाती है। अलकार स्वभावतः सुवर्ण म अधिक प्रिय है, क्योंकि मनुष्य की उमम व्यवहार-वृद्धि अध्यारोपित है। इसी प्रकार औपाधिक पत्तियों म भी व्यवहार-वृद्धि का अधिक लगाव जाता है। अतः उपाधिक आघारभूत प्रत्यगात्मा का अनुभव उसका नहीं होता। बराम्ब सत्तमों में बनक और वापिनी दोनों की निरा सत्ता न की है। मनुष्य अपन अलौकिक सामर्थ्य को इनम विवेक देना है और क्षणम्यायी मुख स सत्तुष्ट हान का प्रयत्न करता है। सत्ता न जीव की इस क्षमता का पहचान कर साधना द्वारा उसके सचिन करन का उपदान लिया है। अतः उपाधिक गम के प्रयत्न म सत्ता न साधना का अधिकार योग, भक्ति और ज्ञान की प्रक्रियाओं म सनिहित किया है।

उपयुक्त उपाधिक रूप जीव को कम म नियुक्त करता है।

जीव ही ब्रह्म है और जीव स्वयं ही कम करता है और अपन नियम वधन प्रस्तुत करता है। इस सिद्धांत में माक्ष क पक्ष म एक और विरापता है। वह यह कि यदि जीव कम करता है तो उसका वह त्याग भी सकता है। यह बात ठीक है क्योंकि परमाक्षत कम न तो जीव का स्वहन है और न उसका स्वभाव। त्रिगुणात्मक प्रकृति ही कर्मों क लिय उत्तरदायी है यह पक्ष कहा जा चुका है। अतः प्रकृति कम करके उसका दुःख और मुखा की यात्रना करती है। जीवत्व म स्वभावतः गुण और कम प्रसक्त नहीं होना। प्रकृति क ही बधन और मोक्ष होते हैं और वही अनक रूपात्मक व्यवहार म यत्न हाती है। अध्यास प्रसरण म इसीलिये विषय और विषया, अनात्म और आत्म का अयुक्त तात्पर्य कहा गया है। अध्यास म अविद्या-काय त्रिगुणीत रहता है। जो पत्तय जसा नहीं है उसम उस प्रकार की वृद्धि उत्पन्न हा जाती है। इस सम्बन्ध म सत सजग हैं। नित्यानित्य विवेक प्रकरण और पुन अनित्य म विरक्ति और नित्य के प्रति उमुख होना अध्यास बाध करन क प्रगत साधन है। रज्जु म सर्प की वृद्धि होना रथगु म मनुष्य का स दह हाना और आकाश म नीलिमा की प्रतीति होना अध्यास क ही लक्षण हैं। अतः इन कारणों म जीव और अक्रिय अविकारी और गुणरहित स्वरूप म त्रिया विकार और गुणा का आराध अविद्यत्मक अध्यास क कारण है। जो काम मनुष्य के अधिकार की बात है वही कम उसके त्याग का भी विषय ही सकता है। इस प्रकार व्यावहारिक जीव स्वयं क नियम व्यावहारिक वधन प्रस्तुत करता है। जीवत्व म वधन और मुक्ति की कल्पना भी व्यवहार

सम्बन्धी है। उपाधि भी जीव की व्यवहार सम्बन्धी बनना है। अतः नलिनी के गुणे, और बर के समान जीव अपने को जगत् में टालता है। यद्यथा आत्मा के स्वरूप के दिग्दर्शन नहीं जाती। सती की यात्री में भी यह मान्यता नितांत सगत और भद्रत सिद्धान्त सम्मत है।/

जीव के सम्बन्ध में नलिनी और गुण का दृष्टान्त गज और जान का दृष्टान्त अथवा मयूरा का दृष्टान्त गज के भाव्य प्रयोगों में उपलब्ध होते हैं।

सत कबीरदास के मतानुसार जीव कम के योगीभूत हैं क्योंकि कम के अनुसार ही जीव फल भोगता है। उसे आकाश तत्त्व सर्वत्र व्याप्त है उसी प्रकार चन्द्र ग्रह भी सर्वत्र व्याप्त है। शरीर में जीव उसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार घट में आकाश। घट का नाश होने पर आकाश का नाश नहीं होता। इसी प्रकार शरीर के नष्ट हो जाने पर भी ब्रह्म स्वरूप जीव आकाश के समान नित्य रहता है। शरीर घट के भीतर और बाहर आकाश के समान ब्रह्म के स्वरूप में हुआ हुआ है। ब्रह्म स्वतः शरीर में उसी प्रकार वर्तमान है जिस प्रकार घट में आकाश। किन्तु घट के नष्ट हो जाने पर जैसे घट के अन्तर्गत आकाश आकाश रूपा हो जाता है उसी प्रकार शरीर के नष्ट हो जाने पर जीव ब्रह्म का स्वरूप ही हो जाता है^{६४}। सत कबीरदास के अनुसार यावहारिक बंधनों में बंधा हुआ जीव जगत् के व्यवहार करता है। कम व्यवहार का ही रूप है। किन्तु आत्मा वस्तुतः कम से रहित है और पारमार्थिक सत्य है।/ अतः उसके स्वरूप में कम की यावहारिक सत्ता का सङ्ग नहीं होता। वस्तुतः आत्मा कम नहीं करता^{६५}। सत कबीरदास के मत में जीव ने अपने बंधनों के कारण स्वतः उत्पन्न किये हैं। जिस प्रकार काच के मंदिर में कुत्ता अपने प्रतिबिम्ब को देख कर और प्रतिबिम्ब को दूसरा कुत्ता समझकर भौंक कर मर जाता है उसी प्रकार जीव जगत् में आत्मस्वरूप का विस्मृत करके द्वन्द्व जय व्यवहारा में पड़ कर अपने

६४. यच्च तत्तल वाया कीडा तत्त कण न कीन्हा।

करमा न बनि जीव कहत ह जीव करम कि न्हीन्हा।

आकाम गगन पानाव गगन त्मा त्मा गगन रहा २ १।

आत्रन् मूल म्मा परमात्तम घट विम गगन न जाइ ल ॥

६५. हरि म तन ह तन में हरि ह पुनि नाइ सा ॥ ७ कबीर श्र धावा ॥

६५. धया बधा निड बजारा। करन विवरनि कम निनाम ॥ बीजक ॥

त्रिगुण काव्य की सृष्टि कर लेता है। जिस प्रकार सिंह कुएँ में अपनी प्रतिबिम्ब का देखकर क्रोध खाता है उसी प्रकार जीव अपने त्रिगुण भ्रम की व्यवस्था कर लेता है। जिस प्रकार स्फुटित गिलास अपने प्रतिबिम्ब को देख ही उस पर प्रहार करता और पीड़ित होता है उसी प्रकार जीव भी द्वैत भ्रम में प्रमित होकर बार-बार जन्म लेता और मरता है। खाद्य नाशन पाने की लालसा से बदर अपने दानों हाथ बन्दर पकड़ने के लिए बनाये हुए गढ़े में डाल देता है और मुटुया में पकड़े रहने के कारण वह उसमें छूट नहीं पाता। इस प्रकार वह अपने को पकड़ा समझ लेता है। उसी प्रकार प्राणी अपने को भ्रम के बंधन में डाल देता है। जैसे ताता पकड़ने वाला तोते के लिए एक नलकी लगा देता है और ताता उस नलकी पर बठ जाता है। नलकी के घूम जान पर तोता नलकी को गिर जान के भय से दड़ता से पकड़े रहता है उसी प्रकार प्राणी माया के भ्रम के कारण जन्म को बंधन में पड़ा हुआ समझ रहा है। वस्तुतः प्राणी बंधन मुक्त है जिस प्रकार ब्रह्म मुक्त स्वरूप है, उसी प्रकार जीव के व्यावहारिक बंधन पारमार्थिक नहीं हैं^{११}।

सत्त बन्धन के अनुसार सत्तार माया के भ्रम से पूरा है। वस्तुतः ब्रह्मस्वरूप जीव सत्य है। अखण्डित ब्रह्म स्वयं ही माया के भ्रम से प्रमित हो कर ईशान करके एक से अनेक रूप हो गया है^{१०}।

सत्त रत्न के अनुसार जीव त्रिगुणात्मक प्रकृति के कारण सत्तार और विषया के बंधन में पड़ गया है। जीव वस्तुतः ब्रह्मस्वरूप है किन्तु माया के कारण अपने वास्तविक स्वरूप का भूल गया है^{१२}। जिस प्रकार एक राजा स्वप्न में अपने को मिकुरु रूप देख कर दुःखी होता है, उसी प्रकार जीव सत्तार की

११ आपुन पी आपुन हा विमग।

जैसे मुलडा काव मल्लि मेंह भामन भूमि भगे (२)।

जो पहरि बपु निरगि रूप जल प्रनिना दर्ति परो (२)।

बैगे हा गन पटिक सिना पर त्सजहि अनि भरा (२)।

मरकट भूठि स्या नहि विदुर धर धर रहत तिरा (२)।

बन्दि बन्दि लननी क सुगना होहि कवने पहरा (२)। बन्क। शब्द ७। ✓

१० सतो धनी भुव जग माहा, (जात) त्रि निध्या म नाग।

पहिल भूल मल भगति भद्र आपुठि मानी।

भाड मी मूलत दादा कन्की, दादा त भमिनी। बाबक।

१२ विपन समार व्याक, व्याकन तत्र,

भाड गुा विी मंग बध भूता। वैरम की बानी।

माया के कारण अपने स्वरूप को भूल कर चुम्बी हो रहा है। जीव जब तक माया के वशीभूत हो कर भ्रमकार करता है तब तब उसको आत्मस्वरूप का ज्ञान नहीं होता। किन्तु मायाशून्य भ्रमकार के आत्मज्ञान के द्वारा दूर ही जाने पर जीव का ब्रह्म स्वरूप ही प्रकट होता है। जिस प्रकार सरिता का जल जब तक समुद्र में नहीं मिलता तभी तक वह सरिता का जल रहता है किन्तु सरिता का समुद्र में मिल जाने पर सरिता का जल समुद्र का रूप ही जाता है। उसी प्रकार जीव जब तक मायिक व्यवहार में आसक्त रहा है तब तक वह प्रावहारिक जीव रहता है किन्तु आत्मज्ञान में जीव जब ब्रह्म स्वरूप हो जाता है तब जीव और ब्रह्म एकरस हो जाते हैं। जिस प्रकार भ्रमकार में पड़ी हुई रस्सी से मनुष्य भयभीत हो जाता है उसी प्रकार भ्रमिणा के कारण आत्मस्वरूप को विस्मृत करके जगत व्यवहार के बंधनों में जीव बंध गया है। किन्तु प्रकाश होने पर जल रज्जु को रज्जुता का ज्ञान हो जाता है और मनुष्य भय से मुक्त हो जाता है वैसे ही जीव आत्मस्वरूप से परिचित हो जाने पर ससार की माया के बंधन से मुक्त हो जाता है।

सत रदास के अनुसार सृष्टि की अनेकरूपता भ्रमक है। वस्तुतः एक ब्रह्म तत्त्व ही नित्य सत्य है एवं समस्त प्रायिक व्यवहार ब्रह्म में अधिष्ठित है। ससार की अनेकता पारमायिक नहीं है किन्तु जैसे एक सुवर्ण राशि से अनेक अलंकार बनते हैं और अलंकारों के अनेक नाम रूप होने पर भी अलंकार सुवर्ण रूप ही रहते हैं वैसे ही जीव ब्रह्म और जगत में भेद नहीं है। भेद केवल नाम रूपात्मक और प्रावहारिक है^{६६}। सत नानक साहब के सिद्धांत के अनुसार कम करने के कारण ही जीव रूप में शरीर धारण करना पड़ता है^{६७}।

६६ माधे नो कदियन भ्रम मया । तुम कदियन हाहु न मया ।
 नरपति एक राज मय मुना सपन भयो गिपारी ।
 आदत राज बहुत दुस पाया सा गनि भन इमारी ।
 तब इम हुते तय तुम गा । अत तुम हा इम नागा ।
 सरिता गगन बिखा लहरि महात्थि जग कवन तब मा । ।
 रनु भुवग रानी परगाया अम कहु भरम जाया ।
 समुनि परी मानि कनक अ हन तय कहु वहन न आया ।

रत्न की वाणी ।

७ ए मरोग मरणा रश्च तग मति आ क विद्या तुमु करम बसाया ।
 कि करम बसाया तुमु मरोग ता तु मग गदि आ या । शुचर शुचना ।

सत दाहूयाल के मत म कम जीव के वधन का कारण है । जिस प्रकार काम क वगीभून हो कर हाथी पकड़ा जाता है, उसी प्रकार विषया मे आसक्त हो कर जीव पुन पुन जम लता और मरता है । जीव म विषया के भोग से जो सत्कार उत्पन्न होत हैं उनके कारण ही जीव को शरीर धारण करना पडता है । जिस प्रकार ब दर जिह्वा क स्वाद क लिए पकटा जाता है उसी प्रकार जाव विषयासक्ति क कारण पुन पुन वधन म पडता है । जिस प्रकार ताता सुय की लालसा से पकडने वाल के द्वारा लगाई हुई नलकी पर बठ जाता है और अपन को किमी के द्वारा पकडा हुआ समझकर नलकी नहा छोडता उसी प्रकार सासारिक विषय मनुष्य के वधन के कारण हैं । सत दाहूयाल क मत म अधेरी रात में मनुष्य जैसे रस्ती की सप समझ लना है उसी प्रकार जीव माया के भ्रम म भ्रमित हो कर अपन स्वल्प को भून गया है । जिस प्रकार मग मरीचिकाभा म जल नहीं होता और अत म मग का विषासा स याकुल हो कर मरना पडता है उसी प्रकार जीव के लिए ससार म सुख नहीं है । ससार और जीव का यावहारिक स्वरूप वस्तुतः भ्रम है । जीव कम करके मुखी होता है किंतु यह सुख उसी प्रकार का होता है जसा स्वप्न का मुख क्योंकि भौतिक सुख अनित्य होता है । जीव को आत्म जान हो जान पर कम विलीन हा जाता है । यह ससार मिथ्या है केवल ब्रह्म ही सत्य है । यावहारिक जीव अपन वास्तविक एव पारमाधिक स्वरूप को विस्मृत करके प्रवहार म रत रहता है, किंतु जब उसको आत्मस्वरूप का जान हो जाता है ता अविद्यात्मक जगत भ्रम उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार प्रकाश हान पर रज्जु की रज्जुता प्रकाशित हो जाती है और जीव सप भय से मुक्त हा जाता है ।

७१ कर्म कम बाटे जन्म कम कम न जाइ ।

कम कम दूटे जन्म कम का बसाइ । दाहूयाल का बाना ।

जैम कु त्त काय हम आप बधाया आय ।

जमे दाहू इम भय क्यो करि निहरया जाय ॥ दाहूयाल का बाना ।

जम मरत जीव रम आप बधाया अथ ।

जम दाहू इम भय क्यो करि दूटे कथ ॥ ३

जु सुवा सुप कारय कथाभूरिष मोदि ।

जम दाहू इम भय क्यो करि निरुमे गादि ॥ दाहूयाल का बाना ।

जिमि अ धियाय क रू न सुके ससै सरप िवावा ।

जमे अथ जगति जा न व तवना जग ।

सत्त मुन्दरगत के मनानुसार यद्यपि आत्मस्वरूप एक ही है किन्तु श्रोत्राधिक बुद्धि के कारण नाना रूपों में दिखाई पड़ता है। जसी घट्टि दपण के सम्मेलन होती है वसा ही प्रतिबिम्ब दपण में पड़ता है। इसी प्रकार ससार में एक आत्मा ही बुद्धि की श्रोत्राधिकता के कारण विविध रूपों में दिखाई देता है। अतः यद्यपि ब्रह्मस्वरूप जीव एक ही है परन्तु उपाधिभक्त के कारण वह अनन्य रूपों में प्रकट होता है^{३२}। जैसे वाच के भजन में कुत्ता अपने अनक प्रतिबिम्ब देख कर भूकना फिरता है उसी प्रकार एक रूप आत्मा अविद्यात्मक ससार में अपने को अनक रूप में देखता है और दुःखी होता एवं व्यवहार में प्रवृत्त होता है। जिस प्रकार स्फटिक गिना में अपना प्रतिबिम्ब देखकर उस पर आश्रयण करके हाथी भजन दाँत तोड़ देता है, उसी प्रकार जीव मायात्मक जगत में भ्रमित होता है और दुःख परिणामी व्यवहार करता है। जैसे सिंह अपने प्रतिबिम्ब को देख कर कुएँ में गिर जाता है, उसी प्रकार जीव अविद्यात्मक भ्रम का आश्रय है। जैसे चक्कर खाते हुए मनुष्य को सारा ससार घूमता दिखाई देता है, वैसे ही जीव ससार में भ्रमित हो कर ब्रह्म में जगत आदि कार्यों का आरोप करता है। भ्रम से दूसरे भावों का द्विधात्मक ज्ञान होता है, किन्तु जब भ्रम नष्ट हो जाता है तब केवल ब्रह्मस्वरूप अवशिष्ट रहता है^{३३}। पारमार्थिक अवस्था में जीव जगत और ब्रह्म में भेद

मग चन त्रिपिनदा जय नदि तिन तिन भू टी आमा ।

चन तद च न ताना चन ना । निद्वय मय भियामा ।

कम विलास बहुल विध काहा या सुपिन सुप पाव ।

जागन भूठ तदा जुद ना ती पिरि पीदे पदितारै ।

चन लग मुता तन लग दप जागन कम गियाना ।

दाः अति हा कुद गाहा है मा माधि सथाना । तादृश्याच की वाता ।

७२ एकही आत्मा भाव तद्वातदा बुद्धि के योग में विभ्रम भ्रम ।

ना यत् कर तो कर उहा पुन या फ सिन न उहा पुनि पाव ।

जा यह मातु ता मातु उहा पुन या फ इम तै उहा पुनि दान ।

चमा आपु कर मुन सुन्दर ताना अपन माहि प्रभापे । सुन्दर प्रभापली । ✓

७३ चस खान वाच क मन्त मध्य दपि नार

भूक भू कि मरत करत अभिमान जू ।

जैम मन्त फि कशिला सा अर तार तत

जैम नि कृप माह उनकि मुता जू ।

सत्त गरीबवास के अनुसार उपाधि व कारण जगत् भामिन हाता है । जीव उपाधि के कारण धपने को ग्रह्य से भिन्न माना है ।

सत्त भीखा साहय के अनुसार रजु मं सत्त व धम के समाप्त द्वतत्रय जगत् प्रतीत होता है । त्रिगु तीव्र और प्रग एव र है । पान हात पर त्रिस प्रकार सप र जु म समा जा जाता है उमी प्रकार आत्मज्ञान होने पर त्त भाव नष्ट हो जाता है ।

सत्त पलट्ट साहय ने भी धम की त्रिगु की है यवाकि यही जीव व वचन का कारण है ।

सत्त काय मे आत्मा धपवा जीव व स्वरूप व सम्बन्ध म ह्य देखते हैं कि सत्त आत्मा को आचाय गङ्कर के समान पारमायिक सत्य मानते हैं । गङ्कर के समान ही सत्त भी जीव म अविद्या एव उपाधि का धाराप करते हैं । गङ्कर के समान ही सत्त भी जीव व वचन अविद्याजय पावहारिक और आत्मवृत्त मानते हैं । आचाय गङ्कर व समान ही सत्त भी आत्मज्ञान के द्वारा जीवत्व की ग्रह्य म प्रतिष्ठा मानते हैं । आचाय गङ्कर के समान ही सत्त भी विषयो जागतिव व्यवहारा एव धम की जीव के वचन का मिथ्या

गभि सुगन्ध नासिका बासा चरन विरे र्त्त निमि धामा ।

रुना देखो दरपन माहीं छवि तनु एक वपुरि बुद्ध गाता ।

नलनी बैठि सुगा निमि भूला भरमन अथ अधोमुखा भूला ।

नल मद्दे प्रतिमा देखलावे, सोपन विस्मृत धाम त आमी ।

जानन चरिरे सरप अ धारे निर्गल वदन सो दापक बारे ।

पटिक मिला अरुध भमना अपना कुतुधि गवायो ल्ला ।

मूसल खान काच व गेहा मा अभिमाना दिसारे देहा ।

मग तृष्णा नल धोये धावे धाकि परे पाद पदिकावे । धरनीगम की बाता ।

७६ वही दाम गराव उपाय लागी

सब भूत भये ष्य है त है । गरा ज्ञान का शानी ।

ड स डर उपाय में जीव बधे,

गमरुध की नगी उपामा है ।

धर्म नहीं मिय अवध विद्या

पानी तारे नर प्यामा है । गरीबवास की शानी ।

७७ भीमा एक दुश्न का भयक

सप समाय रजु म्द गयक । भावा साहय की शानी ।

७८ बूनि विचारि गुरु काजिये जो धम स चारा ।

धम-बन्ध हरि त्रि है बून्दु मभधारा । पलट्ट साहय की शानी । भाग २ ।

कारण मानत हैं। आचार्य गङ्गुल व गमान ही सन भी आत्मा व पारमाधिक स्वरूप को कनत्व, भीतत्व स मुक्त मानत हैं। आचार्य गङ्गुल के समान ही सन्त जीव और ब्रह्म म अभेद मानत हैं। आचार्य गङ्गुल के समान ही सन्त आत्मा को नित्य और मुक्त मानत हैं। जीव बचनो के उच्छेदन का साधन जिस प्रकार गङ्गुल न आत्मज्ञान को माना है उसी प्रकार सत्तो ने भी आत्मज्ञान साधन का प्रधान मध्य साधन माना है। इस भाँति हम उपयुक्त विषयो में आचार्य गङ्गुल और सत्ता के विचारो में साम्य पान है।

सत्ता ने आत्मा को जिस रूप म प्रणु किया है वह रूप गीता और उपनिषद् के भी अनुकूल है। इस सम्बन्ध म हम यथास्थान सकेत करने चले हैं। आत्मा के विनियोग का प्रयोग भी सत्ता ने गीता और उपनिषद् के अनुसार ही किया है।

सत्तो ने आत्मा को आचार्य गङ्गुल के समान अविचारो माना है। यद्यपि समस्त जगत् विचार और काय आत्मा म ही अधिष्ठित है तो भी आत्मा क पारमाधिक रूप म अक्षर अथवा विचार नहीं आता। इस सम्बन्ध मे सत्ता न विवृत भावना का आश्रय लिया है। इस प्रकार की विचार पद्धति भी आचार्य गङ्गुल म त सिद्धांत व अनुकूल है।

सत्तो न जीव के बचन व सम्बन्ध म अक्षर गुरु हाथो सिंह एव स्वप्न देखने हुए राजा के अष्टान्त लिये हैं। लिय अष्टान्त गङ्गुल व प्रथा म नहीं मिलते। तो भी, जीव को बचन कारणरूपता व सिद्धांत के धर्म म आचार्य और सत्तो का मतभेद नहीं है। यद्यपि दोनों के अनुसार जीव ही स्वतः अपन लिये बचन प्रस्तुत करता है। जीव का अपन कर्मो का फल भागता पढता है और जीव का फल भाग के लिये गरीर धारण करना पढता है। अस्तु, गङ्गुल और सत्ता व मता म इस विषय में भी भेद नहीं है।

सत्ता ने आत्मा की सर्वस्वता सवाम भावना एव सर्वगतिमत्ता कही है। य भावनायें भी गङ्गुल सिद्धांत व प्रतिकूल नहीं हैं। सत्ता न आत्मा को अमण्य एकरमता अद्वैतरूपता एव अकथनीयता का बणुन भी गङ्गुल-सिद्धान्त के अनुकूल किया है। अतः उपयुक्त मुख्य बातो के आश्रय में हम सत्तो और गङ्गुल के मता म गमानरूपता पाने हैं।

तृतीय खण्ड

निगुण काव्य का सिद्धांत पक्ष और उस पर
शाङ्कर अद्वैत वेदान्त का प्रभाव

ब्रह्म प्रथवा आत्मा का ही स्वप्न ज्ञान है। इस प्रकार ज्ञान साध्य और साधन दोनों ही हैं। आचार्य गङ्गुली ने ज्ञान सत्य ही परिभाषा करते हुए ज्ञान को ज्ञान साधन होने के कारण भी ज्ञान कहा है।

सत्ता के अनुसार ज्ञान प्रायः साधन रूप है। सामान्य ज्ञान के बोध से अवगिष्ट ब्रह्मज्ञान रहता है। ज्ञान के सम्बन्ध में गोरखनाथ का कथन है कि यह बिना बीज और पत्र का वक्ष है। वह पत्ता और फल के बिना ही फलता है। वह बध्यापुत्र है। वह बिना आकाश का चन्द्रमा बिना ब्रह्माण्ड का सूर्य बिना स्थल का यज्ञ है। उस परमाथ के जानने वाले के शरीर में परमानन्द का उत्पन्न होता है। वह न गूँथ है न स्थूल। उमके चिह्न और पूजा के रूपा नहीं है। बिना अनाहतनाद के गान का गजन होता है। बिना वाटिका के पुष्प और बिना पुष्प की सुगंध है। बिना पवन का भग है। वह राहु के बिना ग्रह लेता है अग्नि के बिना जला देता है आकाश के बिना बाण्डल उमडते है। यह परमाथ अग्नि पानी वेदादि के पढ़ने वाच पडितो द्वारा नहीं कहा सकता। वह स्वसवेद्य स्वयंप्रकाश और सोह भाव है। वह भौतिक तत्त्वो पथ्वी आकाश और जल इत्यादि से भिन्न परमाथ सत्य है। ज्ञान के सम्बन्ध में इसी प्रकार की अग्नि प्रकृतियाँ अथ सत्ता के कायो में भी मिलती है। बध्यापुत्र बिना गाखा मूल और फल का वक्ष पशु पक्षि गन्धर्व आदि उपमाएँ ब्रह्मज्ञान के लिए सत्ता ने दी है। इस प्रकार की उपमाएँ आचार्य गङ्गुली ने भी दी हैं और इसके पूर्व बौद्ध ग्रन्थों लकावतार सूत्र आदि में भी मिलता है। आचार्य गङ्गुली ने बौद्ध विज्ञानवाद और गूँथवाच्य का खण्डन करते हुए इन दृष्टान्तों के द्वारा इनके मत की असिद्धता प्रमाणित की है। सत्ता ने इन दृष्टान्तों द्वारा ज्ञान की अनादितता

१) सभी पण्डित ब्रह्म गियान गोरख बोल गाय सुवान ।

वाच बिना निमपनी मूल विन विरपाधान पूत्र विन पलिया ।

बभ्रु कर बालूण दगुन तरवरि चन्धिया ।१।

गगन विन च महान् विन सुभ भूभविन रचिया धाने ।

ए परमारथ न नर जायै ता षण्ठि परम गियान ।

सुनि न अस्थूल अयग तदि पूजा धुनि विन अनन्द बाने ।

वा नी विन पदुम विन सादर पवन विन भ गा दाने ।

रात्रि विन गिनिया अग्निनि विन चन्धिया अ नर विन पत्र भरिया ।

यदु परमारथ कही हो पण्डित सन जग स्थान अथरवन पन्धिया ॥

ममवेत् मोह प्रकाम धरता गगन न आत्मा । गोरखनाथी ।

अभ्यवहारिकता निगुणरूपता का कथन किया है। वस्तुतः इस प्रकार की अभिव्यक्ति अद्वैत सिद्धांत का अनुकूल है। ब्रह्मज्ञान का अनुभव त्रिद्रया द्वारा नहीं होता। यह गुण और विकारों से रहित है। साधना इस तान का उदय होने पर समाप्त और पूरा हो जाती है। यह ब्रह्मज्ञान ही समस्त तानों का अघिष्ठांत है। अतः उससे प्राप्त होने पर ही अथ व्यवहारिक तानों का भी बोध हो जाता है। इसमें आत्मा की निगुण सत्ता और अनिवचनीयता लक्षित है।

सत कबीरदास^१, सत दाहू^२पाल सत सु दरगस, सत चरनगस सत मारी साहब और पलटू साहब के काव्यात्मक इस प्रकार के परमात्म तान के पुष्ट उदाहरण हैं। तान के सम्बन्ध में इस प्रकार की दृष्टांत परम्परा बोद्धा गकर और सतनाम मनुष्य है।

सत कबीरदास ने आत्मस्वरूप तान के लिए इस प्रकार की दृष्टांत परम्परा स्वीकार की है। उद्धान आत्मा को 'बेली ग' स ममिहिन किया है। सत कबीर दास के मन में लकड़ी अर्थात् भौतिक प्रपञ्च रूपता ज्या ज्या नष्ट होती जाती है वैसे ही आत्मा के तान का उदय होता जाता है। जैसे जैसे अज्ञान का निरसन होता जाता है वैसे ही आत्म बोध प्रखर होता जाता है। यह ससार और गरीर एक वस्तु के समान है। मोक्ष में भी ससार की तुलना अवश्य वक्ष्य की गई है। कम और सत्कारा से उत्पन्न यह जगत और गरीर भाव तत्त्व का बोध हो जाने पर तिरोहित हो जाता है। सत कबीरदास ने इनको बिना-शायी हुई गाय का दूध खरगोश का सींग और बध्यापुत्र कहा है। इन दृष्टांतों की साधकता पर विचार करने पर आत्मस्वरूप की अद्वैत दृष्टान्त सम्मत् रूप की प्रतिष्ठा होती है। जिस प्रकार अनशय गऊ का अस्तित्व होना है परंतु दूध से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता, क्योंकि उससे कभी दूध उत्पन्न ही नहीं हो सकता उसी प्रकार तान सनातन और स्वतंत्र है। उसकी

१ अथ तौ प्यो दे प्यो ना नूनही न बनि ।

तानण भागो लाकड़ा ऊगे च पल मन्दि ॥ १ ॥

भाग भागे ग नवे पादु हरिया दाइ ।

बनिहासे ता विग को न कण्ठिदा फल दाइ ॥ २ ॥

ग कागी तौ रहदहा मावा तौ कुडिनाइ ।

गन गुणवी बेनि का मुद्ध गुय कक्षा न जाइ ॥ ३ ॥

भागिनि बेनि अवागि फल अरा अगार का नुध ।

गमा म न नी धूनगी रौ बाध का पूत ॥ ४ ॥ ५ री को अग । कवर अन्ध ॥ १ ॥

उत्पत्ति के लिए किसी साधना और नियम की आवश्यकता नहीं होती। इसी प्रकार ब्रह्मापुत्र भी एक असम्भूत पद है। अरणाज के सींग नहीं होत। अतः ब्रह्म के स्वरूप में सत्ता का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। पदगत वास्तव का भी इसी भाव में सत्ता ने प्रयोग किया है^३। अतः तद्विद्वान्त के अनुसार ब्रह्म और मया दोनों ही अनादि हैं। इनमें सत्ता मया की उपलक्षण व्यवहार में होती है ब्रह्म की नहीं। किन्तु यह अनादि मया ब्रह्म साक्षात्कार में बाधक है।

इसका मूल यद्यपि ब्रह्म है किन्तु वह इन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं है। ज्ञान दृष्टि से देखने पर मया एक आभास मात्र रह जाती है। अज्ञान की दृष्टि में अज्ञान बोध और व्यवहार होता है। प्राणी इसमें ही भ्रमित होता रहता है और आत्मज्ञान से विमुक्त रहता है। अस्तु मया के अस्तित्व में ही उसका अस्तित्व निहित है।

सत दास्याल ने भी इसी प्रकार ज्ञान का स्वरूप निश्चित किया है। ज्ञान नित्य है और मया के विकारा से रहित है। ज्ञान की प्राप्ति ही परम पुरुषार्थ है। ज्ञान की वस्तुतः उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि ज्ञान ब्रह्मस्वरूप है और ब्रह्म नित्य है। अतः ज्ञान भी अनादि है। यह ज्ञान कम द्वारा साध्य नहीं है। इस ज्ञान के प्राप्ति होने पर जीव स्वतंत्र निरञ्जन के रूप में स्थित हो जाता है^४।

३ यत् मन इत्कि पद्वानि तै सव आया मिदि तान् ।

पशुल है पिव भिन्न कर भीद्र काज न खाइ ॥ कवीर अभावती ।

४ ज्ञानम ग। उपनि दास्य पशुल ज्ञान ।

इतम जा उलधि करि तान् निरञ्जन थान ॥

आत्म बाध बन्ध का वेग गुर सुध उपन आइ ।

दास्य पशुल पंच दिन तान् राम तह तान् ॥

दास्याल की बानी। शुक्रेव को अ ग।

तान् काया व्यावर गुणमया मन मुप उपन थान ।

चौरामी लप जीवन। स मया का ध्यान ॥

दास्याल की बानी। उपनिषु को अ ग।

तान् बन्धा आत्मा सत्त्व धृत्त फल हो ।

सहजि सन्ति सन्तुर कद बूझै बिरवा कोइ ॥ ४ ॥

त साद्विच मानै नाना ता वेना तान्नाइ ।

तान् सीचै सा या ता वेनी बधना तान् ॥ ५ ॥

हरि तरवार तन आमा बनी करि विमताइ ।

आत्मा में ही ज्ञान का उदय होता है। इस ज्ञान के प्राग्त होने पर अविद्या का उल्लंघन करके प्राणी चरम पद मोक्ष का अधिकारी होता है। सत दाहूत्याल क अनुसार ज्ञान गुह मुख से ही मिलता है। यह अध्यात्म ज्ञान ही प्रपञ्चातीत परब्रह्म की उपलब्धि का साधन है आत्मा का ज्ञान ही ब्रह्म ज्ञान है। माया दिक विकारों से भ्रान्छादित रहने के कारण आत्मा नित्य अनुभवगम्य हेत हुए भी साक्षात्क प्राणी को अनुभूत नहा होता। सत दाहूत्याल न इसकी बेली या लता का रूप माना है। अज्ञान जय विषया और पणार्था स निरंतर घिरे रहने के कारण यह आत्म बेलि मुरभाई रहती है किंतु आत्म बोध से पोषित होन पर यह फलती फूलती है। इस प्रकार इसी आत्मा म प्रमत फल फलते हैं जिनके रसास्वादन के अनंतर प्राणी का मन किसी रस की प्रमिताया नही रहती।

अविद्या निरसन और आत्मनानोपलब्धि की दृष्टि स सत क्वारदास और सत दाहूत्याल की अभिव्यक्तियों म समानता है। सत मुन्दरदास ने भी ज्ञान के पथ में इसी प्रकार का मत प्रकट किया है।^५

सत मुन्दरदास ने ससार के नाना नामरूपात्मक पथ को प्रपञ्च माना है। इन नामरूपात्मक पदार्थ जगत के भाकपणा का भूत नहीं है। मनुष्य की तपित इनस कभी नही होती किन्तु वस्तत ये मरुभूमि म उपल प्र होने वाले जलाभास क अतिरिक्त और कुछ नही है। यह ससार रसा में सप भय के समान है। रात्रि म अज्ञानवश मनुष्य रसों का सप समझकर मयप्रस्त होता

अज्ञान का फल पाठ करि सुवा न सुखिया का ।

राहु विष की बनी बाहिय विषा का फल और ।

दाहूत्याल का बाना । बला का अर्थ ।

५. अथ ना पय करि इम जान्या ।

जो ज्ञानरत्न प्रपञ्च जहाँ ला मृग तप्या की मान्या ।

रज हा तपि रजनी में भ्रम में अति मय भान्या ।

रवि प्रकारा जय भया प्राग ही रज का रजु पहिचान्या ।

ज्या बार अन्तर तपि क या हा बधा हरान्या ।

का कजु मग्य नहा कजु है दे यह निरपय करि मान्या ।

शशा रग कप्यामृत भूव निव्या वचन बरान्या ।

तैये जान जान प्रय नाहा ममुक्ति सकल अन मान्या ।

ना कजु दु । रसो पुनि सा दुनिया भाव विचान्या ।

म न्य भाति अत मथ मुन्दर मुन्दर ही उदरान्या । मन्दर अ ५।३ ।। अर्थ ० ।

है किन्तु उपासनात्मक प्रमाण में श्रित प्रकार भ्रम नष्ट होता है और भयभीत मनुष्य आनन्द हो जाता है। जैसे ही अविद्यात्मक ज्ञान-जगत् बोध होने पर मनुष्य प्राप्ति अनुभव करता है। यह ज्ञान मलक दिव्य गणेश, ब्रह्मायुष के समान भवत है। इसका वास्तविक रूप को समझकर ही आत्म ज्ञान का उदय होता है। इतना ही निरसन होकर अद्वैतब्रह्म भाव में स्थित होकर प्राणी कृतकत्व ही जाता है।

सत्ता ने जगत् को राजु में सब के भ्रम के समान जगत् को धमन् कहा है। सत्त चरनगण न भी इहोऽप्यन्ता के आधार पर जगत् का मिथ्यात्व प्रमाणित किया है। ज्ञान का प्रतिष्ठा के लिए ज्ञान के पक्ष का विरोध करना आवश्यक है। व्यवहार और जगत् की आसक्तियों मनुष्य को वस्तु भाव से पथक कर देती हैं। परमात्म ज्ञान में व्यावहारिक साधना उसकी अनुभूति में सहायक नहीं होती। ऐसा स्थिति में सत्तों का दण्ड विवक विरक्ति का छातक है। परमात्म में अज्ञान बोध के अतिरिक्त दूसरी भावना नहीं रह सकती। सत्त चरनगण ने इसीलिए इस जगत् की असम्भवावना पवत में मछली समुद्र में मग आकाश में खेत पानी की गठरी, घुड़ का किला स्वप्न का राजा गणिका का गोल भूना का नाव अभावस्या का चण्डा रात में सुप्त नारी का नारी से विवाह चींटी का हाथी को से भागना पुष्प के स्तनों में दूध प्राप्ति का कथन करके निरस्त है।

६. सत्त भाव दण्ड गण का सत्त भाव ।

मन पदार मनु विव निगा खन अक्षय माता ।
 त्व का पट का धूवा को अन्वित मद्र का लेर ।
 वाह को पूत मांग सुखा का मग भगना का नर ।
 म्वन को भूप त्व स्वर्ग को अर जगत् को नर ।
 गनिका मन नाव भूतन को नारि मा व्यहन ना ।
 मांम का मनि रैन को मूत्र त्व नरन को द्यत ।
 दण्ड मव बहनि कण्ठान त्व च । तै मागा बाधा ।
 पण्डि कठ त्वन सब नाग मन् विरार पाया ।

चरनगण का वानः । भाग २ । । शब्द ३ ।

७. चण्ड विना अह चण्डा र तपक विन जगत्ता जाना ।

मन विना तमिन दमः मय विना माणर मा । ।
 त्व विन कवन है हर अद्वैत है विन काण्ड मन् ।
 जगत्ता का त्व दान वः कभ व पूत के त्वि गणा ।

दागी माधव के रत्नावली । भूतना १३ ।

ज्ञान की श्रेष्ठता सभी सतों न स्वीकार की है। गोरक्षनाथ के अनुसार ज्ञान के बिना सतयुग, त्रता द्वार और कलियुग में सत्य का परिचय नहीं होता। परंतु गोरक्ष ने गुरु भक्त्युक्त की कृपा से भ्रातृभवन रहित निगुण ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करके ससार रूपी सागर का पार कर लिया है^८।

सत बबोरणासन ब्रह्मज्ञान को समाधि के मुख के रूप में अनुभव किया है। इससे प्रविद्याजय भ्रम और आवागमन का नाश होता है। वहाँ इतना अनात्म का अभाव होता है। यह आत्मज्ञान आत्मा के द्वारा ही होता है। यह ब्रह्मज्ञान समाधिजय होता है, जिसमें मनुष्य का आत्मा अतः सुख अनुभव करता है। ब्रह्मज्ञान गुण द्वारा ही प्राप्त होता है। इससे हृदय कमल खिल जाता है और जन्म जन्मांतरों से प्रचित अज्ञान के सम्कार नष्ट हो जाते हैं। आत्मज्ञान से ही परम ज्योति का प्रकाशानुभव उत्पन्न होता है और अज्ञान निद्रा से जाग कर साधक भ्रमन हो जाता है। ज्ञान अनादि है और इसकी प्राप्ति ज्ञान पर जीव अनेक अन्तुत प्राणायामिक रहस्या का समझने में समय ही जाता है। पुन पुन जन्म मरण के वृत्तकाम वह मुक्त हो जाता है और फिर कभी ससार के अनित्य विषयों में रमने के लिए वह जन्म नहीं लेता^९।

८ मनि मनि भाषत श्री गण्य ज्ञान अम लो रत्नदा रग ।
 अमय पुरिम विनि पुग्मुय चन्द्रा रत्निवा निरु नरा ।
 मन्त्रनु मय पुन एक रत्नला निरुद एक निदाश ।
 धानविदूषा गण्य गभय अरुधु सन्धी दसि दसि रत्नाग ।
 श्रेण ज्ञान मन पुन गद रत्नला राम रत्नारा कन्दा ।
 नर बन्धर सब लडि लडि मुन निन भा ग्यान न रत्ना ।
 धार ता मय पुन तनि रत्नले ददु दन्धर ददुमार ।
 धरा पांने लडि लडि मुन नान्द रिग म्पर ।
 कलियुग मय ता चारि रत्नला चूडिला चार विचार ।
 धरि धरि दन्ध धरि धरि दान धर धर कथय धार ।
 चद्र पुन भरो ता चारि धरिला ग्यान निगन्ध रत्निवा ।
 मदादन्मात्र तता गेय बोदा धार दिरला पार उपादा ।

गोरक्षनाथ । पृ ५१२६ ।

९ अथ मे पात्वा र पाशैः शून्य विज्ञान
 सङ्ग संसारं पुन न रक्षितो कोऽपि कथं विधानः ।
 गुरु शून्यं कृत्वा जब कल्पे द्विर् कथं विज्ञानः ।
 भाग्य भन रत्ना नि म्भुत्वा परम ज्ञाने प्रकाशः ।

सात रदास ने जान शरा हरि परगा। मं चित्त लगाना बना है। एमम त्रिगुणात्मक माया और सासार के बनना का नाश होना कहा गया है। नूती माया ने प्राणी को भ्रम में डाल रखा है। सात गुणा में प्रगूत घट जगत् अनेक जटिल जालों से युक्त है। गुण गुण में ही घातमान प्राण होता है जिससे अनेक दक्क, दहिक और भौतिक बनना का समूह नष्ट हो जाता है।

सात घरमदास न पन के पन में प्रवृत्ति, माया त्रिगुण पदगान, सात माह विचार धारि की निदा की है। इस व्यवहार रूप जगत् से त्रिगुण पान

मनक उठया घनक कर गार्थे काज अटना माया ।
 उग्या मूर निम रिया पगाना मावन धे नव गगा ।
 प्रविगत अकल अनूपम गगा काना कझा न ना
 संन कर गन्हा मन सत्सै गू । नानि मिठान ।।
 पपुप दिना एक तरवर पनिया तिन कर मूर बनाग ।
 नारी वि । नार घट भरिया मगा रूप सा पाया ।
 गगत काव भया नन कउन तिन गानी मन मागा ।
 उग्या विगम गोन न पाया नू नन ललि मनाना ।
 पूया गेव हरि नना पूना डाय उतिक न नाउ ।
 भागा म ये कझा कडना आय वदुरि न आऊ ।
 गग म तव आया निरप्या अपा म प्राया सुभया ।
 आरै कत्त मुनन पुनि अपना अपन पै आया वृभग ।।
 अपनै परनै गगा तारा अपन पै आय समाना ।
 कह करार न आय विचारै निग गया आवन नांना । कवार अन्भावनी । प ६ ।

१० वापुरा सत गैम कह रे ।

घान विचार चरन चित लाव हरि की मरनि रह रे ।
 पाना तात पूनि रगने तात तरन कह रे ।
 मूनि काडि धम परमसर तौ पाना माडि निरे रे । १।
 त्रिविध समार कान विधि निरवा न गग नाव न गदे रे ।
 नाव धा गे गू ग वमे ता गना दुख मह रे । २।
 गुरु को सवत अरु मुरनि बुग्या रोत्य बाद रह रे ।
 राम कहहु ध न ना आपो माने न न रह रे । ३।
 भठा माया ग दकाया ती तिन तप रह रे ।
 कह रेगम राम अप रमना का क मय न रह रे ॥ ४ ॥

गैम का बानी । प ४४ ।

की श्रद्धा स्वीकार की है^{११}। इनके अनुसार ज्ञान माग बड़ा विलक्षण है। समझने की शक्ति जगत का विनाश जड़ और चेतन तत्त्वा से हुआ है। पञ्चतत्त्वा और पञ्चास प्रकृतियों के सहयोग से सभी अविद्यात्मक व्यापार संचालित होते हैं। धन, नारी—धन और स्त्री का लोभ सवरण करना कठिन है। इनके मोह में पड़कर ही मनुष्य अनेक भिष्या-व्यवहारों और व्यापारों में लगता रहता है। प्रकृति ही प्राणी में विषया के प्रति लक्षणाएँ उत्पन्न करती है। पटदशन भी अज्ञान का ही प्रसार करते हैं क्योंकि इनमें से ज्ञान का कोई भी इन्धित्य नहीं रहना। प्रकृतिजय लोभ माहादिक विकारों से मुक्त होना ही वास्तविक मुक्ति है।

सन्त ज्ञानकों के अनुसार समग्र पृथ्वी धन माल सब भ्रम है। ज्ञान के बिना मर्यु सबका भक्षण कर डालती है। सत दादू ज्ञान से भ्रमन रस का पान होना और जीव का ब्रह्म हो जाना मानते हैं^{१२}। उनके अनुसार ज्ञान स्वतः भ्रमरूप है^{१३}। ब्रह्मज्ञान का आस्वादन करके जीव स्वयं ही ब्रह्म रूप

११ ज्ञान चेतना दुःख रूप बनाए एक काक दुःख नारी ।
 पंच पञ्चम स्थि सग अज्ञान हसि हसि मिनि भाँ गती ।
 दुर्मिनि ज्ञान गहे कर सं टप टप ह्वन ते तारी ।
 निरगुण तार तबूँ ज्ञान आम तन्ना गनि गती ॥
 जेवा ज्ञान अति अगुण माग की गहवर मागी ।
 पर परसन ज्ञान ज्ञानके पररि विये बगारी ।
 लोभ माह दुःख भरी विजुकारी ज्ञान बारबारी ।
 जो कारे सम्पुत्र बाँ के खेने निनिदि दाद गये कारी ।
 दुर्मिनि गुणान थारि मुत भाँवे ज्ञान पुत्रिया मारी ।
 गुण ज्ञानि अरु पीर अनिया मीचि रह भन्ना ।
 ज्ञान ज्ञानमा द द हूँ मूय को लगे प्यारी ॥
 कद कभीर मुनी हा धननि निगु न भाँ गनि गारी ।
 धर्मज्ञान ही शानी । दोषो ४ ॥

१२ मात्री धरती मातु धनु चरतधि सरव ज्ञान ।
 नाक मुनेनिमान विद्वेसी तार गण जय कातु ।
 गुण गुण । महना १ ।

१३ ज्ञान कहे स्थि ज्ञान सो अज्ञान रजु पदे ।
 दादू दुना दादू गी लारी ज्ञाने ॥
 ज्ञान ज्ञान धरती तीर अज्ञान है ज्ञान ।
 दादू भागवतन गी ज्ञान रहे ज्ञाने ॥ दादू ज्ञान का शानी ।

हो जाता है । प्रम और भक्ति से ज्ञान की वृद्धि होती है । ज्ञान ही ममत्त और मद्धतानुभूति की धरम स्थिति है ।

सत सुदरदास ने ज्ञान स्वल्प का वणुत यगात मद्धतात के पूरण अनुकूल किया है । इ ज्ञाने रजु और सप क ंष्ट्यात से ज्ञान और भम कहा है । इतरूप जगत् प्रज्ञान के कारण प्रतीत हाता है । इतरजय प्रज्ञान के नाग होने पर मद्धत ज्ञान का प्रज्ञाग होता है^{१४} । अद्ध ज्ञान से ही इतर प्रज्ञान का निवारण सभव है । वस्तुत इतर सत्ता की उपलधि भ्रामक है । इसकी उपलधि तब तक होती रहती है जब तक मनुष्य इसकी और से मपनी दष्टि को फिरा नहीं लेता । इतर ज्ञानरहित दष्टि ही दिश्य दष्टि है । इस दष्टि से देखने पर सबत्र एकरस मसण्ड ब्रह्म ही अनुभवगोचर होता है ।

सत मनुकृपास के अनुसार अधकार होने पर चोर चोरी करते हैं पर तु दीपक के जलने पर नहीं कर सकते । इसी प्रकार ज्ञान होने पर मनात्मभाव नहा स्पग कर सकते । मन हगी मग बिना सिर का है । वह चारा और चरने जाता है परतु ज्ञान उसकी चग म कर लेता है^{१५} ।

बिहार वाले सत दरिया साहब ने आत्म ज्ञान का वणुत करते हुए कहा है कि आत्मा परम शुद्ध सत्य है । यह भावागमन स रहित है । वह विकारी

प्रेम भगति िन िन यधै सोः शा विहार ।

दाः आत्म साधि करि मधि करि काःया सान ॥ ३७ ॥

दाःयाल की बानी । पृष्ठ ५४ ।

१४ मद्ध ज्ञान विहारि करि या होः मद्ध खरूप रे ।

सकल भ्रम तम जाय मिटि उचिन मान अनुप रे ।

यः मरो करि जव्हि देपे मसरो तव होइ रे ।

पेरि अपना दष्टि ही का मरो नहि को रे ।

िवि दष्टि करि नः दपिये तव सका मद्ध विलाप रे ।

अहान ले समार भास कदै सु मराम रे । सुःत्र म मपनी । भाग २ ।

१५ तब लग भी अधिहार धर मून धर सब चोर ।

नः मल्लि दीपक बरया बही नार नः मोर ॥ ३६ ॥

मन गिरगा विा मून का नः िनः रने जाय ।

दीक ले आया ज्ञान तव बाधा साः लगाय । मनुकृपास की बानी । पृष्ठ ३१ ।

और गुण से अतीत है^{१९}। इस प्रकार क विचार ही जान प्रकाशक हैं। आत्मजान ही परम दिव्य जान है। बिहार जाने दरिया साहब न इसके आग आत्मा के अत्र अत्र लभणा का निष्ठा किया है। यह आत्मा ही अतीत सत्य है। इसके अतिरिक्त और सभी नाना नामरूपात्मक पचाय सत्ता जड और अनात्म है। इसका ही जान स माधक मत्यु पर विजय प्राप्त कर सता है।

सत गरीबवास न जान का प्राप्ति क लिए हृद्योग की पद्धति का अनुसरण किया है। इनका अनुसार जान वराग्य द्वारा उत्पन्न होता है^{२०}। जान का अनुभव ही उसकी उत्कृष्टता का प्रमाण है। इससे अविद्यात्मक द्वन्द दूर भागत है। जान ही ईश्वर के प्रति प्रेम जगाता है और उसका प्रति विषेग की अनुभूति प्ररित करके आत्मगोध को उन्वुद्ध करता है। यह जान कोई सरल या सुगम बात नहीं है। सावहारिक प्राणी में और ब्रह्म में भू हो सकता

१६ मागे पन्ना छात प्रानी ।

आनन्दरान - ही त्व कटिप मरे पुग्ग का जामा ।
 यत् मव जनि पुग्ग है विना नत् एव वाज निवामा ।
 हन एव ना ६ निर्यागी जय निज अविनामा
 मत्ता अमर ह म्मै न कल्प नत् ह म्मि जामा ॥
 आ जय मरे मा ज्जा ग तन वाज न माना ।
 पत्ता कदै कवि वद न जान दास रूप न राती ।
 वद गुन रहित तो यत् गुन वैम नत् न कि जामा ।
 सो रे वदा भू जिनि जारु मोर क्क रि जाम ।
 कदै ज्जा मित ज्जा रि कर क्क रि ज्जा ज्जा म्मी ॥

विहार के सुन्दर ज्जा म्मद का शाना । । प ११ ।

१७ अन्व महारन निवा छात ज्जा न्नुवा ।

पग्ग पर ज्जा य्ज्जु म्मा ।
 मत्ता का मय मं ज्जा न्नुवा ज्जा ।
 विह वत्ता मं ज्जा ज्जा ॥ १ ॥
 ज्जा का ज्जा पत्ता म विज ज्जा ।
 भू भू मं वत्ता म्मदी ।
 ज्जा म्म ज्जा दद विज वत्ता ६ ।
 म्मन्त ज्जा न्ना ज्जा सुदना ॥ २ ॥

१८ ज्जा का शाना ।

हे त्रिगुणरमायन शोभा भगवन् भक्ति यत् ३१८ ।

सन्त पारो साहच के मन मन्त्र योग साधना में उरनर होता है। भाःमूला ही परमज्ञान है। समाधि में भाःमा का साक्षात्कार होता है। यह निताउ गूढ और अनुभवगम्य मय है। वाणी शरा इसका निवचन नहीं हा सकता है।

सत्त बुद्धि साहच ने मन को हा त्रिगुणात्मक माया और कम बन्धन स हूने का उपाय माना है^{१६}। पन तत्त्वा और तान गुणा क उवहार क कारण प्राणी जन्मता मरता है। इनम मुक्त होकर आत्मसाध हाता है। इहा प्रवृत्तिजय विकारा म कम का म उरन हाता है। प्रवृत्तान और सगुण के उरन स प्राणा आनागमन स जाता है, और कम बधन उसका नहीं बांध सक्त हैं।

सत्त चरनस ने इत नश और सवा भाव क अनुभव क लिए तान का महत्व स्वीकार किया है। वस्तुतः प्रज्ञा ही सत्य है त्रिगुण भक्तिया के कारण इतजय उवहार का उरन हाता है। अतःकरण क गुढ होने पर उपाधि ग उरन हाने वाला भम नष्ट श जाता है। माःमत्तक भजान क नष्ट होने ही स्वयंशुद्ध प्रवृत्तान आबिभूत ता है। म तान क प्राप्त हात ही सभी प्रकार क वग नष्ट हा तान है और शिव्य आनन् का अनुभव होने लगता है। इस समय जीव और जगत् माःमा का अभाव ही जाता है और सब

१८ अन्त मन आत्ति मुः वाना त्रिगुण विन्वा गुन वेत्त पने ।

काण उरति आतना पूला त्रिगुणी न्ना मुनर रने ।

साग मन सुरति मो रागो मन पन्ना इश अन्त तरा ।

दान के तन्त वर विन दाना क दौ श्च श्चान पने ।

दारा माःम की रनावी । श ६ ।

१९ म पन्नाय दन् ने म्पन्नाय प न लल गुन नीना ।

उरति निरन्ता निरन्त विन्वा परम त्त निन चीना ।

दरन्तार क अवनन्तन में कम धन का धन ।

साःमन्तान मन्तुत पाद जन्ति म्प मव पन् ।

मन बुद्धि म्पान शान्तु है महत्त न्त को मूल ।

बुद्धन वान बुद्धि लन्ति त्रिद त्ता म्प म्प ॥ बुद्धि श्च सागर ।

एकमान अवस्था ब्रह्म-सत्ता का साक्षात्कार हीन लयता है^२ ।

सत्त दयावाई न भी ज्ञान का अद्वैतपरक ऐक्य प्रतिपादित किया है । जीव ब्रह्म का अंतर घट मटादि में समान है । परमाधत ज्ञाना में भ्रम नहीं है । घट मठ में एक ही आकाश आकार भ्रम स्थित है परन्तु घटाकाश और मटाकाश इन आकारों के नष्ट होने पर एक रूप हीन है । समस्त ब्रह्म अविद्यात्रय भाव निद्रा में सो रहा है । सत्गुण की व्याप्त ज्ञान प्रालोक में समस्त प्रमात कान होता है । धर प्राणा का प्रमाण नष्ट हो जाता है और परम प्रकाश-स्वरूप परब्रह्म का साक्षात्कार हीन लयता है । "म ज्ञाना लोक में समस्त प्राणो एवमत्र स्थिते न्तु ह्ये और विविध व्यावहारिक विषय मत्वा तुष्ट हो जाती है । घट और मठ में स्थित घटाकाश वस्तुत्वं भ्रम-स्थिति स दशने पर विभिन्न रंगों में प्रत्यक्ष हीन है । किन्तु ज्ञान-स्थिति में ज्ञाने पर घट और मठ में स्थित आकाश एवमत्र ही ज्ञान है । इसी प्रकार ज्ञानोन्मत्त होने पर ब्रह्म सत्ता के अतिरिक्त किसी अज्ञानता का बोध या प्रत्यक्ष नहीं होता है^३ ।

२० अत्र ह्ये ज्ञान तुष्ट म पाण ।

दुःखस्यैवैक्यं तत्रात् निरव्ययं च य एवमत्र ।

द्विधा तुष्ट दुःखादुपि निद्रात् तत्रात् न ह्ये च ।

न भ्रममनो न परमं वृक्षं तत्रात् पत्रद्वि मत्र च ॥

ममत्वं च ज्ञानं च तत्रात् प्रमाणं च ।

ममत्वं च सुखं च तत्रात् न ह्ये च वृक्षं प्रमाणं ।

ममत्वं तुष्ट म मत्रात् ममत्वं च तत्रात् च ।

दया दयो ह, ज्ञानं च तत्रात् ममत्वं च ।

२१ ममत्वं च तत्रात् ममत्वं च तत्रात् ।

तत्रात् तत्रात् तत्रात् ममत्वं च तत्रात् ।

ममत्वं तुष्ट ज्ञानं च तत्रात् तत्रात् ।

तत्रात् तत्रात् तत्रात् ममत्वं च तत्रात् ।

तत्रात् तत्रात् तत्रात् ममत्वं च तत्रात् ।

तत्रात् तत्रात् तत्रात् ममत्वं च तत्रात् ।

तत्रात् तत्रात् तत्रात् ममत्वं च तत्रात् ।

तत्रात् तत्रात् तत्रात् ममत्वं च तत्रात् ।

तत्रात् तत्रात् तत्रात् ममत्वं च तत्रात् ।

तत्रात् तत्रात् तत्रात् ममत्वं च तत्रात् ।

तत्रात् तत्रात् तत्रात् ममत्वं च तत्रात् ।

सात भीमा साहब सात जगजीवन साहब और पतङ्ग साहब के वाक्या में भी इसी प्रकार पान की निष्ठा के आह्वान मिलते हैं। सात भीमा साहब का मत है कि ब्रह्मानन्द गुरु से प्राप्त होता है। पान की उत्पत्ति होने ही परम-योनिमय ब्रह्म मन में समाधि हो जाता है। इसमें सभी व्यावहारिक विषयों का लोप हो जाता है और मन समाधि की उस दशा में सीन हो जाता है जहाँ चिन् और रात नहीं होते। यही ब्रह्मचर्य और असम्प्रगत समाधि की अवस्था है^{२२}।

सात जगजीवन साहब के अनुसार पानोत्पत्ति होने पर सबत्र निगुण ब्रह्म की ही महिमा का विस्तार प्राप्त होता है। जब तक यह पान नहीं होता प्राणी अनेक प्रकार के बन्धन करके उनके गुणगुण पाना को भोगने के लिए अनेक योनियों में जन्म लेता रहता है। योग साधन से सत्य स्वरूप परमात्मा का ज्ञान होता है और तभी प्राणी सब बन्धनों को काटने में समर्थ हो जाता है^{२३}।

सात पतङ्ग के मतानुसार पान ही जागृति है और अनान सुषुप्ति। सोने में अनेक प्रकार के दुःख हैं। अतः पान लड्डय लिये हुए वे निरन्तर सजग

२२ क्ली वेष्टि गुणं ज्ञानं मूलं ।

विगमि बन्धनं क्लेशं श्रान्तं कृतं ॥

फलं प्रापन्नं भयो रित्तु नम्राय

परमं चोतिं पित्तं मन ममाय ॥

पवकं भयो रसं श्रमो रानि ।

चायनं त्रिष्टि सरूपं चानि ॥

सोऽपि आत्ति मयं श्रान्तं सोऽपि ।

चीव पवनं मन रक्षो न कोऽपि ॥

सर्वं ब्रह्म मनं सुखं लीनं ।

भीमा राति न तद्वर्षं ज्ञानं ॥ भीमा साहब की वाणी । बसन्त २ ।

२३ साधो अब म ज्ञान विचारा ।

निरयुन निराकार निरवानी निह कः सकल पन्धरा ॥

बाया धरि धरि नास्त आगे बभ करम के चारा ।

विनु सन टारी जोग नहि छूटे कते होय चारा ॥

कृपा काण्ड पडि सद्धि सम्पारया उचति कः त्रिष्टि निपाता ।

सब समार चित्त ते विमर पनुन सोऽपि ॥

निरयुन अहि युन परयो आगे कै राम भयो सन्धरा ।

जगजीवन गि नाम उचरिगे सतयुग परत अकारा ॥

जगजीवन साहब का साङ्ख्य सागर । भग २ । शब्द ६१ ।

प्रहरी के समान नानमय जागरण कर रहे हैं^{२४} ।

इस ज्ञान का लक्ष्य ब्रह्म है । पीछे प्रकरणा म जीव और ब्रह्म की एकता कहा गई है । पर तु इस एक्यानुभूति म अविद्या व घन है । ब्रह्म स्वत नान स्वप्ना है किन्तु वन व भाव का अनादि कम परम्परा म प्राप्त होकर अज्ञान को विषय करता है । नित्य गुढ बुद्ध और मुक्त स्वभाव ब्रह्म म सत्ता अध्वस्त है । इम अध्याम बुद्धि का नाग हान मे जीव ब्रह्म स्वरूप म प्रतिष्ठित होता है । ब्रह्म ज्ञान हान पर आवरण रूप माया जीव और जगत की सत्ताएँ नष्ट हो जाती हैं । प्रकृति विकारा के कारण ब्रह्म पर माया का आवरण है । जागतिक व्यवहारा और अनात्म पदार्थों में अध्वस्त बुद्धि जीव को स्वरूप ज्ञान से अलग रखती है । यह अध्याम ही उपाधि रूप म नित्य मुक्त आत्मा के बधन का कारण है । यह बधन पारमाधिक नहीं है जीव की उपाधि द्वारा रचा गया है । इम सम्बन्ध म सत्ता के का प म पुष्ट सिद्धांत मिलते हैं । अज्ञान अथवा अविद्या क निरस्त होने पर ज्ञान स्वरूप आत्मा गप रहता है ।

गङ्गा क अनुमात ज्ञान स्वत मोक्ष स्वरूप ही है । गङ्गा ने गरीर रहते हुए ही मुक्ति का अनुभव हाना कहा है । जिस प्रकार कुण्डल धारण किये हुए पुरुष की कुण्डला का अभिमान होता है किन्तु कुण्डल रहित पुरुष कुण्डल मुग्धाभिमान से रहित होता है । उसी प्रकार गरीराभिमानो पुरुष गरीर के दुःख सुखादि दुःख का अनुभव करता है । किन्तु जिस पुरुष को गरीर का अभिमान नहीं है उसको गरीर के दुःखा और सुखा का अनुभव नहीं होता । घन जीवितावस्था म ही मुक्ति का अनुभव होता है । इस प्रकार जीवितावस्था म ही मोक्षानुभव करने वाला साधक जीव मुक्त कहलाता है । विवेक चूटामणि क अनुमात स्थितप्रज्ञ आत्मानन्द का अनुभव करने वाला और प्रपञ्च को भूलार करने वाला साधक जीव-मुक्त है^{२५} । देह तथा इन्द्रियो म कत त्व ग्रहकार मे रहित ज्ञानीन पुण्य जोन-मुक्त है^{२६} । नदी क समुद्र म मिलन पर नदी समुद्र

^{२४} ज्ञान म परमाक वस्तु है सोय वी दुःख होय ।

ज्ञान गगन तिव पट्ट ज्ञान होना होय मोक्षाय ॥

दलदू माणव की । नी । शब्द ६० । भाग ।

^{२५} ब्रह्म मूत्र भव्य । १११४ ।

दय चित्त नरत्तम वरदानेन निरन्तर ।

प्रान्ते विमलभाय म जीव मुन शब्द ॥ ४०६ । विवेक चूटामणि ।

^{२६} दशरूपी वचन्य मनाभावरत्निल ।

श्रीमत्सङ्गीत सन्निवृत्त पत्रपुराणम् । ४० । विवेक चूटामणि ।

